श्री तनसुखराय जैन स्मृति ग्रन्थ

सम्पादक

जैनेन्द्र कुमार जैन

यशपाल जैन   अक्षयकुमार जैन

सुमेरचन्द जैन

प्रकाशक :
[redacted]
तनसुखराय स्मृति ग्रन्थ समिति
२१, अंसारी रोड, दरियागंज, दिल्ली

मूल्य : १० रुपये

मुद्रक
इम्पीरियल बुक डिपो प्रेस
जामा मस्जिद,
दिल्ली

समर्पण

सुश्री अशर्फी देवी धर्मपत्नी ला० तनसुखराय जी

के लिए

जिन्होंने अपने पति के लिए समाज और देश सेवा के कार्य में सहयोग ही नहीं दिया

बल्कि समय-समय पर उत्साह और प्रेरणा देकर

उन्हें प्रोत्साहन देती रहीं

जो

अति विनम्र, अतिथि सेवा परायण, धार्मिक और कर्तव्यशील

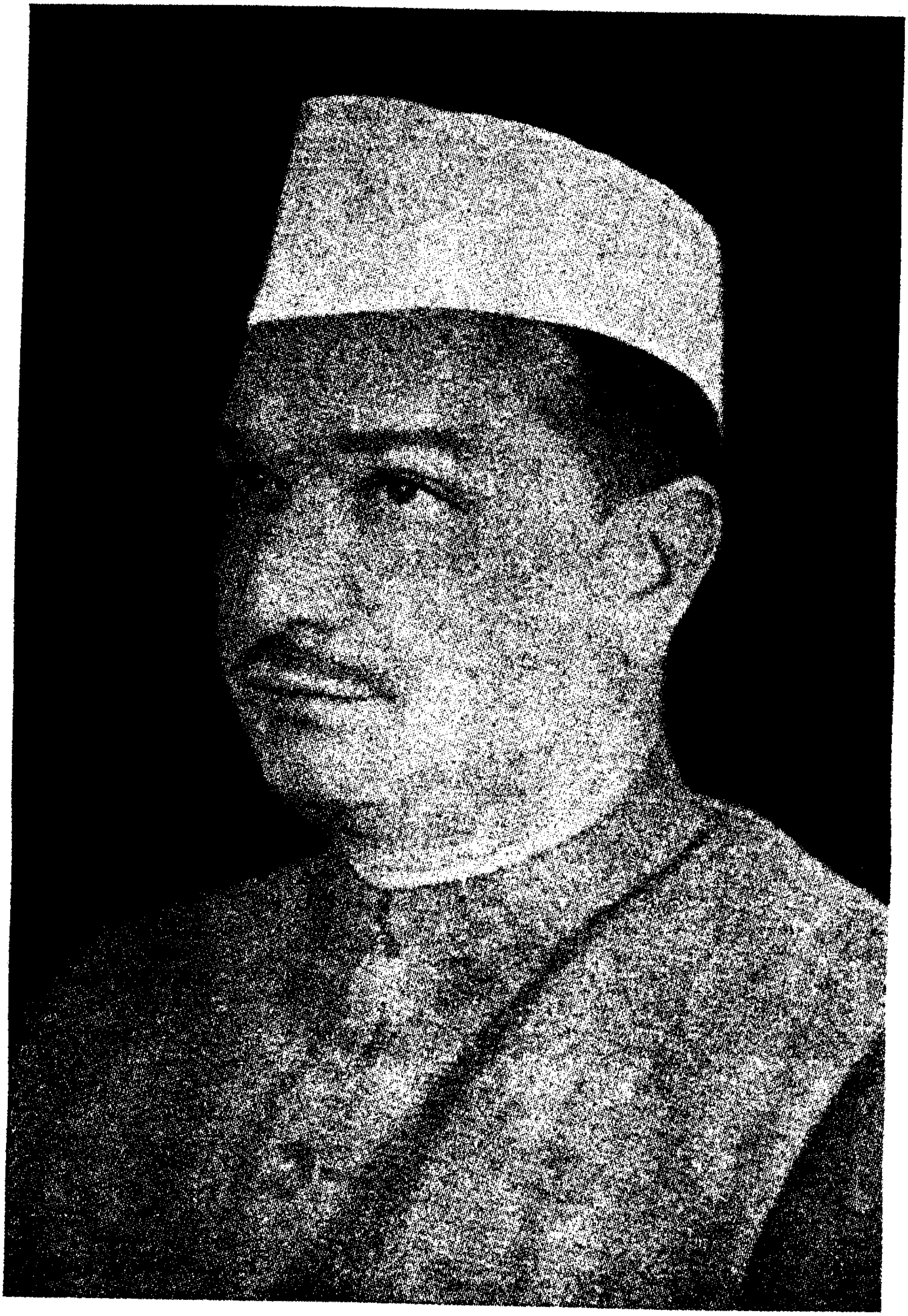
महिला रत्न हैं

स्त्री शिक्षा प्रचार और समाज सेवा के कार्य में

जो विशेष प्रयत्नशील रहती हैं

उन्हीं के कर कमलों में यह स्मृति ग्रन्थ

सादर समर्पित है



जन्म
२१ नवम्बर, १८९९

स्वर्गवास
१४ जौलाई, १९६३

दो शब्द :

प्रसिद्ध देशभक्त कर्मवीर कुशल व्यवसायी समाजसेवी

ला० तनसुखराय जैन
स्मृति ग्रन्थ

देश और समाज सेवा का सुन्दर समन्वय

भारतभूमि रत्नगर्भा है। समय-समय पर कुछ ऐसी दिव्य विभूतियाँ जन्म लेती हैं जो अपने कार्य और प्रभाव से एक नया चमत्कार पैदा कर देती हैं। नवभारत के निर्माण में लोकमान्य तिलक, विश्व कवि रवीन्द्रनाथ टैगोर, विश्वबन्धु महात्मा गांधी, पंजाबकेसरी ला० लाजपतराय और विश्व-शान्ति के अग्रदूत पं० जवाहरलाल नेहरू जैसे अद्वितीय महान रत्न हुए जिन्होंने लोक कल्याण की भावना से जन साधारण में असाधारण क्रान्ति की भावना उत्पन्न की। अपनी प्रभावशाली वाणी और आश्चर्यजनक कार्यों से देशवासियों के हृदय में ऐसी जागृति की ज्वाला जगाई कि उन असंख्य युवकों और वीराङ्गनाओं ने सहर्ष मातृभूमि के चरणों में अपने को न्यौछावर कर दिया।

राष्ट्रीय आन्दोलन में जैन समाज भी कभी पीछे नहीं रहा उसके शक्तिशाली युवकों ने स्वतन्त्रता की प्राप्ति के लिए एक-दूसरे से आगे बढ़कर अपना तन-मन-धन अर्पण करने में अपना गौरव समझा।

परतंत्रता रूपी अन्धकार को दूर करने और स्वतन्त्रता रूपी लाली भरे भास्कर का स्वागत करने के लिए तेजस्वी युवक आगे आए। उन्हीं युवकों में देशभक्त कर्मवीर समाजसेवी ला० तनसुखरायजी थे, जो देश सेवा को अपने जीवन का लक्ष्य समझते थे। उन्होंने भ० महावीर के मंगलमय शासन को लोकव्यापी बनाने के लिए प्रयत्न किया। वे मानवता की सेवा के लिए सदैव लालायित रहते थे। जैन समाज एकता के सूत्र में बँधकर अहिंसा धर्म का अधिक से अधिक प्रचार करता रहे। यह पुनीत भावना उनके हृदय में सदैव बनी रहती थी। शाकाहार का प्रचार हो, पशुधन की रक्षा हो इस सम्बन्ध में उन्होंने बड़ा महत्त्वपूर्ण कार्य किया। देश समाज के प्रति की गई उनकी सेवाएँ स्वर्णाक्षरों में लिखने योग्य हैं। उनका जीवन युवकों के लिए आदर्श है। आज जब भ्रष्टाचार और लोलुपता का बोलबाला दिखाई दे रहा है तब हम उनके जीवन को देखते हैं कि उन्होंने पदों की कभी अभिलाषा नहीं की। स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात् राजनीति को छोड़कर वे समाज-सेवा के क्षेत्र में आए।

देश-सेवा

सन् १९१९ में जबकि असहयोग आन्दोलन शुरू हुआ और हमारे देश में आजादी की लहर दौड़ी तो उनसे न रहा गया। एकदम स्वदेशी वस्तुओं का प्रयोग करना शुरू कर दिया। पंजाब-केसरी लाला लाजपतराय के साथ तिलक स्वराज्य फण्ड में रुपया एकत्रित करने में आपने बड़ा कार्य किया। आप पर लाला लाजपतरायजी का बड़ा प्रेम था। लोकनायक पं० जवाहरलालजी नेहरू के साथ-साथ रोहतक, करनाल आदि जिलों में दौरा किया। रोहतक में जब माता कस्तूरबा गाँधी पधारीं और चर्खा दङ्गल हुआ जिसमें २५० महिलाएँ सम्मिलित हुईं तो आपने प्रत्येक महिला को ५) और चाँदी की तकली भेंट में दी। असहयोग आन्दोलन में ६ माह कारावास में रहे। १९४२ में दिल्ली प्रदेश कांग्रेस के अध्यक्ष रहे। हरिजनों के लिए उन्होंने एक बोर्डिङ्ग हाउस की स्थापना कराई।

आप उन व्यक्तियों में से थे जो अन्त तक अपने को छिपाए रखना चाहते थे। अथक उत्साह, स्फूर्ति, व्यवसाय-कुशलता, नम्रता, सच्चाई आदि लोकोत्तर गुणों की मूर्ति थे। आप देश और समाज के निर्भीक सिपाही थे। लक्ष्मी इन्शोरेन्श और तिलक बीमा कम्पनी भारत की प्रसिद्ध प्रगतिशील राष्ट्रीय कम्पनी रही है। यह कम्पनी उच्च आदर्श और लोकहित के संदेश को लेकर कार्यक्षेत्र में उतरी उसका मूल उद्देश्य भारत की आर्थिक स्थिति को वैज्ञानिक ढंग से उन्नत करना और भारत की बढ़ती हुई बेकारी को दूर करना आपने अपने नेतृत्व में उसका बड़ी सफलता के साथ संचालन किया।

समाज-सेवा

आपके जीवन पर आपकी धर्मपरायणा माताजी और उदार हृदय पिताजी का अद्भुत प्रभाव पड़ा। माताजी ने समाज-सेवा की ओर प्रेरित किया। इस युग के समन्तभद्र महान कर्मयोगी ब्र० सीतलप्रसादजी, और विद्यावारिधि बैरिस्टर चम्पतरायजी वीर प्रभु की पवित्र वाणी को देश विदेशों में फैलाने में सतत प्रयत्नशील रहते थे। उन्होंने समाज में नये युग का आह्वान किया, विरोध को चुनौती दी और संघर्ष से टक्कर ली। दोनों का हृदय जैन धर्म की श्रद्धा से ओत-प्रोत था। उनकी रुचि दीप-शिखा की तरह शान्त, स्निग्ध और स्थिर थी। परिषद की पतवार अपने समर्थ हाथों में लेकर उन्होंने कभी तूफान की पर्वाह की न प्रलय की। वह जैन धर्म के बड़े मर्मज्ञ थे। दोनों के जीवन का अद्भुत प्रभाव उनके हृदय पर पड़ा। परिषद के प्रधान मन्त्री बनकर परिषद की सफलता को मुट्ठी में लिए फिरते थे। उनके, कार्यों, त्याग और उदारता को देखकर सब लोग भूरि-भूरि प्रशंसा किया करते थे। परिषद के लिए उन्होंने अपना तन-मन-धन लगा दिया। भेलसा, खंडवा, सतना, झांसी आदि के अधिवेशन उनकी सफलता के सर्वोत्तम उदाहरण हैं। वीर सेवा संघ की स्थापना करके नवयुवकों को सामाजिक कार्यों की ओर लगा दिया। वीर जयन्ती की छुट्टी के लिए उन्होंने बड़ा प्रयत्न किया। उनकी भावना थी कि कोई सामाजिक उद्योग होना चाहिए। सेवा के कार्य में वे सबसे आगे थे। वे कहा करते थे कि मैं जैन समाज का सदस्य हूँ पर वैसे ही भारतीय

समाज का भी हूँ। इस उद्योग से कुछ ऐसा होना चाहिए जिससे सबका भला हो, इसी भावना से उन्होंने अपने जीवन में सेवा के अनेक कार्य किये जिनमें कतिपय का उल्लेख करना आवश्यक है :—

—महगांव कांड में समस्त जैन समाज विक्षुब्ध हो उठा। ढाई माह तक आन्दोलन करने के पश्चात् ग्वालियर सरकार के कान खड़े हो गए जिसमें जान-बूझकर जैन धर्म का अपमान किया गया था। यह जैन समाज की परीक्षा का समय था। अपने सहयोगी दाहिने हाथ युवक हृदय गोयलीय जी के साथ परिषद के नेतृत्व में उस सफलता के साथ कार्य किया कि वह विष का घूंट अमृत बन गया। जैन समाज में क्षत्रिय तेज उमड़ उठा। सफलता का श्रेय उनके चरणों को चूम उठा। इस कार्य में लालाजी के अदभुत कार्यशक्ति का परिचय दिया।

—आबू के मन्दिरों पर सिरोही स्टेट द्वारा लगाया गया टैक्स, टैक्स नहीं है किन्तु कलङ्क है। यह टैक्स हमारी धार्मिक स्वाधीनता में बाधक है तथा स्वाभिमान घातक है। आपके इस पुनीत संदेश से जनता में क्रांति मच गई और टैक्स हटाकर ही शान्ति ली। यह कलङ्क जब तक धुल नहीं गया तब तक चुप नहीं बैठे।

—भा० दि० जैन परिषद, भारत जैन महामण्डल, वैश्य कांफ्रेंस, अग्रवाल सभा, भारत वेजिटेरियन सोसायटी के तो प्राण ही थे।

—दि० जैन पोलिटैक्निकल कालेज (दि० जैन कालेज) बड़ौत का शिलान्यास आपके ही कर-कमलों द्वारा हुआ।

—५००० भीलों को मांसाहार का त्याग कराया।

—चरित्र चक्रवर्ती आचार्य शान्तिसागर जी महाराज के वे बड़े भक्त थे। कई बार उनके दर्शनों के लिए पधारे।

—स्याद्वाद महाविद्यालय के भवन को गंगा के थपेड़ों से जब खतरा उत्पन्न हो गया और भैदनी घाट जर्जर होने लगा, भ० सुपार्श्व नाथ के विशाल मन्दिर के गिरने की आशंका पैदा हो गई तो सरकार द्वारा उसके निर्माण की स्वीकारता प्रदान कराई। इस सम्बन्ध में श्रद्धेय वर्णीजी ने उनके सम्बन्ध में लिखा कि "इस युग में आपने महान धर्म का उद्धार करके अपूर्व पुण्य लाभ किया। घाट के कार्य का श्रेय आपको ही है। आपने बड़ा भारी अद्वितीय दुर्धर कार्य किया। हमारा हृदय आपके इस धार्मिक कार्य की लगन के लिए आपका शुभाकांक्षी है।"

भारत जैसे धर्मपरायण अहिंसाप्रिय देश में जहां अधिक जनता शाकाहारी हो वहाँ मांसाहार का प्रचार बढ़े यह देख सेठ शान्तिकरण आसकरण और श्रीमती रुक्मिणी अरुण्डेल के नेतृत्व में मिलावट विरोधी कांफ्रेंस और शाकाहारी कांफ्रेंस की, जिसमें जनता को बताया, यहां के नर-नारी घी-दूध के सेवन से बलवान और बुद्धिमान होते थे। आज जो अनेक बीमारियाँ फैल रही हैं उसका कारण शुद्ध घी का अभाव है। इस सम्बन्ध में आपने बड़ा प्रयत्न किया।

लालाजी जैन समाज के उन कर्मठ अनुभवी और कर्तव्यपरायण कार्य-कर्ताओं में से थे जिन्हें सदैव देश और समाजसेवा का प्रकृतिदत्त व्यसन था जो कठिन से कठिन परिस्थिति में सदैव निर्भय और सफल रहते थे।

लालाजी की प्रतिभा सर्वतोमुखी थी। सभी विषयों में उनकी अवाधगति थी। ऐसे कर्मयोगी सेवापरायण निस्वार्थ समाज-सेवक नर-रत्न का उनके जीवन में ही यथोचित सत्कार होना चाहिए था। उनके कार्यों से युवकों को भली प्रकार परिचित होना आवश्यक है ताकि निःस्वार्थ कार्यकर्ताओं की वृद्धि हो परन्तु ऐसा हुआ नहीं। समाज अपने कार्यकर्ताओं के प्रति उदासीन रहती है।

कुछ भाइयों की आन्तरिक अभिलाषा थी कि उनके सम्बन्ध में एक उत्तम ग्रन्थ प्रकाशित हो। उनके विचारों का नवयुवक लाभ उठा सकें। उन्हें मार्गदर्शन मिल सके। इसी भावना से उनके मित्रों और घनिष्ठ सम्पर्क रखने वाले साथियों की प्रेरणा से एक स्मृति-ग्रन्थ प्रकाशित किया जा रहा है।

इससे लालाजी की देश और समाज के प्रति की गई सेवा से आप भली प्रकार परिचित होंगे।

ग्रंथ को सर्वांग सुन्दर बनाने का प्रयत्न किया गया है परन्तु सम्भव है आपकी रुचि अनुकूल न हो परन्तु फिर भी उनके कार्यों का सुन्दर दिग्दर्शन और धार्मिक लेखों से ग्रंथ की शोभा बढ़ गई है। इस प्रकार के ग्रन्थ से आप भली प्रकार उनके कार्यों से परिचित हो सकेंगे। ग्रंथ के कार्य को प्रारम्भ करने के लिए श्रीतनसुखराय जैन स्मृतिग्रंथ संयोजक समिति का निर्माण हुआ। जिसके अध्यक्ष स्वनाम धन्य दानवीर साहू शान्तिप्रसाद जी हैं। साहू जी ने इस कार्य में विशेष रुचि प्रकट की। क्योंकि सुयोग्य कार्यकर्ता और समान सेवकों का सम्मान करना अत्यन्त आवश्यक है। 'गुणिषु प्रमोद' की भावना का यही अभिप्राय है। गुणवान सेवाभावी पुरुषों को देखकर हृदय में हर्ष का भाव होना प्रमोद भावना है।

यह कहते हुए अपार हर्ष होता है कि इस सम्बन्ध में हिन्दी के उच्चकोटि के लेखक और प्रतिभा सम्पन्न विद्वानों में एवं समाज के गण्यमान नेताओं, कार्यकर्ताओं और प्रमुख पुरुषों कवियों तथा सुयोग्य संपादकों ने अपनी श्रद्धांजलि, संस्मरण, कविताएँ भिजवाकर हमें अनुगृहीत किया है। हम उन लेखकों, कवियों और नेताओं के हार्दिक आभारी हैं जिन्होंने हमारी प्रार्थना पर रचनाएँ भिजवा कर हमें अनुगृहीत किया है।

साथ ही ग्रंथ की छपाई और इतने सुन्दर ढंग से प्रकाशित करने का श्रेय श्री रामजस कालेज सोसाइटी के प्रेस व्यवस्थापक श्री सुरेन्द्र प्रकाश जी रस्तोगी विशेष धन्यवाद के योग्य हैं जिन्होंने बड़ी रुचि और उत्साह के साथ हमारे इस कार्य में पूर्ण सहयोग प्रदान किया है।

एकबार हम उन सभी सम्पादकों, लेखकों और नेताओं को धन्यवाद देते हैं जिन्होंने लालाजी के प्रति अपना स्वाभाविक प्रेम दर्शाकर हमें उनके सम्बन्ध में अमूल्य विचार दिए हैं।

आशा है इस स्मृतिग्रंथ से लालाजी की स्मृति हमारे हृदय में सदैव बनी रहेगी और उनके किए गए कार्यों से हम थोड़े-बहुत उऋण भी हो जावेंगे।

हमें विश्वास है—

इस ग्रंथ से समाज के उदीयमान युवक उनके महत्वपूर्ण कार्यों से प्रेरणा लेकर देश और समाज की सेवा में अपने को सहर्ष अर्पण करने के लिए तत्पर रहेंगे। तो हमें अतीव प्रसन्नता होगी और हम अपना परिश्रम सफल समझेंगे।

विनम्र

अक्षयकुमार जैन
प्रधानमंत्री
भा० दि० जैन परिषद
अध्यक्ष
अखिल भारतीय सम्पादक सम्मेलन
मंत्री

सुमेरचन्द जैन शास्त्री
साहित्यरत्न, न्यायतीर्थ
अध्यापक
जैन सं० क० हायर सैकेण्डरी स्कूल
संयोजक

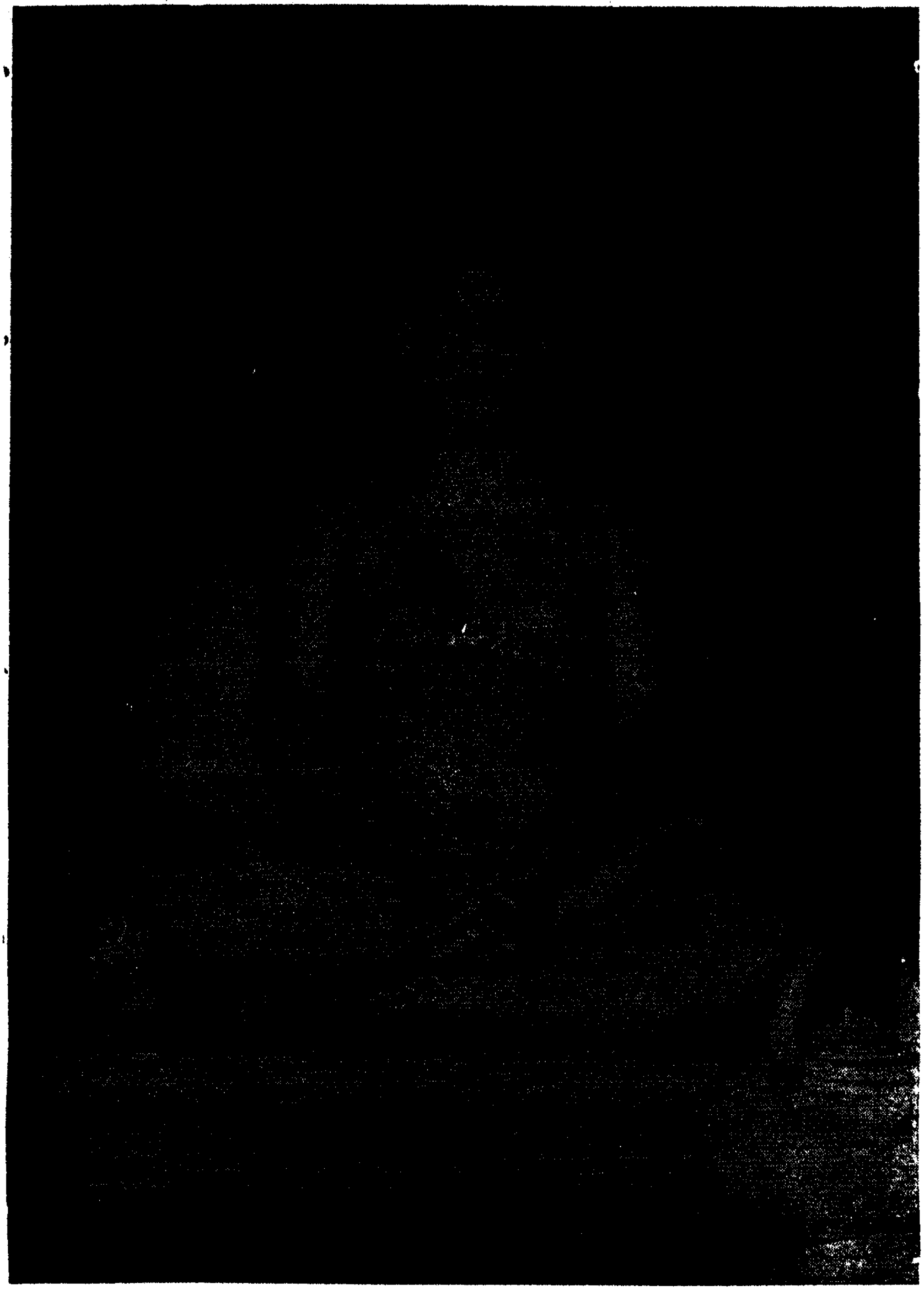
श्री तनसुखराय स्मृति ग्रंथ संयोजक समिति
२१ अन्सारी रोड, दरियागंज, दिल्ली.

अनुक्रम

श्रद्धांजलियां, संस्मरण, प्रथम अध्याय

कवितायें

विविध आन्दोलन, द्वितीय अध्याय

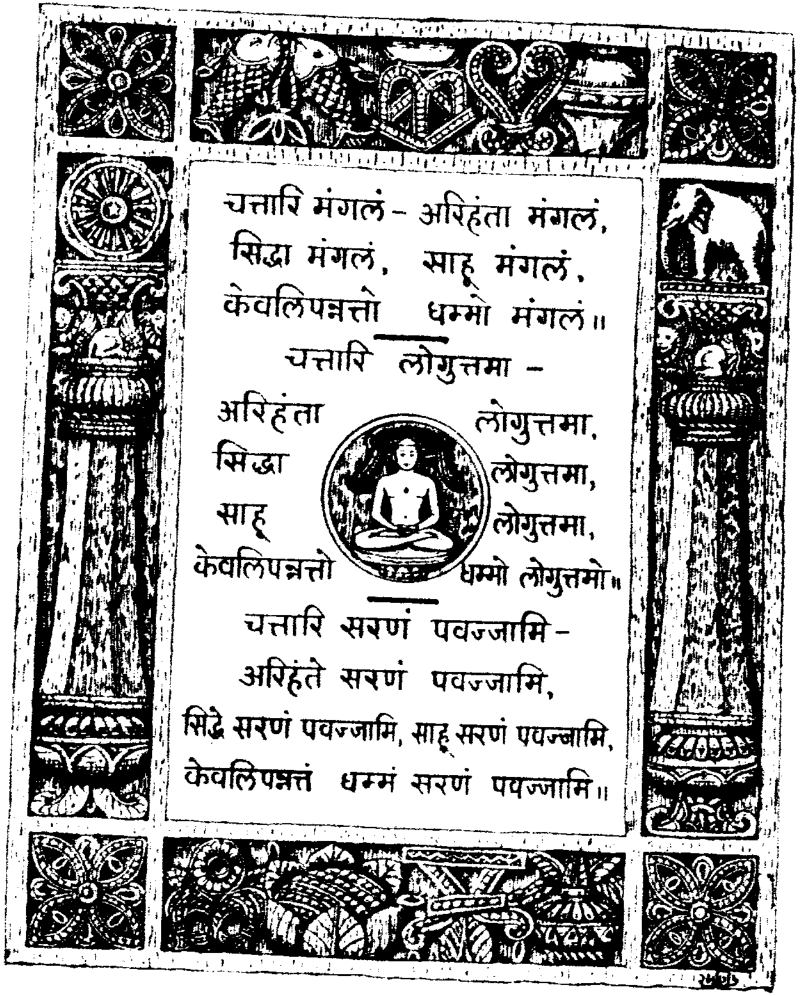


जैनधर्म के परमप्रभावक

महान् आचार्यरत्न १०८ श्री देशभूषणजी महाराज विद्यालंकार

दिल्ली में आपके चार चातुर्मास हो चुके हैं, जिनके कारण जैनधर्म की अपूर्व प्रभावना हुई है और अनेक लोकोपकारी कार्य होरहे हैं।





मथुरा संग्रहालय के सौजन्य से प्राप्त

ॐ

प्रसिद्ध देशभक्त कर्मवीर कुशल-व्यवसायी समाजसेवी

लाο तनसुखराय जैन

की

स्मृति में

★ श्री तनसुखराय स्मृति ग्रन्थ ★

याद तुम्हारी सेवाएँ आती हैं तनसुखराय

यों तो जग अनादि से, सुनता आया अगनित नाम।
जीवित वही बचा है, जिसके साथ जुड़ा है काम।
केवल सेवाएँ जीती हैं, मृत-मानव के बाद।
जिसने यह रहस्य पहिचाना, बची उसी की याद।
कठिन समस्याओं में दीखे कभी न तुम निरुपाय।
याद तुम्हारी सेवाएँ आती हैं तनसुखराय।

(२)

तन का सुख यदि प्रमुख रहा, तो मिला न मन का बोध।
मन का बोध मिला तो, पथ का लोप हुआ अवरोध।
त्याग तथा सेवाओं द्वारा, प्राणी बना महान्।
उपकारी का सारा जीवन, जीवन का वरदान।
इसी दिशा पर बढ़े सदा, तुम रह कर मंद कषाय।
याद तुम्हारी सेवाएँ आती हैं तनसुखराय।

(३)

तुमने अपनी क्षमताओं को, अर्पित किया शरीर।
रहे सतत कर्त्तव्य परायण सेनानी प्रण-धीर।
बड़े संकटों में भी तुमको देखा नहीं अधीर।
तुम साहस, समाज सेवा की बने रहे प्राचीर।
कैसा भी हो किया न तुमने सहन कभी अन्याय।
याद तुम्हारी सेवाएँ आती हैं तनसुखराय।



कविरत्न श्री कल्याणकुमार 'शशि'
रामपुर

(४)

वह सीमित जीवन है, जिसका विश्व न हो परिवार।
वह जीवन क्या ! दिया न जिसने पथ को नया सुधार।
वह वंचित जीवन है, जिसका ध्येय न पर उपकार।
वह जीवन क्या, बना न जो बहु जन हित का आधार।
इसी दिशा में किये शक्तिभर तुमने बड़े उपाय।
याद तुम्हारी सेवाएँ आती हैं तनसुखराय।



श्रावकशिरोमणी

दानवीर

साहू शान्तिप्रसाद जैन

के

उद्‌गार

भाई तनसुखरायजी एक बड़े ही उत्साही मित्र थे। समाज-सेवा और समाज-सुधार उनके जीवन के अंग थे। समाज-क्रान्ति और समाज-उत्थान की बात वे सदा सोचते थे। जैन-संस्कृति और धर्म में उनकी अटूट श्रद्धा थी। मेरा उनसे २५ वर्ष भाई का सम्बन्ध रहा है। वे अपने कष्ट के समय भी हमेशा प्रसन्न मुद्रा में रहते थे। उनके अभाव में जैन समाज ने एक कर्मठ नेता खोया है और कई संस्थाओं ने तो अपना सहारा ही खो दिया है।

प्रेरणा के स्रोत

श्री मिश्रीलाल गंगवाल
योजना तथा विकासमन्त्री, मध्यप्रदेश

स्वर्गीय ला० तनसुखरायजी की जीवनी और उनके कार्यों को लेखनीबद्ध कर संकलन करने का विचार वास्तव में एक सराहनीय और उपयोगी पहल है। स्व० लाला तनसुखरायजी का मेरे पर अगाध स्नेह और ममत्व था। वे न केवल जैन समाज के प्रेरणा के स्रोत रहे वरन् देश के कर्मठ समाजसेवकों में उनकी गिनती थी। उनके ऊपर हमें गर्व था। उनके द्वारा किए गए समाजोपयोगी कार्य सदैव उनकी पवित्र स्मृति को उज्ज्वल रखेंगे। वे एक तपे हुए कांग्रेस-जन भी थे। उनमें राष्ट्रीयता और देशप्रेम कूट-कूट कर भरा हुआ था। जिन्हें भी उनके सामीप्य में रहने का अवसर मिला वह उनके गुणों और कार्यशैली से प्रभावित हुए बिना न रह सका। उनका सौम्य और सरल रहन-सहन सबके लिए प्रेरणादायी था। उनके विषय में जितना भी लिखा-कहा जाय कम ही होगा। उनके निधन से समाज की महान क्षति हुई।

मैं आपके इस प्रयास की हृदय से सफलता की कामना करता हूँ। मेरी आपके इस शुभ प्रयत्न के साथ संपूर्ण सद्भावना और सहानुभूति है।

★ ★ ★

उनका नाम अमर रहेगा

श्री तख्तमल जैन
भूतपूर्व मुख्यमंत्री मध्यभारत

लाला तनसुखरायजी से मेरा एक सार्वजनिक कार्यकर्ता के नाते काफी सम्पर्क रहा है। विवादों में अधिक न उलझ कर उन्होंने समाज की काफी सेवा की है। समाज-सुधारकों के इतिहास में उनका नाम अमर रहेगा। जीवन पर्यन्त उन्होंने अपने समाज के लक्ष्य को प्राप्त करने हेतु हमेशा प्रयत्न किया है। ऐसे महान समाज-सेवक की स्मृति में आप ग्रंथ का सम्पादन कर रहे हैं, इसकी मुझे बड़ी खुशी है। मुझे आशा है कि उनके जीवन से नई पीढ़ी लाभ उठाकर उनके पद-चिह्नों पर चलने का प्रयत्न करेगी।

★ ★ ★

विचारवान व्यक्तियों में अग्रगराय

सेठ अचलसिंहजी
सदस्य लोकसभा

मैं स्वर्गीय श्री तनसुखरायजी जैन को गत तीस वर्षों से जानता हूँ। आपके हृदय में समाज-सेवा के लिए बड़ी लगन व भावना थी। एक समय जब आप एक बीमा कम्पनी के संचालक थे या मुख्य कार्यकर्त्ता थे, उस समय आपने मुझे आगरे में दर्शन दिये थे तब से उनके विचारों की मेरे ऊपर छाप पड़ी और उसके बाद समय-समय पर जैन-संसार की जागृति के सम्बन्ध में विचारो से अवगत होता रहता था। अभी चन्द वर्ष पूर्व आपने भारत जैन-मंडल के श्री चिरंजीलालजी की प्रेरणा पर दिल्ली में एक भारतीय जैन कान्फ्रेंस करने का कार्यक्रम बनाया। पर कुछ लोगों के मुखालफत के कारण उन्होंने बन्द कर दिया। इसी प्रकार अ० भा० महावीर जयन्ती कमेटी को भी जैन कन्वेन्शन करने का विचार स्थगित करना पड़ा, कारण हमारे जैन-समाज में कुछ व्यक्ति अपने पुराने विचारों से ओतप्रोत हैं, वे समयानुसार सुधारों से परे रहना चाहते थे।

स्वर्गीय श्री तनसुखरायजी की सेवायें समाज के लिए अकथनीय थीं। वे बड़े विचारवान और समाज के लिए हमदर्द व्यक्तियों में अग्रगण्य की पंक्ति में थे। उनकी समाज-सेवायें कभी भी नहीं भुलाई जा सकती हैं।

मैं उनके प्रति अपनी हार्दिक श्रद्धांजलि अर्पित करता हूँ।

❋ ❋ ❋

जन-कल्याण हितैषी

साहू श्री श्रेयांस प्रसादजी जैन
भूतपूर्व अध्यक्ष, भा० दि० जन परिषद् तथा अ० भा० व्यापार संघ, बम्बई

यह जानकर प्रसन्नता हुई कि आप लोग लाला तनसुखरायजी जैन की स्मृति में एक स्मृति-ग्रन्थ प्रकाशित करने जा रहे हैं। समाज-सेवियों की सेवाओं के मूल्यांकन के लिए ऐसे ग्रन्थ बहुत ही अच्छे माध्यम सिद्ध हुए हैं। 'श्री तनसुखराय जैन स्मृति ग्रन्थ समिति' के तत्वावधान में यह संकलन बहुत ही अच्छा आयोजन है।

लाला तनसुखरायजी की सामाजिक सेवाओं और जन-कल्याण-हित में किये गये प्रयत्नों को सम्मान देना एक बड़ा सामाजिक उत्तरदायित्व है, जिसके निर्वाह के लिए आप लोगों के साथ मेरा पूरा-पूरा सहयोग है।

इस सद्प्रयास में मेरी शुभ कामनाएँ आप के साथ हैं। कृपया इस पवित्र कार्य में मेरी भी श्रद्धांजलि स्वीकार करें।

व्यापक कार्यदृष्टि और निर्मल भावना

श्री ब्रजलाल बियाणी
सदस्य विधान परिषद् महाराष्ट्र प्रदेश

श्रीयुत तनसुखरायजी जैन की स्मृति के साथ उनके अपने प्रति ममत्व का और उनकी क्रियाशीलता का मुझे स्मरण हो आता है। मेरा उनका अनेक वर्षों तक सम्बन्ध रहा। मैं, दिल्ली जब काउंसिल आफ स्टेट के मेम्बर के नाते जाने लगा, तब से मेरा उनका परिचय हुआ और वह बढ़ता ही गया। व्यक्तिगत और कौटुम्बिक तरीके से भी उनका सम्बन्ध आते गया। उनके कार्य की दृष्टि से उनकी व्यापक और सर्वग्राही शक्ति का मैं अवलोकन कर सका। वे जिस काम को करते थे, अत्यन्त लगन से करते थे और अपने अनेक कामों को करते हुए भी मैंने उनमें अहंकार का अभाव पाया। बड़ी निर्मल भावना से वे अपने सब कामों को संपादित करते थे। उनके मित्रों का परिवार भी काफी बड़ा था। आर्थिक क्षेत्र में पूर्णतया स्वावलम्बी होते हुए भी उनके जीवन में सादगी थी और साथ ही जीवन व्यवस्था समयानुकूल भी थी।

श्रीयुत तनसुखरायजी जैन की स्मृति में ग्रंथ-निर्माण किया जा रहा है, यह जानकर मुझे अत्यंत प्रसन्नता है। अच्छे स्थायी ग्रंथ का निर्माण उनके प्रति कर्तव्यपालन होगा। इस ग्रंथ के लिए मैं अपनी इन पंक्तियों के साथ श्रीयुत तनसुखरायजी जैन की स्मृति में अपनी अंजली प्रेषित करता हूँ।

कर्मठ एवं लगनशील व्यक्ति

दानवीर सेठ गजराजजी गंगवाल
कलकत्ता

यह जान कर परम हर्ष हुआ कि श्री लाला तनसुखरायजी जैन के विषय में स्मृति-ग्रन्थ प्रकाशित हो रहा है। श्री लालाजी जैन समाज के सुयोग्य, कर्मठ एवं लगनशील व्यक्ति रहे हैं और मुझे उनके निकटतम सम्पर्क में रहने का सुअवसर प्राप्त रहा है। आशा है यह स्मृति ग्रंथ समाज के नवयुवकों को समाज एवं धर्म सेवा के लिए स्फूर्ति एवं प्रेरणाप्रद होगा। आपका यह प्रयास सर्वथा प्रशंसनीय है।

× × × ×

दिलेर और अदम्य साहसी

श्री लालचन्द जैन एडवोकेट, रोहतक
भूतपूर्व प्रध्यक्ष भा० दि० जैन परिषद्

स्वर्गीय तनसुखरायजी एक साहसी और धैर्यवान व्यक्ति थे। पहले-पहल मुझे उनके साहस का परिचय असहयोग आन्दोलन के समय हुआ, जब वे गिरफ्तार किए जाकर अदालत में लाये गये, और उनके रिश्तेदार इस संबंध में मुझे अदालत में ले गये।

उनके भाई गनपतरायजी का झुकाव तो जैन-समाज की कुरीतियाँ दूर करने के लिये बहुत था और उनसे काफी बातचीत होती थी। तनसुखराय जी पहले-पहल हमारे रोहतक के साथियों के साथ परिषद् अधिवेशन सहारनपुर में गये और परिषद् के कार्य से बहुत प्रभावित हुए।

यह उनकी ही हिम्मत थी कि दिल्ली में परिषद् का अधिवेशन हुआ, तब उनका जोश, उत्साह, लगन और उनके काम करने की शक्ति पूरी तरह रोशनी में आई।

उसी समय महगाँव कांड का आंदोलन हुआ, तब तनसुखरायजी ने बहुत सहनशीलता और दिलेरी से काम लिया। इस मौके पर भी उनका साहस मैंने एक बार फिर देखा जब कि मैं और वे ग्वालियर गये और रियासत के उच्चतम अधिकारी से मिले, जिनके गुस्से का पार न पाया यहाँ तक कि उन्होंने गिरफ्तार करने की धमकी भी दी।

परिषद के सतना अधिवेशन में उन्होंने जिस हार्दिक लगन से काम किया और उसके बाद एक साल तक जिस तरह उन्होंने मुझे सहयोग दिया और मेरी इच्छानुसार परिषद दिवस मनाकर दस हजार से अधिक मेम्बर बनाये, वीर सेवा संघ जगह-जगह स्थापित किये, और मेरे साथ घूमकर मेरे लिए जो जो प्रबंध उन्होंने किये, और जो जो सहूलियतें मुझे दीं इन सब का मेरे लिये भूलना कठिन है। मैं उनका अति आभारी हूँ।

श्री वीर प्रभु से प्रार्थना है कि उनकी असीम कृपा से स्वर्गीय आत्मा को सुगति, शांति, सुख और आनंद प्राप्त हो।

वात्सल्य की मूर्ति

सर्वश्री विदुषी बहिन लेखवती जैन
डिप्टी चेयरमैन पंजाब विधानसभा, चण्डीगढ़



विदुषी बहिन लेखवतीजी जैन आजकल पंजाब विधानसभा की उपाध्यक्ष हैं। देश और समाज सेवा के भाव उनमें कूट कूट कर भरे हुए हैं। वात्सल्य का नैसर्गिक माधुर्य, प्रबन्ध कुशलता और नारी जाति में जागृति का भाव पैदा करना इन कार्यों में उनकी स्वाभाविक रुचि है। जैन परिषद् की एक कुशल कार्यकर्तृ होने के कारण उन्होंने समाज की उत्तम सेवा की है। आबू टैक्स विरोधी आन्दोलन में लालाजी के साथ रहकर जो प्रशंसनीय नेतृत्व दिखाया समाज उसे सदैव गौरव के साथ याद रखेगी। देश और समाज को आपसे भविष्य में बड़ी आशायें हैं।

आँखों में आँसू एवं हाथ में लेखनी लेकर स्वर्गीय भाई तनसुखराय की स्मृति में प्रकाशित होने वाले, तनसुखराय जैन स्मृति-ग्रन्थ में कुछ लिखने का प्रयास कर रही हूँ। (भाई तनसुखराय समाज-सेवा तथा देश-सेवा के लिए जब निकलते, उनके साथ जीवन की एक लहर-सी दौड़ पड़ती थी। उनके सभा सोसाइटियों में पहुँचते ही जनता में जागृति की लहर दौड़ पड़ती थी।) लेखनी किंकर्तव्य विमूढ़ बनी हुई सी सोच रही है कि उनके जीवन की कौन-कौन सी सेवाओं का वर्णन करूं। भाई तनसुखरायजी ने अपने जीवन-काल में देशसेवा के साथ साथ जो समाज-सेवायें कीं उसको वैश्य जाति, जैन-समाज तथा देश की जनता भुला नहीं सकती है। कुशल व्यवसायी होने पर भी आपने उद्योग को प्राथमिकता न देकर सामाजिकता को प्रथम स्थान प्रदान किया। इनके जीवन का यह सर्वश्रेष्ठ त्याग था।

उनके सामाजिक कार्यों में आपके साथ रहने का मुझे भी अवसर मिला। जैन समाज, अग्रवाल एवं वैश्य समाज के लिए अनेक कार्य किये। इन सभी कार्यों में से यदि मैं अखिल भारतीय दिगम्बर जैन परिषद की सफलता, उसके कार्य, सफल अधिवेशन, जैन जाति में जागृति उत्पन्न करने वाले आन्दोलनों आदि के विषय में ही कुछ लिखूं या उनकी याद करूँ, वही मेरे लिए पर्याप्त होगा। सतना, खण्डवा, झाँसी और दिल्ली के सम्मेलन मेरी आँखों के सामने हुए।

जिनमें भाई तनसुखरायजी ने दिगम्बर जैन परिषद् के महा-मन्त्री होने के नाते जो कार्य किये, इन अधिवेशनों को जो सफलता प्राप्त हुई उसकी धूम को मैं ही क्या समस्त भारत के जैन-समाज सदैव स्मरण करेंगे। दिगम्बर जैन परिषद् के जीवनदाता आप ही हैं। आपने अपने महामन्त्रित्व काल में परिषद् के लिए जो कार्य किये वैसा आपसे पूर्व न किसी ने किया था न आपके पश्चात् ही अभी तक कोई कर सका और न भविष्य में होने की संभावना है।

आपके निधन से हमारी ये संस्थायें शिथिल हो गई हैं। विशेषकर दिगम्बर जैन परिषद् जिसके कि आप आत्मा थे। वह तो आपको खोकर निर्जीव-सी प्रतीत होती है। आप जिस भी आन्दोलन अथवा कार्य को अपने पर लेते थे उसको सफल बनाकर ही शान्त होते थे। आपकी प्रत्येक सेवा में सजीवता तथा साहस विद्यमान रहता था जिसको आप मनसा, वाचा कर्मणा तथा तन, मन एवं धन से सम्पन्न करते थे। आज जैन-समाज के कर्णधार साथी दिली एवं साहसी कर्मवीर के अभाव से अति व्यथित हो दिल कचोट कर रह जाते है। जबकि वर्तमान नवयुवक नवीन भावों के संचारक, कर्तव्य-परायणता का पाठ पढ़ाने वाले अदम्य उद्योगी मित्र के अभाव का अनुभव कर रहे हैं। कहाँ तक कहें वे बच्चे जो अभी आपका नाम ही सुन सके थे वे भी यह कह रहे हैं कि हममें जान पैदा करने वाला, समय में समाज की सेवा करने में साहस प्रदान करने वाला एक महान समाजसेवी हमको छोड़ कर चला गया। समाजसेवा का पाठ हम उससे प्रत्यक्ष रूप में पढ़ने का सौभाग्य प्राप्त न कर सके।

भाई तनसुखरायजी के विषय में मैं कुछ भी लिखूँ वह मुझे बहुत थोड़ा ही प्रतीत होता है। मैं उनकी समाज एवं देशसेवाओं से ही प्रेरणा नहीं प्राप्त करती रही हूं बल्कि मुझे उनसे भाई का प्यार भी मिला। अपने मन के इन उद्‌गारों के बीच उनके उद्‌धृत कई वाक्य स्मरण आ रहे हैं। उनके लिखने के लोभ का सम्वरण मैं नहीं कर सक रही हूं।

एक बार भाई तनसुखराय आबू के मन्दिरों पर सिरोही स्टेट्स द्वारा लगाये गये करों के विरुद्ध आन्दोलन के फलस्वरूप आबू पहुँचे। मार्ग में सदस्यों की देखरेख में व्यस्त रहे। घर पहुँच कर भी उन्हें अपने आराम की चिंता उतनी न रही जितनी कि मेरी। उस समय उनके कहे गये वे शब्द मुझे सदैव स्मरण रहेंगे जो कि उन्होंने अपनी पत्नी से कहे थे, 'देखना बहन जी को कष्ट न होने पाये।' इतना कहने से भी उन्हें सन्तोष न हुआ और स्वयं उठ कर मेरे खाने-पीने की व्यवस्था करने में व्यस्त हो गये।

देवगढ़ में हुए सम्मेलन में दिगम्बर जैन परिषद् के अधिवेशन के समय जब आपको पुनः महामन्त्री चुना गया उसी समय मंच से यह ध्वनि समस्त वातावरण में गूंज गई, "इस संस्था में पुनः जान आ गई, मानो एक अस्वस्थ को किसी बड़े डाक्टर के हाथों में सौंप दिया गया है।" यह डाक्टर भाई तनसुखराय और अस्वस्थ व्यक्ति दिगम्बर जैन संस्था जिसका कि आपने जीर्णोद्धार ही नहीं किया बल्कि उसमें एक नवीन आत्मा डाल दी। आपकी सफलता का एक मात्र कारण आपका उत्साह तथा लगन थी।

रक्षाबन्धन के दिन की बात है; मैं आपके पास गई थी मुझे अपने कर्तव्य का ध्यान भी न था। वे अचानक मुझे स्मरण दिलाते हुए बोल पड़े, "बहन, मेरे हाथ में राखी बाँधो।" इतना कहना था कि जेब से एक नोट बाहर निकल आया। मेरे ना करने पर लाड़ में न जाने क्या बोलते चले गये। मेरे स्वीकार करने पर ही शान्त हुए। यह था उनका मेरे प्रति अगाध प्रेम।

एक दिन की बात है मैं आपके निवास-स्थान पर गई। आपकी सुपुत्री जिसका नाम स्वदेश है एक नया कोट पहने मेरे पास आ गई। मैं उधर देखने लगी। मेरा उधर देखना था कि वे बोल उठे—"कैसा है स्वदेश का कोट ? अच्छा सिला है न। तुम्हें भी ऐसा ही कोट सिलवा कर दूँगा।"

भाई तनसुखराय अनेक प्रकार से मेरे प्रेरक तथा सहयोगी थे। उनके सहयोग और उनकी सहायता की भावना से लोग मुझ से ईर्ष्या करते थे। सन् १९३२ ई० के चुनाव का क्या कहना ? मेरे प्रतियोगी देशबन्धुजी थे। उस समय अज्ञात रूप से आप मेरा प्रचार करते रहे। इश्तिहारों की बोरियाँ की बोरियाँ आपके आदमी रातों-रात बाँट जाते। इतना ही नहीं भाई मानसिंह उनका यह सन्देश भी लाये, "भाई तनसुखराय जी ने कहा "कि बहन किसी प्रकार की चिन्ता न करें। चुनाव में हर प्रकार की सुविधा प्रदान करेंगे।"

यह तो रही पिछले चुनाव की बात। इस अन्तिम एम० एल० सी० के चुनाव में भी अस्वस्थता की स्थिति में स्वयं अपने साथियों के साथ मेरे चुनाव-क्षेत्र में गये। मेरे साथी जो मेरे साथ ही निर्वाचित हुए उन्होंने आपके सहयोग को देखकर कह दिया, "बहन जी आपके लिए तो नई-नई गाड़ियाँ, नई-नई कारें आ रही हैं। इतना ही नहीं, जैनियों के बड़े-बड़े नेता पधार रहे हैं। आपको चुनाव की क्या चिन्ता ? गाड़ियाँ लाने वाले जैनियों के नेता और कोई नहीं बल्कि भाई तनसुखराय ही थे। उनके ये कार्य मुझे उस समय कुरेदेंगे जब मैं पुनः निर्वाचन-क्षेत्र में प्रस्तुत होऊँगी। किन्तु उस समय भी भाई तनसुखराय की आत्मा हमारी अप्रत्यक्षरूप से सहायता करेगी। ऐसे महान् व्यक्ति चले जाते हैं किन्तु छोड़ जाते हैं अपनी एक अमिट छाप।

× × × ×

नई-नई सूझ के धनी

श्री लक्ष्मीनारायण अग्रवाल
मंत्री वैश्य कोऑपरेटिव बैंक, दिल्ली

आप जैन समाज के एक ऐसे कर्णधार थे जो वैश्य जाति की उन्नति के लिए सतत प्रयत्नशील रहते थे। वैश्य युवकों में व्यापार की ओर विशेष रुचि पैदा हो इसलिए आप सतत जागरूक रहते थे। बैंक के पुराने सदस्य थे। वैश्य कोआपरेटिव कर्माशियल बैंक लि० की कार्य-कारिणी के सदस्य थे। मैं आपके प्रति श्रद्धांजलि अर्पित करता हूँ।

★ ★ ★ ★

प्रगतिशील समाज सुधारक

माननीय श्री जगजीवनराम जी
भूतपूर्व रेलवे मंत्री, भारत सरकार

स्वर्गीय श्री तनसुखराय से मेरा परिचय १६४१ में हुआ था। मेरठ में अखिल भारतीय दलित-वर्ग सम्मेलन से होते हुए मैं दिल्ली आया। सम्मेलन से लौटते हुए दूर-दूर के कुछ प्रतिनिधि भी मेरे साथ थे। दिल्ली में उनके आवास, भोजन का प्रबन्ध करना था। एक मित्र के द्वारा तनसुखराय से परिचय हुआ। तनसुखराय ने काफी दिलचस्पी से सभी व्यक्तियों के लिए उचित प्रबन्ध करा दिया। इसका मेरे ऊपर गहरा असर पड़ा। तब से हम एक-दूसरे के नजदीक आते गए। मैंने पाया कि तनसुखराय जी एक निखरे हुए देशभक्त, समाजसेवी और परदुःख-कातर पुरुष थे। राष्ट्र और समाज के लिए सदा सोचा करते थे और कुछ न कुछ रचनात्मक काम भी किया करते थे। वे एक प्रगतिशील समाज-सुधारक थे। जैन-समाज के लिए उनकी सेवाएँ नगण्य नहीं रहीं। संगठन को बढ़ाया और समाज को प्रगतिशील बनाने में यत्नशील रहे।

अंतिम दिनों में उनका स्वास्थ्य गिर गया था और आर्थिक कठिनाई में भी रहते थे। फिर भी समाज-सेवा के कार्य से विमुख नहीं हुए। समाज के उपेक्षित और पीड़ित समुदाय के लिए उनके दिल में इतना अगाध प्रेम था कि स्वयं कष्ट में रहते हुए भी वे इनके लिए क्रियात्मक रूप से सहानुभूति दिखाने में कभी नहीं हिचकते थे। हम उनकी स्मृति को अक्षुण्ण रखें। उनके जीवन से समाज को प्रेरणा मिले तो यह उनके लक्ष्य के प्रति अच्छी स्मृति होगी।

* * * *

कर्मठ कार्यकर्ता और निर्भीक नेता

प्रसिद्ध साहित्यसेवी श्री महेन्द्रजी
संचालक साहित्यरत्न भंडार, आगरा

आप महानुभावों ने श्री तनसुखराय जैन की स्मृति में एक स्मृति-ग्रंथ प्रकाशित करने का निश्चय किया है—यह जान कर हर्ष हुआ। लालाजी ने धर्म और समाज की बड़ी सेवा की थी। उनका लगभग सारा जीवन समाज की सेवा में व्यतीत हुआ। उन जैसे कर्मठ कार्यकर्ता और निर्भीक नेता थोड़े ही होते हैं। समाज में उनके द्वारा ऐसे अनेक कार्य सफलता पूर्वक सम्पन्न हुए हैं कि उनकी याद सदा बनी रहेगी। उनके यशस्वी जीवन की चिर स्मृति और उनकी आत्मा की शान्ति के लिए मैं जिनेन्द्र भगवान से प्रार्थना करता हूँ।

सेवामूर्ति ला० तनसुखरायजी

श्री रिषभदास रांका
अध्यक्ष भारत जैन महामण्डल, बम्बई

संसार में जो आता है वह तो जाने के लिए ही आता है। लेकिन उनका जाना सफल है जो जाकर भी लोगों के हृदय में स्थान पाते हैं।

लाला तनसुखरायजी उन लोगों में से एक थे जिन्होंने अपने शील स्वभाव और सेवा के द्वारा समाज और राष्ट्र में ऐसा स्थान पाया था जो अविस्मरणीय रहेगा।

उनकी सौम्य मुद्रा और विनम्रता इतनी आकर्षक थी कि उनके सम्पर्क में आने वाला उन्हें भुलाने की कोशिश भी करे फिर भी उन्हें भुला नहीं पाता।

सेवा चाहे परिवार की हो या समाज की, राष्ट्र की हो या मानव की, जो काम करने जैसा दिखाई पड़ा उसमें वे नम्रतापूर्वक लग जाते थे। न रात देखी न दिन, न सुविधा देखी न असुविधा, बस सेवा-कार्य में लीन हो जाते थे।

लाला तनसुखरायजी का दृष्टिकोण व्यापक और उदार था। उन्होंने समाज की सेवा की लेकिन दृष्टिकोण सदा राष्ट्रीय ही रहा। उनकी सामाजिक सेवाएँ राष्ट्रीयता की पोषक ही रहीं और दिगम्बर सम्प्रदाय में जन्म लेकर भी वे सम्पूर्ण जैन-समाज को नजर के सामने रखकर काम करते रहे।

सन् १९५० की बात है उन्होंने मुझे दिल्ली भारत जैन महामण्डल के कार्य के लिए बुलाया। उनकी यह इच्छा थी कि भारत जैन महामण्डल का संगठन दिल्ली, पंजाब और उत्तर प्रदेश में हो। मैं उनके घर पर ठहरा था, तब उनके स्नेह व आत्मीयता से पूर्ण आतिथ्य का सौभाग्य भी मिला। हमारा यह स्नेह बढ़ता ही गया। फिर तो मिलने-जुलने और साथ काम करने के कई प्रसंग आए जिसमें उनकी समाज के प्रति निष्ठा के दर्शन हुए।

लालाजी चाहते थे कि सम्पूर्ण जैन-समाज एकत्र आवे और अपनी शक्ति, समाज व राष्ट्र व मानवता की भलाई के लिए लगावे। इसी दृष्टि कोण से उन्होंने भारत जैन महामण्डल के तत्वावधान में जैन-समाज के सभी सम्प्रदायों के प्रमुख कार्यकर्ताओं का कन्वेन्शन बुलाने का प्रयास किया था। लेकिन स्वास्थ्य एवं अन्य कारणों से उनकी इच्छा पूर्ण नहीं हो पाई पर इस कार्य के लिए उन्होंने अथक प्रयास किए थे।

यों लालाजी का जीवन सादगीमय होने पर भी वे आगत-स्वागत में बड़े ही उदार थे। सेवा-कार्यों के लिए भी उन्होंने कभी मितव्ययता नहीं की बल्कि कई बार सामर्थ्य से अधिक ही

खर्च किया। सेवा-लगन उनमें बचपन से ही थी और विविध सेवा-कार्यों में वे सदा सहयोग देते रहे।

जब राष्ट्रीय आन्दोलन ने देश के नौजवानों में देशभक्ति की भावना पैदा की तो लालाजी भी उससे अछूते नहीं रहे और सरकारी नौकरी त्याग कर राष्ट्रीय आन्दोलन में योग देने लगे। एक बार तो जेल यात्रा भी कर आए। राजनैतिक कार्य में उन्होंने लाला लाजपतराय के साथ कार्य किया और वे उनके प्रेरणा-स्रोत रहे तो सामाजिक कार्यों में ब्र० शीतलप्रसादजी ने बैरिस्टर चम्पतरायजी से प्रेरणा पाई थी। दिगम्बर जैन परिषद के लिए उन्होंने अत्यन्त परिश्रम किया था और समाज के नौजवानों के वे प्रेरणा-केंद्र थे।

यद्यपि उनका कार्य रचनात्मक ही अधिक था लेकिन वे जैन-समाज पर होने वाले किसी भी प्रकार के अन्याय को बर्दाश्त नहीं कर पाते थे और उनके जीवन में कई ऐसे प्रसंग आए जब उन्हें संघर्ष भी करना पड़ा और महगाँव काण्ड तथा आबू मंदिर पर सिरोही राज्य की ओर से लिए जाने वाले टैक्स के खिलाफ आन्दोलन कर सफलता पाई।

समाज, राष्ट्र और मानव तक ही उनकी सेवा का क्षेत्र नियमित हो सो बात नहीं। उनके हृदय में प्राणीमात्र के प्रति करुणा भाव था और उन्होंने शाकाहार के प्रसार में भी बड़ा महत्वपूर्ण योगदान दिया।

ऐसे सामाजिक, राष्ट्रीय व मानवताप्रेमी लालाजी के प्रति मेरी ही नहीं जैन-समाज के अनेकों बन्धुओं के हृदय में बड़ा आदर का स्थान था। उनकी सेवाएँ समाज के इतिहास में अविस्मरणीय रहेंगी। और मुझ जैसे मित्र उनकी सौम्य और विनम्रता की मूर्ति को कदापि नहीं भुला सकते। लालाजी गए अब उनके मित्रों और चाहनेवालों का यही कर्त्तव्य शेष रह जाता है कि उनके कामों को कर उस कमी की पूर्ति करे जो लालाजी के चले जाने से समाज में हुई है। मुझे आशा है कि गुणपूजक जैन-समाज अवश्य उनके गुणों का और कामों का स्मरण कर उनका अनुगमन करेगा।

जब कि सेवा का क्षेत्र अधिक व्यापक बना है तब लालाजी जैसे सेवा-मूर्ति का स्मरण सबको सेवा की प्रेरणा देने वाला होगा।

अपने नाम को अक्षरशः चरितार्थ किया

श्री देशराज चौधरी
उपाध्यक्ष, देहली कार्पोरेशन, देहली

मूक समाज-सेवक—

स्व० लाला तनसुखरायजी

जब भी कभी मुझे दरियागंज के निर्माण करने वाले सहयोगियों की याद आती है तो स्वर्गीय श्री लाला तनसुखरायजी सरल प्रकृति, खादी की वेशभूषा, मधुर वाणी वाली सौजन्य की मूर्ति तत्काल आंखों के सामने आ जाती है। लालाजी दिल्ली नगर के प्रतिष्ठित नागरिकों में अपने प्रकार का अपना ही स्थान रखते थे।

सन् १९४२ में विश्ववन्द्य पूज्य बापूजी के 'भारत छोड़ो' के उद्घोष पर देशभक्तों ने जान-माल की बाज़ी लगाकर जो कार्य किए वे अभूतपूर्व थे। उन्हें दबाने के लिए विदेशी सरकार ने जो दमन की नीति अपनाई, उससे जो विषम परिस्थिति पैदा हुई उसका सामना करने के लिए दिल्ली में बनाई गई रिलीफ़ सोसायटी के निर्माण करने में मुझे बहुत बड़ा योग श्री लालाजी का मिला था जिससे राजनैतिक बन्दियों पर चलाए अभियोगों और उनके पीड़ित परिवारों को जो सहायता इस सोसायटी के द्वारा की गई उससे देशभक्तों को उत्साह मिला और बल मिला।

इसी प्रकार से बहुत से रचनात्मक कार्यों में लालाजी आगे बढ़कर सहयोग देते थे। प्रभु ने उन्हें पुष्कल धन भी दिया था और साथ ही विनम्र स्वभाव भी, जो कि संसार में बहुत कम व्यक्तियों को मिल पाता है। सचमुच वह सक्रिय निष्ठावान् गाँधीवादी मनोवृत्ति के महान् व्यक्ति थे।

किसी भी दुःखी को देखकर वह उसके दुःख दूर करने में देर नहीं लगाते थे। जीवन के अन्तिम वर्षों में रुग्ण होते हुए भी वह रचनात्मक कार्यों को सफल बनाने में पूर्ण मनोयोग से कार्य करते रहे।

जहाँ उन्हें दिल्ली तथा विशेषकर दरियागंज की जनता तथा रचनात्मक कार्य करने वाली सामाजिक संस्थाएं सदा याद करती रहेंगी वहाँ ऐसे अनेक व्यक्ति जिनकी वह समय-समय पर सहायता करते थे, उन्हें याद रखेंगे।

बहुत अच्छा हो यदि हम सामाजिक कार्यकर्ता उनके शुभ गुणों को अपने जीवनों में धारण करके उनकी याद मनाएं और उनके परिवार वाले उनकी उन परम्पराओं में रचनात्मक, शारीरिक, आत्मिक, सामाजिक मनोयोग देकर उनके अनुव्रत रहने का सत् प्रयत्न करते रहें।

उन्होंने सदैव अपने नाम को अक्षरशः चरितार्थ किया। उन्होंने समाज को अपने तन से सुख दिया और सदैव नेक राय दी। उनके निधन से समाज को जो क्षति हुई है वह पूरी नहीं हो सकती।

★ ★ ★ ★

महापुरुषों के जीवन का व्यक्ति के चरित्र पर अद्भुत प्रभाव पड़ता है

जीवन को उन्नत बनाने लिए उत्तम शिक्षा की तो आवश्यकता है ही, चरित्रवान् लोकसेवी उदार नर-रत्नों के सम्पर्क में रहना भी आवश्यक है। राष्ट्रपिता गांधीजी के जीवन पर तीन व्यक्तियों की अनुपम छाप है जो उन्होंने अपने लेखों में स्वीकार की है। श्रीमद् राजचंद भाई, मनीषी टालस्टाय और प्रसिद्ध विचारक रस्किन जिनका प्रभाव गाँधी जी के जीवन पर पड़ा। जिसने उन्हें भौतिक ऐश्वर्य के शिखर पर चढ़ने की अपेक्षा लोकसेवी के कण्टकाकीर्ण मार्ग की ओर प्रेरित किया जिससे अहिंसा और सत्य का पथ विस्तृत हुआ। और स्वतंत्रता सेवी अमृत का प्रादुर्भाव हुआ। इसी प्रकार जननायक लोकप्रिय महान् नेता पं० जवाहरलालजी नेहरू के जीवन पर भी तीन व्यक्तियों की छाप पड़ी: विश्वकवि रवीन्द्रनाथ टैगोर की सौन्दर्यानुभूति और काव्य-हृदय, अपने पिता पं० मोतीलालजी नेहरू की शालीनता और उदारता और बापू का सेवामयी मार्ग भारतीय जनता को उन्नत बनाने की तीव्रतम महत्वाकांक्षी भावना गांधीजी के चरणों में बैठ कर ही सीखी। राष्ट्रपिता गांधीजी से देशभक्ति की भावना उदित हुई।

हमारे चरित्र नायक लालाजी के जीवन पर भी कतिपय महान व्यक्तियों की अनुपम छाप है। पंजाबकेसरी ला० लाजपतरायजी से निर्भीकता और कर्तव्य-परायणता। विश्व के लोकप्रिय नेता पं० जवाहरलालजी नेहरू से लोकसेवा और शुभ्र धवलमय खद्दर के वस्त्रों को धारण करना। इन दोनों नररत्नों के चरित्र से न मालूम देश के कितने युवक देश-सेवा के मार्ग में अग्रसर हुए। लालाजी को भी देश-सेवा का व्यसन दोनों महान पुरुषों के निर्मल चरित्र से ही प्राप्त हुआ।

समाज-सेवा की प्रेरणा त्यागमूर्ति ब्र० सीतलप्रसादजी से और जैनधर्म प्रचार की धुन स्वनामधन्य विद्यावारिधी बैरिस्टर चम्पतरायजी से सीखी।

इनकी माता और वर्णीजी का प्रभाव भी आपके जीवन पर अद्भुत पड़ा जिसके फलस्वरूप लालाजी देश और समाज-सेवा के लिए प्रेरित हुए।

चरित्र चक्रवर्ती आचार्य शान्तिसागरजी महाराज, आबू के योगी शान्तिविजयजी और आर्यसमाजी विद्वान सत्यदेवजी का प्रभाव भी आपके जीवन पर हुआ। फलस्वरूप लोकसेवी बन गए और सदैव भावना रखने लगे।

न त्वं कामये राज्यं न स्वर्गं नापवर्गं वा,
कामये दुःख तप्तानां, प्राणिनामार्त संभवे।

मैं किन-किन का कृतज्ञ हूँ

अपनी कलम से



'जननी जन्मभूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसी'

सर्वप्रथम मैं अपनी जननी माता भगवती देवी (जो कि सुप्रसिद्ध रईस ला० मुरलीधरजी सोनीपत निवासी की इकलौती बेटी थी) उनका आभारी हूँ। वैसे तो मेरी माताजी ने और पुत्र व पुत्रियों को जन्म दिया परन्तु उनको मेरे लिए तो गर्भ-काल से ही बहुत मोह था जहां और पुत्र-पुत्रियों ने उनके नौ मास गर्भ में रहने के बाद जन्म लिया वहां मैंने अपनी माता के गर्भ में १२ मास रहने के बाद जन्म लिया। बाल्यकाल में धार्मिक शिक्षा इनके द्वारा ही मिली और जो भी धार्मिक वृत्ति थोड़ी बहुत मुझ में है यह सब उन्हीं की कृपा का फल है। अभी मैं १५ साल का ही था कि पूज्य पिताजी का साया सर से उठ गया। माताजी को सब भार सम्भालना पड़ा। उन्होंने नम्रता, अतिथि-सत्कार, कृतज्ञता तथा देश व समाज के लिए सेवा-भाव का सबक पढ़ाया जिसके कारण मैं समाज व देश की कुछ सेवा कर पाया हूँ और गौरव के साथ कहने का साहस रखता हूँ कि यदि मेरे पास धन नहीं है तो भी बहुत से धनियों से मैं बड़ा धनी हूँ क्योंकि जीवन में धनियों की मुझ पर बहुत कृपा रही है और है जिसके कारण मैं बड़ी से बड़ी आपत्ति में से निकलकर अटल खड़ा रहा हूँ और इज्जत-आबरू व विचारों में कोई फर्क नहीं आने दिया। मेरी माताजी का देहान्त ७३ वर्ष की आयु में हुआ और मरते समय मुझे जो वह आशीर्वाद दे गई हैं उससे मुझे अपने ऊपर पूरा भरोसा है कि जब तक मैं जीवित रहूँगा मेरी इज्जत व आबरू बनी रहेगी और बड़ी से बड़ी कठिनाइयों को हँसता हुआ झेल जाऊंगा। मेरा अपनी स्वर्गीय माताजी के चरणों में सादर प्रणाम।

अभिवादन शीलस्य, नित्यं वृद्धोपसेविन:
चत्वारि तस्य वर्धन्ते, आयुर्विद्यायशो बलम्।

जो सदैव अपने माता-पिता, गुरुजनों और वृद्धजनों की सेवा करता है उसकी आयु, विद्या, यश और बल की वृद्धि होती है।

मेरे पिताजी व्यापारी थे और सारी उम्र उन्होंने बजाजे और सर्राफे का धन्धा किया। वह हमेशा कहा करते थे कि बेटा छाबड़ी बेच कर खाना ठीक है, नौकरी ठीक नहीं। वह १८८२–८३ के मैट्रिक पास थे। उन दिनों का मैट्रिक आज के ग्रेजुएट्स से बेदरजा बेहतर था।

उनको पढ़ाने का बड़ा शौक था। मुलतान छावनी में अपना सर्राफे का काम करते हुए भी दो-तीन अंग्रेज आफिसरों को उर्दू-हिन्दी पढ़ाया करते थे। मुझे भी वह दुकान पर बैठा लिया करते और पढ़ाई भी करते। मैंने कोई सार्टीफिकेट तो प्राप्त नहीं किया, **उर्दू, अंग्रेजी, हिन्दी** का जो ज्ञान है वह सब पूज्य पिताजी के द्वारा मिला। सन् १९१८ में जब कि मैंने गवर्नमेंट की सर्विस के लिए प्रार्थनापत्र दिया तो वहाँ मेरा इम्तिहान लिया गया। सब उम्मीदवारों में मैं सर्वप्रथम रहा और मुझे नौकरी मिल गई। क्योंकि पिताजी का देहान्त सन् १५ में हो चुका था और हम बच्चे थे पिताजी के धन्धे को नहीं सम्भाल सके और लाचार हो नौकरी की तरफ जाना पड़ा। पिताजी पढ़ाई के साथ अपने अनुभव और संसार में दूसरों को कैसे अपना बनाया जाता है, बताते रहते थे। मेरे पिताजी एक बहुत ही **धार्मिक विचार** के महानुभाव थे और बचपन से ही उन्होंने **मेरी रुचि** भी उधर ही कराई। दुःख है कि पूज्य पिताजी **४५ साल** की आयु में ही स्वर्गवास कर गए और मैं उनकी कुछ भी सेवा न कर पाया। अब भी उनके आशीर्वाद का फल है कि जो **मैं इतना सुखी हूँ**। उनके चरणों में भी मेरा सादर प्रणाम।

आते ही उपकार याद हे माता तेरा,
हो जाता मन मुग्ध, भक्तिभावों का प्रेरा।

मुझे अपनी माताजी के गर्भ में १२ मास हो गए थे इसलिए सब चिंतित थे कि क्या बात है। जन्म-दिन से पहली रात महात्मा साधु और मुनियों ने माताजी को स्वप्न में दर्शन दिए और कहा कि कल तुम्हारे **प्रतापशाली पुत्र पैदा होगा**, और हमारा आशीर्वाद है कि वह सदा सुखी रहेगा। और उसपर धनियों और मुनियों की विशेष कृपा रहेगी। जन्म-काल से अब तक त्यागी महात्मा और मुनियों की कृपा मुझ पर बनी रही। अभी ७, ८ साल का ही था जबकि मुलतान छावनी में पूज्य ब्रह्मचारी शीतलप्रसादजी का आगमन हुआ और जब तक वह वहां ठहरे तब तक मैं उनकी सेवा में रहा और आशीर्वाद प्राप्त किया। इसके बाद जो भी मुनिगण आते ऐसे उनकी सेवा का सौभाग्य प्राप्त होता रहा। सन् १९१४ में पिताजी ने **भटिंडा रियासत पटियाला** में अपना व्यापार शुरू किया। वहां दिगम्बर जैन मंदिर नहीं है। स्थानक में जो भी साधु-महात्मा आते थे उनके पास घंटा डेढ़ घंटा व्यतीत करता था और उनसे ज्ञान प्राप्त करता था। १९१६, १७ में सनातनधर्म के प्रकांड विद्वान स्वामी राम भटिंडा पधारे। उनके पास भी मेरा आना-जाना शुरू हुआ, वे मेरे सेवा-भाव से प्रसन्न हुए और बहुत प्यार करने लगे। जब तक वह भटिंडा में रहे उनकी कृपा मुझ पर बनी रही। इसके कुछ दिन बाद ही स्वामी **सतदेवजी भटिंडा** पधारे। वे आर्यसमाजी उग्र विचार के ऊंचे विद्वान थे। उनके आदेशों से नवयुवकों के हृदय में स्फूर्ति आती थी। उन्होंने विदेशों में यात्रा की थी। मुझे उनके सत्संग से अच्छे विचार मिले। सन् २२ **से ३३ तक** विशेष-कर राजनैतिक क्षेत्र में जीवन बीता। इस बीच में महात्मा और त्यागियों का सत्संग तो कम हुआ परन्तु देश के बड़े से बड़े राजनैतिक नेताओं से मिलने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। सन् ३४ से धार्मिक व सामाजिक क्षेत्र में भी रुचि हुई। सन् ३४ से ३८ तक अखिल भा० दि० जैन परिषद् समाज के सुधारक दल में बहुत जोरों से कार्य किया। इसी बीच में जैसे समाज के प्रायःकर बहुत से विद्वानों, त्यागियों, धनियों और कार्यकर्त्ताओं के सम्पर्क में आया। सन् ३८ में अग्रसेन जयन्ती के शुरूआत करने में भी मेरा ही प्रयास था और बाद में अग्रवाल महासभा के प्रधान मंत्री और

प्रधान रहने के कारण भारतवर्ष के बहुत से ख्याति-प्राप्त अग्रवाल भाइयों से परिचय बढ़ा। सन् ३८ में मारवाड़ी सम्मेलन का अधिवेशन दिल्ली में हुआ जिसके अध्यक्ष राजा सेठ रामदेवजी पोद्दार थे। मैंने भी उसमें कुछ भाग लिया और उसकी कार्यकारणी समिति के सदस्यों को अपने घर बुलाने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। उसमें कलकत्ता, बम्बई, कानपुर आदि के सभी मारवाड़ी उद्योगपति उपस्थित थे। उनसे परिचय बढ़ा। सन् ४० में दूध-घी-मक्खन मिलावट निषेध कान्फ्रेंस दिल्ली में की, उसके अध्यक्ष (१) बम्बई के प्रसिद्ध उद्योगपति सर सेठ शान्तिदास आसकरणजी थे। मेरी इन वृत्तियों से बहुत प्रसन्न हुए और जब तक वह जीवित रहे उनकी विशेष कृपा मुझ पर बनी रही। बम्बई में उनके पास ही ठहरा करता था। (२) सर सेठ शान्तिदास आसकरण बम्बई वालों के सम्पर्क में बहुत रहा था। उनसे मालूम हुआ कि आबू पहाड़ पर योगीराज शान्तिविजयजी महाराज रहते हैं, उनके दर्शनों से मनुष्य को बड़ी शान्ति प्राप्त होती है। मैं योगीराज महाराज के दर्शनों के लिए ३-४ बार आबू गया और आबू मंदिर के टैक्स के आन्दोलन के लिए भी उन्हीं का संकेत था। आन्दोलन को जोरों से चलाने और सफल बनाने के कारण वह मुझ पर बहुत प्रसन्न हुए और आखीर तक शुभ कामनाएं भेजते रहे। (३) सन् ४१ से ४३ तक राजनैतिक क्षेत्र में कार्य किया। सन् ४६ में दसवां मानव-धर्म सम्मेलन का अधिवेशन दिल्ली में किया जिसकी अध्यक्षा श्रीमती रुक्मणीदेवी अरुंडेल थीं उनके साथ रहकर कुछ समय कार्य किया जिससे वह बहुत प्रभावित हुईं। सन् ४७ में भारत स्वतंत्र होने के बाद भारतवर्ष का विधान बना जिसमें कि मनुष्य मात्र को मंदिरों में जाने का समान अधिकार था। हरिजनों को मंदिरों में प्रवेश करने का आन्दोलन जोरों पर चला। मैंने भी हरिजनों को जैन मंदिरों में प्रवेश करने के लिए अपने भाइयों से अपील की परन्तु रूढ़िवादी भाइयों ने इसका विरोध किया। उन्हीं दिनों मुनि महाराज आचार्य नेमिसागरजी सन् ४६ में दिल्ली पधारे। मुनि महाराज ने मुझे बुलाया। एकान्त में उनसे २ घन्टे तक हरिजन मंदिर प्रवेश पर वार्तालाप हुआ। वह मेरी बातों से प्रभावित हुए। उन्होंने कहा कि तुम ठीक कहते हो। ये ही सारी बातें परम पूज्य आचार्य शान्तिसागर महाराज को बताने की हैं। उन्होंने तुरंत एक चिट्ठी परम पूज्य शान्तिसागर महाराज के नाम लिखवाई और मुझे शान्तिसागर महाराज के पास जाने का आदेश हुआ। उन दिनों मुनि महाराज शान्तिसागरजी नासिक के पास में विराजमान थे। मैं वहां पहुँचा। पूज्य नेमिसागरजी वहाँ थे। वह मुझ को आचार्य शान्तिसागर महाराज के पास ले गए। उनसे भेट हुई, उन्होंने बहुत आश्चर्य से कहा कि मैं तो समझता था कि आप लोग परिषद वाले धर्म की जड़ों में कुलाहड़ा चला रहे हैं परन्तु आपके विचार तो बहुत सुन्दर विचार हैं। मैं वहां एक-दो रोज के लिए गया था परन्तु उन्होंने मुझे एक सप्ताह तक नहीं आने दिया। यह उनकी विशेष कृपा थी। जब दिल्ली आया पूज्य नेमिसागर जी महाराज को वहां के सब हाल सुनाए। बहुत प्रसन्न हुए और कहा तुम भी आहार लगाया करो। मेरा सौभाग्य है कि चार बार मुनि नेमिसागर महाराज का आहार मेरे गरीबखाने पर हुआ और अंतिम समय तक नेमिसागर महाराज की कृपादृष्टि मुझ पर रही।

★ ★ ★ ★

प्रसिद्ध देशभक्त, कर्मवीर समाजसेवी

श्रीमान् ला० तनसुखरायजी का जीवन चरित्र

श्री सुमेरचन्द जैन, शास्त्री
साहित्यरत्न, न्यायतीर्थ



कर्मवीर ला० तनसुखरायजी

किसी कवि ने कितनी सुन्दर उक्ति कही है कि हे माता ! तू ऐसा पुत्र उत्पन्न कर जो भक्त हो, दाता हो या शूरवीर हो । नहीं तो क्यों अपनी शक्ति व्यर्थ में नष्ट करती है। निःसंदेह संसार में उन्हीं पुरुषों का नाम अक्षय बना रहता है जो अपने कार्य और प्रभाव से मानव जाति का हित संचय करते हैं। देश, धर्म और समाज की सेवा में अपने जीवन को लगाते हैं।

लालाजी के मन में भावना थी :—

न तन सेवा न मन सेवा, न जीवन और धन सेवा,
मुझे है इष्ट जन सेवा, सदा सच्ची भुवन सेवा ॥

ला० तनसुखरायजी ऐसे ही सत्पुरुष थे। लंबा कद, छरहरा बदन, चाल-ढाल में फुर्ती, हिन्दुस्तानी ढंग की छोटी मूँछें, दूर तक देखनेवाली आँखें और मुस्कराहट से हर समय भरा हुआ चेहरा, दिल्ली जैसे विशाल नगर में इस हुलिए से आप कहीं भी लाला तनसुखराय जैन को पहचान सकते थे और बिना किसी हिचकिचाहट से मिल सकते थे।

एक कुशल वैज्ञानिक व्यापारी, एक प्रभावशाली पुरुष, एक उत्साही कार्यकर्ता लाला तनसुखराय जैन यह सब कुछ है। पर उनके यह सब परिचय अधूरे हैं। वे असल में एक निःस्वार्थी मित्र हैं। उन्हें प्रकृतिदत्त नई-नई सूझों से भरा दिमाग और प्रभावशाली व्यक्तित्व दिया है। पर इससे भी बढ़कर हमदर्दी और मुहब्बत से भरा दिल उनके पास है। वे जानते और समझते हैं कि नदी का पानी हमेशा एक ही रफ्तार से नहीं बहता। जीवन में उतार-चढ़ाव

ग्राते रहते हैं। इसलिए न चढ़ाव में फूलकर ग्रन्धा होने की जरूरत है ग्रौर न उतार में घबराकर मैदान छोड़ने की।

उतार के भँवर में ग्राने पर उन्होंने ग्रपने मित्रों की ही नहीं, साथियों की ही नहीं ग्रनजाने लोगों तक की समय-समय पर स्वयं कष्ट झेलकर भी सहायता की है। ग्रौर यही कारण है कि वे ग्रपने विस्तृत सर्किल में एक भरोसे, विश्वास ग्रौर सहारे की पतवार बनकर अटल ग्रौर निश्चल खड़े रहे।

ग्राज उनके चारों ग्रोर पुण्य कर्म के उदय से सफलता खेल रही है। यह सब उनकी कुशाग्रबुद्धि ग्रौर परम पुरुषार्थ का चमत्कार है। और चमत्कार की एक बहुत ही मर्मस्पर्शी कहानी है। इस दुःखभरी दुनिया में जब उन्होंने ग्राँखें खोलीं तो उनके चारों ग्रोर सुख ही सुख था। धनी माँ-बाप की गोद में वे जनमे, खेले ग्रौर पले-पुसे, बढ़े। ग्रौर पढ़-लिखकर गवर्नमेंट सर्विस में चले गए।

परिवार परिचय–

सन् १८४० ई० के लगभग जींद राज्यान्तर्गत होट ग्राम में एक समृद्धशाली जैन-परिवार निवास करता था। उसी परिवार के एक दूरदर्शी एवं उच्च इच्छाग्रों से ग्रोत-प्रोत नवयुवक ने ग्रपनी महत्वाकांक्षाग्रों को पूरा करने के उद्देश्य से रोहतक में ग्राकर ग्रपना कारोबार ग्रारंभ किया। इन्हीं के वंश में श्रीयुत ला० जज्जूमलजी का जन्म हुग्रा। महत्वाकांक्षा ग्रौर धार्मिक वृत्ति इस परिवार का पैतृक गुण रहा है। ग्रतः श्रीयुत लाला जज्जूमलजी के सुयोग्य पुत्र ला० गणेशीलालजी ने रोहतक में ग्रपनी महत्वाकांक्षाग्रों को विशेष रूप से ग्रवरुद्ध होते देखा तो वे रोहतक से मुलतान चले गये ग्रौर वहाँ ग्रपने पैतृक व्यवसाय, लेन-देन ग्रौर सर्राफे का काम ग्रारम्भ किया। ग्रापने अपने ग्रध्यवसाय ग्रौर व्यापार-कुशलता से इतना धन संग्रह किया कि मुलतान में बहुत बड़ी सम्पत्ति खरीद कर वहाँ के उच्चकोटि के समृद्धशालियों में ग्रापकी गणना होने लगी। परन्तु समय की गति ग्रौर लक्ष्मी के चंचल स्वभाव के कारण मिल्स के कार्य में ग्राकस्मिक ग्रसह्य हानि होने के कारण ग्रपनी सम्पूर्ण संचित सम्पत्ति खो बैठे। परन्तु सौभाग्य से चार पुत्र-रत्न प्राप्त हो चुके थे जिनमें होनहार पुत्र ला० जौहरीमलजी दूरदर्शी ग्रौर व्यापारकुशल व्यक्ति थे जिनका व्यापारिक सम्बन्ध ग्रन्तर्राष्ट्रीय था। ग्राप ग्रपने बच्चों को व्यापारकुशल बनाने का भरसक यत्न करते थे। जहाँ बच्चों की शिक्षा की ग्रोर विशेष ध्यान दिया वहाँ व्यापार की ओर बचपन से ही उनका रुझान पैदा करने के लिए उन्हें व्यापार की ग्रोर ग्राकर्षित करते रहते थे।

ला० जौहरीमलजी को पाँच पुत्र-रत्न प्राप्त हुए जिनके नाम क्रमशः सर्वश्री ला० नानकचंदजी, ला० गणपतरायजी, ला० तनसुखरायजी हमारे (चरित्रनायक), स्व० दौलतरामजी तथा राजारामजी हैं। ग्रपने व्यापारिक कार्यों में आकस्मिक हानि के कारण श्री जौहरीमलजी ने सन् १९१३ ई० में मुलतान छोड़ दिया ग्रौर भटिण्डा आकर बस गये।

ला० जौहरीमलजी ने भटिंडा में जनरल मर्चेण्ट और ठेकेदारी का कार्य आरम्भ किया हुआ था। ला० जौहरीमलजी का केवल पैंतालीस वर्ष की आयु में आकस्मिक बीमारी से स्वर्गवास हो गया। पिता की मृत्यु के पश्चात् ला० गणपतरायजी ने अपने पिता के कार्य-भार को सम्भाल लिया। परन्तु आकस्मिक व्यापार उलट-फेर के कारण सन् १९२३ ई० में वे भटिंडा से पुनः अपनी मातृभूमि रोहतक में लौट आए।

बाल्यकाल–

प्रत्येक मनुष्य का बाल्यकाल उसके भावी जीवन का दर्पण है। यदि मनुष्य के स्वभाव और चरित्र का अध्ययन करना हो तो उसके बचपन के कार्यों के निरीक्षण से भलीभांति पता लग जाता है। जब हम इस तुला पर अपने चरित्रनायक का बाल्यकाल परखते हैं तो पता चलता है कि बचपन से ही उनमें विलक्षण सूझ थी।



लाला तनसुखराय जैन का जन्म पंजाब प्रांत के रोहतक नगर में स्व० श्रीमान् लाला जौहरीमलजी जैन की धर्मपरायणा पत्नी श्री भगवतीदेवी की कोख से सन् १८९९ ई० में हुआ

था यह महान आश्चर्य की बात है कि आप अपनी माता की कोख में बारह महीने रहकर इस धराधाम में अवतीर्ण हुए। आपके जन्मदिन की पिछली रात को इनकी माताजी को स्वप्न में एक नग्न दिगम्बर मुनिराज के दर्शन हुए; जिन्होंने कहा था कि प्रातःकाल तुम्हारे उदर से एक पुण्यात्मा, प्रतिभा-सम्पन्न, प्रतापी पुत्र जन्म लेगा जो अपनी प्रखर बुद्धि से संसार में कई लोकोपकारी कार्य करके अपने कुल का नाम रोशन करेगा और सदा उसकी कीर्ति बढ़ेगी। लाला तनसुखराय ने भटिंडा में रहकर हिन्दी, अंग्रेजी और उर्दू की शिक्षा पाई।

बाल्यकाल से ही उनको वस्तुओं की सजावट तथा व्यवस्था का अधिक शौक रहा है तथा अवसर के अनुसार उनकी अनुपम सूझ उनकी उन्नति का रहस्य है जिसका दिग्दर्शन हमें उनके बाल्यकाल के कार्यों से मिलता है। इस सम्बन्ध में बचपन की एक घटना अत्यंत आकर्षक है।

'होनहार विरवान के होत चीकने पात'



बालक तनसुखराय जब छोटे ही थे तो उन्होंने मेले के दिनों में कुछ लोगों को छोटी-छोटी चीजों की दुकानें लगाकर बिक्री करते देखते ही उनके मन में भी इसी प्रकार का कार्य करके लाभ उठाने की सूझी। मित्रमंडली को साथ लेकर मेले में बच्चों के खिलौने की दूकान लगा ली और उसमें कई रुपये पैदा किये। इस घटना का पता घर वालों को उस समय लगा जब कि आमदनी के रुपये उन्होंने घर जाकर दिये। इसी प्रकार की सामयिक सूझ और संगठन के बहुत से कार्यों का परिचय उनके बाल्यकाल के छोटे-छोटे-कार्यों में लगता है।

कार्यक्षेत्र में प्रवेश–

बालक तनसुखराय अपने पाँचों भाइयों में अधिक व्यवहारकुशल और होनहार थे। इसलिए माता-पिता की दृष्टि इन पर विशेष रूप से रहती थी। पिताजी की हार्दिक इच्छा थी कि उन्हें उच्चकोटि की शिक्षा दी जावे। परन्तु १९१६ ई० में पिता की आकस्मिक मृत्यु के कारण इन्हें अपनी पढ़ाई समाप्त करनी पड़ी। और अन्य भाइयों के साथ १८ वर्ष की आयु में ही इन्हें अन्य भाइयों के साथ घर का कार्य-भार सम्भालना पड़ा। सन् १९१८ ई० में आपने N. W. R. रेलवे के D. T. S. के कार्यालय में लेखक (Clerk) का कार्य आरंभ कर दिया जो सन् १९२१ ई० तक सुचारु रूप से चलता रहा।

कार्यालय के उच्च पदाधिकारी आपकी कार्यशैली, व्यवहारकुशलता, कर्तव्य-परायणता, अनुशासनप्रियता, सत्यनिष्ठा और विनम्र स्वभाव के कारण इनसे बहुत प्रसन्न थे।

परन्तु यह सब कुछ होते हुए इन्हें कुछ ही समय में यह भलीभाँति विदित होगया था, कि उनकी योग्यता के सदुपयोग के कारण यह क्षेत्र पर्याप्त एवं समुचित नहीं है। अतएव समुचित अवसर की प्रतीक्षा करने लगे।

राजनैतिक जीवन में प्रवेश—

१६१६ में जब असहयोग आन्दोलन प्रारंभ हुआ, और सारे देश में आज़ादी की लहर दौड़ी तो इनसे भी न रहा गया। और एकदम विदेशी वस्त्रों की होली जलाकर स्वदेशी वस्तुओं का प्रयोग करना प्रारम्भ कर दिया। हालांकि उन दिनों आप गवर्नमेंट की मुलाज़मत में एक अच्छे पद पर नियुक्त थे। परंतु केवल स्वदेशी वस्तुओं के प्रचार से ही इनकी तपिश नहीं बुझी। आपने सरकारी नौकरी से भी स्तीफा देने का निश्चय किया और खामोशी के साथ राजनैतिक क्षेत्र में कार्य करने लगे।

सन् १६२१ में भिवानी में पोलिटिकल कान्फ्रेंस हुई। उसमें ला० तनसुखरायजी भी सम्मिलित हुए। इस कान्फ्रेंस का आपके मन पर बड़ा प्रभाव पड़ा। आपने राजनैतिक जीवन में कार्य करने का निश्चय कर लिया।

देश के नेताओं की अपील पर आप सत्याग्रह आन्दोलन में कूद पड़े। परन्तु कुछ ही समय में महात्मा गांधीजी की आज्ञा से जब यह आन्दोलन स्थगित कर दिया गया तो इन्हें भी पुनः व्यापारिक कार्यक्षेत्र में लौटने का विचार करना पड़ा।

सन् १६२१ और २२ के दिन भारत के राष्ट्रीय उत्थान में चढ़ाव के दिन थे। स्वाभिमानी नवयुवकों में उत्साह की हिलोरें उठ रही थीं। भारत के नवयुवकों के कान और आँखें भारत माता की आर्तभरी पुकार सुनकर बेचैन थे। राष्ट्र की महान आत्मा ने फतवा दिया था कि सरकारी नौकरियाँ भारत की गुलामी को लोहे से भी ज्यादा सख्त बनाती हैं। अतः प्रत्येक भारतवासी को उन्हें त्याग देना चाहिए।

इसी तेजाब में डूबी हुई बात को सुनकर भारत के स्वाभिमानी व्यक्ति तक भी सह गए। फिर कमजोरों की क्या गिनती थी ? पर भाई तनसुखरायजी में एक जीती-जागती आत्मा मौजूद थी। आपने बंगाल के राष्ट्रीय जीवन के प्राण श्री सुभाषचंद्र बोस की तरह सोचा, दिमाग में अक्ल है। शरीर में जीवन मौजूद है। फिर कमाकर खाना क्योंकर मुश्किल होगा ? फिर पेट भरने के लिए यह दासता क्यों ? तनसुखराय खाली जेब और भरे दिमाग उस वैभवपूर्ण सफलता और वातावरण से निकल कर जीवन के मैदान में कूद पड़े।

सन् १६२१ ने १६२७ तक कांग्रेस और खासतौर से स्वदेशी का प्रचार करते रहे और अपने सैकड़ों मित्रों से स्वदेशी के प्रयोग करने का वचन लिया।

गवर्नमेंट सर्विस से स्तीफा देने के बाद आपके सामने आजीविका के प्रश्न ने कठोर और विषम प्रहार करना शुरू किए, पर आप इंच मात्र भी नहीं घबराए और पर्वत के समान अटल

और निश्चित खड़े रहे। उनका विश्वास था कि अचलता और दृढ़ता के सम्मुख धन और मान स्वयं ही आकर अपना शीश झुकायेंगे। इसी विचार को सामने रखते हुए और स्वतंत्रा के रंग में होने के कारण १० रु० मात्र की नौकरी करने में भी संकोच नहीं किया। नौकरी करते समय आप यह नहीं सोचते थे कि मैं १० रु० की नौकरी कर रहा हूँ। बल्कि सोचते कि मेरा कर्तव्य क्या है। इसी कारण इन्होंने नहीं, नहीं, इनके कार्य ने मिल-मालिक पर एक अधिकार-सा कर लिया। वह इन्हें अपने भाई की ही तरह समझने लगा। कुछ दिनों के बाद मिल-मालिक का एक दोस्त उनसे मिलने के लिए आया। और एक विश्वसनीय तथा ईमानदार आदमी की आवश्यकता की इच्छा प्रकट की। फिर क्या था, बड़ी दृढ़ता वाले विचार सत्यता में परिणत होना प्रारंभ हो गए। और मिल-मालिक के संकेत पर वह मित्र लाला तनसुखराय जैन को ८० रु० महीने के वेतन पर अपने साथ ले गया।

वहां पर अचानक बीमार हो जाने के कारण ही आपको वापिस आना पड़ा। अच्छा होने पर भी आपकी स्वतंत्र प्रवृत्ति न बदल सकी और आपने स्वतंत्रतापूर्ण ध्यान रखते हुए कमीशन का कार्य आरंभ कर दिया जिससे आपको लगभग १०० रु० महीने की आमदनी होने लगी। इन सब बातों से लोगों को आपकी दृढ़ता, अचलता और स्वतंत्रता पर विशेष आर्कषण हो गया।

लालाजी का रुझान नौकरी की ओर न था। उनकी योग्यता का सदुपयोग व्यापारिक लाइन में ही हो सकता है। परन्तु व्यापार के लिए व्यापारिक अनुभव अर्थशास्त्र की शिक्षा प्राप्त करना आवश्यक समझकर आपने कई व्यापारिक कम्पनियों में रहकर कन्वेसर, एकाउन्टेंट, सेक्रेटरी और मैनेजर आदि भिन्न-भिन्न पदों पर रहकर व्यापारिक क्षेत्रों का गहन अध्ययन किया और अनुभव प्राप्त किया। यह अध्ययन कार्य सन् १९२४ ई० तक चलता रहा। लालाजी की प्रभावशाली मूर्ति प्रत्येक व्यापारी के लिए आकर्षक थी और प्रत्येक उनके ईश्वर-दत्त प्रभावशाली व्यक्तित्व से लाभ उठाना चाहता था। इस प्रकार के व्यक्तियों का सबसे अधिक सदुपयोग करने वाले बीमा व्यवसायी ही होते हैं। इस बात को प्रत्येक भलीभाँति जानता है। और लालाजी के साथ कई बार ऐसा हुआ भी। अपनी-अपनी बीमा कम्पनियों का आकर्षण दिखाकर इन्हें कई कम्पनियों ने अपनी ओर खींचना चाहा। परन्तु बीमा व्यवसाय भी लालाजी को रुचिकर प्रतीत नहीं होता था अतः बहुत समय तक इन अवसरों को टालते रहे।

परन्तु १९२४ ई० में लालाजी के ज्येष्ठ बहनोई श्रीयुत ला० महेन्द्रसैनजी जैन ने जो उस समय भारत बीमा कम्पनी दिल्ली ब्रांच के मैनेजर थे, इन्हें बलपूर्वक इस कार्य की ओर आकर्षित किया। आप भी उनका आग्रह नहीं टाल सके, और अनिच्छा होते हुए कार्य प्रारंभ किया। प्रारंभ में श्रीयुत ला० महेन्द्रसैनजी ने आपको बहुत प्रोत्साहन दिया और कुछ ही समय में इन्हें कई हजार का कार्य मिल गया। धीरे-धीरे झिझक दूर होने लगी और आपका उत्साह बढ़ने लगा। पुण्योदय से थोड़े ही समय में आपके कार्य की धूम मच गई। और प्रत्येक कम्पनी इन्हें अपनाने के लिए उत्सुक रहने लगी। सम्पूर्ण जिला रोहतक, हिसार तथा जींद स्टेट की



श्री मानकचंदजी (ज्येष्ठभ्राता)



श्री गणपतरायजी

चारों भ्राता



श्री दौलतराम जी



श्री राजाराम जी



बहिन लक्ष्मी देवी



श्री विद्यादेवी जैन
(लालाजी की बड़ी पुत्री)



लालाजी, छोटी पुत्री और अपनी धर्मपत्नी के साथ

एजेन्सी आपको मिल गई। अपनी कार्यकुशलता और परिश्रम के बल पर आपने कम्पनी को इतना कार्य दिया कि शीघ्र ही आप एक एजेण्ट से डिस्ट्रिक्ट आर्गेनाइजर बन गये।

आपके मन में विश्वास पैदा हो गया था कि बीमा एक ऐसा कार्य है जहाँ स्वतन्त्र रहता हुआ आदमी राष्ट्र की गुरुतर सेवा कर सकता है। और यदि परिश्रम से इस क्षेत्र में कदम बढ़ाया तो लक्ष्मी पैर पूजती है। लाला तनसुखराय जैन के पौरुष और प्रतिभा से बीमे का व्यापार इसलिए चमक उठा चूंकि इनके सादा रहन-सहन एवं छलछिद्र रहित जीवन की गहरी छाप दूसरों पर पड़ी।

शुरू से ही इनकी प्रवृत्ति दूसरों से भिन्न रही है जब कि दूसरे बीमा एजेण्ट पान, सिगरेट और चाय के व्यसन को अपने व्यापार की सफलता की कुंजी मानते हैं। तब उसके विपरीत तनसुखरायजी का यह विचार रहा है कि पान, सिगरेट, चाय जैसी नशीली चीजों के बजाय त्यागमय जीवन का असर दूसरों पर अधिक पड़ता है। इसलिए आप पान, सिगरेट, चाय आदि से दूर रहे। फलस्वरूप आप के पद की दिनोंदिन उन्नति होती रही।

लक्ष्मी बीमा कम्पनी में प्रवेश—

उन्हीं दिनों देश के कर्णधार पं० मोतीलालजी नेहरू और पंजाबकेसरी ला० लाजपतरायजी ने के० सन्तानम् के सहयोग से राष्ट्रीय कार्यकर्ताओं की बेरोजगारी के प्रश्न को हल करने के लिए लक्ष्मी इंश्योरेन्स कम्पनी को जन्म दिया।

आग वस्त्रों की कितनी ही तहों में भी छिप नहीं सकती। लक्ष्मी इन्श्योरेन्स के कार्य-कर्ताओं की दृष्टि भी एक कोने में बैठे हुए लाला तनसुखरायजी पर पड़ी।

राष्ट्र-सेवा की भावना से आकृष्ट होकर आप भारत बीमा कम्पनी को छोड़कर लक्ष्मी बीमा कम्पनी में चले गये। आपकी पूर्ण सफलता का अनुमान इसीसे लगाया जा सकता है कि एव वर्ष के अन्दर ही लक्ष्मी को देहली जैसी बड़ी ब्रांच पास होते हुए भी आपके लिए रोहतक में अलग ब्रांच खोलनी पड़ी।

दो वर्ष कार्य करने के बाद ही रोहतक ब्रांच का कार्य इतना संतोषजनक हुआ कि आपको देहली ब्रांच का सेक्रेटरी बनाकर भेज दिया। लेकिन वाह रे तनसुखराय तीन वर्ष के अल्प काल में ही देहली ब्रांच ने इतना कार्य किया जितना एक छोटी-मोटी कम्पनी करती है। और उसका औसत चौगुने बिजनेस का हो गया। तनसुखराय का नाम बीमे के व्यापार में सूर्य की तरह चमक उठा। और लक्ष्मी का नाम तनसुखराय के नाम के साथ नत्थी होगया।

बीमे के काम के साथ राष्ट्र का काम न किया हो, यह बात नहीं है। आपने अपने बीमे व्यवसाय को चालू रखते हुए सन् १९२९ में जिला रोहतक में जबकि प्रान्तीय मजदूर-किसान कान्फ्रेंस हुई उस समय आप उसकी स्वागतकारिणी के जनरल सेक्रेटरी बनाये गये। जिस पद

को आपने बहुत ही खूबी के साथ निभाया। कौन जानता था कि एक खामोश काम करने वाला आदमी देश का इतना उपयोगी सिपाही होगा। कांग्रेस के कार्यकर्ताओं ने इनकी शक्ति को जाना, समझा और इसलिए प्रत्येक मीटिंग, जलूस और प्रत्येक मौके पर इनका पूरा उपयोग उठाने लगे।

लाहौर में आल इंडिया कांग्रेस का इजलास था। आपको वहां के लिए डेलीगेट चुना गया। यह अधिवेशन नवयुवक हृदय-सम्राट पं० जवाहरलालजी नेहरू के सभापतित्व में हुआ जिसमें जिला रोहतक से ला० तनसुखराय प्रतिनिधि होकर गये। सन् १६२६ में आपने रोहतक में सूबा किसान कान्फ्रेंस करने का विचार किया और इसके सम्बन्ध के लिए शीघ्र ही एक स्वागत-कारिणी समिति का निर्माण किया जिसके आप जनरल सेक्रेटरी थे। सन् १६२६ में यह कान्फ्रेंस देश के प्रसिद्ध नेता श्री अर्जुनलालजी सेठी के सभापतित्व में अपूर्व सफलता के साथ संपन्न हुई। इस कान्फ्रेंस के फलस्वरूप इस क्षेत्र में बहुत ही जागृति हुई।

रोहतक जिले के कार्यकर्ताओं की मीटिंग हुई कि जिले में कैसे काम किया जाय। आपने कहा कि मैं तो एक खामोश सिपाही की तरह काम कर सकता हूं, जो भी जिम्मेदारी मुझे देना चाहें दे सकते हैं। इस पर इनको आन्दोलन में ठहरने का प्रबन्ध, भोजन, वालन्टियरों के जुलूस व वालन्टियरों का तैयार करना, मीटिंग और जुलूसों का प्रबन्ध करने की जिम्मेवारी दी गयी।

आन्दोलन ज़ोरों के साथ आरम्भ हुआ। रोहतक जिले में गिरफ्तारियां होना शुरू हुईं। रोहतक जिले में मुख्य-मुख्य कार्यकर्ता गिरफ्तार होने लगे। सैकड़ों वालन्टियर्स गिरफ्तार हुए। गवर्नमेंट ने कांग्रेस के कार्यकर्ताओं को गिरफ्तार करने में पूरी शक्ति लगाई। परन्तु कांग्रेस का काम जारी रहा; ज़रा शिथिलता नहीं आई। प्रत्येक पदाधिकारी असमंजस में था कि कांग्रेस की मशीनरी किस तरह घूम रही है। अगुआ सब गिरफ्तार कर लिए। अंत में सूझी कि इस काम की बागडोर जिनके हाथ में है उन्हें कैसे गिरफ्तार किया जाए। गिरफ्तारी के लिए कोई कानून लागू नहीं हो सकता था। तो भी दफा १०८ में गिरफ्तार कर लिए गए।

यह दफा आमतौर पर भाषण देने वालों पर लगा करती है। लाला तनसुखराय जैसे खामोश कार्यकर्ताओं पर नहीं। उस आन्दोलन में प्लेटफार्म पर एक शब्द भी न बोलने की शपथ ली हुई थी। खैर, ऐसे समय पूछता कौन है? इधर इनको भी कुछ जेल का डर नहीं था। नौ महीने जेल काटकर मार्च सन् १६३१ में घर वापिस लौटे। जेल से आते ही आपसे चुप बैठते न रहा गया।

हरिजन आश्रम की स्थापना—

भारत में सबसे पहले अपने नगर में हरिजन उद्धार का बीणा उठाया। आपने अपने ही विश्वास पर हरिजन विद्यार्थी आश्रम की रोहतक में स्थापना की। आश्रम का सारा खर्च आप अपनी तरफ से ही करते थे। आपके दिन-रात परिश्रम से अल्पकाल में आश्रम ने अच्छी

उन्नति की ओर पंजाब प्रांत में वह एक आदर्श संस्था मानी जाने लगी। इस संस्था द्वारा हरिजनों और उनके वे बच्चे जिनको सरकार ने कभी भी शिक्षित बनाने की चिन्ता नहीं की, उस संस्था द्वारा शिक्षा लेकर अपना अहोभाग्य समझते थे। आपके इस परमार्थ एवं लोकोपकारी कार्य से दूसरों पर अच्छा असर पड़ा। पंजाब प्रांत के लोगों ने इस कार्य की अति सराहना की और तभी से हरिजनोद्धार का कार्य भारत में प्रचलित हुआ।

निःस्वार्थ भाव से आश्रम की सेवा करते हुए उन दिनों कई ऐसे देशहित के कार्य किये जिससे आप जनता के श्रद्धा पात्र बन गये। यही वजह हुई कि सन् १९३२ में आपको पंजाब प्रान्तीय कांग्रस कमेटी का मेम्बर चुना गया था। रोहतक में इतना कार्य करने के पश्चात् आप देहली लक्ष्मी के ब्रांच आफिस में आये।

रोहतक बाढ़ में हरिजनों की सेवा—

सन् १९३३ रोहतक में एक भयंकर बाढ़ आगई। उच्च जातियों के सहायतार्थ पर्याप्त धन-धान्य एकत्र करके सहायता-कार्य जनता की ओर से चल रहा था। परन्तु हरिजनों को जो वास्तव में सहायता के अधिकारी थे, पर्याप्त सहायता न पहुंच रही थी। अतः आपने हरिजन रिलीफ फंड की स्थापना करके लगभग १५००० रु० की एक अच्छी राशि से हरिजनों को समुचित सहायता दी।

स्थान परिवर्तन—

बीमा व्यवसाय में आप लक्ष्मी बीमा कम्पनी के अधिकारियों के ऊपर अपनी योग्यता की छाप डाल चुके थे। कम्पनी ने आपकी योग्यता से और भी लाभ उठाने के लिए सन् १९३३ ई. में आपको रोहतक से देहली ब्रांच का सेक्रेटरी बनाकर भेजा। सन् १९३४ ई. में भारत के हृदय-सम्राट पं० जवाहरलाल नेहरू ने रोहतक में दौरा प्रारम्भ किया। इस इलाके के दौरे में लाला तनसुखरायजी उनके साथ दौरे पर रहे और इस दौरे में देश-कार्य के लिए उन्हें बड़ा उत्साह प्राप्त हुआ।

सन् १९३६ में वे दिन राष्ट्रीय भारत अपने जीवन में एक नया अध्याय आरम्भ करना था। उसने निश्चय किया कि ब्रिटिश सरकार को अपने बनाये हुए जाल में फांस ले। साथ ही जो सन् १९३५ का विधान राष्ट्र के लिए चैलेंज था उस चैलेंज को स्वीकार करके उसके देने वालों को बता दें कि आज राष्ट्र जाग चुका है और वह भी समझता है कि उसके दिन राष्ट्र के सेवकों के लिए मजबूत हाथों में सुरक्षित हैं, न कि पूंजीपति चापलूसों के। इसके लिए सारे भारतवर्ष में उन योग्य व्यक्तियों की तलाश आरम्भ हुई, जिन्होंने अपने इलाके में जनता-जनार्दन की निःस्वार्थ सेवा की है, उनके लिए कुछ त्याग किया है। रोहतक जिले के इलाके से जो इस समय तक लाला तनसुखरायजी सार्वजनिक कार्यक्षेत्र से लक्ष्मी मैनेजिंग डायरेक्टर सा. के दोस्त उम्मीद करते थे कि लक्ष्मी के डायरेक्टर्स आफ बोर्ड ने अपनी मीटिंग में

एक प्रस्ताव पास किया कि लक्ष्मी के कोई भी वैतनिक कार्यकर्ता इस चुनाव में भाग न लें। वास्तव में इस चुनाव में लालाजी का स्वयं खड़े होने का कोई इरादा न था। परन्तु उनको लक्ष्मी के संचालकमंडल का यह प्रस्ताव नागरिक अधिकारों में हस्तक्षेप मालूम हुआ। इसलिए लालाजी की जागृत आत्मा इस अनाचार एवं अत्याचार को बरदाश्त नहीं कर सकी और वह स्वत्वाधिकार के लिए विद्रोह कर बैठी।

उधर जैन समाज का नवयुवक वर्ग आपसे यह मांग कर रहा था कि अब जैन समाज का धनिक वर्ग समाज की बेकारी से हमेशा से उदासीन है तो आप कोई कार्य खड़ा कीजिए। बस लालाजी ने एक मिनट की देर किए बिना एक बहादुर समाजसेवक की तरह एक हजार रुपये महीने के लगभग की आय को लात मार कर एक बार फिर सफलता के वातावरण से बाहर आकर खड़े हो गए। स्तीफा देने के लक्ष्मी की ओर से लालाजी को वापिस बुलाने के बहुतेरे प्रलोभन मिले और बहुतेरे दवाव भी पड़े। परन्तु आप अपने निश्चय से इंचमात्र भी नहीं डिगे। आपके मित्र पहले से ही इसके लिए तैयार थे। फौरन ही तिलक बीमा कम्पनी की नींव डाल दी गई।

लक्ष्मी बीमा कम्पनी से त्यागपत्र–

सन् १९३६ में कांग्रेस ने असेम्बली के निर्वाचनों में भाग लेने का निश्चय किया। पंजाब प्रोविन्शियल कांग्रेस कमेटी ने श्रीयुत लालाजी को पंजाब असेम्बली के लिए एक क्षेत्र से खड़ा करना चाहती थी। परन्तु लक्ष्मी इन्श्योरेंस कम्पनी के कार्यकर्ताओं ने प्रतिबन्ध लगाकर रोकना चाहा। यद्यपि लालाजी ने असेम्बली के चुनाव में खड़े होने का निश्चय किया था और वे इसके लिए तैयार भी न थे तथापि लालाजी जैसे निर्भीक, देशप्रेमी और स्वाभिमानी व्यक्ति के लिये इस प्रकार का प्रतिबन्ध अपमानजनक और उनकी भावनाओं को ठेस पहुंचाने वाला था, अत उन्होंने जिन परिस्थितियों में अपना त्यागपत्र दिया वे निम्नलिखित त्यागपत्र की प्रतिलिपि से प्रगट होती हैं:—

१० अक्तूबर, १९३६

मैनेजिंग एजेण्ट्स,
लक्ष्मी इंश्योरेंस कम्पनी लिमिटेड,
लाहौर।

मैं आपकी सेवा में निम्नांकित कुछ पंक्तियां इंगित करना चाहता हूं कि किस प्रकार लक्ष्मी इन्श्योरेंस कम्पनी, जिसकी स्थापना ला० लाजपतराय और पं० मोतीलाल नेहरू जैसे देश-भक्तों द्वारा हुई है वह उस बात की न केवल अवहेलना ही कर रही है किन्तु जान-बूझकर उसके ध्येय को पीछे पटक रही है। और इस प्रकार इसके कार्यकर्ताओं के उत्साह को क्षीण किया है जिन्होंने इसमें इसी आशा से प्रवेश किया था कि इसके संस्थापकों की सद्इच्छाओं की पूर्ति सदैव ही इसके प्रबन्धकों का लक्ष्य रहेगी और जिससे कि वे अपनी मातृभूमि के प्रति अपनी सद्भावनाओं के बाह्य प्रदर्शन का अवसर पाते रहेंगे।

असहयोग आन्दोलन के समय सरकारी नौकरी से त्यागपत्र देने का और व्यापारिक संस्था (भारत इन्श्योरेंस क०) में प्रविष्ट होने का मुख्य उद्देश्य यही था कि मुझे अपने आगामी जीवन में स्वतंत्रतापूर्वक कांग्रेस के साथ देशसेवा के कार्य को पूर्णरूपेण क्रियात्मक रूप देने के लिए पर्याप्त क्षेत्र और स्वतंत्रता मिलेगी। इससे भी अधिक वह विचार जिसने मुझे और भी लक्ष्मी बीमा कम्पनी की ओर आकर्षित किया वह यह था कि यह कम्पनी कांग्रेस के गणमान्य नेता ला० लाजपतरायजी तथा पं० मोतीलाल नेहरू द्वारा संस्थापित हुई थी जिसका सुचारू प्रबन्ध पं० के० सन्तानम के हाथ में है जिन्होंने कि असहयोग आन्दोलन के समय अमूल्य सेवाएं और त्याग अर्पित किया था अवश्य ही अपने कार्यकर्ताओं को वह स्वतंत्रता प्रदान करेगी कि वह कांग्रेस के साथ मिलकर कार्य कर सकेगी। साथ ही हर प्रकार से उन्हें सहायता देगी। भारत कम्पनी को छोड़कर अपनी कम्पनी में आने से मुझे अत्यधिक हानि हुई थी किन्तु अब मैं अनुभव कर रहा हूं कि मैंने अपनी भावनाओं के प्रति न्याय नहीं किया क्योंकि अब मैं स्पष्ट देख रहा हूं कि लक्ष्मी कम्पनी अब वह नहीं रही है जो कि कुछ समय पूर्व थी और जो लक्ष्य इसके सहायकों ने उद्घोषित किया था। कम्पनी के प्रबन्धकों का यह निश्चय कम्पनी की इच्छा प्रगट करता है और इसके ऊपर यह प्रतिबन्ध कि वे सामाजिक और देश की राष्ट्र-निर्माण व्यवस्था में भाग न ले सकेंगे मुझे इससे भाष होता है कि अब वह समय दूर नहीं है जबकि जो प्रतिबन्ध गवर्नमेंट ने अपने कार्यकर्ताओं पर लगाये हैं यह कम्पनी भी उनसे पीछे न रहेगी।

आपके बोर्ड का यह निर्णय सीधा उस चेतावनी का द्योतक है कि मेरी राष्ट्रीय भावनाओं की अभिव्यक्ति के लिए यहां पर कोई स्थान नहीं और इस प्रकार आपकी कम्पनी में मेरे आने का ध्येय अस्त-व्यस्त हो जाता है, अत: मुझे खेद है कि मैं आपके इस निर्णय से सहमत नहीं हूं। और न मैं इस प्रतिबन्ध से अपने आपको भविष्य के लिए बाधित करता हूं। मैं, इसीलिए अपना त्याग-पत्र दे रहा हूं। इसे मेरा एक माह का नोटिस समझा जाएगा। मुझे आशा है कि मैंने अपनी स्थिति स्पष्ट कर दी है और मेरा त्याग-पत्र तुरन्त स्वीकार किया जाए।

उत्तर की प्रतीक्षा में।

भवदीय,
तनसुखराय जैन

सन् १९३६ ई० के अक्तूबर मास में लक्ष्मी बीमा कम्पनी से त्याग-पत्र देने के उपरान्त ला० तनसुखरायजी ने तिलक बीमा कम्पनी की स्थापना की और उसके मैनेजिंग डायरेक्टर नियुक्त हुए। सन् १९४२ ई० तक तिलक बीमा कम्पनी को छोड़ने से पूर्व ही उन्नति पथ पर अग्रसर कर दिया और यह भारतवर्ष की उच्चकोटि की कम्पनी बन गई।

तिलक बीमा कम्पनी के मैनेजिंग डायरेक्टर रहते हुए भी लालाजी ने कम्पनी की उन्नति के लिये अपने व्यक्तिगत स्वार्थों को एक ओर रखकर इसकी उन्नति के लिए अपने पास से हजारों रुपये लगाकर कम्पनी के धन की रक्षा की थी। यदि लालाजी कुछ समय और भी इस कम्पनी की सेवा कर सकते तो तिलक बीमा कम्पनी के लिये सौभाग्य की बात होती परन्तु

सन् १९३९ ई० में एक नया बीमा कानून बना जिसके अनुसार एक व्यक्ति तीन साल तक ही किसी बीमा कम्पनी का मैनेजिंग डायरेक्टर रह सकता था। लालाजी की यह अवधि सन् १९४२ ई० में समाप्त होती थी। अतः आपने लक्ष्मी बीमा कम्पनी से त्याग-पत्र दे दिया।

तिलक बीमा कम्पनी की स्थापना—

जिन लोगों का तिलक से सम्बन्ध रहा है और वैसे भी सारा समाज जानता है कि तिलक ने क्या-क्या किया। जहाँ दसों और बीसों वर्षों की खड़ी हुई कम्पनियों के नाम तक लोग नहीं जानते, वहाँ दो वर्ष में ही तिलक का नाम बच्चे-बच्चे की जबान पर हो गया था।

नये बीमा कानून की चोट में जहाँ नई कम्पनियों का अस्तित्व खतरे में पड़ गया था और बहुतेरी कम्पनियाँ किश्त न देने की दशा में सरकार द्वारा बन्द कर दी गई थीं। तिलक ने समय से पहले ही अपनी जमानत की रकम पूरी कर दी थी।

आज भी जब विकट परिस्थितियों में सभी बैंकिंग संस्थाओं पर संकट के बादल मँडरा रहे हैं और अधिकांश संस्थाएँ बंद हो गई हैं तिलक सीना निकाल अडिग खड़ी हुई है। इस सब का श्रेय केवल इसी एक महान व्यक्ति लाला तनसुखराय जैन को है। तात्पर्य यह है कि सफलता लाला तनसुखराय जैन के पीछे-पीछे दौड़ती है, और व्यापारी जगत् में यह निश्चित समझा जाता कि ला० तनसुखराय के साथ सफलता की गारंटी रही।

आम तौर पर यह देखा गया है कि जो व्यक्ति व्यापार में सफलता प्राप्त करता है वह सार्वजनिक क्षेत्र से दूर रहता है। लाला तनसुखराय जैन इसके अपवाद रहे हैं। आप न केवल कांग्रेस के प्रसिद्ध कार्यकर्ता ही रहे बल्कि सामाजिक क्षेत्र में भी नाम बहुत ऊँचा पाया। जैन समाज में तो लाला तनसुखराय जैसे कार्यकर्ता उँगलियों पर गिनने लायक हैं।

धार्मिक क्षेत्र में प्रवेश—

सन् १९३५ ई० में देश में शान्ति स्थापित हुई। कांग्रेस का कार्यक्रम सरकार के साथ सहयोग रूप में चल पड़ा, अतः इस ओर से श्री लालाजी का कार्यभार हलका हो गया था। श्रीयुत लालाजी की माताजी की यह हार्दिक इच्छा थी कि आपको धार्मिक क्षेत्र में प्रविष्ट किया जए परन्तु जो देश के आन्दोलन की ओर आकर्षित हो चुका हो उसके लिए जातियाँ, धर्म के बंधन तुच्छ दीख पड़ते हैं। फिर भी धार्मिक वृत्ति श्री लालाजी की पैतृक सम्पत्ति रही है। इस ओर भी आपकी अभिरुचि शीघ्र ही जागृत हो उठी। सन् १९३५ ई० में आप पूज्य माताजी के आग्रह पर आप हस्तनागपुर के उत्सव पर गये। धार्मिक क्षेत्र की ओर आपका यह प्रथम रुझान था। अपनी सूझ से आपने हस्तनागपुर में ६०, ७० व्यक्तियों के ठहरने योग्य कैम्प बनाया और उसका प्रबन्ध बड़ी कुशलता के साथ किया। इस अवसर पर अखिल भारतीय जैन परिषद् की कार्यकारिणी की बैठक हस्तनागपुर में रखी गई थी। सौभाग्य से परिषद की मीटिंग

का स्थान भी आपके पंडाल में ही रखा गया। इससे आपको बड़ी प्रसन्नता हुई। आपने परिषद् की मीटिंग के लिए हर प्रकार का समुचित प्रबन्ध कर दिया।

परिषद में अनेकों आवश्यक विषयों पर विचार होने के साथ ही आगामी अधिवेशन के स्थान का भी प्रश्न उपस्थित हुआ। कोई किसी स्थान का निर्णय होने में नहीं आ रहा था। उस समय ला० तनसुखरायजी ने विचार प्रगट किया कि यदि परिषद् का अधिवेशन दिल्ली में हो तो ठीक है। उस समय जैन समाज में परिषद् की ओर से कुछ भ्रम फैला हुआ था। कुछ लोगों ने इस प्रस्ताव का विरोध भी किया परन्तु परिषद की कार्यकारिणी ने लाला तनसुखरायजी से आग्रह किया कि वे दिल्ली जाकर परिस्थिति का अध्ययन करके पुनः इस विषय में लिखें। श्रीयुत लालाजी के चित्त पर हस्तनागपुर उत्सव का बहुत अच्छा प्रभाव पड़ा था और अनेकों जाति-बन्धुओं के घनिष्ठ सम्पर्क में आने के कारण उनकी समाज-सेवा की सुषुप्त भावना एक दम जाग उठी, और इसी भावना से आपने परिषद को दिल्ली के लिए निमन्त्रण भी दे दिया। कुछ साथियों ने इस कार्य को बहुत कठिन बताया परन्तु आपने हस्तनागपुर से लौटते ही लोगों से मिलना-जुलना आरम्भ कर दिया और अपना विचार लोगों को बताया। फिर लाल मन्दिर में एक मीटिंग बुलाई गई। प्रथम तो उपस्थिति ही बहुत कम थी। फिर बिना किसी निश्चय के ही यह अपूर्ण मीटिंग भी समाप्त हो गई। इससे आपको हार्दिक दुःख हुआ। अगले दिन आपने अपने मकान पर ही कुछ मित्रों की एक बैठक बुलाई और उसमें जिला परिषद की स्थापना करके अखिल भारतीय जैन परिषद का आगामी अधिवेशन दिल्ली रखने का निमंत्रण दे दिया। एक मित्र ने आर्थिक कठिनाई का ज़िक्र किया तो इन्होंने तत्काल अपनी स्वीकृति प्रदान की और कहा इस सम्बन्धी आने वाली कठिनाइयों का मैं स्वयं सामना कर लूँगा। आप सब परिषद के कार्य को बढ़ाइये। यह बात सुनकर सर्वसम्मति से आप जैन परिषद के मन्त्री चुने गये।

महगाँव कांड का सफल संचालन अ० भा० जैन परिषद् के दिल्ली अधिवेशन को समाप्त हुए पूरा १ मास भी न बीता था कि जैन समाज में महगाँव कांड का प्रबल आन्दोलन छिड़ गया। यहाँ कुछ अत्याचारियों ने मन्दिर की मूर्तियों को चुरा लिया और मन्दिर को अपवित्र कर दिया। इससे श्रीयुत लालाजी के हृदय को बड़ी ठेस पहुँची। आपने आठ दिन में ही इस आन्दोलन को अखिल भारतीय रूप दे दिया तथा १९ जनवरी, सन् १९३९ को सम्पूर्ण भारत में महगाँव काण्ड दिवस मनाने की अपनी कार्यदक्षता और प्रबन्ध से इस दिवस को इतनी सफलता से मनाया गया कि लगभग सम्पूर्ण भारत में हड़ताल मनाई गई तथा सभाएँ हुई। इस दिवस की सफलता का यह प्रत्यक्ष प्रमाण है कि एक दिन में ग्वालियर राज्य के पॉलिटिकल विभाग में हजारों तार पहुँचे थे तथा अनेकों स्वीकृत प्रस्ताव-पत्रों का ढेर लग गया था। यह दिवस दिल्ली में तो इतनी सफलता के साथ मनाया गया कि जैन-इतिहास में इसका एक विशेष स्थान रहेगा और यह इस कारण और भी कि पहली बार ही दिगम्बरी, श्वेताम्बरी, स्थानकवासी आदि सब प्रकार के जैनियों ने एक मंच से सम्मिलित होकर इस दिवस को मनाया।

आपको इस काण्ड की जाँच के लिए कई बार ग्वालियर राज्य जाना पड़ा और राज्याधिकारियों से मिल कर अपना दृष्टिकोण रखकर न्याय की प्रार्थना की। यह आन्दोलन

आपके परिश्रम और कार्यकुशलता के कारण इतना वृहत् रूप धारण कर गया था। इस बार तो आपकी गिरफ्तारी का भय हो चला था परन्तु आपने राज्य को चेतावनी दे दी थी कि यदि उन्हें राज्य से न्याय न मिला तो सत्याग्रह किया जाएगा। इसके लिए पूरी तैयारी आरम्भ कर दी गई थी। इस मामले को अन्त में राज्याधिकारियों ने अदालत में दे दिया जहाँ पूरी शक्ति से आप इसे डेढ़ वर्ष तक लड़ते रहे और जैन समाज के मस्तक को ऊँचा किया।

समाज संगठन का व्रत

१६ जनवरी सन् १६३६ ई० के महगाँव काण्ड दिवस ने आपकी समाज-संगठन की भावना को और भी जागृत कर दिया और तन-मन-धन से समाज-सेवा में जुट गये। महगाँव काण्ड के कारण समय का अभाव होते हुए भी आपने जैन परिषद का सारा विधान नए रूप से बनाया और परिषद का कायाकल्प हो गया।

सन् १६३७ में परिषद का सालाना अधिवेशन आपके परिश्रम में ही इतना सफल हुआ कि इसमें जैन समाज के १० हज़ार व्यक्तियों के अतिरिक्त महाराजा रीवा और कोसी नरेश भी पधारे थे। इस अवसर पर समाज की कुरीतियों को जड़ से उखाड़ फेंकने का प्रस्ताव पास हुआ। हज़ारों व्यक्तियों ने मरण-भोजन जैसी हानिकारक घृणित कुप्रथा को नष्ट करने, ३ मास में परिषद के १०००० सदस्य बनाने की प्रतिज्ञा की। समाज के सैकड़ों नवयुवकों ने भिन्न-भिन्न भागों में परिषद की शाखाएँ खोलने का व्रत किया। श्रीयुत लालाजी मई-जून की भयकर गर्मी में, यू० पी०, सी० पी०, आदि प्रान्तों के दौरे पर निकल पड़े और समाज में एक नवचेतना पैदा कर दी। आपके कार्य से अ० भा० जैन परिषद के महामंत्री देशभक्त त्यागमूर्ति श्री रत्नलालजी एम० एल० ए० इतने प्रभावित हुए कि अ० भा० जैन परिषद का सम्पूर्ण कार्य उन्होंने आपके ऊपर ही छोड़ दिया और अन्त में बहुत समय तक अ० भा० जैन परिषद का कार्यालय आपके पास ही रहा।

जैन रथ-यात्रा पर पाबन्दी

सन् १६४० ई० में जब कि आप अखिल भारतीय जैन परिषद के मंत्री थे, दिल्ली के अधिकारियों ने जैन रथ-यात्रा के जुलूस पर पाबन्दी लगा दी थी। उस समय आपने पचासों जैन और जैनेत्तर अन्य सभाएं सरकार के इस अनुचित कार्य के विरोध में संगठित कराकर तथा समय-समय पर वक्तव्यों द्वारा अपने समाज का रोष प्रकट करके सरकार को यह बतला दिया कि दिल्ली का जैन समाज की ओर आपका ध्यान आकर्षित किया। आपने सबको इस बात का आश्वासन दिया कि यदि आवश्यकता हुई तो वे सब व्यय अपने ऊपर लेने को तैयार हैं। परिषद का निमंत्रण देने के बाद वे सब कार्य छोड़कर परिषद के कार्य पर जुट गये और एक सप्ताह में परिषद के सैकड़ों सदस्य बनाये। आपकी इस सफलता को देखकर बहुत से सज्जन चकित रह गये और वे आप ही आप परिषद में सम्मिलित होने लगे। अखिल भारतीय जैन परिषद दिल्ली अधिवेशन के लिए स्वागतकारिणी के मन्त्री निर्वाचित हुए और आपके कठिन परिश्रम, अपूर्व

साहस तथा उत्साह से अ० भा० जैन परिषद का दिल्ली अधिवेशन इतना सफल हुआ और अपूर्व समारोह के साथ समाप्त हुआ कि यह अ० भा० जैन परिषद के इतिहास में अमर रहेगा। इस अवसर पर आप पाबन्दी के साथ जलूस निकालने को तैयार नहीं थे अन्त में स्थानीय अधिकारियों को झुकना पड़ा और दिल्ली में जलयात्रा का शानदार जुलूस निकला। शायद भारतवर्ष में यह पहला जुलूस था जिसमें श्वेताम्बरी और दिगम्बरी आदि सभी सम्मिलित होकर जुलूस में निकले और यह सब आपके प्रयत्नों का ही फल था।

रथयात्रा पर लगाई गई पाबन्दी को सफलतापूर्वक हटवाने के बाद जो निम्नांकित वक्तव्य लालाजी की ओर से प्रकाशित हुआ उससे इनकी निर्भीकता का भलीभाँति ज्ञान होता है :—

"विविध जातियों में फूट डालकर अपना काम बनाने की जिस नीति से सरकार हमेशा काम लेती रही है, वही नीति स्थानीय सरकार ने जैनियों के जुलूसों पर पाबन्दी लगाकर हिन्दुओं में प्रयोग करनी चाही थी अर्थात् यदि जैनी पाबन्दियों सहित अपने जुलूस निकाल लेते तो हिन्दुओं के जुलूसों पर भी उसी प्रकार पाबन्दी लगाई जा सकती थी और सरकार का उद्देश्य भी यही था। सरकार का इरादा यह था कि पहले एक छोटे समाज पर पाबन्दी लगाकर देख लिया जाय कि हिन्दू लोग उसे कैसा महसूस करते हैं। जैन समाज अपनी परीक्षा में सफल रहा है, क्योंकि उन्होंने पाबन्दियों के साथ जुलूस निकालने में समस्त हिन्दू जाति का अपमान समझा और इसलिए विरोध प्रदर्शनार्थ अपने आठों मेलों को बन्द कर दिया और न कोई जुलूस ही निकाला। उसी का फल आज हम देख रहे हैं कि रामलीला के लाइसेन्स बिना किसी पाबन्दी के मिलेंगे। रामलीला के जुलूसों में कोई पाबन्दी न लगाकर सरकार ने बहुत बुद्धिमत्ता प्रकट की है और सरकार को चाहिए कि वह जैनियों के मामले में अपनी गलती स्वीकार करे और उसके दिलों को जो दुःख पहुँचा है उसे शान्त करे।

अन्त में जैन समाज की ओर से सब सज्जनों और व्यक्तियों को जिन्होंने कि इस मामले में सहयोग दिया तथा इस अन्याय के प्रति सहानुभूति प्रकट की है, धन्यवाद देता हूँ।"

श्री अग्रसेन जयन्ती का वृहत् आयोजन

दिल्ली में पिछले कई वर्षों से अग्रसेन जयन्ती मनाई जाती रही थी। परन्तु बहुत समय तक अग्रवाल भाई दिल्ली के भिन्न-भिन्न मुहल्लों में ही जयन्ती मना रहे थे। लाला तनसुखरायजी जैन ने जो कि इस समय तिलक बीमा कम्पनी के मैनेजिंग डायरेक्टर थे, ला० लक्ष्मीनारायणजी अग्रवाल व बालकृष्णजी एम० ए० की प्रेरणा से इस बात का बीड़ा उठाया कि दिल्ली के समस्त वैश्य भाई संगठित रूप में एक ही स्थान पर जयन्ती मनायें।

इससे पूर्व दिल्ली के वैश्य भाई जयन्ती के अवसर पर जुलूस निकालने से हिचकिचाते थे। परन्तु आपने साहस और आत्मविश्वास से काम लेकर जुलूस का आयोजन किया जिसके

फलस्वरूप ऐसा जुलूस निकाला जो दिल्ली के वैश्य जाति के इतिहास में एक अद्वितीय प्रकरण रहेगा।

खट्टा अत्याचार विरोध प्रयत्न —

सन् ३७ में खट्टे में जब कि वहाँ के जैन भाइयों पर अजैनों ने हर तरह के अत्याचार करना प्रारम्भ किये और जैन मन्दिर न बनाने दिया तब आपने वहाँ पहुँच कर उन आपत्तिग्रसित जैन बन्धुओं को अपने गले लगाकर उनके अधिकारों की रक्षा के निमित्त अपनी जान पर खेल गये। लाला तनसुखरायजी जैन के अथक श्रम का यह फल है कि आज भी खट्टे के जैन भाई और उनके धर्माधिकार सुरक्षित हैं।

सिकन्दराबाद अत्याचार विरोध प्रयत्न :

सन् ३८ में सिकन्दराबाद यू० पी० में जब कि वहाँ के जैन जुलूसों पर किसी जैनेतर ने जूता फेंक कर जैनियों को महाअपमानित किया था और वहाँ अनैक्यता बढ़ गई थी और बड़े भारी झगड़े होने की उम्मीद थी तब ऐन मौके पर अपने कई साथियों को लेकर ला० तनसुखराय जी जैन वहाँ पहुँचे और जैन रथ चलवाया तथा मुजरिमों को कड़ी सजा दिलवाकर सरकार का पीछा छोड़ा।

मित्रमंडल जुलूस का प्रारंभ :

जैन मित्रमंडल धर्मपुरा दिल्ली लगभग २३ वर्षों से वीर जयन्ती का उत्सव मनाया करता था, पर सन् ३६ में आपके सद्प्रयत्न से आम शहर में जुलूस निकालने की योजना बनी और उसी वर्ष से वह कार्यरूप में परिणत भी कर दी गई। प्रथम वर्ष में ही जुलूस को इतनी अधिक सफलता मिली कि अजैनों पर उसका काफी असर हुआ और जैनेतर जनता ने वीर जयन्ती महोत्सव में शामिल होकर इस बात का सबूत पेश किया कि हम लोग भगवान महावीर स्वामी के अहिंसात्मक सिद्धान्तों को लोकोपकारी समझते हैं। जुलूस की योजना आज तक चली आरही है और प्रतिवर्ष उसमें दूज के चन्द्रमा की तरह तरक्की होती ही रहती है। हजारों जैनेतर भाई अब वीर जयन्ती के जुलूस के साथ रहते हैं तथा सभामंडप में भी हजारों की तादाद में जनता उपस्थित होती है।

मनोरंजन हिंसा का विरोध :

नई दिल्ली के असेम्बली हाल पर प्रतिवर्ष की गई निश्चित तारीख को यहाँ के सरकारी अफसर कबूतरों को अपनी गोली का निशाना बनाकर अनेक तरह की रंगरलियाँ मनाते और उन तड़फते कबूतरों से खिलवाड़ किया करते थे। सन् ३६ में उस निर्दय पूर्णहिंसा को रोकने के लिए दिल्ली में आपने जोरदार आन्दोलन चलाकर प्रति वर्ष होने वाली हजारों निरपराध कबूतरों की हिंसा को रुकवाया।

भीलों में सुधार

इसी सन् में नीमखेड़ा स्टेट में एक भीलों के बच्चों को सुशिक्षित बनाने का ध्येय सामने रखकर आपने वहां एक आश्रम की नींव डाली और उस समय १० हजार भीलों ने आपके उपदेश से आजन्म मांस खाने का त्याग किया। उस आश्रम की नींव डालते समय आपने एक अच्छी रकम दान में दी।

सम्मिलित जलूस

सन् ४० में दिल्ली में भादवें के महीने में जब कि जैन रथोत्सव सरेआम निकलता है उस पर मस्जिद के आगे बाजे न बजाने की रोक सरकार ने लगा दी तब आपने अथक परिश्रम द्वारा उस पाबन्दी को हटवाया और तब से इस प्रकार की पाबन्दी फिर सरकार को कभी भी लगाने की हिम्मत न हुई। आपके सद्प्रयत्न से पाबन्दी तो हट गई पर उस समय आपने एक कार्य और भी बड़े मार्के का किया और वह यह है कि पहले कभी दिगम्बर तथा श्वेताम्बर भाई आपस में धार्मिक मामलों में इकट्ठे नहीं होते थे, आपने दो बिछड़े हुए भाइयों के मिलाने का और उन्हें एक साथ धार्मिक कार्य करने का प्रयत्न किया और वे उसमें पूर्ण सफल भी हुए।

सन् ४२ में जब कि विश्वयुद्ध की ज्वालाएँ भारत के सिंह द्वार को छूकर लोगों में भय उत्पन्न करने लगीं और राजपूताने के मारवाड़ी भाई कलकत्ता, मद्रास आदि व्यापारिक केन्द्रों को छोड़कर अपनी जन्म-भूमि की ओर भागने लगे तब आपने दिल्ली जंकशन पर उन मुसीबतजदा मुसाफिरों की हर तरह की सुविधा के लिए रेलवे के आफिसरों से मिल कर और लिखा-पढ़ी करके उनका स्थायी प्रबन्ध करवाया।

दिल्ली की सुप्रसिद्ध साहित्यिक संस्था जैन मित्रमंडल धर्मपुरा के आप कई वर्ष तक सफल महामंत्री रह चुके हैं। इसके अलावा आप दिल्ली की बहुत सी सामाजिक संस्थाओं के सभापति, मंत्री, संस्थापक और संरक्षक हैं। दि० जैन समाज का एक मात्र साहित्यिक पत्र 'अनेकान्त' जो कि अर्थाभाव से सिर्फ एक वर्ष चलकर बन्द हो गया था और जिसके पुनः प्रकाशन की आवश्यकता को समाज के विद्वान ज़ोरों से महसूस कर रहे थे। आपके ही हर तरह के त्याग से उसका पुनः प्रकाशन प्रारंभ हुआ जो आज तक हो रहा है और उससे अच्छी साहित्यिक सेवा हो रही है। जैन समाज का कार्य करते हुए भी आपने राष्ट्र को भुला नहीं दिया है अपितु आज भी नई दिल्ली कांग्रेस कमेटी के आप प्रधान हैं। तात्पर्य यह है कि लाला तनसुखरायजी जैन स्वयं एक महान् संस्था हैं और उनके मजबूत हाथों में जैन समाज के हित सुरक्षित हैं।

दिगम्बर श्वेताम्बर तथा स्थानकवासियों को एक प्लेटफार्म पर लाने की स्कीम आपके दिमाग में बहुत दिनों से चक्कर काट रही थी कि अचानक आपको आबू माऊंट जाने का सुअवसर प्राप्त हुआ और वहां पर आबू पर्वत पर बने अपने पूर्वजों के करोड़ों की लागत के जैन तथा हिन्दू मन्दिरों की कलाकृति को देखने तथा अपने आराध्य देव के दर्शनार्थ आने वाले यात्रियों पर

सिरोही स्टेट द्वारा लगाए गए अति भयानक धर्मघातक कलंकी टैक्स को देख कर आपकी आत्मा छटपटा उठी और वहां से आते ही आपने आबू टैक्स के लगने से होने वाले जातीय अपमान का बदला लेने की गरज से हिन्दू तथा जैन समाज को साथ लेकर सिरोही राज्य से भिड़ने को प्रस्तुत हुए ।

जैसी कि लालाजी को हर एक आन्दोलनों में उन्हें पूरी-पूरी कामयाबी हासिल होती रही है । इस आन्दोलन में भी सफलता का सेहरा आपके उन्नत मस्तक को सुशोभित करेगा । यदि इस आबू आन्दोलन से जैसा कि लालाजी का ख्याल है, समस्त जैन 'टुकड़े मिल कर एक हो जाय तो फिर स्वतंत्र भारत में जैनों को अपमानित करने का हौसला किसी भी कौम को न हो सकेगा ।'

जन समाज के इस चमकते सितारे पर जैन समाज जितना भी अभिमान करे, थोड़ा होगा । उन्होंने समाज का कार्य सेवा-भाव से करने में कभी मुंह नहीं मोड़ा ।

आबू मंदिर आन्दोलन

अप्रैल सन् १९४१ ई० की बात है जब कि ला० तनसुखरायजी गुरुदेव श्री विजयशान्ति जी महाराज के दर्शनार्थ आबू गये । गुरुदेव के दर्शन करने के पश्चात् वे विमलशाह तथा वस्तुपाल तेजपाल द्वारा निर्माणित देववाड़ा के सुप्रसिद्ध जैन मन्दिरों के दर्शनार्थ भी गए । लालाजी के आश्चर्य का ठिकाना न था जब कि अन्य यात्रियों के साथ उन्हें भी सिरोही स्टेट द्वारा लगाए गए टैक्स का शिकार होना पड़ा परन्तु जैसे ही वे दिल्ली आए इस टैक्स के विरोध में उन्होंने समाचार-पत्र में अपने विचार प्रगट किए । लालाजी के इन विचारों से सहमत व्यक्तियों की संख्या बढ़ने लगी और छः महीने तक मित्रों से इसी विषय में पत्र-व्यवहार होता रहा । नवम्बर, १९४१ ई० में सम्पादक श्री चिमनसिंहजी लोढा का व्यावर से एक पत्र मिला जिसमें सम्पूर्ण परिस्थिति पर विचार करने के लिए कार्यकर्ता सम्मेलन बुलाने का परामर्श दिया गया था । अन्त में अखिल भारतीय आबू मन्दिर टैक्स विरोधी कांफ्रेंस कर व्यावर में करने का निश्चय किया । और लाला तनसुखरायजी को उसका अध्यक्ष चुना गया । लालाजी के सभापतित्व में यह कान्फ्रेंस बहुत सफल हुई । इस आन्दोलन की आवश्यकता इस कान्फ्रेंस के अवसर पर देश के कोने-कोने से प्राप्त कुछ संदेश-पत्रों से भली-भांति विदित है । इन समितियों से यह भी अनुमान लगाया जा सकता है कि लालाजी ने कितने गम्भीर विषय को अपने हाथ में लिया था ।

आबू मन्दिर आन्दोलन सन् १९४३ ई० तक बहुत उग्र रूप में चलता रहा । कई बार डेपुटेशन सिरोही राज्य के अधिकारियों से मिला और समाचारपत्रों में बहुत समय तक यह चर्चा का विषय बना रहा, परन्तु देशव्यापी अगस्त-आन्दोलन के कारण देश की परिस्थिति एकदम बिगड़ गई और आबू मन्दिर आन्दोलन के प्रधानमंत्री चिमनसिंहजी लोढा राज्यबन्दी बनाए गए अतः यह आन्दोलन देश की विकट परिस्थितियों के कारण इस आशा से कि ज्योंही देश का वातावरण सुधरेगा पुनः आरम्भ कर दिया जाएगा ।

इस सम्बन्ध में देश के विभिन्न भागों से राष्ट्रीय और सामाजिक नेताओं और कार्यकर्ताओं के जो उत्साहवर्धक पत्र आए जिनमें इस कार्य की मुक्तकंठ से प्रशंसा की थी और सभी प्रकार सहयोग देने का वचन दिया था उनमें से कतिपय इस प्रकार है :—

श्री एस. सत्यमूर्ति त्यागराज, मद्रास

मुझे यह जानकर हर्ष हुआ कि समस्त जैनों की कान्फ्रेंस ब्यावर में होने जा रही है। मैं आपकी प्रधानता में कान्फ्रेन्स की हर प्रकार से सफलता की कामना करता हूँ।

श्री ब्रजलालजी बियाणी, सदस्य कौंसिल आफ स्टेट, अकोला (बरार)-

मैंने आबू के जैन मंदिरों के सम्बन्ध में सामग्री पढ़ी। इस बारे में मैं आपकी कौनसी सेवा कर सकता हूँ लिखिये। मेरे योग्य जो कार्य होगा, आज्ञानुसार उसे पालन करने का प्रयत्न करूँगा।

श्री सेठ गोविंददास, एम. एल. ए. सेन्ट्रल जबलपुर–

आबू के जैन मंदिरों के टैक्स का हाल मुझे भलीभाँति मालूम है और मेरा स्पष्ट मत है कि यह यात्रियों पर निरर्थक भार है। इस दिशा में आपका प्रयत्न सफल हो, यही मेरी हार्दिक कामना है।

श्री श्रीप्रकाशजी, एम. एल. ए., बनारस–

मुझे आबू के मंदिरों के दर्शनार्थियों की कठिनाइयों का हाल जानकर हार्दिक खेद हुआ। मैं आशा करता हूँ कि इस दशा में आपका प्रयत्न उच्च अधिकारियों पर वांछनीय प्रभाव डालेगा। इस दशा में मैं आपकी क्या सेवा कर सकता हूँ ?

श्री के. एम. मुंशी भू० पू० मिनिस्टर, बम्बई सरकार–

आबू के दर्शनार्थियों के टेक्सों को दूर कराने की दशा में मैं आपकी क्या सहायता कर सकता हूँ, लिखिये।

श्री डा० श्यामाप्रसाद मुकर्जी, गृहमंत्री बंगाल सरकार–

मेरी उन सभी आंदोलनों के साथ गहरी सहानुभूति है जो निरंकुशता के विरोध में किये जाते हैं और विशेष रूप से धार्मिक विधियों की स्वतंत्रता की दिशा में किये गये आंदोलनों का मैं पूर्ण समर्थक हूं। मुझे विश्वास है कि आपकी प्रधानता में कान्फ्रेंस को सफलता मिलेगी।

श्रीमान् सेठ जुगलकिशोरजी बिड़ला का हिन्दू धर्म सेवा संघ द्वारा प्राप्त संदेश–

सेठजी के विचारानुकूल इस आंदोलन की ओर हिन्दू महासभा तथा उपयुक्त हिन्दू संस्थाओं को इस ओर आंदोलन करने के लिए संघ द्वारा लिखा जा रहा है, संघ आपकी कान्फ्रेन्स की पूर्ण सफलता चाहता है। हिन्दू भावना की सुरक्षा और उसके विरुद्ध विवेकहीन कार्यों का विरोध करना वास्तव में उचित और न्यायपूर्ण है। संघ आपके इस आंदोलन में औचित्य अनुभव करता है।

कुँवर चाँदकरणजी शारदा अजमेर–

वास्तव में आबू स्थित मंदिरों पर सिरोही स्टेट ने जो टैक्स लगाया है वह हमारी धार्मिक स्वाधीनता में कलंक रूप है और इसके विरोध में जितना आंदोलन किया जाय थोड़ा है। इस आंदोलन में आप कोरे प्रस्तावों से सफलीभूत नहीं होंगे, बल्कि आपको सत्याग्रह की पल्टन तैयार करनी होगी तब कहीं इन निरंकुश राजाओं के होश ठिकाने आवेंगे। समस्त हिन्दू जनता आपके साथ इस आंदोलन में सहानुभूति प्रगट करेगी ऐसी मुझे पूर्ण आशा है। मैं आपके शुभ प्रयत्न की हृदय से सफलता चाहता हूँ।

रायबहादुर मेहरचंद जी खन्ना, पेशावर–

आपकी कान्फ्रेन्स की पूर्ण सफलता चाहता हूँ।

श्री कन्हैयालालजी वैद्य, मंत्री मध्यभारत देशी राज्य लोकपरिषद्, बम्बई–

यह दुःख की बात है कि सिरोही राज्य हिन्दू राज्य होते हुए, वहाँ पर हिन्दू धर्म की चौकीदारी का टैक्स वसूल होता है। हमारे ये राजे-महाराजे केवल धन खींचना जानते हैं, नीति और अनीति की उन्हें चिन्ता नहीं है। सिरोही राज्य की टैक्स लेने की नीति लूट की नीति ही कही जाएगी क्योंकि वह इस टैक्स को मंदिरों के लिए खर्च न करते हुए अपने स्वच्छंद शासन में खर्च लेता है। ऐसी लूट का जितना भी विरोध किया जाय थोड़ा है। सिरोही के निरंकुश शासन में प्रजा भी दुःखी हो रही है। आप क्रियात्मक सत्याग्रह की योजना कीजिये। राजस्थान और अंग्रेजी भारत से आपको सहयोग मिलेगा।

श्री हीरालालजी शास्त्री, जयपुर राज्य प्रजामंडल–

अगर कोई राज संस्था किन्हीं लोगों से कर वसूल करती है तो उसे उस आमदनी को उन लोगों की राय से उन्हीं लोगों के हितार्थ खर्च करना चाहिए। चाहे जिस बहाने से कर लगा देना और उसे मनमाने तरीके से खर्च करना अन्याय है जिसका सम्बन्धित जनता को अवश्य विरोध करना चाहिए। मैं आशा करता हूँ कि आप लोग न्याय की दृष्टि से एक मामले को हाथ में ले रहे हैं तो उस पर पूरे आग्रह के साथ अड़े रहेंगे और उसे अपने अनुकूल तय करवाकर छोड़ेंगे।

श्री गोकलभाई भट्ट सिरोही राज्य प्रजामंडल–

मैं मानता हूँ कि आबू मंदिर प्रवेश टैक्स कतई हटना चाहिए ताकि यात्रियों को ईश्वर दर्शन के लिए कोई टिकट न लेना पड़े। प्रगतिशील जमाने में यह टैक्स कलंक है। आपकी कान्फ्रेन्स के साथ हमारी पूरी हमदर्दी है। कान्फ्रेन्स अपने उद्देश्य की पूर्ति के लिए व्यावहारिक व असरकारक योजना बनायेगी ऐसी आशा है। कान्फ्रेन्स को ला० तनसुखरायजी का नेतृत्व मिलने से कार्य सुचारु रूप से चलेगा ऐसी आशा है।

श्रीमान् सेठ पद्मपतजी सिंहानिया–

वस्तुतः यह बात बड़ी अधार्मिक है कि भगवान के दर्शन की कोई फीस ली जावे, चाहे वह किसी भी रूप में हो। सिरोही में तो इस प्रथा का और भी उग्र रूप प्रतीत होता है। चोर-

डाकुओं से रक्षा करना राज्यधर्म है, प्रजा धर्म नहीं। इसके अलावा चढ़ाने वाली वस्तुओं पर भी टैक्स लगाना धर्म को व्यवसाय बना देना है, मेरी सहानुभूति आपके साथ है।

श्री नवलकिशोर भरतिया, कानपुर—

मैं सम्मेलन की सफलता हृदय से चाहता हूँ और आशा करता हूँ कि इस सम्मेलन में कुछ ऐसे महत्वपूर्ण प्रस्ताव स्वीकृत होंगे जिनसे भविष्य में दर्शनार्थियों की असुविधायें दूर हो सकें। ईश्वर आपको तथा आपके सहयोगियों को पूर्ण सफलता दे। इस कार्य में हमारी आपके साथ पूर्ण सहानुभूति है।

श्री जार्ज अरुण्डेल अ. दायर मद्रास—

आबू के मंदिरों पर टैक्सों की समस्या वास्तव में जैन समाज के सामने गम्भीर प्रश्न होना चाहिए। मैं आशा करता हूँ कि मंदिर दर्शन की धार्मिक स्वतंत्रता की प्राप्ति के लिए वे कोई प्रयत्न बाकी न रखेंगे। मैं आपके सम्मेलन की पूर्ण सफलता चाहता हूँ और आशा करता हूँ कि आप इस अन्याय को दूर करने में उचित प्रभाव डाल सकेंगे।

रायसाहिब खुशीराम छारिया, रोहतक—

मुझे यह जानकर प्रसन्नता हुई कि आप एक ऐसे कार्य के लिए आगे बढ़ रहे हैं जिसका सम्बन्ध प्रत्येक नागरिक और उसके मौलिक अधिकारों के साथ है, मंदिर में पूजा, अर्चा पर सरकारी टैक्स लगाना एक ऐसा कार्य है जिसका किसी भी न्याय से समर्थन नहीं हो सकता। मैं इस पुण्य कार्य में आपकी और आपके सहयोगियो की पूर्ण सफलता चाहता हूँ।

मुनि श्री वल्लभसूरजी महाराज, गुजराँनवाला—

मैं और पंजाब का श्रीसंघ इस पवित्र कार्य में आपकी सफलता चाहते हैं।

आनरेबिल सर शान्तिदास आसकरन एम. एस. जे. पी. बम्बई—

मैं इस पवित्र आन्दोलन के प्रति अपना सहयोग तथा पूर्ण सहानुभूति प्रगट करता हूँ। मेरा विश्वास है कि सम्मेलन का संगठित आन्दोलन सिरोही राज्य के अधिकारियों की आँखें खोल देगा, तथा उनको इस बात पर बाध्य करेगा कि वे शीघ्र ही इन कठिनाइयों तथा शिकायतों को दूर करने के लिए उचित उपाय ढूँढ़ें।

सर श्री मानिकलाल नानावतीजी बम्बई—

मैं कान्फ्रेंस की सफलता चाहता हूँ।

दानवीर साहू शान्तिप्रसादजी, डालमियानगर—

दिलवाड़ा आबू मन्दिर के विषय में आपका कार्य वास्तव में सराहनीय है और इसमें मेरा आपसे पूर्ण सहयोग है, मैं ब्यावर के सम्मेलन की पूर्ण सफलता चाहता हूँ। इस विषय में आप मेरे सहयोग पर विश्वास कर सकते हैं।

रायबहादुर राज्यभूषण दानवीर सेठ हीरालालजी, इन्दौर–

मुझे कान्फ्रेन्स के कार्य में पूर्णरूप से सहानुभूति है और इस कान्फ्रेन्स की अधिक से अधिक सफलता चाहता हूँ, आजकल संगठन की आवश्यकता है और ब्यावर कान्फ्रेन्स पर तीनों सम्प्रदायों के संगठन का एक अपूर्व अवसर है जिसमें चूकना नहीं चाहिए।

श्री एन. के. शाह बी. ई. न्यायतीर्थ बम्बई–

आबू के विश्वविख्यात मन्दिर जैनियों की निजी सम्पत्ति हैं, उनके दर्शन की स्वतन्त्रता में ये कर बाधक हैं उनका विरोध होना ही चाहिए। हमें चाहिए कि मन्दिरों के दर्शन के लिए जाएँ लेकिन कर न दें। सरकार अत्याचार करे तो अहिंसक नीति से उसका प्रतिकार करें, ऐसी हममें शक्ति प्राप्त हो। आपके प्रयत्नों की पूर्ण सफलता चाहता हूँ।

सेठ गजराजजी, कलकत्ता–

सम्मेलन की शानदार सफलता चाहते हैं।

मिस एलिज़ाबेथ फ्रेजर, कराची–

मैं एक यूरोपियन जैन के नाते इन टैक्सों का सख्त विरोध करती हूँ। मैं पूछना चाहती हूँ कि जब क्रिश्चियन और यूरोपियन को दर्शन पर कोई टैक्स नहीं है तब जैनों को अपने देश में अपने ही मंदिरों के निःशुल्क दर्शन की क्यों आज्ञा नहीं है। ब्रिटिश नीति के अनुसार देव-दर्शन पर कोई कर नहीं लिया जाना चाहिए।

राज्यभूषण राजरत्न दानवीर सर सेठ हुकुमचन्दजी, इन्दौर–

इस पत्र द्वारा हम अपना लिखित विरोध भेजते हैं कि सिरोही राज्य की ओर से आबू पर्वत पर स्थित सुप्रसिद्ध जैन मन्दिरों पर जो टैक्स लगाया है वह साधारण धार्मिक स्वतन्त्रता में बाधक है और एक कलंक है इसका हटवाने का प्रबन्ध करना चाहिए।

सेठ राजमल लखीचन्द, जामनेर–

मेरी हार्दिक इच्छा है कि कान्फ्रेन्स के प्रयत्न सफल हों।

श्री पी. सी. मोघा, जम्मू-काश्मीर–

कान्फ्रेन्स के उद्देश्यों के सम्बन्ध में मेरी हार्दिक सहानुभूति है, मुझे आशा है कि आपके नेतृत्व में कान्फ्रेन्स जैन समाज के उत्थान और संगठन के लिए वास्तविक योजना बना सकेगी, साथ ही साथ देलवाड़ा मंदिरों के दर्शनार्थियों पर से कर हटवाने में सफल प्रयत्न होगी।

सेठ गुलाबचन्द सांगिया बैंकर, इन्दौर–

मैं समझता हूँ कि कान्फ्रेन्स ने महत्वपूर्ण समस्या के योग्य महत्वपूर्ण व्यक्ति को नेतृत्व के लिए चुना है, मुझे आशा है कि आप स्वयं को इस दशा में अवश्य ही सफल और विश्वसनीय सिद्ध करेंगे। मेरी शुभ कामनाएँ आपके साथ है।

श्री विजयेन्द्र सूरी ग्वालियर–

देव—दर्शनों पर यह टैक्स अनुचित है साथ ही साथ हिन्दुओं और जैनों के लिए अन्यायपूर्ण। मैं आशा करता हूँ कि महाराजा सिरोही बुद्धिमत्तापूर्वक औचित्य की दृष्टि से अपने राजकोष की आय को इस धार्मिक टैक्स से न भरेंगे। मैं कान्फ्रेन्स की हार्दिक सफलता चाहता हूँ और जहाँ जाऊँगा उसके लिए संगठन और समर्थन करूँगा।

श्री मुनीवल्लभ विजयजी महाराज वरकाना तीर्थ–

ब्यावर में होने वाली आबू मंदिर टैक्स विरोधी कान्फ्रेन्स का मैं हृदय से समर्थन करता हूँ और उसकी हार्दिक सफलता चाहता हूँ। वास्तव में यह टैक्स जैन समाज के लिए कलंक रूप है और इसके मिटाने का पूर्ण प्रयत्न आवश्यक है। इस सम्बन्ध में मैं अपनी सेवाएँ देने को तैय्यार हूँ।

श्री विजयसिंह नाहर, कलकत्ता

कान्फ्रेन्स द्वारा टैक्सों के विरोध में जबरदस्त निश्चय की आशा करता हूँ, शुभ कामनाओं के साथ।

श्री सुगनचन्दजी लुणावत, धामनगाँव, बरार–

आपके सभापतित्व में कान्फ्रेन्स सफल होकर अपने उद्देश्य को प्राप्त करेगी, ऐसा मेरा विश्वास है। कान्फ्रेन्स की पूर्ण सफलता चाहता हूँ।

प्रो० हीरालाल जैन अमरावती, मध्यप्रान्त–

आबू मन्दिर टैक्स के विरोध में मैं पूर्णरूप से आपके साथ हूँ और इन अनुचित टैक्सों को जैन दर्शनार्थियों पर से हटाने के लिए हर प्रकार के उचित प्रयत्नों से काम लिया जाना चाहिए।

डाक्टर बूलचंद जैन, पी. एच. डी. बनारस हिंदू यूनिवर्सिटी–

जिस उद्देश्य से आपने कान्फ्रेन्स का आयोजन किया है, उस प्रश्न का उठाया जाना अत्यन्त आवश्यक है। सिरोही द्वारा दर्शनार्थियों पर लगाये जाने वाले टैक्स अन्यायपूर्ण भार ही नहीं वरन् आपत्तिजनक हैं।

वीरपुत्र आनन्द सागरजी महाराज, किशनगढ़ राजपूताना–

आबू मंदिर टैक्स विरोधी कान्फ्रेन्स का हम स्वागत करते हैं। एक दीर्घ द्रष्टा की तरह विवेकपूर्ण कान्फ्रेन्स कदम भरेगी, ऐसा विश्वास है। हस्तगत कार्य सफल हो, यह हमारा शुभाशीर्वाद है।

सेठ रुघनाथमलजी बैंकर, हैदराबाद–

कान्फ्रेन्स की सफलता चाहता हूँ। सिरोही राज्य द्वारा लगाया गया कर अपमानपूर्ण है। अपने मौलिक अधिकार के लिए जैनों को विरोध करना चाहिए।

सेठ इन्दरमलजी हैदराबाद—

कान्फ्रेन्स की हार्दिक सफलता चाहते हैं।

श्री मोतीलालजी सिकन्दराबाद—

सिरोही राज्य द्वारा लगाये गये टैक्स अन्यायपूर्ण हैं। जैनियों को भरसक विरोध करना चाहिए, सफलता की कामनाओं के साथ।

श्रीमान् राजा दीनदयाल सिकन्दराबाद—

दिलवाड़ा के मन्दिरों के टैक्सों का जोरदार विरोध कीजिये। सभापति के समर्थ नेतृत्व में हर प्रकार की सफलता की आशा करता हूँ।

सेठ परमानन्द के. कापडिया, बम्बई—

इस अवसर पर जैनों के संगठन को अमूल्य आवश्यकता है। मैं आपके कान्फ्रेन्स के प्रयत्नों की सफलता के लिए प्रार्थी हूँ।

सेठ गुलाबचन्दजी टोंग्या, आनरेरी मजिस्ट्रेट, मथुरा—

कान्फ्रेन्स द्वारा आपने जो प्रश्न उठाया है वह अत्यन्त महत्वपूर्ण है। एक ऐसे समय में जब कि भारत सरकार की यह स्पष्ट घोषणा है कि प्रत्येक भारतीय अपने अपने धर्मानुसार कार्य कर सकता है और उन्हें अपने तीर्थस्थान पर जाने का पूर्ण अधिकार है। ऐसी अवस्था में भी सिरोही राज्य १६वीं शताब्दी के स्वप्न देखता हुआ उन स्थानों पर जैन यात्रियों से टैक्स वसूल करता है, जो जैनियों के ही बनाये हुए हैं और जैनियों की ही सम्पत्ति हैं। ऐसे सार्वजनिक और दर्शनीय स्थानों पर किसी सरकार द्वारा टैक्स जारी करना तब उचित समझा जाता है जब कि वह टैक्स उन स्थानों की उन्नति एवं प्रबन्धार्थ लगाया गया हो। केवल सार्वजनिक हितों में खर्च किया जाता हो। किन्तु हम देखते हैं कि सिरोही सरकार यह कार्य केवल अपना कोष भरने के लिए कर रही है। सिरोही सरकार का कर्तव्य है कि इस टैक्स से यात्रियों को सर्वथा मुक्त कर दे।

हीराचन्दजी मन्त्री महावीर, परिषद, किशनगढ़—

महावीर जैन परिषद की ओर से हम आबू के टैक्सों के प्रयत्न के लिए कान्फ्रेन्स के संयोजक और सभापति लाला तनसुखरायजी को बधाई भेजते हैं। हम हर दशा में सपरिषद् कान्फ्रेन्स के निर्णयों के साथ हैं।

ला० फतेहचंदजी सेठी और हेमचंदजी, अजमेर—

कान्फ्रेंस की सफलता के लिए हार्दिक कामना करते हैं।

श्री सत्यभक्त पंडित दरबारीलालजी वर्धा० सी० पी०——

मैं कान्फ्रेंस की सफलता चाहता हूँ। इस प्रकार का अन्यायपूर्ण टैक्स देशी राज्यों की नीति का कलंक है। ईस्ट इंडियन कम्पनी की लुटेरी नीति के इतिहास में भी ऐसा कलंक नहीं

दिखता। ये देशी राजा होते हुए भी पूरी लूट मचाते हैं। किसी धर्मस्थान के ठेकेदार बनकर कंजूस से कंजूस पंडों को भी मात कर रहे हैं। उनकी यह नीति भ्रष्टता और क्षत्रियत्व के विरुद्ध होने से वर्णभ्रष्टता अत्यन्त निन्दनीय है। इन्हें अपना कहते हुए शर्म मालूम होती है। आप इसके लिए पूरी कोशिश करें।

सेठ पोषराजजी, सिकन्द्राबाद—

कान्फ्रेंस की हर प्रकार से सफलता चाहता हूँ।

श्री बहादुरसिंहजी सिंघी, कलकत्ता—

मुझे यह जानकर प्रसन्नता हुई कि व्यावर में जैनों की कान्फ्रेंस सिरोही राज्य द्वारा देलवारा के जैन मन्दिरों पर लगाए गए टैक्सों को हटवाने के लिए प्रयत्न करने जा रही है। यह और भी प्रसन्नता का विषय है कि आप उस कान्फ्रेंस का सभापतित्व करने जा रहे हैं। मैं कान्फ्रेंस की हार्दिक सफलता चाहता हूँ। इस सम्बन्ध में पोलिटिकल एजेन्ट पर प्रभाव डाला जाय और उन्हें इन टैक्सों के औचित्य के सम्बन्ध में विश्वस्त कराया जाय तो मेरी राय में समस्या आसानी से सुलझ सकती है। मैं आशा करता हूँ कि इस अवसर पर समस्त जैन समाज संगठित होकर संयुक्त रूप से मोर्चा बनाएगा।

श्री एस० आर० ढड्ढा सेक्रेटरी चैम्बर आफ कामर्स कलकत्ता—

आपने आबू के मंदिर के टैक्सों को उचित ढंग से उठाया है।

ला० अमोलकचंदजी जैन, खंडवा सी० पी०—

सिरोही राज्य के अन्याय के विरुद्ध आपका आन्दोलन स्तुत्य व सराहनीय है। इस आन्दोलन को जोरदार बनाने की जो भी योजना भेजें उसे मैं सक्रिय रूप देने को तैयार हूँ।

सेठ सुखदेव तुलाराम लाडनू—

कान्फ्रेंस के साथ हमारी पूर्ण सहानुभूति है।

श्री एम० बी० महाजन एडवोकेट जनरल सेक्रेटरी, आल इंडिया जैन एसोसिएशन अकोला—

मैं जैन समाज को धन्यवाद देना चाहूंगा कि उसने आबू के मंदिरों के टैक्सों के आन्दोलन के लिए आप जैसा नेता प्राप्त किया। लेकिन मैं आशा करता हूँ कि जब यह मामला एक बार उठाया गया है तो उसे बीच ही में न छोड़ा जाएगा क्योंकि इससे अपने उद्देश्य की सफलता में धक्का ही नहीं लगता, वरन् मेरी दृष्टि से जैन समाज ही इस देश में जो भी थोड़ी बहुत प्रतिष्ठा है वह भी खतरे में पड़ सकती है। आशा है आप इस दिशा में गम्भीर और प्रभावशाली कदम उठाएँगे।

श्री अमरचन्द कोचर म्यु० मेम्बर फलौदी—

कान्फ्रेंस की पूर्ण सफलता चाहता हूँ।

श्री जगन्नाथजी, नाहरपट्टी पंजाब—

कान्फ्रेंस की सफलता चाहता हूँ। आपके निर्णय के अनुसार हर प्रकार की सेवाओं के लिए प्रस्तुत हूँ।

श्री कपूरचंदजी पाटनी, जयपुर—

आशा करता हूँ आपके नेतृत्व में कान्फ्रेंस निश्चित प्रोग्राम बनाकर अपने उद्देश्य को प्राप्त करने में सफल होगी।

श्री उग्रसेनजी, एम० ए० एल-एल० बी०, मथुरा—

आधुनिक युग में जब एकता का राग अलापा जा रहा है हम एक वीर प्रभु के अनुयाई होते हुए एकता के सूत्र में क्यों न बँधें। ऐसी कान्फ्रेंस ही एकता का एक मात्र साधन और उपाय है। अनावश्यक भेदभाव को मिटाएँ। भगवान वीर आपको अपने कार्य के लिए बल प्रदान करें।

श्री नन्दलालजी, बीना सिंघई—

सिरोही राज्य द्वारा लगाए गए आबू मन्दिरों के टैक्सों के सम्बन्ध में उचित उपाय बतलाकर हमें आदेश दीजिए। हमारा सहयोग आपके हाथ में है।

श्री भगवानदासजी सर्राफ, ललितपुर—

यह कार्य अति सराहनीय है, आप अनुचित टैक्स हटवाने का पूर्ण प्रयत्न अवश्य ही कीजिए और मेरे योग्य सेवा कार्य भेजें।

श्री रामचन्द्रजी खिन्दका, जयपुर सिटी—

मेरी आपकी कान्फ्रेंस के साथ पूर्ण सहानुभूति है। और मैं इसकी हृदय से सफलता चाहता हूँ।

श्री पं० खुशालदासजी, बम्बई—

कान्फ्रेंस का उद्देश्य न केवल प्रशंसनीय है वरन् सहयोग्य भी है। टैक्स का विरोध प्रत्येक जैन को करना चाहिए। आपके प्रयत्नों की मैं हर तरह से सफलता चाहता हूँ।

श्री वृजभूषणजी वकील, मथुरा—

मेरी हार्दिक इच्छा है कि जैन समाज मात्र मिलकर आगे ऐसे ही धर्मवर्धक कार्यकर्ता रहे। मैं अपनी सेवाएँ आपको भेंट करता हूँ।

श्री रोशनलालजी जैन, मंत्री जैनमण्डल, मथुरा—

सिरोही राज्य की ओर से जैन मन्दिरों के दर्शनार्थियों पर जो टैक्स लगा हुआ है वह यात्रियों पर निरर्थक प्रहार है। यह हम सब के लिए खेद का विषय है। इस टैक्स के विरोध के लिए सम्मेलन की जो आयोजना की जा सकती है वह अत्यन्त शुभ है। आप अपने उद्देश्यों को प्राप्त करने में सफल हों, यही हमारी हार्दिक शुभकामना है।

श्री अक्षयकुमार जैन, बी० ए०—

मेरी शुभ कामना कान्फ्रेंस के साथ है। इस समय कान्फ्रेंस को दिखला देना चाहिए कि जैन समाज जीवित है और हमें हर प्रकार के संकटों से मुकाबिले के लिए तैयार रहना चाहिए। आर्य सत्याग्रह का उदाहरण हमारे सामने है जब कि निजाम बहादुर को झुकना पड़ा था। इस दिशा में हमें पहले अधिकारियों से मिलकर मामला तय करना चाहिए और अगर इससे उद्देश्य सिद्धि न हो तो हमें सबसे सुगम कदम उठाना चाहिए।

सेठ सागरमल जैन, कलकत्ता—

कान्फ्रेंस के उद्देश्यों की सिद्धि के लिए हर प्रकार की सेवा करने को तैयार हूँ।

मुनि श्री ज्ञानसुन्दरजी महाराज—

आबू मन्दिरों के टैक्स के विरोध में आपका प्रयास स्तुत्य है और मैं हृदय से सफलता चाहता हूँ। इतना ध्यान अवश्य रखिए कि जैन समाज में आरम्भ में 'सूरा' वाली कहावत अक्सर चरितार्थ होती देखी गई है। पहले तो हम लोग बहुत जोश दिखाते हैं, पर बाद में पानी के बुदबुदे की तरह बैठ जाते हैं। पर मुझे आशा है कि आप लोग इस नियम के अपवाद हैं और आपके प्रयत्न से यह कार्य सफल होगा।

श्री खेमचन्दजी सिंधी, भू० पू० रेवेन्यू कमिश्नर, सिरोही—

मैं आशा करता हूँ कि इस मामले को कान्फ्रेंस द्वारा उचित ढंग से सफल बनाया जाएगा। इस समय अत्यन्त आवश्यकता है कि जैनों और हिन्दुओं पर समान रूप से प्रभाव डालने वाला यह अनुचित कर समाप्त होना चाहिए। इस कान्फ्रेंस द्वारा किए जाने वाला निश्चय सभापति द्वारा महाराजा साहिब सिरोही के पास भेजा जाना चाहिए। और इस सम्बन्ध में प्रतिष्ठित जैनों और हिन्दुओं का प्रतिनिधिमण्डल महाराजा साहिब से मिले। आपकी हर प्रकार से सफलता चाहता हूँ।

श्री गुलाबचंदजी ढड्ढा

आपकी कान्फ्रेंस की हर प्रकार से सफलता चाहता हूँ।

श्री गुलाबचंदजी जैन, दिल्ली—

सुप्रसिद्ध आबू के जैन मन्दिरों पर लगे हुए अनुचित करों को हटाने के आपके पुनीत प्रयत्न की हर प्रकार से सफलता चाहता हूँ। और आशा करता हूँ कि इस उद्देश्य को सफल बनाने के लिए समस्के भारतवर्ष के जैन संगठित होकर मोर्चा लेंगे।

सेठ मोहनलाल हेमचंदजी, बम्बई—

मुझे आपके प्रयत्नों के साथ पूरी सहानुभूति है। सिरोही दरबार के साथ प्रयत्न कीजिए कि वह दर्शनार्थियों की असुविधा और कठिनाइयों को बढ़ाने वाले इस कर को हटा लें।

श्री फकीरचंद जैन, सिरोही—

सिरोही राज्य ने आबू देलवाड़ा के मन्दिरों के प्रति जो नीति अख्तियार की है वह

भारत के जैन जाति पर कलंक है और जैन जाति के प्रति अपमानजनक है। आप इसके लिए उचित मार्ग ढूंढें और इसे सदा के लिए नेस्तनाबूद कराने में सहयोग दें। कान्फ्रेंस जो भी नीति ग्रहण करेगी उसमें मेरी सहमति है।

बाबूमल जी शाहजी, सिरोही–

मैं आशा करता हूँ कि उचित अधिकारी आपकी बातों को मान देकर प्रतिबन्ध हटाने में अपनी उदारता दिखलाएंगे। मैं सम्मेलन की पूर्ण सफलता चाहता हूँ।

श्री बाबूमलजी कालन्द्री—

आबू जैसे प्रख्यात मन्दिरों के लिए सिरोही सरकार ने यह कलंकी टैक्स लगाया है। यह बड़े शर्म की बात है। मैं आशा करता हूँ कि कान्फ्रेंस इस टैक्स को हटाने के लिए भरसक प्रयत्न करेगी। और कान्फ्रेंस की सफलता चाहता हूँ।

श्री चुन्नीलाल जे० शाह, बरलुट सिरोही स्टेट–

आबू मन्दिर के टैक्सों को हटवाने के लिए अगरचे कान्फ्रेंस की राय में सत्याग्रह करना अनिवार्य समझा जाए तो सत्याग्रहियों की नामावली में सर्वप्रथम मेरा नाम दर्ज कर अनुग्रहीत कीजिएगा। कान्फ्रेंस की हरएक कार्यवाही में मेरा हार्दिक सहयोग है।

श्री ताराचंदजी दोसी, सिरोही–

सिरोही राज्य द्वारा आबू मन्दिरों के दर्शनार्थियों से जो मुण्डका कर लिया जाता है वह अत्यन्त निन्दनीय है। और जिन मन्दिरों पर इनके संस्थापकों ने करोड़ों रुपये लगाए हैं और अखण्ड निधि छोड़ गए हैं उसको पूर्णतया न सम्हाल कर टैक्स लगा देना अपमानजनक बात है। उसी को हटाने के लिए आपने जो कदम कान्फ्रेंस के द्वारा बढ़ाया है वह अत्यन्त सराहनीय है। संसार के मुख से एक ही स्वर निकला है कि धार्मिक स्वतन्त्रता पर ऐसे कर कलंक हैं।

श्री बिशनचंदजी जैन, मंत्री जैन मित्रमण्डल, दिल्ली–

इस कार्य को सफल बनाने के लिए तन मन और धन से कोशिश करनी चाहिए।

श्री देवराजजी सिंगवी, सोजत सिटी–

मैं स्वयं इस समस्या पर सोचता रहा हूँ। अब आपकी कान्फ्रेंस इस दशा में प्रयत्न करने जा रही है। यह जानकर मुझे अत्यन्त प्रसन्नता हुई, मैं आपकी हर प्रकार से सेवा करने के लिए तैयार हूँ।

श्री निवास जैन संघ नीबाज, मारवाड़–

संघ आबू के जैन मन्दिरों पर सिरोही राज्य द्वारा लगाए गए करों को अनुचित समझता है और प्रार्थना करता है कि सिरोही राज्य इन टैक्सों को जल्दी हटा कर यह कलंक दूर करे। कान्फ्रेंस के साथ संघ का पूर्ण सहयोग है।

श्री कस्तूरचन्दजी जैन, अकोला–

आबू के मन्दिरों का टैक्स बिलकुल बन्द होना चाहिए। इसका पूरा आन्दोलन आप करेंगे। अगर इस दशा में सत्याग्रह हो तो मेरा नाम सबसे पहले लिखिए।

श्री प्रतापमलजी सेठिया, मंदसौर–

आपकी कान्फ्रेंस की सफलता चाहता हूँ।

श्री धनराजजी तातेड़, सिरोही–

आबू के मन्दिरों के ऊपर टैक्स धर्म के ऊपर अत्याचार के समान है और यह खासतौर से हिन्दुस्तानी के लिए है। ऐसे टैक्स के विरोध में बड़ा भारी आन्दोलन चलाना हम जैनों का ही सिर्फ धर्म नहीं बल्कि हर एक हिन्दुस्तानी का फर्ज है। उम्मेद है कि कान्फ्रेंस आन्दोलन के मङ्गल मुहूर्त के समान होगी।

श्री कुन्दनलालजी जैन, भरतपुर—

कान्फ्रेंस की सफलता के लिए कामना करता हूँ और कान्फ्रेंस द्वारा बतलाई गई किसी भी प्रकार की सेवा के लिए प्रस्तुत हूँ।

श्री पण्डित शोभाचन्द्रजी भारिल्ल–

दुःख है कि मैं कान्फ्रेंस के समय वहां उपस्थित नहीं रह सकूंगा। कान्फ्रेंस के प्रति मेरी हार्दिक सहानुभूति है। इस कार्य को ऐसे लोगों ने उठाया है कि जिसकी सफलता में कोई सन्देह नहीं किया जा सकता। जैन समाज का प्रथम धर्म है कि वे इस कलंक को हटाने में अपनी सम्पूर्ण शक्ति लगा दे।

श्री चन्दनमलजी, कोचर आष्टा–

मुझे दुःख है कि मैं कान्फ्रेंस में सम्मलित नहीं हो सकूंगा। सिरोही स्टेट द्वारा लगाए गए कलंकित टैक्स को हटाने-सम्बन्धी हर आन्दोलन में समाज आपका पूरा साथ दे, यही प्रार्थना है।

आबू टैक्सविरोधी आन्दोलन चलता रहा। फिर १९४२ में राष्ट्रीय आन्दोलन के कारण बन्द करना पड़ा। देश के स्वतंत्र होने पर महारानी सिरोही ने जनता की आवाज पर ध्यान दिया और इस कंलक को सदा के लिए धो डाला। उन्होंने घोषणा की और सदा के लिए इसे हटा दिया। इसका विस्तृत विवरण अगले पृष्ठों में विस्तार से दिया है।

लालाजी अस्वस्थ होने पर भी सामाजिक कार्यों में रुचि रखते रहे और शक्ति-अनुसार सामाजिक और राष्ट्रीय कार्यों में अग्रसर होते रहे।

शाकाहारी आन्दोलन और अध्यात्म समाज की स्थापना इसी समय उन्होंने की जिसका विवरण अगले पृष्ठों पर दिया है।

सन् ५२-५३ में यू० पी० में जोर की बाढ़ आई। बनारस के स्याद्वाद महाविद्यालय, जोकि पूज्य वर्णी गणेशप्रसादजी की देन है, बाढ़ से उसकी बिल्डिग खतरे में आ गई। ला० राजकृष्णजी जैन ने बताया कि ये कार्य आपके मित्र कुंवरसैन के हाथ में है। लालाजी कुंवरसैनजी से मिले। उन्होंने पूरी सहायता करने का विश्वास दिलाया और उन्होंने एक तिथि दी कि हम लोग उस दिन बनारस पहुँचे वह भी वहीं होंगे। पूज्य वर्णीजी को जब यह मालूम हुआ कि तनसुखराय स्याद्वाद विद्यालय के लिए इतना प्रयत्न कर रहे हैं तो वह बहुत प्रसन्न हुए और आशीर्वाद के पत्र भेजे। श्री कुंवरसैनजी को पूज्य वर्णीजी के दर्शनों के लिए ले गये। श्री कुंवरसैन-जी ने पूज्य वर्णीजी को आहार भी दिया। पूज्य वर्णीजी बहुत प्रसन्न हुए। श्री कुंवरसैनजी के द्वारा स्याद्वाद महाविद्यालय के बिल्डिग बचाने में बहुत मदद मिली। वर्णीजी की वैसे तो कृपा हर एक प्राणीमात्र पर है परन्तु लालाजी पर इतने प्रसन्न हुए कि समय-समय पर आशीर्वाद और धर्म पर आरूढ़ रहने के पत्र आते रहते हैं। उनकी बड़ी दया-दृष्टि रही।

तत्पश्चात् लालाजी अस्वस्थ हो गये और बीमार रहने लगे। परन्तु अपनी बीमारी की अवस्था में भी सामाजिक जागृति उत्पन्न करने के लिए वे लेख लिखते रहते। अंत समय तक उन्होंने अनेक लेख लिखे।

अंत में ता० १४ जुलाई १९६२ को धर्मध्यानपूर्वक ६९ वर्ष की आयु में आपका स्वर्गवास हो गया। आपके अभाव से जैन जाति का एक ज्योतिर्मय प्रकाशस्तम्भ अस्त हो गया। उनके सम्बन्ध में जब ग्रंथ निकालने का विचार हुआ तब सभी तरफ से सहयोग का वचन मिला और ग्रंथ तैयार हो सका। आप देखेंगे उनका कार्य-क्षेत्र कितना व्यापक था। यदि उनके इस ग्रंथ से नई पीढ़ी में उत्साह का संचार हुआ तो हम अपना परिश्रम सफल समझेंगे।

अनमोल रत्न

श्री प्रकाशचन्द टोंग्या

एम.ए., बी. कॉम., एल-एल. बी., इन्दौर

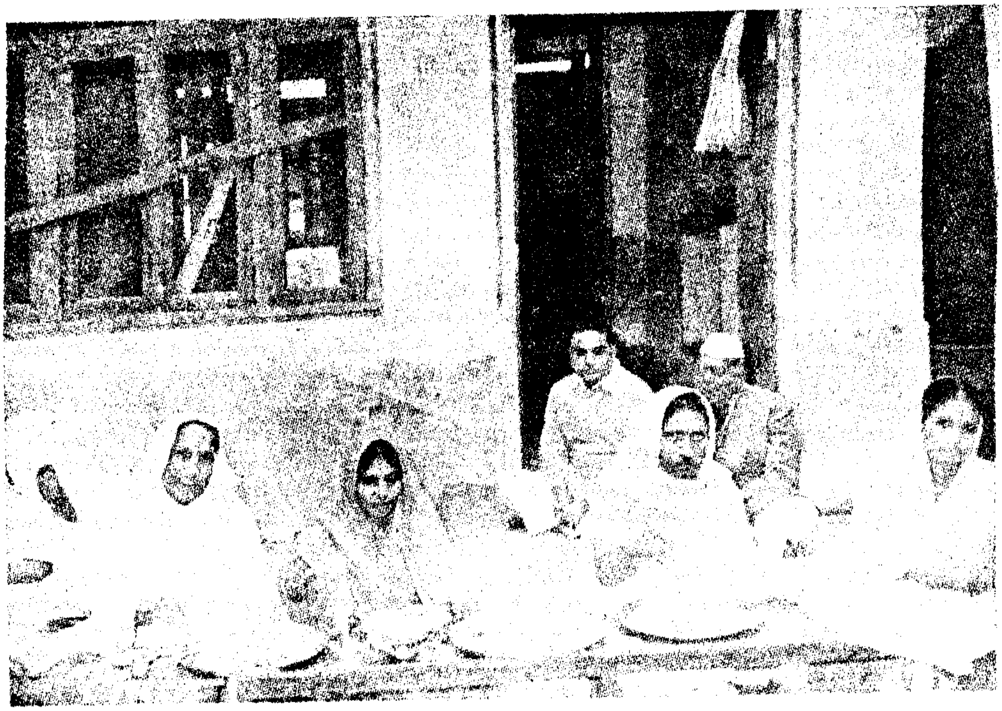
स्व० लाला तनसुखराय जैन के निधन से समाज ने अनमोल समाज रत्न खो दिया। मैं उनका नाम कई वर्षों से सुनता रहता था। वे लगनशील कार्यकर्ता थे।

मुझे याद आता है कि अ० भा० दि० जैन परिषद् के प्रचार हेतु एक डेप्यूटेशन लेकर वे इन्दौर आए थे। उस समय उनके दर्शनों का सौभाग्य मुझे प्राप्त हुआ था। श्री अ० दि० जैन मिशन के कार्यों में उन्हें रुचि रहती थी—उसके प्रचार एवं प्रसार से वे प्रसन्न थे।

आप उनकी स्मृति में स्मृति-ग्रन्थ प्रकाशित करने जा रहे हैं—यह स्मृति ग्रन्थ कार्य-कर्ताओं के लिए प्रकाशस्तम्भ का कार्य करेगा। मैं इस स्मृति-ग्रन्थ के प्रकाशन की सफलता की कामना के साथ साथ उन्हें अपनी हार्दिक श्रद्धांजलि अर्पित करता हूँ।



लालाजी की छोटी पुत्री स्वदेश कुमारी अपने पति के साथ
श्री अरिन्दमन कुमार जी
इंजीनियर लघुसिंचाई योजना, उत्तर प्रदेश



ऊपर — सिद्धचक्र के पाठ के अवसर पर, परिवार सहित

नीचे — लालाजी अपनी धर्मपत्नी के साथ



धर्मपत्नी की दृष्टि में

श्रीमती अशर्फी देवी, धर्मपत्नी
कर्मवीर ला० तनसुखरायजी जैन

[कुछ मनुष्यों के स्वभाव में इस प्रकार की आदत होती है कि जिन लोगों के साथ उन्हें रहना पड़ता है उनके प्रति दृढ़ता और कर्कशता का व्यवहार करते हैं और दूसरों के साथ दिखाने के लिए दयालुता का, इस तरह व्यक्ति की पूर्ण जाँच नहीं हो पाती। परन्तु जो व्यक्ति घर और बाहर एकसा सद्-व्यवहार दिखाते हैं, दूसरों के साथ-साथ, निज परिवार वालों के प्रति भी करुणा और वात्सल्य का स्रोत बहाते हैं वे प्रशंसनीय हैं। प्रायः देखा जाता है कि कुछ व्यक्तियों के साथ सीमित समय अच्छी तरह व्यतीत हो जाता है परन्तु अधिक समय रहने से कटुता बढ़ जाती है। लेकिन श्रेष्ठ नर-रत्न वे हैं जिनके साथ अधिक से अधिक समय रहने पर भी स्नेह की चतुर्गुणी वृद्धि होती है। उनकी आत्मीयता के कारण वात्सल्य और सौहार्द परस्पर बढ़ता ही जाता है। लालाजी ऐसे ही सहृदय और दयालु नररत्न थे। उनके प्रति उनकी श्रीमतीजी ने श्रद्धांजलि अर्पित की है वह इस बात का प्रतीक है कि उनका गृहस्थ जीवन कितना सुखी और आनन्दमय था। उनके हृदय में दया और परोपकार की नदी बहती थी।]

पूजनीय प्राणनाथ !

आपके चरणों में श्रद्धांजलि अर्पित करती हूँ। आपकी परम पवित्र महान् आत्मा को उत्तम गति प्राप्त हो ऐसी श्री जिनेन्द्र भगवान् से मेरी विनम्र प्रार्थना है।

उन महान् सज्जन पुरुष की पर-उपकारी भावना का कुछ थोड़ा सा वर्णन करती हूँ। यूं तो उनका जीवन पर-उपकार में बीता कहां तक गिनती गिनाऊं। लेकिन कुछ मोटी-मोटी घटनाएँ उनके जीवन में घटी हैं वे बूढ़े, बच्चे और स्त्री इन तीनों की रक्षा करना अपना परम कर्त्तव्य समझते थे। जो भी सहायता बनती, करते रहते। कभी शब्दों के द्वारा प्रकट नहीं करते थे। जब बच्चे पढ़-लिखकर अपने काम में लग जाते तब बच्चे आकर आभार मानते तो खुश होते और कहते—भगवान् सबकी रक्षा करते हैं। मैं कौन करने वाला।

एक बार की बात है। एक लड़का आया। उसकी बहिन की शादी थी। उसे रुपयों की आवश्यकता पड़ी। उसे उन्होंने तत्काल रुपये दे दिये लेकिन वापिस लेने का भाव नहीं था। लेने वाला भी स्वाभिमानी था। जब उसके पास रुपये देने को हो गये तो एक चिट्ठी के साथ ४०० रु० लिफाफे में बन्द करके घर पर दे गया और कह गया कि ये चिट्ठी लालाजी को ही देना। आकर जब उन्होंने खोली तो रुपये देखे तो खुश होकर बोले किसी का काम नहीं अटकता मैंने तो मना किया था कि बेटा तुम देने की कोशिश मत करना।

एक बार किसी काम के वास्ते रुपयों की जरूरत पड़ी। ५००० रु० मंगवाया। किसी अपने भाई ने आकर अपनी मजबूरी बतलाई कि ५०० रु० चाहिए। अपने मन में क्या सोचते हैं

हैं ५००० रु० पूरा नहीं होगा इसका तो भला करो तत्काल ५०० रु० दे दिये। उनके मन में हर समय यही विचार रहता था कि अपने देश की, धर्म की, जाति की सच्चे चरित्र की और सद्भावना की वृद्धि हो।

किसी समय पर कोई आपत्ति आती फिर तो अपनी जान पर खेलना अपना कर्त्तव्य समझते थे। तन, मन, धन से कुछ उठाकर नहीं रखते थे। अपनी ताकत से बाहर कोशिश करते थे। किसी ने कहा मेरे घर में आग लग गई। आपने अपने पहनने के कपड़े और घर का जो सामान चाहिए था सब उठाकर दे दिया। छात्रवृत्ति छोटी जाति वालों को दिया करते थे और कहा करते थे कि इनका उठाना परम धर्म है। उठे को क्या उठाना गिरे को उठाना ही मनुष्य जन्म की सफलता है।

दरिद्रान भर कौन्तेय। मा पृच्छेश्वरे धनं,
व्याधितंस्यौषधं पथ्यं नीरुजस्य किमौषधैः।

हे कौन्तेय (युधिष्ठिर) दरिद्रों की सेवा कर, धनियों की सेवा करने से कुछ लाभ नहीं, रोगियों को औषधि की आवश्यकता है। निरोगी पुरुष को औषधि देने से कोई लाभ नहीं।

इस बात का मेरे हृदय पर अद्भुत प्रभाव पड़ा। ऐसे परोपकारी पुरुष को बार-बार प्रणाम हो।

पारिवारिक परिचय

मेरे दो पुत्रियां हुईं। बड़ी पुत्री विद्यावती श्री लालचंदजी को करनाल ब्याही गई, जो आजकल रक्षा मंत्रालय में कार्य करते हैं। दूसरी छोटी पुत्री स्वदेशरानी श्री अरिदमनकुमारजी को ब्याही गई जो एक्जीक्यूटिव इंजीनियर हैं। इस प्रकार दोनों ही कन्यायें सुखी हैं।

अन्तिम समय

लड़कियों के लिए बाप के बाद बाद क्या बाकी रह गया? पीहर में कभी ज़रा-सी तबियत खराब होती तो लड़की तिलमिला उठती थीं। मगर उस वक्त तक सेवा में लगी रहीं हाय तक नहीं की। हम सब तो वहीं थे। लेकिन वह प्रभावशाली आत्मा बदल चुकी थी। जब कभी तबियत घबरा जाती तो उनके छोटे भाई की पत्नी जिसके पति को मरे ३० साल हो गए उसको अपनी लड़कियों के बराबर रखा। कभी किसी तरह कष्ट नहीं होने दिया। उनका भाव यह रहता था इसे मेरे मरने के बाद भी किसी प्रकार का दुःख न हो। बेचारी परदा करती थी फिर भी पास बुलवाकर बिठला लेते। कहते यह मेरी तीसरी बेटी है। क्योंकि उसके कोई नहीं था। न पीहर में कोई था। बेचारी कहने लगी मैंने पति का दुःख आज जाना। सो उस समय तो ऐसे निर्मोही हो गए कि उसके लिए भी कुछ नहीं कहा।

लालाजी के सबसे छोटे भाई को गुजरे १७ साल होगए। उन्होंने अपने पीछे तीन लड़कियां व एक लड़का जो ढाई साल का था, छोड़ा। लड़कियां बड़ी थीं। उनकी शादी का भार इनके ही ऊपर था। उसको भी किसी प्रकार का कष्ट नहीं होने दिया। लड़कियों की अच्छे घर

शादी की वे सब सुखी हैं। सब आराम में हैं। मुझे तो बेफिक्र कर गए। मेरी भगवान से हाथ जोड़ कर प्रार्थना है कि उनकी महान आत्मा को शान्ति दे।

समाधिमरण पूर्वक स्वर्गवास–

अन्तिम समय के ७ बजे थे। धर्म पढ़ना शुरू किया। जब तक प्राण निकले पढ़ते ही रहे। औरों से कहते तुम भी पढ़ो। ध्यान लगाए बैठे रहे। जब तीन बजे तो और भी सचेत होकर आसन लगाकर सामने महावीर स्वामी का फोटो था। उसपर दृष्टि लगा ली। पद्मासन लगाकर बैठ गए। जल्दी जल्दी णमोकार मंत्र पढ़ने लगे जैसे समय कम हो जाय पूरा करना हो। प्राणान्त के समय हिचकी आना, कंठ में कफ बोलना, आंखों में आंसू आना, किसी से मोह, किसी से कहना-सुनना, आदि उस समय की क्रियाएँ कुछ भी नहीं हुईं। आत्मा के ध्यान में मग्न। चेहरे पर अपूर्व तेज झलक रहा था। ऐसी उत्तम दशा उन्हीं पुरुषों की होती है जिनका जीवन दूसरों के लिए होता है। यह उनके पुण्य का उदय कहिए या शुभ भावना का फल कहिए। स्त्री के लिए पति का अन्त समय देखकर कितनी भी धीरज वाली स्त्री हो, घबरा उठती है। लेकिन उनकी पुण्य प्रकृति इतनी प्रबल थी कि मैं किसी को हाय तक नहीं करने दूं। रोने का समय बहुत है। ध्यान न डिग जाय इसलिए किसी को चूं तक नहीं करने दी।

अपना अन्तिम समय धर्मध्यान और सल्लेखनापूर्वक व्यतीत किया। आचार्य समन्तभद्र स्वामी ने कहा है कि—

अन्तः क्रियाधिकरणं, तपः फलं सकलदर्शिनः स्तुवते,
तस्माद्यावद्विभवं, समाधिमरणे प्रयतितव्यम्।

सर्वज्ञदेव सन्यास धारण करने को तप का फल कहते हैं। इसलिए जब तक शरीररूपी ऐश्वर्य हो तब तक यथाशक्ति समाधिमरण में प्रकृष्ट यत्न करना चाहिए।

उनके जीवन को धन्य है जो उन्होंने समाधिपूर्वक स्वर्ग को प्राप्त किया है। मैं श्री जिनेन्द्रदेव से प्रार्थना करती हूँ कि उनकी आत्मा को शान्ति प्राप्त हो।

× × × ×

सुलभ मार्गी

श्रीमती सुशीलादेवी
धर्मपत्नी रायबहादुर बा० सुलतानसिंहजी जैन
कश्मीरी गेट, दिल्ली

लाला तनसुखरायजी जैन समाज के एक ऐसे समाज-सेवक हुए जिनमें लोकसेवा की भावना कूट-कूटकर भरी हुई थी। देशप्रेम से उनका हृदय लबालब भरा था। राष्ट्रीय और धार्मिक कार्यों में सदैव तत्पर रहते थे। जैन धर्म की सेवा के लिए वे ऐसा कार्यक्रम बनाना चाहते थे जिससे धर्म का मार्ग सबके लिये सुलभ हो जाए। उन्होंने समाज की बड़ी सेवा की।

× × × ×

उत्साही और सच्ची लगन के व्यक्ति

श्री लालचंदजी सेठी
मालिक बिनोद मिल्स, उज्जैन

श्री तनसुखराय स्मृति-ग्रंथ के सम्बन्ध में पत्र आपका मिला। यह जानकर बड़ी प्रसन्नता हुई कि आप समाज-सेवी लाला तनसुखराय जैन की स्मृति में, एक स्मृति-ग्रंथ प्रकाशित कर रहे हैं और इस कार्य में आप सक्रिय भाग ले रहे हैं। वास्तव में लाला तनसुखरायजी एक बड़े ही उत्साही और सच्ची लगन के व्यक्ति थे। मेरा उनसे अच्छा परिचय रहा है।

मैं कोई खास सम्बन्धित विषय लेकर तो कुछ लिख नहीं सकता, किन्तु मेरा जो व्यक्तिगत सम्बन्ध उनसे रहा है उस सम्बन्ध में अवश्य ही कुछ लिखकर भेज सकता हूं।

माननीय सेठीजी जैन समाज के समाज-सुधारक, गणमान्य नेता थे। खेद है कि उनका स्वर्गवास हो गया। उन्होंने अस्वस्थ अवस्था में ही लालाजी के सम्बन्ध में चार पंक्तियां लिखकर भिजवा दीं। हम आशा लगाये थे क्योंकि उन्होंने लिखा था तबियत ठीक होते ही लिखकर आपके पास भिजवा दूंगा। परन्तु खेद है ऐसे नेता का असमय में ही वियोग हो गया। हम जिनेन्द्रदेव से प्रार्थना करते हैं कि स्वर्गीय महान् आत्मा को शांति प्राप्त हो और कुटुम्बियों को इस संकट के समय में धैर्य धारण करने की शक्ति प्राप्त हो।

एक मास से मेरा स्वास्थ्य अच्छा न होने से मैं डाक्टरों के मशवरे के अनुसार विश्राम ले रहा हूँ, सो तबियत ठीक होते ही लिखकर आपके पास भिजवा दूँगा।

मैं आपके इस कार्य में पूर्ण सफलता चाहता हूं।

★ ★ ★ ★

दीपक के समान प्रकाशमय

श्री महावीर प्रसाद, एडवोकेट
हिसार

भाई साहब कुटुम्ब और समाज के प्रति कितना काम करते थे। कितने उनके सरल परिणाम थे। समाज-उद्धार की उनकी बड़ी लगन एक दीपक के समान थी। उनका मन सदा सेवा के लिए तड़पता रहता था। कभी देश-सेवा तो कभी समाज-सेवा। सच पूछो तो उनका जीवन सेवा के लिए निर्माण किया गया था। वे हमारे परिवार में एक प्रकाशमान ज्योति थे।

★ ★ ★ ★

वे धन्य हैं

श्री जियालाल जैन
प्रेसीडेन्ट दि० जैन कालिज सोसायटी, बड़ौत (मेरठ)

यही जीने का मकसद था, यही थी आरज़ू उनकी।
कि गर निकले तो, मुल्को-कौम की खिदमत में दम निकले ।।

उपरोक्त शब्द अक्षरशः ला० तनसुखराय जैन के सम्बन्ध में घटित होते हैं। उन्होंने अपने जीवन को मुल्क और कौम की ख़िदमत में लगाया। लालाजी ने रोहतक से पंजाब प्रांत की कांग्रेस पार्टी में बड़ा पार्ट अदा किया। वे निडर, निर्भीक बनकर मैदान में आये। राष्ट्र की स्वतन्त्रता की खातिर वे कारावास भी जाने से न घबराये। जनता ने उन्हें पूर्ण सम्मान की दृष्टि से देखा। राष्ट्रीय-कांग्रेस में वे ऊंचे से ऊंचे पदों पर आसीन हुए। देश की आज़ादी के साथ-साथ लालाजी ने जैन समाज की महान् सेवा की है। धर्म के प्रचार-प्रसार में उन्होंने जी-जान की बाज़ी लगायी। वे दि० जैन परिषद् के प्रधान तथा प्रधान-मंत्री पद पर उम्र भर सुशोभित रहे। वे दि० जैन परिषद् के महारथी थे, जिसके द्वारा उन्होंने बड़े-बड़े सम्मेलन बुलाए। इन सम्मेलनों से समाज में नवीन जागृति का अनूठा स्रोत उद्भूत हुआ। समयानुकूल नवीन तथा आवश्यक परिवर्तनों की ओर उनका ध्यान सतत् रहा। उन्होंने हस्तनागपुरजी आदि तीर्थस्थानों पर विशाल जैन-सम्मेलन बुलाये, जिनमें अनेक सामयिक एवं परम उपयोगी प्रस्ताव समाज के सामने आये; जिनमें से विशेषकर—१. स्त्री-पूजा-प्रक्षाल, २. मरण-भोज कुप्रथा का निषेध, ३. दस्सा पूजाधिकार, में बढ़ार-बन्दी, ५. दहेज-दिखावा बन्द। उन्होंने मीणा-जाति को भी जैन-धर्म में दीक्षित कर लेने का प्रस्ताव समाज के सामने रखा था। दिगम्बर, श्वेताम्बर तथा स्थानकवासी साम्प्रदायिकता को भी वे जैन समाज तथा जैन-धर्म के विकास में हानिकर समझते रहे। इन तीनों सम्प्रदायों के एकीकरण का प्रस्ताव भी उनका उपयोगी प्रस्ताव था। उन्होंने महगांव-काण्ड तथा आबू-मंदिर काण्ड को एक सेनानी की भाँति डटकर लड़ा। उसमें वे विजयी हुए। निस्सन्देह इससे समाज की प्रतिष्ठा में महानता आई। उन्होंने दि० जैन इण्टर कालेज, बड़ौत की आधार-शिला का शिलान्यास किया। बहुत सारे छात्र प्रति वर्ष इस संस्था से प्रशिक्षण प्राप्त करते हैं। ऐसी उपयोगी संस्थाओं की समाज तथा देश को महान् आवश्यकता है। मुझे याद है कि लालाजी ने जब भी हमें आवश्यकता पड़ी तभी हमारे कालिज की सहायता की। इस अवसर पर मैं उनकी सुयोग्य सह-धर्मिणी श्रीमती अशर्फीदेवीजी की उदारता की भी प्रशंसा करूंगा। उन्होंने अपने को अपने दिवंगत पति के प्रति परम श्रद्धान्वित होने का एक प्रमाण सिद्ध कर दिया है। जहाँ लालाजी ने अपने कर-कमलों से बड़ौत जैन इन्टर कालेज की आधारशिला की स्थापना की थी—ठीक, उसी के सामने बगल में इन्होंने भी लालाजी के नाम को सदैव-सदैव अमर रखने के लिए एक विशाल कमरे का निर्माण कॉलिज में करा दिया है। इसलिये:—"हम तो उन्हें मानें कि भर दे सागरे हर खासो आम" वाली किंवदन्ती इन लोगों पर घटित होती है। इन्होंने जीवन का लक्ष्य मात्र सेवा-भाव बनाकर रखा है। वास्तव में ऐसे लोगों का जीवन-काल भावी पीढ़ियों के लिए मार्ग-दर्शक बनकर रहता है। वे धन्य हैं। भगवान् महावीर स्वामी से प्रार्थना करता हूं कि लालाजी की आत्मा को शान्ति तथा उन्हें सद्गति प्रदान करें।

सहनशीलता और दूरदर्शिता के आदर्श

श्री उग्रसेन जैन, एम.ए., एल-एल.बी.
रेलवे रोड, रोहतक

आपका पत्र मिला, समाचार जाना, आभारी हूं। मैं अस्वस्थ रहता हूं, **आंख की** बिनाई काम नहीं करती, अतः मैंने सब संस्थाओं से प्रायः सम्बन्ध विच्छेद कर लिया है।

भाई तनसुखरायजी के सम्बन्ध में क्या लिखा जाए वे एक उत्साही, साहसी और कर्मठ कार्यकर्ता थे। परिषद् की उन्नति के लिए उनमें बड़ी लगन थी, वे सेवाभावी कार्यकर्ता थे। महगांव कांड में भी वे प्रमुख कार्यकर्ता थे। विरोधी परिस्थितियों में भी साहस और चतुराई के साथ परिषद् के शानदार अधिवेशनों को सफलता के साथ कराने में उनका अधिक सहयोग रहा है। कई अधिवेशनों में विरोधी दल से प्रेम के साथ टक्कर लेने में वे पीछे नहीं हटे। अपनी सहनशीलता और गंभीरता तथा दूरदर्शिता के कारण उन्होंने जटिल से जटिल परिस्थिति को संभाला और परिषद् के अधिवेशनों को सफल बनाया।

सच्चे देशभक्त

बहुश्रुत विद्वान् श्री वासुदेवशरण अग्रवाल

मुझे यह जानकर प्रसन्नता हुई कि श्री तनसुखराय जैन की स्मृति में एक ग्रंथ प्रकाशित किया जा रहा है। मैं जब नई दिल्ली के राष्ट्रीय संग्रहालय में अध्यक्ष का कार्य कर रहा था तब श्री तनसुखरायजी से मेरा परिचय हुआ। मैं उनके प्रभावशाली व्यक्तित्व से प्रभावित हुआ। उनके हृदय में समाज-सेवा का बहुत अधिक उत्साह था। उनकी प्रतिभा बहुमुखी थी। वे जहां कहीं अभाव और दुःख देखते, उसके निवारण के लिए प्रयत्नशील हो उठते। मुझे आज तक स्मरण है कि किस प्रकार उन्होंने अग्रवाल जाति के उत्थान सम्बन्धी आन्दोलन के अनेक सूत्रों को अपने व्यक्तित्व में समेट लिया था। उनका स्वप्न था कि अग्रजाति के प्राचीन स्थान अग्रोहा का पुनरुद्धार करें। इसके लिए उन्होंने अग्रोहा में अखिल भारतीय अग्रोहा सम्मेलन का वार्षिक अधिवेशन किया और उसमें देश के अनेक नेताओं को दूर-दूर से एकत्र किया। उन्हीं की प्रेरणा से मैंने उस सम्मेलन का सभापतित्व स्वीकार किया और अग्रोहे की यात्रा की। **अग्रोहे का पुनरुद्धार श्री तनसुखरायजी का सच्चा कीर्ति-स्तम्भ होगा।** उनकी दृष्टि में देश-सेवा और समाज-सेवा परस्पर अविरोधिनी थीं। एक सच्चे जैन, सच्चे अग्रवाल और सच्चे देशसेवक और मानवता प्रेमी व्यक्ति का स्मरण अवश्य ही सबके लिए कल्याणप्रद होगा। उनके स्मृति-ग्रंथ का यही सन्देश-सूत्र है।

अपना जमाना आप बनाते हैं अहले-दिल

श्री देवेन्द्र कुमार जैन
मैनेजर दि० जैन कालिज (बड़ौत) मेरठ

जैन समाचार-पत्रों द्वारा तथा प्रकाशित विज्ञप्ति से यह जानकर हर्ष हुआ कि ला० तनसुखरायजी के सम्बन्ध में जैन समाज की ओर से महान् स्मृति-ग्रंथ प्रकाशित किया जा रहा है। मेरे तथा लालाजी के सम्बन्ध अति निकट के रहे हैं। अतः उनके विषय में अधिक कुछ लिखूं, यह शोभनीय नहीं ? तिस पर भी लालाजी वास्तव में एक कर्मठ, निडर तथा अडिग समाज-सेवी हुए हैं। मैंने जो देखा, सुना उस पर प्रकाश डालता हूं। लालाजी का नाम जैन-समाज का बच्चा-बच्चा जानता है। वे समाज में एक चमत्कृत सितारे की भाँति आए और समाज को एक रोशनी देकर चले गए। लालाजी ने एक साधारण परिस्थिति से उठकर अपने ज्ञानबल, बाहुबल तथा अपनी व्यवहार-कुशलता के कारण विशेष उन्नति की। वे धुन के पक्के, कर्मशील-प्राणी तथा जीवट के पुरुष थे। देश में गाँधी युग आया। महान् परिवर्तन के साथ देश का काया-कल्प हुआ। नव-निर्माण हुआ। ऐसे क्रांति-काल में जैन-समाज में भी चेतना आई। लाला तनसुखराय सरीखे महानुभावों ने जहां कांग्रेस-पार्टी को पूर्ण सहयोग प्रदान किया, वहां वे इस क्रांति-काल में अपने समाज को भी न भूले। वे समाज के सामने नवीन, किन्तु सामयिक-प्रस्ताव लेकर आए।

वे अकेले ही चले थे जानिबे-मंजिल मगर——
लोग साथ आते गए और कारवाँ बनता गया।

उन्होंने अ० भा० दि० जैन परिषद् का झंडा उठाया। परिषद् के प्लेटफार्म पर अपने विचार के लोगों को एकत्रित किया और एक जाग्रति समाज में पैदा कर दी। उन्होंने विधवा-विवाह का चलन, दस्सा पूजा अधिकार, मरण-भोज कुप्रथा का निषेध, विवाह-शादियों में बढ़ार की फिजूलखर्ची का बन्द होना तथा धार्मिक क्षेत्रों में शिक्षा का प्रचार, छात्रवृत्तियों की देन, धार्मिक ट्रैक्टस् छापना तथा पुस्तिकाओं का वितरण आदि उत्तम कार्य किए हैं।

भारत भर में ख्याति प्राप्त दि० जैन पोलिटेक्निक-इन्स्टीट्यूट बड़ौत की आधारशिला की स्थापना उन्हींके वरद्-हस्तों द्वारा हुई। पोलिटैक्निक-इन्स्टीट्यूट वह पौधा है जिसे लालाजी ने रोपा था। आधुनिक युग को इस ऐसी संस्था की कितनी आवश्यकता है। यहाँ से प्रति वर्ष अनेक जैन तथा जैनेतर प्रशिक्षार्थी उद्योग-धंधों में प्रवीण होकर अपने भरण-पोषण के लिए आत्म-निर्भर होते हैं। देश की सेवा करते हैं। असल में दि० जैन पोलिटैक्निक बड़ौत की उपादेयता के साथ लाला तनसुखराय का नाम सर्व अमर रहेगा। इस नश्वर संसार में कोई सदा तो रहा नहीं—तिस पर भी कुछ लोग होते हैं जो कभी-कभी होते हैं। लालाजी के निधन से समाज को भारी क्षति पहुंची।

जाहिरा दुनिया जिसे महसूस कर सकती नहीं——
आ गई हममें कुछ, ऐसी कमी, उनके बगैर।

भगवान् उनकी आत्मा को सद्‌गति दें, शान्ति दें, और हमारी पीढ़ी के लोग उनके उपयोगी पथ के राही बनें। उनकी स्मृति में निकलने वाले ग्रंथ की मैं सराहना करता हूं।

A Man of Inspiration

Shri Bhikha Lal Kapasi
Pandara Road, New Delhi.

When I came to New Delhi in August 1940 as Assistant Information Officer in the Ministry of Information and Broadcasting, Government of India, my first association with Lala Tansukhrai Jain was at a meeting of Jain Sabha New Delhi. Then I met him several times later on when he was incharge of Tilak Insurance Co. Ltd. and my association grew gradually and I must also give credit to him for making me insurance minded.

Afterwards he was instrumental in calling a meeting after some years for discussing the questions of establishing unity amongst Jain community in Delhi and I had the good luck to preside at a meeting at the premises of Mahavir Jain Library when the question of Jain Unit was discussed and he was mainly instrumental in collecting all prominent Jains of Delhi and New Delhi for this purpose. I also associated myself with his various activities namely Jain Cooperative Bank, Jain Club, All India Humanitarian Conference, Bharat Vegetarian Society etc. He was a source of inspiration to many young Jains of Delhi and he always encouraged all activities relating to social, economic and cultural development of Jains in Delhi. I may also mention here that when I discussed the question of starting Jain Milan at Delhi in September 1960 he gave me the encouragement and took active part in its activities in the initial state, though because of his ill-health later on, he had to curtail all his activities.

The Jain Milan of Delhi is an informal organisation started in september 1960 and during this short career of four years it has gained popularity mainly because of its democratic atmosphere. This organisation has no president, no office bearers, no membership fee and no constitution. However, with the goodwill of

friends and sympathizers, this informal association is gaining strength day by day. After starting this organisation with the help of friends like Mr. Daulat Singh Jain, Mr. Deputy Mall Jain and other friends, this organisation is now being continued with the help of convener friends like Shri Daulat Singh Jain, Shri Lodha, Shri Mehtab Singh Jain, Shri R. C. Jain and Shri B. P. Jain and the present convenors of Jain Milan are Mr. Daulat Singh, Shri R. C. Jain, Shri Adishwar Prasad Jain, Shri Lodha and Shri Kapur Chand Jain. In this connection, it may not be out of place to mention here one unique achievement of this gathering of calling all the leaders of Jain community belonging to various sections, who had come here to give evidence before the Select Committee of the Religious Trust Bill and presenting a unanimous voice by selecting one spokesman for giving evidence and in this connection one cannot, but remember the services rendered by M.Ps., Shri Rajpath Singh Dugger and Shri R. K. Malvia, through whose effort a meeting was called at the residence of Shri Rajinder Kumar Jain to decide this question. It now rests with the members of the Jain community in Delhi to fulfill the high ideals and aspiration of late Lala Tansukhrai Jain for giving tangible shape for having a strong central organisation in Delhi which can coordinate the activities of various small and big organisations and which would, besides, improving the social economic, cultural and political status of the Jain community would also be useful for having its due share in the overall development of the capital of the country.

★ ★ ★ ★

महावीर वाणी

कोहो पीइं पणासेइ, माणो विणय नासणो ।
माया मित्ताणि नासेइ, लोभो सव्व विणासणो ।।

क्रोध प्रीति का नाश करता है, मान विनय का नाश करता है । माया मित्रता का नाश करती है और लोभ सभी सद्गुणों का नाश करता है ।

मानव-हृदय का आलोक

श्री मुलतानसिंह जैन, एम.ए.
मंत्री अ० भा० दि० जैन परिषद-शाखा शामली (उ० प्र०)

"लाला तनसुखरायजी जैन समाज के ही नहीं अपितु समस्त वैश्य वर्ण के महान् सेवक, कर्मठ कार्यकर्ता, नवयुवकों के प्रेरणा-स्रोत, जैन परिषद् के स्थायी स्तम्भ एवं मानवता के सच्चे पुजारी थे। उन्हें समाज-सुधारक, राजनीतिक, साहित्यिक, प्रकाण्ड पण्डित, सिद्धहस्त लेखक, धर्मप्राण या और भी कुछ कहें तो कोई अत्युक्ति नहीं होगी। वस्तुतः वे सब कुछ कहलाने के सच्चे अधिकारी थे। निःसंदेह ऐसे महान् पुरुष का संसार से उठ जाना, सभी के लिए हृदय-विदारक ही होता है।

यद्यपि मैं कभी उनके दर्शन न कर पाया था; किन्तु उनके कार्य-कलापों से परिचित होकर ही कृत-कृत्य हो गया। उनके 'वीर' में प्रकाशित लेखों से जो प्रेरणा मुझे प्राप्त हुई, उसीके फलस्वरूप मैं धार्मिक कार्यों में रुचि लेने लगा और सेवा-कार्य को अपने जीवन का प्रमुख उद्देश्य समझकर समाज के अखाड़े में कूदकर समाज-सेवा करने के लिए अनायास ही प्रवृत्त हो उठा। मेरी कोई आकांक्षा नहीं कि मैं क्या बनूं और क्या न बनूं; किन्तु प्रति-क्षण किसी न किसी सेवा-कार्य में रत रहना अपना प्रमुख कर्त्तव्य समझता हूं। और उसी में सुख का अनुभव करता हूं।

अंत में मेरी हार्दिक कामना है कि लालाजी की दिवंगत आत्मा को शान्ति प्राप्त हो और उनके संतप्त परिवार एवं स्नेहीजन को धैर्य तथा सान्त्वना मिले। यही नहीं, उनके किये गये कार्य मानव-मात्र के हृदय को सदैव आलोकित करते रहें।

लगनशील कार्यकर्ता

जैनरत्न सेठ श्री गुलाबचन्द टोंग्या
इन्दौर

स्वर्गीय लाला तनसुखरायजी जैन एक लगनशील, कर्मठ समाज-सेवक थे। उन्होंने न सिर्फ जैन समाज की ही सेवा की बल्कि स्वतंत्रता संग्राम में भी भाग लिया था।

तिलक इंश्योरेंस कं० १९३५ में स्थापित हुई थी। १९३६ में इसका इन्दौर में भी ब्रांच आफिस खुल गया था। १९४० तक यहां उसका ब्रांच आफिस रहा। इस बीच वे लगभग १२-१५ बार इन्दौर आये। जब भी आये, मुझसे हमेशा मिलते रहे। समाज-सेवा के सम्बन्ध में ही उनकी चर्चाएँ होती रहती थीं। भा० दि० जैन परिषद् का कार्य उन दिनों बहुत जोरों पर था। परिषद् के आप स्तम्भ थे। आपने अपना पूरा जीवन धार्मिक, सामाजिक व राजनैतिक कार्यों में ही व्यतीत किया। ऐसे कर्मठ कार्यकर्ता को मैं अपनी हार्दिक श्रद्धांजलि अर्पित करता हूं।

लालाजी की स्मृति में आप स्मृति-ग्रंथ प्रकाशित कर रहे हैं यह प्रसन्नता की बात है—उसकी सफलता की कामना करता हूं।

★ ★ ★ ★

प्रेरणा के स्रोत

डा० ताराचन्द जैन (बख्शी)
M.Sc., LL.B., N.D.D.Y.
जयपुर

लाला तनसुखरायजी निश्चय ही उन महान् विभूतियों में से थे, जिन्होंने बिना स्वार्थ के अपने आपको देश तथा समाज-सेवा के कार्य में मिला दिया, घोल दिया। एकमात्र कर्त्तव्य को ही उन्होंने अपना धर्म समझा। राष्ट्रीय-आन्दोलन में उन्होंने अपना पूरा सहयोग दिया और देश की खातिर वे जेल भी गये। लेकिन उनमें पद की लोलुपता नहीं थी। यदि वे चाहते तो मिनिस्टर भी बन सकते थे, लेकिन देश के स्वतंत्र होने के बाद उन्होंने अपने आपको समाज-सेवा के ठोस कार्य में लगा दिया। उन्होंने सैंकड़ों सेवाभावी कार्यकर्ता पैदा किये—वे प्रेरणा के स्रोत थे। उनके सम्पर्क में जो भी व्यक्ति एक बार आ जाता था वह सदा के लिए उनका हो जाता था। उनका जीवन युवकों के लिये आदर्श है।

लालाजी से मेरा परिचय सन् १९५२ में हुआ, जबकि वे एक संस्था का उद्घाटन करने आये से—उसके बाद से वे जब भी जयपुर में पधारते थे हमारे यहां ही ठहरते थे। और मैं भी कई बार दिल्ली गया, तब उनसे अवश्य मिलकर आता था। उनके दर्शनों से ही गजब की प्रेरणा मिलती थी। उनकी प्रकृति व आकृति बहुत सौम्य थी।

समाज-सेवा के कार्यों में उनकी बेहद लगन थी। समाज का ऐसा कोई कार्य नहीं है जिसमें उन्होंने अपना सहयोग नहीं दिया हो। उनके कार्यों, त्याग और उदारता को देखकर सब लोग उनकी भूरि-भूरि प्रशंसा किया करते थे। वे देश, समाज के उन कर्मठ, अनुभवी और कर्त्तव्य-परायण कार्य-कर्ताओं में से थे, जिनका जीवन अनुकरणीय है। आज उनकी सेवाओं की देश व समाज को अत्यन्त आवश्यकता थी। ऐसे असमय में वे हमारे बीच से उठ गये, अभी उनकी आयु भी अधिक नहीं थी। किन्तु ऐसे योग्य व त्यागी महान् पुरुषों की परलोक में भी आवश्यकता रहती है। मैं दिवंगत आत्मा के प्रति अपनी हार्दिक श्रद्धांजलि अर्पित करता हूं।



साहसी तेजस्वी नररत्न

रायबहादुर बा० दयाचन्दजी जैन
एक्स चीफ इंजीनियर, दरियागंज, दिल्ली

सेवा का कार्य महान् है, सेवा करने वालों को कदम-कदम पर कठिनाइयां उठानी पड़ती हैं। यदि काम बिगड़ गया तो सब जी-भर के बुराई करते हैं और कदाचित् काम सफल हो गया तो उसका श्रेय उस व्यक्ति को न देकर अन्य को देना चाहते हैं। स्वयं तो करना नहीं चाहते और यदि कोई कर रहा हो तो उसकी प्रशंसा न करके बुराई टटोलने में लगे रहते हैं। यही कारण है कि हमारे यहां अच्छे समाजसेवक और उत्तम कार्यकर्ताओं का अभाव है। परन्तु कुछ ऐसे तेजस्वी नर-रत्न होते हैं जो इन बातों की चिंता नहीं करते। अपना धर्म मानकर देश और समाज की सेवा करते हैं। लाला तनसुखरायजी ऐसे ही थे जिन्होंने कार्य करते किसी की परवा नहीं की और जिस काम को अच्छा समझा दृढ़ संकल्प से कर डाला।

मैं उनके प्रति श्रद्धांजलि अर्पित करता हूं और भगवान् से प्रार्थना करता हूं कि हमारे समाज में अच्छे लोक-सेवक जन्म लें।

सर्वतोमुखी प्रतिभा

सर्वश्री कान्ता जैशीराम
मजिस्ट्रेट, प्रथम श्रेणी, दरियागंज, दिल्ली

आज देश में मांसाहार का प्रचार बढ़ रहा है, भ्रष्टाचार की अधिकता है। चीजों में मिलावट का रोग इस तेजी से बढ़ता जाता है कि शुद्ध पदार्थ खाने तक को नहीं मिलते। शरीर को बलिष्ठ और शक्तिशाली बनाने के लिए शुद्ध घी, दूध की आवश्यकता है। लालाजी की दृष्टि इस ओर गई। उनकी प्रतिभा सर्वतोमुखी थी। उन्होंने बम्बई के मेयर सेठ आसकरनदासजी की अध्यक्षता में घी-दूध मिलावट निषेध कान्फ्रेंस की और पूरे जोर-शोर के साथ उसका प्रचार किया जिसका अच्छा फल हुआ और शाकाहार के प्रचार के लिए Vegetarian Conference की और समिति बनाकर महत्वपूर्ण कार्य प्रारम्भ किया जिसकी आज बड़ी आवश्यकता है। मैं युवकों का ध्यान इस ओर आकर्षित करना चाहती हूं कि वे लालाजी के अधूरे कार्य को पूरा करें। शाकाहार के सम्बन्ध में अपनी रुचि लगावें। मैं उनके प्रति अपनी श्रद्धांजलि अर्पित करती हूं।

महान् परोपकारी

सेठ मिश्रीलाल पाटनी बैंकर्स
डीडवाना ओली लश्कर (म० प्र०)

जैन समाज में भी ऐसे महान् कार्यकर्ता, कर्मठ व्यक्ति थे कि वाकई इनके कार्यों को पढ़ कर ऐसे महान् वीर, कर्मठ कार्यकर्ता का जैन समाज से बिछोह हो जाना महान् दुख की बात है जिसकी पूर्ति होना इस काल में बड़ी मुश्किल व असंभव-सी है।

श्री दानवीर साहू शान्तिप्रसादजी, श्री अक्षयकुमारजी एवं श्री सुमेरचन्दजी शास्त्री आदि आप साहबान ने प्रसिद्ध देशभक्त, कर्मवीर, समाज-सेवी, प्रभावशाली, विख्यात नेता, अनेक संस्थाओं को प्राण देने वाले महान् यशस्वी पुरुष के कार्यों की स्मृति हेतु एक स्मृति-ग्रंथ तैयार करने का आयोजन किया। यह संकलन उनके सेवा-कार्य व बिखरी हुई सामग्री का संग्रह कर एक जगह एकत्रित कर जनता के सदुपयोगार्थ रखने का विचार किया यह अत्यंत सुन्दर है। मैं श्री तनसुखरायजी के प्रति श्रद्धांजलि भेजता हूं और यह भी शुभ कामना भेज रहा हूं कि आपका यह प्रयास आपके उत्साह एवं भावनानुकूल शीघ्र ही निर्विघ्न सम्पूर्ण होकर यह लालाजी का स्मृति-ग्रंथ बड़ा ही लाभोपयोगी बने यह मेरी भावना है। और मैं इस समिति के समस्त सदस्यों का भी आभार प्रदर्शित करता हूं।

★ ★ ★ ★

VERY GOOD WORKER

Shri Narendra Kumar Jain, B.A.
Dehradun.

I just received a few papers relating to Shree Tansukh Rai Jee. This is really a very good adventure and this reminded me my association with him on so many occasions. He was really dynamic man and perhaps the only person who realised at one stage to bridge the rift among Jain Youth and the organisation of the Parishad. It was at that time I had an opportunity to come in contact with him and I was very much impressed by his method of dealing the things in the interest of the community I have also seen him working for the Congress and Congress Organisational matters. I can say he was a man who always took optimistic views and was always successful.

I wish the work taken up be successful and it will be a good contribution in the old memories.

× × × ×

सफल जीवन

श्री रूपचंद गार्गीय जैन
पानीपत

स्व० जैनधर्म-भूषण ब्र० सीतलप्रसादजी ने अपने जीवन-काल में जैन समाज के नवयुवकों के दिलों में धर्म व समाज-सेवा की एक गहरी लगन पैदा की थी जिसके परिणाम-स्वरूप समाज में सुधार के कई महत्वपूर्ण कार्य हुए। बहुत-सी नई शिक्षण संस्थाएं खुलीं। समाज के नवयुवकों में धर्म-सिद्धांत के ज्ञान की वृद्धि हुई तथा उनके आचार-विचार में भी उन्नति हुई। हमारे मित्रवर स्व० लाला तनसुखरायजी को भी उन्हीं ब्रह्मचारीजी की संगति बचपन से ही प्राप्त हुई जिसकी गहरी छाप उनके जीवन पर लगी, फलस्वरूप दिन पर दिन उनके दिल में धर्म, समाज-सेवा व देशोद्धार की लगन बढ़ती ही गई। अपने जीवन के अन्दर जिस समाज-सेवा व देश-सेवा के कार्य में उन्होंने हाथ डाला उसीमें उनको सफलता मिली। इसका एक कारण यह भी था कि किसी कार्य में सफलता प्राप्त करने के लिये उसे सुव्यवस्थित रूप से चलाने की कला उन्हें आती थी। वे सदा हंसमुख रहते थे, अतिथि-सेवा का पूरा ध्यान रखते थे। १९३४ से दि० जैन परिषद् के द्वारा उन्होंने जैन समाज के सुधार-कार्यों में अपनी सेवा का क्षेत्र बढ़ाया, तब से ही मेरा उनसे सम्पर्क रहा है। १४ जुलाई १९६३ को वे हमसे सदा के लिये विदा हो गये। हमने एक सच्चा मित्र खोया और समाज ने अपना एक सच्चा हितैषी खोया। मैं उन्हें उनके गुणों के कारण अपनी श्रद्धांजलि अर्पित करता हूं।

× × × ×

सबके प्रिय नेता

श्री हीराचंद जैन
मांडला, राजस्थान

लालाजी का जीवन सादा और पवित्र था। वे जैन समाज के गौरव थे। भ० महावीर के सिद्धांतों को सरल रूप से प्रचार करने में वे बड़ी रुचि रखते थे। महावीर जयंती उत्सव मनवाकर उन्होंने एक आदर्श कार्य किया। आज जब हिंसा की अधिकता बढ़ रही है तब उसके विरोध में आवाज उठाने वाले दृढ़प्रतिज्ञ साहसी नेता की बड़ी आवश्यकता थी। लालाजी ऐसे ही शक्तिशाली रत्न थे जो सिद्धांतों की रक्षा के लिए निरन्तर तत्पर रहते थे। वे हमारे पुराने मित्र थे। मैं उनके प्रति श्रद्धांजलि अर्पित करता हूं।

× × × ×

कर्मवीर श्री तनसुखरायजी

जीवन के पश्चात् नाम उसका ही रहता,
सत्य-सिद्धि के लिए कष्ट जो बहुधा सहता,
वह मनुज-रत्न होता है, सब कुछ पावन,
पर सेवा के लिए करे जो अर्पण तन-मन,
श्रीयुत् तनसुखराय ने, की जो सेवा धर्म की,
व्याप रही है आज भी, यश गाथा सत्कर्म की ॥१॥

श्री गुणभद्र जैन,
कविरत्न



श्री मद्राजचंद्र आश्रम
आगास (सौराष्ट्र)

सेवक मिलते जहाँ-तहाँ, स्वार्थी अभिमानी,
करते आग्रह विवश सर्वदा वे मनमानी,
कहकर कलियुग दोष, सत्य को नहिं अपनाते,
करते स्वयं अनीति, अन्य से और कराते,
सेवक लालाजी सदृश, है मिलना दुर्लभ महा,
सेवा का आदर्श ही, नस-नस में जिसके रहा ॥२॥

सरल सत्यता, न्याय नीति थी उनके मन में,
सादाई को ग्रहण किया था निज जीवन में,
हुए नहीं गर्विष्ठ क्षणिक वैभव को पाकर,
सेवायें कीं यथा समय घर-घर भी जाकर,
हो निरीह निज देश की, सेवा वे करते रहे,
देकर के निज द्रव्य भी, पर दुख वे हरते रहे ।।३।।

सुन निन्दा वे नहीं डिगे थे अपने प्रण से,
था सुधार से प्रेम, नहीं नश्वर जीवन से,
परिषद् के थे प्राण, कर्म के थे उत्साही,
करके पर-उपकार प्रशंसा कभी न चाही,
देख धर्म के ह्रास को, दुःखित था उनका हिया,
सत्य धर्म रक्षार्थ ही, सब कुछ था उनने किया ।।४।।

कर्मवीर है वही न जो बाधा से डरता,
बढ़ता रहे सदैव नहीं पग पीछे धरता,
मिली सफलता उन्हें हाथ जिसमें भी डाला,
पाला निज कर्तव्य, कभी भी उसे न टाला,
जाति सुधारक सर्वदा, लाला तनसुखराय थे,
दीन-हीन जन के लिए, सच्चे प्रबल सहाय थे ।।५।।

× × × ×

बिरले महापुरुष

श्री नरेन्द्र (कैप्टेन)
सुपुत्र श्री जमनाप्रसादजी बैरिस्टर, नागपुर

लालाजी जैन समाज के महान् सुधारक थे। उनके मन में सदैव देश और समाज-सेवा की भावना जागृत रहती थी। हमारे पिता बैरिस्टर जमनाप्रसादजी उनकी सदैव प्रशंसा किया करते थे। ऐसे महापुरुष संसार में बिरले ही होते हैं। मैं उनके प्रति श्रद्धांजलि अर्पण करता हूं।

× × × ×

अपने काल के संरक्षक

प्राच्य विद्यामहार्णव श्री जुगलकिशोरजी मुख्त्यार
अधिष्ठाता वीर सेवा मंदिर, दिल्ली

हर्ष का विषय है कि वीर शासन जयन्ती के शुभ अवसर पर श्रीमान् लाला तनसुखराय जैन (मैनेजिंग डाइरेक्टर तिलक बीमा कम्पनी) दिल्ली का भाई अयोध्याप्रसादजी गोयलीय सहित, उत्सव के प्रधान की हैसियत से वीर सेवामन्दिर में पधारना हुआ। आपने वीर सेवामन्दिर के कार्यों को देखकर अनेकान्त के पुनः प्रकाशन की आवश्यकता को महसूस किया और गोयलीयजी को तो उसका बन्द होना पहले से ही खटक रहा था, वे उसके प्रकाशक थे और उनकी देशहितार्थ यात्रा के बाद ही वह बन्द हुआ। अतः दोनों का अनुरोध हुआ कि "अनेकान्त" को अब शीघ्र ही निकालना चाहिए। लालाजी ने घाटे के भार को अपने ऊपर लेकर मुझे आर्थिक चिन्ता से मुक्त रहने का वचन दिया, और भी कितना ही आश्वासन दिया साथ ही उदारतापूर्वक यह भी कहा कि यदि पत्र को लाभ होगा तो उस सब का मालिक वीरसेवा मन्दिर होगा। और गोयलीयजी ने पूर्ववत् प्रशासक के भार को अपने ऊपर लेकर मेरी प्रकाशन तथा व्यवस्था सम्बन्धी चिन्ताओं का रास्ता साफ कर दिया। ऐसी हालत में दीपमालिका से नये वीर निर्वाण संवत् के प्रारम्भ होते ही अनेकान्त को फिर से निकालने का विचार सुनिश्चित हो गया। उसी के फलस्वरूप यह पहली किरण पाठकों के सामने उपस्थित है और इस तरह मुझे अपने पाठकों की पुनः सेवा का अवसर प्राप्त हुआ है। प्रसन्नता की बात है कि यह किरण आठ वर्ष पहले की सूचना अनुसार विशेषांक के रूप में निकाली जा रही है। इसका सारा श्रेय लालाजी तथा गोयलीयजी को प्राप्त है—खासकर अनेकान्त के पुनः प्रकाशन का सेहरा तो लालाजी के सर पर ही बँधना चाहिए जिन्होंने उस अर्गला को हटाकर मुझे इस पत्र की गति देने के लिए प्रोत्साहित किया जो अब तक इसके मार्ग में बाधक बनी हुई थी।

इस प्रकार जब अनेकान्त के पुनः प्रकाशन का सेहरा ला० तनसुखरायजी के सिर पर बँधना था, तब इससे पहले उसका प्रकाशन कैसे हो सकता था? ऐसा विचार कर हमें सन्तोष धारण करना चाहिए और वर्तमान के साथ वर्तते हुए लेखकों, पाठकों तथा दूसरे सहयोगियों को पत्र के सहयोग विषय में अपना-अपना कर्तव्य समझ लेना चाहिए तथा उसके पालन में दृढ़-संकल्प होकर मेरा उत्साह बढ़ाना चाहिए।

स्वजनों की ओर से श्रद्धाञ्जलियाँ

सेठ रामगोपालजी
पानीपत

लाला तनसुखरायजी बड़े जीवट के व्यक्ति थे। उनमें साहस, शौर्य और निःशंक वृत्ति थी। धर्म, समाज और देश की सेवा के कार्य में सदा उमंगशील रहते थे। दीन-दुःखियों की सहायता करना कर्तव्य समझते थे।

ला० श्री शिखरचन्दजी जैन
दिल्ली

लालाजी सभी प्रकार से संपन्न थे। लक्ष्मी की उन पर कृपा थी। परंतु वे अपने धन का उपयोग अपने ऐश आराम में ही खर्च नहीं करते थे। परोपकार वृत्ति को अपना धर्म समझते थे। और दिल खोलकर धार्मिक कार्यों में व्यय करते थे।

श्री खूबचन्दजी जैन, अम्बालावाले
मोडलबस्ती, दिल्ली

मैं उन्हें अपने बड़े भाई के समान मानता था। वे उत्तम सलाहकार थे। उदारता एवं वात्सल्य की मूर्ति थे। उनकी स्मृति सदैव मेरे मन में बसी रहेगी।

श्री गिरीलालजी
मेरठ

लालाजी हमारे लिए पूज्य और आदरणीय हैं। उनकी समाज सुधार और जनसाधारण की सेवा करने की भावना इतनी अधिक थी कि घर के कार्यों की भी पर्वा नहीं करते थे। उनका जीवन मानो ऐसा था कि वे सेवा करने के लिए पैदा हुए हों।

श्री रणजीतसिंहजी जैन
बड़ौत

मैं उन्हें सदैव एक ऐसा तेजस्वी समाज का सच्चा सेवक समझता था जो निःस्वार्थ वृत्ति से समाज-संगठन और एकता के कार्य में लगे रहते थे। उन्हें इस कार्य में बड़ा आनन्द आता था। जैन समाज को विभिन्न भागों में बँटा देखकर उन्हें बड़ी तकलीफ होती थी। उनकी इच्छा रहती थी कि समस्त जैन समाज कब भ० महावीर के झंडे के नीचे एकत्रित हो जाय। वे मेरे साढ़ू थे परंतु मैं उन्हें बड़े भाई के समान मानता था।

× × × ×

श्री किशनलालजी
मोडलबस्ती, दिल्ली

लालाजी मेरे मामा थे। मुझे यह सौभाग्य प्राप्त हो सका कि मैं उनकी बीमारी की अवस्था में कुछ सेवा कर सका। इसे मैं अपना अहोभाग्य समझता हूँ। वे एक प्रतिभा-संपन्न समाज के नेता थे। जैन समाज शक्तिशाली और गौरवशील बने वे इस बात का सदैव प्रयत्न करते थे।

श्रीभगवानदासजी जैन, मोडलबस्ती, दिल्ली
श्री शान्तिप्रसादजी जैन, झरिया, बिहार

हम अपने को बड़ा भाग्यशाली समझते हैं कि लालाजी की छत्रछाया हमारे ऊपर रही। हमारे जीवन पर उनका बड़ा प्रभाव है। उदारता, प्रेम और कर्तव्यपरायणता की भावना उनमें अनुपम थी। उन जैसे गुण समाज के युवकों में आ जावें तो हमारा समाज शक्तिशाली बन जावे।

श्री कुलभूषणजी
रोहतक

मेरे पिताजी का स्वर्गवास उस समय हुआ जब मैं ढाई वर्ष का था। मेरा पालन-पोषण ताऊजी ने किया। उनकी छत्रछाया में मैंने शिक्षा पाई और योग्य हुआ। मैं उनके ऋण से कभी उऋण नहीं हो सकता। ताऊजी ने धर्म और समाज की तो सेवा की ही उन्होंने परिवार की भी बहुत उत्तम रीति से सेवा की। यह हमारा सौभाग्य है कि हमारे परिवार में इस प्रकार के तेजस्वी नररत्न का जन्म हुआ।

श्री कलियारामजी
दरियागंज, दिल्ली

लालाजी को मैं अपने बड़े भाई के समान मानता हूँ वे मेरे अत्यंत निकट थे। मेरे दुःख सुख के साथी थे। सदा मेरे मार्गदर्शक और सलाहगीर थे। उनके अभाव से मैं अपने को असहाय अनुभव करता हूँ। सामाजिक कार्यों के करने में उन्हें बड़ा उत्साह रहता था। किसी बदले की इच्छा के बिना परोपकार की भावना थी। उनका सिद्धांत था 'नेकी कर दरिया में डाल'।

श्री विद्यावती, स्वदेशरानी
(दोनों पुत्रियाँ)

पिताजी का हमारे ऊपर अपरिमित स्नेह था। उन्होंने हमें सभी प्रकार से योग्य बनाया। वे हमारी उन्नति का सदैव ध्यान रखते थे। अतिथि सत्कार, सेवा उदारता और बड़ों का सम्मान आदि गुण उनमें कूट-कूट कर भरे थे। बाहर से पधारे धार्मिक और राष्ट्रीय नेताओं और कार्यकर्ताओं का जब भी घर पर आना होता उनके सत्कार के लिए बड़े ही उत्साहित होते और अपने को धन्य समझते उन्होंने सेवा करके कभी भी बदले की इच्छा नहीं की। ऐसे गुणों से ही घर स्वर्ग बन जाता है। ऐसे मनुष्य रत्न को हमारा उनके चरणों में बारम्बार नमस्कार हो।

अश्मादेवी, संतोषकुमारी, त्रिशलादेवी
(तीनों छोटे भाई की पुत्रियाँ)

पूज्य ताऊजी, ही हमारे सब कुछ थे। हमने अपने पिता के दर्शन भी नहीं किए वे छोटी आयु में ही हम सब बालकों को छोड़कर स्वर्ग सिधार गए। हमारी माता असहाय थी। उसकी देखरेख और व्यवस्था का कोई साधन न था। परंतु ईश्वर की कृपा से हमें इस बात का कभी अनुभव नहीं हुआ। कि हमारे ऊपर किसी की छत्रछाया नहीं है। हमारा पालन पोषन, शिक्षा और विवाह का कार्य अत्यंन उत्तम रीति से किया जिसके कारण हम सब सुखी हैं और सदैव उनकी पावन स्मृति हमारे हृदय में विद्यमान रहेगी। हमारा उनके चरणों में बारम्बार नमस्कार हो।

प्रसिद्ध समाजसेवी, श्रीमंत विद्वान् ला० राजकृष्णजी
दरियागंज, दिल्ली

भाई तनसुखराय हमारे ऐसे साथियों में से थे जिन्हें देश, धर्म और समाजकी सेवा में बड़ा आनंद आता था। धार्मिक कार्यों में नवीनता आवे समाज प्रभावशाली बने। रात दिन इस बात का ध्यान रखते थे। तीस वर्ष से हमारा उनका भाई जैसा सम्बन्ध था। पूज्य वर्णीजी के वे अनन्यभक्त थे। देश धर्म और समाज के सच्चे सेवक थे। सुधार वादी दृष्टिकोण रखते थे। निर्भीक साहसी और स्पष्ट वादी समाज के कार्यकर्ता थे। उनके अभाव से समाज का एक तेजस्वी कार्यकर्ता चला गया जिसकी निकट भविष्य में पूर्ति होनी कठिन है। मैं उनके प्रति श्रद्धांजलि अर्पित करता हूँ।

स्नेहशील महापुरुष

श्री शांतिकुमार गोधा
डिग्गी हाउस, जयपुर

लालाजी बड़े सज्जन व स्नेहशील महानुभाव थे। धर्म और देश सेवा करना उनका मनचाहा विषय था। सामाजिक, धार्मिक व राजनैतिक क्षेत्र में जो कार्य उन्होंने किए हैं वे सदैव स्मरणीय रहेंगे। मैं उनके प्रति श्रद्धांजलि अर्पित करता हूं।

पितृतुल्य स्नेहधारी

श्री नन्दनकुमार, हीरालाल मन्नूलाल
जुमेती बाजार, मेरठ

लाला तनसुखरायजी को मैं अपने पिता के समान मानता था। सेवा का भाव मेरे हृदय में उनकी गतिविधियों को देखकर हुआ। वे जहां पहुंच जाते वहीं के युवकों में उत्साह का संचार कर देते थे। उमंग और उत्साह की साक्षात् मूर्ति थे। जैन समाज के अद्वितीय रत्न थे।

⚜ ⚜ ⚜ ⚜

सफल कार्यकर्ता

श्री रतनलालजी
Ex. M.L.A.

उन्होंने परिषद् में कंधे से कंधा मिलाकर बड़ा कार्य किया था। उनके प्रयास से परिषद् लोकप्रिय बन गई थी।

★ ★ ★ ★

चमकते हुए हीरे

श्री जगत प्रसादजी
बम्बई

भाई तनसुखरायजी के प्रति मेरे मन में अगाध प्रेम था। मैं किन शब्दों में उन्हें व्यक्त करूं? वे जैन समाज के ऐसे चमकते हुए हीरे थे जिन पर सभी को गौरव होता था। राष्ट्र-प्रेम उनमें कूट-कूट कर भरा था। जब समाज से जाति के क्षेत्र में आए तो उन्होंने आशातीत कार्य किया। परिषद् और वे एकार्थवाची हो गये थे। मैं उनके प्रति श्रद्धांजलि अर्पित करता हूं।

★ ★ ★ ★

कुशल कार्यकर्ता

रायबहादुर सेठ श्री हीरालाल जैन 'भैयासाहब
कल्याण भवन, इन्दौर

लाला तनसुखरायजी का सार्वजनिक क्षेत्र में एक महत्वपूर्ण स्थान था। सामाजिक कार्यों में उनकी विशेष रुचि थी। जलसा और दूसरे सार्वजनिक कार्यों की व्यवस्था करने में वे अत्यन्त पटु थे। दिल्ली में जो उन्होंने मेरा सार्वजनिक स्वागत कराया वह सुखद स्मृति सदैव याद रहेगी।

× × × ×

अद्वितीय समाज सेवक

श्री दरबारीलाल जैन
न्यायाचार्य, M.A.

उन जैसा समाज-सेवक और समाज के लिए टीस रखने वाला मुझे दूसरा कोई व्यक्ति दिखाई नहीं देता। उनकी कार्य-प्रणाली और ठोस कार्य करने की शक्ति से मैं तब से परिचित हूं जब १९३५ में आबू क्षेत्र पर यात्रियों के लिए गवर्नमेंट द्वारा लगाये टैक्स का उन्होंने डटकर विरोध किया था और हम जैसे युवकों को आह्वान किया था। अब तो उनका व्यक्तित्व, प्रभाव और सेवा का ढंग केवल स्मरणीय रह गये हैं।

उनके स्थान की पूर्ति होना कठिन है। मैं और मेरी श्रीमती उनकी आत्मा की शांति के लिए कामना करते हैं तथा आपके प्रति हार्दिक सहानुभूति प्रकट करते हैं। भगवान् श्री जिनेन्द्र से प्रार्थना है कि वे आपको इस असह्य कष्ट को सहन करने का बल प्रदान करें।

× × × ×

सेवाभावी, मधुरभाषी

श्री भगवतीप्रसाद खेतान
खेतान भवन, बम्बई

स्वर्गीय लाला तनसुखरायजी की स्मृति में आप एक ग्रंथ प्रकाशित कर रहे हैं जिसका सूचना पत्र प्राप्त हुआ। पढ़ कर बहुत ही खुशी हुई।

मेरा भी उनके साथ कुछ संपर्क दिल्ली में दो तीन बार हुआ था। इनकी सेवाभावी मिलनसार वृत्ति से मैं परिचित हूँ और उनके चतुराई भरे मधुर शब्द अभी तक नहीं भुला सका हूँ। उनका सार्वजनिक कार्य में संपर्क तो बहुत ही था और ऐसे सेवाभावी व्यक्ति के लिए स्मृति-ग्रन्थ प्रकाशित करने का आयोजन आपने किया इसके लिए अनेक धन्यवाद। उनकी पुण्यस्मृति में मैं श्रद्धांजली भेंट करता हूँ।

बड़े मेहवाननवाज़

श्री उग्रसेन जैन
मंत्री भा० दि० जैन परीक्षाबोर्ड, काशीपुर (नैनीताल)

भाई तनसुखरायजी बड़े उत्साही कार्यकर्ता थे। उनमें टक्कर लेने की शक्ति थी। और कुशल प्रबन्धक तथा मेहमाननवाज़ थे। मेरा उनका ३५ वर्ष से अधिक समय से सम्पर्क रहा। परिषद् के कार्यों में उनके सामने बड़ी-बड़ी कठिनाइयां आईं परन्तु उन्होंने उसकी थोड़ी-सी भी चिंता नहीं की और लगातार जीवन भर समाज और देशसेवा के कार्यों में लगे रहे।

मैं ऐसे कर्मवीर पुरुष के प्रति हार्दिक श्रद्धांजलि अर्पित करना है।

प्रेरणा प्राप्त करें

श्री भुवनेन्द्र 'विश्व'
जवाहरगंज, जबलपुर

स्व० तनसुखरायजी का स्मृति-ग्रन्थ तैयार करने का आयोजन किया जा रहा है। यह समाज के लिए गौरव का विषय है कि वह अपने कर्मठ व्यक्तियों का समुचित सम्मान करने के लिए प्रयत्नशील है।

मेरा उनका कोई व्यक्तिगत सम्बन्ध नहीं था फिर भी मैं उनकी समाज सेवा की लगन से बहुत प्रभावित रहा हूँ।

मैंने उनको झांसी और दिल्ली के परिषद्-अधिवेशन में देखा है। हर काम में उन्हीं को सक्रिय सहयोग देते हुए देखकर लगता था कि यदि परिषद् का प्रत्येक कार्यकर्ता इसी लगन से समाज सेवा में तत्पर रहे तो परिषद् अपने उद्देश्य में पूर्ण सफल हो सकेगी।

मैं प्रत्येक नवयुवक से आग्रह करता हूँ कि वह भी अपने आपको स्व० तनसुखरायजी के जीवन से प्रेरणा प्राप्त करे और उनकी तरह से तन, मन, धन और मनसा वाचा कर्मणा जाति, समाज और देश की सेवा में समर्पित कर दे।

× × × ×

परिषद् का सपूत

श्री सलेकचंद जैन
बड़ौत (मेरठ)

समाचार पत्रों में कई बार पढ़ने में आया है कि ला० तनसुखराय जैन की स्मृति में एक ग्रंथ निर्माण किया जा रहा है। इस बात से मुझे बहुत प्रसन्नता हुई। लालाजी की स्मृति में ग्रंथ का प्रकाशन समाज की उदारता का परिचायक है। वास्तव में ला० तनसुखरायजी, जैन समाज में अपने समय के एक क्रांतिकारी, समाज-सुधारक, तथा जैन समाज में नव-परिवर्तन करने वाले बड़े साहसी पुरुष हुए हैं। लालाजी ने लगभग ४० वर्ष तक निरन्तर जैन समाज की सेवा में अपना समय लगाया और साथ-साथ अपने तन, मन, धन को लगाया। जो भी कदम उठाया वह अति प्रशंसनीय तथा सराहनीय रहा। परिषद् से लालाजी अधिक प्रकाश में आये किन्तु मुझे यह कहने में ज़रा भी हिचक नहीं कि परिषद् की नींव को सुदृढ़ करने तथा परिषद् की ख्याति बनने-बनाने में लालाजी का सहयोग एक वरदान सिद्ध हुआ है। ला० तनसुखरायजी जैन ने परिषद् के प्लेटफार्म से जैन समाज को नवीनता दी। समाज में नव-चेतना का संचार किया। मुझे यह कहने में कोई संकोच नहीं कि उनकी मृत्यु के पश्चात् अब परिषद् शक्तिहीन और निर्बल संस्था पड़ गई है। लालाजी परिषद् के सजग प्रहरी थे। उनकी स्मृति में आज जैन समाज की ओर से यह स्मृति-ग्रंथ प्रकाशित करना अपने योग्य तथा कर्मठ कार्यकर्ता के प्रति श्रद्धांजलि अर्पित करता हूं।

अन्त में—"वे अमर रहें हजारों वर्ष, हर वर्ष के हों हजार दिन"।

× × × ×

देशभक्त और प्रबल समाजसुधारक

माननीय श्री चिरंजीलाल जी बड़जात्या



माननीय श्री बडजात्याजी जैन समाज के पुराने समाजसेवी और कट्टर देशभक्त हैं। पूज्य गांधीजी के पांचवें पुत्र स्वनाम धन्य सेठ जमुनालाल जी बजाज के यहां प्रमुख कार्य करने वाले कार्यकर्ता हैं। गांधीजी की शिक्षाओं को आपने अपने जीवन में उतार कर सात्विक रहन-सहन और उच्च विचारों का महान् आदर्श प्रस्तुत किया। लाला तनसुखरायजी से आप अत्यधिक प्रभावित थे। आपके भावमयी उद्गार प्रशंसनीय और उनके प्रति असीम प्रेम प्रकट करने वाले है। आपने ग्रन्थ के कार्य में पूर्ण सहयोग प्रदान किया है।

आदरणीय लाला तनसुखरायजी जैन समाज में एक सम्माननीय व्यक्तियों में हो गए। स्व० लालाजी का नाम जैन समाज के इतिहास में स्वर्णाक्षरों से लिखा जाएगा। निःस्वार्थ भाव से देश एवं समाज की उनके द्वारा अनेक सेवाएँ हुई हैं।

वे दिगम्बर जैन परिषद के मंत्री थे। समाज में जो अनेक त्रुटियाँ थी उनमें सुधार कर समाज के अनेक पंथों को एक सूत्र में लाने का महान कार्य उनके उत्साह एवं सहयोग से ही पूरा हो सका है। अन्तर्जातीय विवाह के वे बहुत-बहुत पक्षपाती थे जिस कारण अनेक अन्तर्जातीय विवाह सम्पन्न हुए। समाज के पढ़े-लिखे और होनहार विद्यार्थियों पर उनका बहुत स्नेह था। इस लिए ऐसे विद्यार्थियों को जगह-जगह अच्छे काम पर लगा दिया करते थे। वह विद्यार्थियों को छात्रवृत्ति भी दिलवाते थे और खुद के पास से स्वयं देते भी थे।

स्व० लालाजी बड़े शान्त, नम्र और धैर्यशाली व्यक्तियों में से थे। किसी बात का निर्णय वह जल्दबाजी में न कर बहुत सोचकर ही उचित निर्णय करते थे। इस कारण कितना भी दु:खी हृदय का व्यक्ति उनके पास जावे वह सुखी और समाधान कर ही उनके पास से लौटता था।

श्री तनसुखरायजी भारत जैन महामंडल की वर्किंग कमेटी के भी एक सदस्य थे इस कारण उनके विचार का लाभ मंडल को हमेशा मिलता रहा है। समग्र जैन समाज को एक सूत्र

में लाना और समाज में भाईचारा बढ़ाना जैसे जटिल कार्य में उनका सहयोग हमेशा मिलता रहा है।

उनका मुझ पर भी बड़ा स्नेह था। जब तीन साल पहले लकवे से मैं बीमार हो गया था तब उनके कई स्नेह भरे पत्र मुझ को मिले जिससे मुझे बहुत शान्ति मिली और संतोष भी हुआ। बाद में मेरे स्वास्थ्य में कुछ सुधार होने पर जब मैं दिल्ली गया तो उनसे मिला था। हमारी अनेक विषयों पर चर्चा हुई। यह मेरी उनसे आखिरी मुलाकात थी। पता नहीं था कि वह इतनी जल्दी हम लोगों से बिछुड़ जावेंगे। बाद में वह अचानक बीमार हो गए जिस कारण हमको चिन्ता होना स्वाभाविक था। इस बीच में उनके स्वास्थ में कुछ सुधार भी हुआ लेकिन विधि का विधान कुछ और ही था। ईश्वर की इच्छा। अन्त में वह हम लोगों को छोड़कर चले ही गए। उनके स्वर्गवास से हमको बड़ा आघात पहुँचा क्योंकि वह मेरे अभिन्न मित्रों में से थे। जब भी मैं उनसे मिलता था मेरे को बड़ी शान्ति मिल जाती थी। उनका हंसमुख चेहरा और मधुर स्वभाव हमेशा हमको स्मरणीय रहेगा। मैं उनकी धर्मपत्नीजी से भी दो-तीन बार मिला था और कई बार उनके यहाँ भोजन का साथ भी मिला था। लालाजी जैसे बहुत कम व्यक्ति इस संसार में जन्म लेते हैं और समाज पर अपनी छाप छोड़कर महाप्रस्थान करते हैं।

श्रीमान लालाजी श्री तनसुखरायजी से मेरा परिचय करीबन ३५ सालों से था। दिल्ली निवासी श्री लालाजी जौहरीमलजी सर्राफ बड़ा दरीबा ने मेरी उनसे मुलाकात करवाई थी। मुझ पर उनके व्यक्तित्व का बहुत प्रभाव पड़ा। मैंने एक दम निश्चय कर लिया कि श्री लालाजी द्वारा देश व समाज की बहुत सेवा होगी तत्पश्चात क्रमश: खंडवा, सतना, जबलपुर में हुई भारत दिगम्बर जैन परिषद् के अधिवेशन में उनसे मुलाकातें हुईं। सभा का अधिवेशन व जिस उत्साह से, जिस लगन और सुचारु रूप से करते थे वह तो मैं ताकता ही रह जाता था। मुझे उन पर गर्व था। समस्त जैनीवर्ग में रोटी-बेटी व्यवहार चालू हो इस बात के लिए वे सदा ही प्रयत्नशील रहते थे। दस्सा-पूजा-अधिकार के आन्दोलनों के वे समर्थक थे व इस आन्दोलन में उन्होंने काम भी किया था। पूज्य श्री महात्मा गांधीजी के सिद्धान्तानुसार वे सदा असहयोग आन्दोलन में भाग लिया करते थे व जेल जाने वालों की वे हर प्रकार से मदद करते थे। खादी आन्दोलन की शुरूआत से ही वे खादी पहनने लगे और जीवनपर्यन्त पहनते ही रहे। दलित-जातियों व अछूतो-द्धार के काम में वे हमेशा संलग्न रहा करते थे। जब सन् १६२६ में कांग्रेस की सेवा में मेरी सम्पत्ति खत्म हो गई थी तब लालाजी ने ही मुझे उत्साह हिम्मत बढ़ाई थी। मुझे जब लकवा मार गया था तब हमेशा उनके सान्त्वना भरे पत्र आते रहे थे और जब ठीक होने के बाद मैं उनके पास दिल्ली गया तो कुछ कमजोरी तथा प्रेमवश आ जाने की वजह से मैं बहुत रोया तब उन्होंने मेरी हिम्मत को सुदृढ़ बनाया। मुझे धैर्य प्रदान करते रहे। आबू जैन मन्दिर में यात्रियों पर सरकार ने टैक्स लगाया था उस आन्दोलन में भी उन्होंने बहुत काम किया। मेरे मालिक श्री कमलनयनजी बजाज के सभापतित्व में उन्होंने 'अग्रवाल महासभा' का अधिवेशन करवाया था। श्री कमलनयनजी उनके काम की बहुत तारीफ करते थे।

मैं जब-जब भी दिल्ली जाता था तब-तब मैं रोज उनसे मिलता था। जिस दिन उनसे नहीं मिलता था उस रात की नींद ही हराम हो जाती थी। लालाजी साक्षात करुणा व दया की मूर्ति थे। मैं उनको एक तरह से देवता ही समझता था। वे चार बार वर्धा आए थे और हर बार अपने चरणकमलों से मेरे घर को पवित्र किया था। दिगम्बर जैन परिषद् के तो वे प्राण ही थे। दिगम्बर जैन परिषद् का अधिकांश काम उन्होंने ही किया था। उनकी अभिलाषा थी कि दिल्ली में समस्त जैनियों का एक कनवेन्शन किया जाय मगर बीमार हो जाने की वजह से उनकी इच्छा अधूरी ही रह गई। भारत जैन महामंडल वर्किंग कमेटी के वे मेम्बर थे।

मेरे तो वे खास मित्र थे। उनके स्वर्गवास से मुझे बहुत दुःख पहुँचा। उनके निधन से समाज की व देश की बहुत बड़ी हानि हुई है। मैं हृदय से उनको श्रद्धांजलि अर्पित करता हूँ। लाला तनसुखरायजी ने सैंकड़ों विद्यार्थियों को पुरस्कार दिए और दिलाए। सैंकड़ों नौजवान (जैन अजैन) को नौकरी से लगाया। अपने यहाँ रखा और दूसरी जगह भी रखवाए। जैन भारत-मंडल का २० वर्ष कार्य किया। उसमें उन्होंने हर प्रकार की मदद की, सहयोग दिया। तिलक बीमा कंपनी में कई नौजवानों को नौकरी से लगवाया। एक प्रकार से जैन संगठन था।

प्रसिद्ध समाजसुधार और मूकसेवक

श्री रतनेश कुमार जैन
रांची (बिहार)

स्व० लाला श्री तनसुखरायजी की स्मृति में आप स्मृति-ग्रंथ प्रकाशित करने जा रहे हैं। लालाजी की सेवाएं धर्म, समाज एवं राष्ट्र के क्षेत्र में सदैव स्मरण होती रहेंगी। आपके कार्य की अवश्यमेव सराहना करूंगा कि कार्यकर्ताओं को उनके अनुरूप सम्मान इसी तरह दिया जाना चाहिये। जीवितावस्था में नहीं तो मरणोपरांत ही सही।

मैंने लालाजी के कई दफा दर्शन किए हैं और परिषद् के देवगढ़ अधिवेशन में उनकी चिर कार्य-प्रणाली देखने का अवसर भी मिला है।

आशा है आपका प्रयास ऐसा ठोस प्रयास होगा जिसे युगों तक अनुकरणीय रूप में वे स्मृति रूप में संजो कर रखा जाएगा।

काम करने की अद्‌भुत शक्ति

श्री पन्नालाल जैन अग्रवाल
नई दिल्ली

ला० तनसुखरायजी को मैं अर्से से जानता हूं। आप एक परिश्रमी, उद्योगी, धर्म-प्रेमी व्यक्ति थे। आप में काम करने व लेने की अद्‌भुत शक्ति थी। आप जिस काम को हाथ में लेते थे, पूरा करके ही छोड़ते थे। आपने कई आन्दोलनों का भी श्रीगणेश किया, कई सभा-सोसाइटियों में भी कार्य किया। सबका श्रेय आपको ही है। आपके जीवन से सबको सबक लेना चाहिए।

* * * *

पत्रकारों की दृष्टि में

श्री उमाशंकर शुक्ल
वर्धा

यह जानकर प्रसन्नता हुई कि आप श्री तनसुखराय स्मृति-ग्रंथ के प्रकाशन का आयोजन कर रहे हैं। उनसे मेरा परिचय तो नहीं था किन्तु उनके बारे में जो जानकारी प्राप्त हुई, उससे यह निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि आपने यह जो महत्वपूर्ण काम अपने हाथ में लिया है, उससे सैकड़ों, हजारों व्यक्तियों को स्व० तनसुखरायजी के जीवन से स्फूर्ति व प्रेरणा प्राप्त होगी। मैं आपके इस साहस की सराहना करता हूं तथा ईश्वर से प्रार्थना करता हूं कि आपने यह जो पुण्य कार्य हाथ में लिया है, उसमें आपको सफलता प्राप्त हो। मैं लालाजी को अपनी श्रद्धांजलि अर्पित करता हूं।

ग्रंथ यदि मुझे प्राप्त हुआ तो मैं उस पर कुछ लिखूंगा।

पंजाब में जागृति का श्रेय

श्री गुलाबसिंह जैन एडवोकेट
हिसार (पंजाब)

पूज्य बड़े भाई साहब ने पंजाब प्रान्त के बड़े २ शहरों में धर्म जागृति पैदा करने में बड़ा महत्वपूर्ण कार्य किया। अन्य प्रान्तों की अपेक्षा इस प्रान्त में त्यागी विद्वानों का पदार्पण बहुत कम होता है। इसलिए धार्मिक जागृति बहुत कम दिखाई देती है। परन्तु कार्य करने की लगन और धर्म श्रद्धा स्वभाव से इस प्रान्त में विशेष है। गोहाना, रोहतक, हिसार, अम्बाला आदि स्थानों पर जो समाज में विशेष उत्साह दिखाई देता है उसका श्रेय स्व० लाला तनसुखराय जी को है।

× × ×

मार्ग दर्शक

श्री गिरिवरसिंह
बड़ौत (मेरठ)

सन् १९४४-४५ में दिल्ली के परेड ग्राउंड में दि० जैन परिषद् की ओर से एक महान् सम्मेलन का आयोजन था। बड़ा पंडाल, ऊंचे-ऊंचे शामियाने, बड़ा-सा मंच था उसमें। सम्मेलन में एक विशेष-प्रस्तावपेश किये जाने की चर्चा थी। जैन-जनता का सागर कुछ पक्ष में, कुछ विपक्ष में उमड़ पड़ा। प्रस्ताव समय पर घटित हुआ। विरोधी पार्टी ने इतना शोर-गुल मचाया कि उत्सव का रूप भीषण संघर्ष में बदल गया। जलसे की व्यवस्था अस्त-व्यस्त हो गयी। उपस्थित नेतागण, पंडित वृन्द तथा अनेक वक्ता एवं सम्भ्रान्त अतिथि भाग-दौड़ में निकलने और जान बचाने आ मार्ग खोजने लगे। ऐसे समय में लालाजी ने युक्ति से काम लिया। उन्होंने पंडाल की पिछली ओर की कनातें तुड़वाकर एक छोटा-सा द्वार बनाया और सभ्य-जनों को ससम्मान उस उमड़ती भीड़ में से कुशलपूर्वक निकालकर सुरक्षित स्थान पर भेजा। उस समय की लालाजी की सूझ और विरोधी पक्ष का आक्रमणात्मक भयावना दृश्य मुझे अभी तक खूब याद आता रहता है।

लालाजी का हृष्ट-पुष्ट शरीर रोग से जर्जरित हो गया था। घुटनों में दर्द और आंखों में पीड़ा रहने लगी थी। आंखों की शक्ति कम हो जाने से, वे अब बहुधा रोग-शय्या पर ही रहने लगे थे। एक दिन मैं उनसे मिलने के लिए उनके पास गया, मैंने ज़ीने में से ही आवाज लगाई—लालाजी! और वे 'आओ भाई आओ' कहते हुए वे खड़े होकर मुस्कराने लगे। बैठने का संकेत करते हुए, झिझकते से बोले—ऐं आप; आप कौन साहब हैं। मैं चकित-सा होकर बोला। लालाजी! क्या आपने मुझे नहीं पहिचाना है। और उन्हें कुछ चेत-सी आई। बोले, अहा! अरे भाई गिरिवरसिंहजी हैं। अपने पर वे पश्चाताप-सा करते हुए बोले, भाई! कम सुनने लगा है। कम दीखने लगा है। नाराज न होना। इतना कहते-कहते वे घर में गये, ४ केले, २ सन्तरे और कुछ मिष्टान लाकर मेरे सामने रख दिया। अब मैं उनकी आत्म-वत्सलता, ममत्व और निश्छल प्रेम पर विचार करते हुए उनसे अनेक बातें कर रहा था।

मैं सन् १९६३ में पुस्तकालय-विज्ञान के प्रशिक्षणार्थ मुस्लिम यूनिर्वासिटी अलीगढ़ गया। मेरी आर्थिक स्थिति सीमित थी। परिवार का भार वहन करने में भी मैं अशक्त था। उन दिनों ला० नन्हेमल जैन जिन्दा थे और मैंने उन्हीं की प्रेरणा से प्रेरित होकर वहां जाने का साहस किया था। यूनीवर्सिटी से स्वीकृति और उधर आर्थिक विषमता, से मैं परेशान था। लालाजी के फंड से मासिक छात्र-वृत्ति का वचन मिलने से मैं ट्रेनिंग पर चला गया। कुछ कालान्तर पश्चात् छात्रवृत्ति का मिलना बन्द हो जाने से मैं दुविधा में पड़ गया। ट्रेनिंग रूपी सरिता की मंझधार में मेरी तरणी डांवा-डोल थी। इसको पार लगाने के सहायतार्थ एक पत्र मैंने लालाजी को अलीगढ़ से लिखा। उन्होंने तुरन्त अपनी भगनी की पुत्र-वधू को जिनके पास छात्रों के लिये मासिक-छात्रवृत्ति का कोष था, एक पत्र भेज देने के लिये मुझे लिखा। तुरन्त वहां से सहायता चालू हो गयी और मैं शान्ति-पूर्वक शिक्षण प्राप्त कर वहां से चला आया।

एकता के स्तंभ

सूरजभान जैन "प्रेम"
आगरा

लालाजी की जीवन-यात्रा

मानव जीवन के दो पहलू हैं एक सामाजिक दूसरा धार्मिक। लालाजी ने अपने जीवन में दोनों भागों को अपनाया था। उन्होंने सामाजिक और धार्मिक दोनों क्षेत्रों में अपना जीवन व्यतीत किया। राष्ट्रीयता, परोपकार, सेवाभाव और सदाचार उनके जीवन के मुख्य अंग थे। उन्होंने देश सेवा को अपने जीवन में उतारा और भगवान महावीर के दो अटल सिद्धान्त सत्य और अहिंसा को अपने जीवन में अपनाया। बड़े बड़े विद्वानों का मत है कि वह जीवन क्या जिसे कोई जान न सके। यों तो पशु भी अपना जीवन व्यतीत कर जाते हैं। और मनुष्य भी अपने परिवार के भरण पोषण करते-करते संसार चले जाते हैं। उन्हें कोई ज्ञान ही नहीं होपाता कि कब आए और कब गए। ऐसे बिरले ही व्यक्ति होते हैं जो देश सेवा में रत रहते हुए धार्मिक ज्ञान उपार्जन कर अपना कल्याण कर जाते हैं। और अपनी स्मृति छोड़ जाते हैं। ऐसे बिरले व्यक्तियों में लाला तनसुखरायजी का नाम भी आता है, जिन्होंने अपने जीवन का एक एक क्षण परोपकार और देश सेवा में लगाया।

समाज की एकता के लिए अ० भा० दि० जैन परिषद् में आपने तन, मन, धन से पूरा सहयोग दिया। आज यह परिषद् का वृक्ष आपका सींचा हुआ ही है।

लालाजी का जन्म सन् १८९९ में मुलतान में हुआ। आपके पिता श्री जौहरीलालजी अग्रवाल जैन थे। सन् १९०८ में ब्र० शीतलप्रसादजी मुलतान पधारे। वह उनकी सेवा करते रहे। बचपन से ही लालाजी को धार्मिक प्रवृत्ति और सामाजिक कार्यों में अनुराग रहा।

सन् १९१४ में इनके पिता सुकुटुम्ब भटिंडा चले गए। उन्होंने सन् १९१८ में सरकारी रेलवे विभाग में नौकरी की। सन् १९२१ में गांधीजी के असहयोग के कारण राजनैतिक क्षेत्र में सक्रिय सहयोग देने लगे और त्यागपत्र देकर नौकरी छोड़ दी। स्वदेशी वस्त्रों और वस्तुओं के प्रयोग का वृत ले लिया तथा सैंकड़ों व्यक्तियों से स्वदेशी वस्तुओं की प्रतिज्ञा कराई। खादी प्रचार, हिन्दी भाषा प्रचार समिति में जोरों से काम किया। सन् १९२४ में आप अपने जन्म स्थान रोहतक में आगए। सन् १९२६ में पंजाब की क्रान्तिकारी संस्था नौजवान भारत सभा के सदस्य बने। १९३३ तक आपने असहयोग आन्दोलन में जोरों से कार्य किया। जिससे सी० आई० डी० पुलिस भी २ साल तक पीछे लगी रही और ८ मास का कारावास भी भोगना पड़ा। सन् ३१-३२ में हरिजन सुधार का भी कार्य किया। इस बीच में पंजाब प्रान्तीय कांग्रेस कमेटी की कार्यकारणी के सदस्य चुने गए और कांग्रेस ने आपको प्रतिनिधि चुन कर लाहौर अधिवेशन में भेजा। वैसे तो राष्ट्रीयता से जीवन भर प्रेम रहा और दीन दुःखियों के प्रति करुणा भाव सदा ही उमड़ता रहा। सन् १९३३ में रोहतक में बाढ़ आई और आपने बाढ़ पड़ितों के लिए एक रिलीफ कमेटी बनाई।

सन् १९३४ में आप लक्ष्मी बीमा कंपनी के मैनेजर होकर दिल्ली चले आए और इसी साल दिल्ली में आपने अ० भा० दिगम्बर जैन परिषद् का सफल अधिवेशन कराया। उसमें आप स्वागत समिति के प्रधान मंत्री थे। यह अधिवेशन बड़ी सज धज के साथ विशाल पैमाने पर हुआ।

आपने सन् ३४ से ३८ तक ५ वर्ष तक परिषद् का कार्य बहुत जोरों से किया। देश भर में इसका प्रचार किया और कई स्थानों पर परिषद् के सफल अधिवेशन कराए। वास्तव में आप परिषद् के प्राण थे।

सन् ३९ में आपने कोआपरेटिव बैंक और जैन क्लब की स्थापना की। वीर सेवा मंदिर के वीर शासक जयन्ती समारोह में सभापति बनाए गए। उसी वर्ष निवसेड़ा में भीलों की सभा के प्रधान बनाए गए और आप ने ५००० भीलों से मांस-भोजन का त्याग कराया।

सन् ४० में जिला मंडल के प्रधान मंत्री और ४१ में नई दिल्ली कांग्रेस कमेटी के प्रधान चुने गए। सन् ४२-४३ में कांग्रेस के "भारत छोड़ो" आन्दोलन में तन, मन और धन से पूरा सहयोग दिया। सन् ४४-४५ में वनस्पति घी निषेध कमेटी के पद पर रहते हुए हजारों व्यक्तियों के हस्ताक्षर करा कर सरकार के पास भेजे।

सन् ४६ में अ० भा० मानव धर्म सम्मेलन के प्रधान मंत्री रहकर जोरों से कार्य किया। सन् ४७ से ५१ तक अग्रवाल महा सभा और मारवाड़ी सम्मेलन के कार्य को खूब बढ़ाया और प्रधान मंत्री चुने गए। इसके पश्चात् प्रधान भी बनाए गए। सन् ५५ में भारत के शाकाहार का प्रचार किया। सन् ५६ से ५८ तक जैन परिषद् के खंडवा अधिवेशन में प्रधान मंत्री चुने गए और दरियागंज दिल्ली कांग्रेस मंडल के सदस्य चुने गए। सन् ५८ से ६४ तक अस्वस्थ रहते हुए भी में यथाशक्ति भाग लेते रहे। इसप्रकार आपका सारा जीवन सामाजिक, राष्ट्रीय और धार्मिक कार्यों में व्यतीत हुआ। अन्त में १४ जुलाई ६४ को अपना व्यक्तित्व दिखा कर संसार से विदा हो गए।

× × × ×

मनुष्य की उन्नति के लिए जैन धर्म का चरित्र बहुत ही लाभकारी है। यह धर्म बहुत ही ठीक, स्वतन्त्र, सादा तथा मूल्यवान है। ब्राह्मणों के प्रचलित धर्मों से वह एकदम भिन्न है। साथ ही साथ बौद्ध धर्म की तरह नास्तिक भी नहीं है।

—मेगास्थनीज, ग्रीक इतिहासकार

अदम्य साहसी

श्री कौछल जी वकील
सागर

> मध्य भारत के लब्ध-प्रतिष्ठित वकीलों में श्री कौछल जी का नाम विशेष रूप से स्मरणीय है जो समाज और देश सेवा के लिए सदैव अग्रसर रहते हैं। आपके समाज में सुधार करने का भाव प्रशंसनीय है। लालाजी के साथ आपने जाति में सुधार और रूढ़ियों के विरोध में ऐसी शक्तिशाली आवाज उठाई जिसके कारण मध्य भारत में अपूर्व जागृति दिखाई देती है। आपका लालाजी के प्रति अति अनुराग था।

श्री लालाजी मेरे आत्मीय मित्रों में से रहे। मेरा उनसे घनिष्ठ प्रेम रहा। मेरा उनसे सन् १० में अधिवेशन काल से सम्बन्ध रहा और मेरे सभापतित्व में जो परिषद् ने जैन समाज के एकीकरण और साम्प्रदायिकता तथा जातिवाद को नष्ट करने में जो कार्य किया, और आर्थिक परिस्थिति जब परिषद् की ठीक नहीं रही उस समय तूफानी दौरा करके तथा आबू के धर्म-विरोधी कर का उन्मूलन करके रहे। साथ-ही-साथ जैन श्वेताम्बरी साधुवर्ग और कार्यकर्ताओं का अनन्य सहयोग प्राप्त कर विजयश्री परिषद् को प्रदान की। कितना परिश्रम ग्रीष्म-काल में राजपूताना का दौरा कर उठाया कितनी सहिष्णुता और त्याग लालाजी ने किया। यह उनके अदम्य साहस का परिचय है। मेरा उनसे इतना भाईचारा रहा है कि जो अन्त समय तक बना रहा। सन् ६२ में मेरी उनसे आखिरी मुलाकात हुई जब वे रोग में ग्रसित थे, मगर फिर भी उनके प्रेम में वही आत्मीयता रही।

× × × ×

मानवता के महान् पूत

श्री ग्यानवती जैन
जैनयात्रा संघ, दिल्ली

हे धरती के प्रिय सपूत ।
जन मत के तनसुखराय प्रिय ।।
विश्वशान्ति के अडिग प्रणेता ।
अमर वीर सेनानी हिय ।।
धन्य-धन्य तन श्रम निर्माता ।
शान्त क्रान्त के अग्रिम दूत ।।
सादर श्रद्धा पुष्प समर्पित ।
मानवता के महान पूत ।।

× × × ×

मेरे सामाजिक गुरु

श्री भगतरामजैन
बहादुरगढ़ रोड, दिल्ली

लाला भगतरामजी परिषद के प्रतिष्ठित कार्यकर्ताओं में से हैं। बहुत अच्छे समाज-सेवी और उत्तम आन्दोलन करने वाले हैं। महावीर जयन्ती के जलूस और परिषद के कार्यों में सदैव अग्रसर होकर सेवा के कार्यों में अग्रसर रहते हैं। समाज को आपसे बड़ी आशायें हैं।

मैं लाला तनसुखरायजी को सन १९३२-३३ से जानता था, परन्तु मुझे उनके साथ कार्य करने का अवसर १९४४ में हुआ। लाला दीपचन्दजी सम्पादक वर्धमान आदि के प्रयत्नों से दिल्ली में स्थानीय अ० भा० दिगम्बर जैन परिषद की शाखा स्थापित हुई जिसमें मंत्री पद का कार्य करने का सौभाग्य मुझे प्राप्त हुआ। तब से लालाजी से मेरा सम्पर्क दिनों दिन बढ़ता गया।

परिषद के मुजफ्फरनगर अधिवेशन पर लालाजी प्रधान मंत्री व मुझे मंत्री चुने जाने के कारण सामाजिक कार्यों में उनका मेरा हर समय का साथ होगया। बाद में तो वह इतना बढ़ गया कि हर सामाजिक कार्य में वह मुझे अपने साथ रखते थे।

वह कार्यकर्त्ता की बड़ी कदर करते थे व उसकी हिम्मत बढ़ाते रहते थे। उनमें प्रचार करने का बड़ा गुण था। जब भी कोई कार्य हाथ में लेते थे, अपने ढंग से करते थे। दूसरों का दखल उन्हें पसन्द नहीं होता था। अपने विचार के पक्के थे। उनके समय में समाज में कई आन्दोलन हुए। उन्होंने बड़ी हिम्मत से उनका प्रचार किया। हर क्षेत्र में उनके कार्यों के कारण उन्हें प्रतिष्ठा प्राप्त हुई। उनका समस्त जीवन राष्ट्रीय व सामाजिक कार्यों में अधिकतर लगा।

उनका स्वभाव गर्म होने पर भी थोड़ी देर में ठीक हो जाता था। मेरे साथ अनेकों अवसर आये कि वह बिगड़े परन्तु कुछ देर बाद वैसे के वैसे हो जाते थे। सुधारक होने पर भी धर्म में पक्के थे। जैन धर्म की आन पर हर जगह लोहा लेने को तैयार रहते थे। उनके विषय में क्या लिखूं, समझ में नहीं आ रहा है। अनेकों उदाहरण हैं जिनसे उनकी हिम्मत, कार्य करने की दृढ़ता की झांकी प्राप्त हो सकती है। परन्तु मैं केवल एक का उलेख यहां करके अपनी श्रद्धांजलि अर्पित करता हूं।

१९५० में जब परिषद का अधिवेशन दिल्ली में हुआ, उसमें आने वाले हरिजन मन्दिर-प्रवेश के प्रस्ताव पर समाज में बड़ा वादविवाद हुआ था। उसके पास होने के कुछ दिनों बाद मुझे तीन पत्र प्राप्त हुए जिनमें बड़ा बुरा-भला लिखने के साथ-साथ मारने तक की

(शेष पृष्ठ ८२ पर)

मंजुल मूर्ति

प्रसिद्ध पत्रकार श्री हजारीलाल जैन 'प्रेमी'
किनारी बाजार, आगरा

रोला-छन्द

कलित कीर्ति के कुंज, प्रेम पीयूष-प्रवाहक ।
धर्मवीर, प्रणवीर, निरन्तर नीति-निवाहक ।।
शुभ स्वदेश-सर्वस्व, जैन जनता के प्यारे ।
मानव-कुल की कानि, जन्म-भू के चखतारे ।।
तव गुण-गरिमा-गान, गगन में गूँज रहा है ।
सुयश-सौरभित वायु, विपिन में कूँज रहा है ।।
नित अमोघ-औदार्य, दुन्दुभी बाज रही है ।
गुण-ग्राहकता गजारुढ़, हो गाज रही है ।।
जैन-सभ्यतादर्श, धीर, धर्मध्वज-धारी ।
आर्षकाल अनुरक्तानुयोग, वाटिका विहारी ।।

(दोहा)

धन्य नगर दिव्य ठाँव वह, जननी-जनक तुम्हार ।
स्व-पर कल्याणक हेतु प्रिय, लियो जहाँ अवतार ।।
धर्म, त्याग, व्रत-नियम की, ध्वनि दसहुँ दिशि आज ।
गूँज रही तव गगन में, जानत सकल समाज ।।

(शृंगार छन्द)

प्रेम पुष्पाजंलि लेकर आर्य, आपका करते हैं सम्मान ।
हृदय-आसन पर हो आसीन आपकी मंजुल मूर्ति महान ।।

पूर्ण सद्भावना के साथ ही :— प्रेमानुरागी

श्रद्धामय व्यक्तित्व

श्री केशरलाल बख्शी
न्यू कालोनी, जयपुर

माननीय केशरलालजी बख्शी जयपुर जैन समाज के वयोवृद्ध समाज सेवी और सुप्रसिद्ध कार्यकर्ता हैं। आपकी देखरेख में कई संस्थाओं का संचालन सुचारु रूप से चल रहा है। लालाजी के आप पुराने मित्र हैं। आपने लालाजी के प्रति उत्तम उद्गार प्रकट किए हैं।

लाला तनसुखरायजी जैन बड़े ही उच्च व उदार विचारों के व्यक्ति थे। वे सच्चे देशभक्त, प्रसिद्ध समाज-सेवी व कर्मठ नेता थे। युवकों में नवीन जागृति पैदा करना व उन्हें देश तथा समाज-सेवा के लिए प्रोत्साहन देने की उसकी उत्कठ अभिलाषा थी। उनकी प्रकृति व आकृति भी बहुत सौम्य थी। उनकी सम्पर्क में जो भी व्यक्ति एक बार आ जाता था, वह उनके आकर्षण के कारण सदा के लिए उनका हो जाता था।

वैसे लालाजी से मेरा परिचय तो बहुत समय पहले से था, लेकिन उनसे निकट सम्पर्क सन् १९५२ में हुआ, जब कि उन्होंने उद्योग उन्नतिमंडल नाम की संस्था का जयपुर में उद्घाटन किया और उसका आफिस मेरे मकान बख्शी भवन, न्यू कालोनी, जयपुर में ही रखा—तब से मेरा उनके साथ घनिष्ठ सम्बन्ध बढ़ता ही गया—और मैंने उन्हें अत्यंत ही व्यवहारिक व सर्वसम्पन्न व्यक्ति पाया। उन्होंने इसी विशेष गुण के कारण प्रत्येक क्षेत्र में सफलता प्राप्त की।

आज जब कि देश व समाज में उनके जैसे कर्मठ व समाज-सेवी नेता की अत्यंत आवश्यकता थी, वे हमारे बीच में से असमय में ही उठ गए। समाज में उनके अभाव की क्षति-पूर्ति निकट भविष्य में सम्भव नहीं है। मैं दिवंगत आत्मा के प्रति अपनी हार्दिक श्रद्धांजलि अर्पित करता हूँ।

(पृष्ठ ८० का शेष)

धमकी दी गयी थी। जब परिषद में उन पत्रों पर चर्चा चली, तब किसी की राय थी कि इन्हें पुलिस में दे दिया जावे, किसी की राय थी कि ऐसी तरफ ना जाया जावे जहां इसका डर हो, व हिफाजत से आया जावे आदि २, परन्तु लालाजी ने कहा था कि इन पत्रों को पुलिस में देने की आवश्यकता नहीं है और न किसी प्रकार का भय खाने की, बेफिक्र जहां भी आओ-जाओ। मेरी राय भी उनके अनुसार थी। ऐसा ही किया।

लालाजी को मैं अपना सामाजिक गुरू मानता था। जब भी कोई अड़चन आती थी उनसे विचार-विमर्श करने पर हल जाती थी। इतनी लगन वाले बहुत ही कम पैदा होते हैं।

निडर कार्यकर्ता

श्री विशनचन्द न ओवरसियर
साहू सीमेंट सर्विस, नई दिल्ली

लाला विशनचन्दजी लालाजी के पुराने साथियों में से हैं। महावीर जयन्ती का उत्सव प्रारंभ कराने और जैन मित्रमंडल द्वारा साहित्य वितरण करने का कार्य आपकी देखरेख में हुआ था। आपने बड़ी लगन के साथ समाज-सेवा का कार्य प्रारंभ किया था। वयोवृद्ध होने पर सेवा कार्यों में सबसे आगे हैं। लालाजी की सेवाओं का आपने सुन्दर ढंग से वर्णन किया है जो पठनीय है।

आपसे लगभग ३० वर्ष पुराने संबन्ध थे। जब भी मैं बाहर से दिल्ली आता, आपसे जरूर मिलता था, और आपसे जैन धर्म प्रचार व जैन समाज की उन्नति के सम्बन्ध में बातें होती थीं। आप की जैन धर्म प्रचार व जैन समाज को ऊंचा उठाने में बड़ी बड़ी उमंगें, सच्ची लगन, धुन व ऊंचे ऊंचे विचार तथा श्रद्धा थी। आपका सुझाव बड़ा अच्छा और लाभदायक होता था। लेकिन आप कई साल से पेट के ओपरेशन आदि के कारण बीमार रहते थे। इसी कारण आपका स्वास्थ ठीक नहीं रहता था इसलिये इस दौरान में कुछ कार्य नहीं कर सके, लेकिन फिर भी बीमार होते हुए भी आप जैन धर्म के विषय में कुछ-न-कुछ लिखते ही रहते थे, जैसा कि पत्रों के देखने से पता चलता है।

आज वह हमारे बीच नहीं हैं, हमारे से अलग हो गये हैं। मैं अपने पुराने साथी श्री ला० उमरावसिंह, ला० रघुवीरसिंह, महोकमलाल, जौहरीमल सर्राफ, ला० महावीरप्रसाद (बूरीमल) व ला० चुन्नीलाल रोशनाई वाले जो जैन मित्रमंडल दिल्ली के खास कार्यकर्ताओं में से थे, उनका तो दुःख भूल ही न सका था कि अचानक आज श्री ला० तनसुखरायजी जैन का भी दुःख सहन करना पड़ रहा है।

आपके निधन से जैन समाज के कार्यों में बड़ी भारी हानि हुई है, मैं आपको श्रद्धांजली भेंट करता हुआ श्री जी से प्रार्थना करता हूँ कि आपकी आत्मा को शान्ति प्राप्त हो और उनके कुटुम्बी जनों को इस दुखद वियोग में धैर्य प्राप्त हो।

श्रीमान ला० तनसुखरायजी जैन रोहतक के रहने वाले थे, कनाट प्लेस नई दिल्ली में आपने एक तिलक बीमा कम्पनी के नाम से एक फर्म खोली थी, किसी कारण से वह फेल हो जाने से बन्द करनी पड़ी उसके बाद वह देहली में ही रहकर अपना कार्य करने लगे और २१ दरयागंज में आपने अपना मकान बनवा लिया। आप उसी में रहते थे।

आप जैन समाज तथा और दूसरे समाजों में सिपाही के रूप में सचाई व बहादुरी के साथ निडर होकर कार्य करते थे। आपके दिलेरपन के बारे में क्या २ बातें बतलाऊँ, अब से १८ वर्ष पूर्व जब मैं जैन मित्र मंडल दिल्ली का मंत्री था तब आपको भी अपने साथ कार्य करने के वास्ते जैन मित्र मंडल देहली के एक विभाग का मंत्री बना दिया था।

श्री महावीर जयन्ती मनाने के कुछ वर्षों बाद हम लोगों के दिलों में यह विचार पैदा हुए कि श्री महावीर जयन्ती का नये ढंग से बड़े पैमाने में (विराट जलूस) निकाला जाये जिसके द्वारा जैन धर्म के प्रचार में और बढोतरी हो। लेकिन वर्षों तक दिल्ली जैन समाज के अलग २ विचारों के कारण इस कार्य में सफलता प्राप्त न हो सकी यह मामला झगड़े में पड़ा रहा। लेकिन इस कार्य को असली जामा पहनाने लाने के वास्ते दिल में सच्ची लगन व धुन लगी हुई थी, विचार किया कि इस कार्य में किस प्रकार कामयाबी (सफलता) प्राप्त हो सकती है। आखिरकार मैंने आपसे श्री महावीर जयन्ती के जलूस निकालने के बारे में मशवरा किया, आप इस कार्य के वास्ते स्वयं तैय्यार हो गये, चुनाचे जैन मित्रमंडल दिल्ली की कार्यकारणी कमेटी ने महावीर जयन्ती का जलूस निकालने की मंजूरी दे दी। और जलूस के निकालने की बागडोर स्व० श्रीमान ला० तनसुखराय जैन ने अपने हाथ में ले ली। और आपके बतलाए हुए ढंग के मुताबिक जलूस की तैय्यारी की गई। ...... की कम्पनी बाग (.........) से बड़े-बड़े ऊंचे झंडों आदि के साथ "श्री महावीर जयन्ती की छुट्टी होनी चाहिये" के नारों के साथ जलूस बड़ी धूम-धाम के साथ निकाला गया तमाम बाजार झंडी आदि से सजे हुये थे, और उस रोज देहली के तमाम बाजार बंद रहे, भूखों को खाना खिलाया गया। महावीर जयन्ती की छुट्टी का प्रस्ताव पास किया गया, सब से पहले जैन मित्र मंडल दिल्ली ने ही महावीर जयन्ती का जलसा व जलूस तथा महावीर जयन्ती की छुट्टी मांगने का आन्दोलन भारत वर्ष में शुरू किया था जिसके कारण अब गांव-गांव में महावीर जयन्ती मनाई जा रही है और बहुत से प्रान्तों में महावीर जयन्ती की छुट्टी होने लगी है। यह था ला० जी की बहादुरी व निडरपन का कार्य जिससे सदा के लिये जैन समाज के बच्चे २ के दिलों से डर निकला और यही कारण है कि आज दिल्ली में बहुत बड़े पैमाने के रूप में श्री महावीर जयन्ती का जलूस निकाला जाता है।

आप भारतवर्ष दि० जैन परिषद के भी महामन्त्री रह चुके हैं। मुझे भी परिषद के कार्यों से बड़ी दिलचस्पी रही है, चुनाचे सन १९४० में जब भारतबर्ष दि० जैन परिषद का सालाना अधिवेशन झांसी में हुआ था तब मैं भी देहली से उनके साथ गया था। परिषद के पंडाल में जब रात्रि को जलसा हो रहा था तब जैन समाज के कुछ भाइयों ने झगड़ा शुरू कर दिया कि परिषद का जलसा न होने पावे।

तब भी आपने बड़ी होशियारी व बहादुरी से किसी बात की परवाह न करते हुए भीड़ में बड़ी हिम्मत व बुद्धि के साथ निडर होकर स्टेज पर खड़े होकर पब्लिक को शांत किया और परिषद के सालाना अधिवेशन में शान्ति के साथ सफलता प्राप्त हुई।

दिल्ली में जब अखिल भारतीय दि० जैन महासभा का सालाना अधिवेशन स्वर्गीय श्रीमान दानवीर ला० सेठ हुकम चन्द जैन इन्दौर निवासी के सभापतित्व में हुआ था, तब भी जैन समाज को परिषद के कार्यों के बारे में भड़काया गया था, उस समय भी आप किसी से न डरे आप परिषद के असूलों पर डटे रहे और निडर होकर श्री ला० सेठ हुकमचन्दजी जैन आदि के मुकाबले में खुद जोर शोर के साथ भाषण दिया और बतलाया कि परिषद जो कार्य कर रही है

ठीक कर रही है ठोस कार्य कर रही है वह समय दूर नहीं है जब भारतवर्ष के हर जैनी को इस में शामिल होकर इसके असूलों पर कार्य करना पड़ेगा, आखिरकार वाद-विवाद के बाद यह हुआ कि महासभा और परिषद एक हो जावे। विचार किया गया। तै पाया कि श्री महावीर जी में महासभा और परिषद की मीटिंग करके इस मामले को सुलझाया जावे। इस प्रकार के बीच में कई बार झगड़े आये और सब में निडर होकर कार्य किये। स्व० श्रीमान दानवीर ला० सेठ हुकमचन्द जैन भी आपका बड़ा आदर करते थे।

आप आल इण्डिया कांग्रेस के भी कार्य कर्ता थे। वहां भी आपने खूब कार्य किया है। आप जैन महामंडल के भी मंत्री रह चुके हैं। इसके अलावा आप और बहुत सी संस्थाओं के कार्य कर्ता व सभासद थे। आपने समाज में और बहुत से कार्य किये हैं जिनके बारे में मुझे जानकारी नहीं है। मेरी भावना है कि जैन समाज में ऐसे कार्य कर्ता पैदा होकर जैन समाज के कार्यों को अपने हाथों में लें।

स्वजनों की ओर से

श्री जगदीशराय गुप्ता

मानसर मंत्री

भाई साहब तनसुखराय जैन में सेवक वृति, प्रेम भाव, उदारहृदयता का समावेश जब जबसे मुझे मिलने का सौभाग्य प्राप्त हुआ तभी से मैंने देखा। उनके हृदय में प्रेम की ऐसी भावना घर कर गई थी जो उन्हें सभी को एक दृष्टि से देखने को लालायित करती थी, जीवन-पर्यन्त उन्होंने कांग्रेस की सेवा में जो भाग लिया वह प्रशंसनीय है। मानवता की टूटी-फूटी बिखरी अभिलाषाओं रूपी शृंखलाओं को नये रूप में लाने का साहस भी उन्हीं की एक जीती-जागती कसौटी थी—एक महान् आत्मा मानव के रूप में इस भूलोक पर उतरी थी जो अपनी क्षणिक झलक दिखाकर उस लोक में चली गई जिसे हम में से बहुत कम लोग समझने का प्रयत्न करते हैं। उस दिवंगत आत्मा को मैं शत् शत् प्रणाम करता हूँ।

निर्भीक साहसी वीर

सेठ मिश्रीलालजी पाटनी
लश्कर; मध्यप्रदेश

> सेठ मिश्रीलालजी पाटनी मध्य प्रदेश के ऐसे खामोश कार्यकर्ता हैं जो अपने कार्यों से धर्म और समाज की सच्ची सेवा करते रहते हैं। यश की पर्वाह नहीं करते। लश्कर (ग्वालियर) के कई संस्थाओं के संचालक हैं। जैन मिशन की प्रदर्शनी विभाग के सर्वेसर्वा हैं। जैन धर्म प्रचार और पुरातत्व के प्रति आपकी विशेष रुचि है। आपने ग्रंथ के कार्य में समुचित सहयोग प्रदान किया है।

श्रीयुत लाला तनसुखरायजी एक कर्मठ साहसी जैन वीर युवक, एक जैन महान विभूति थे। उन्हें जैन धर्म व जैन समाज व राष्ट्रीय एवं समाज की प्रत्येक प्रकार की निर्भीकता से सेवाएं कीं जो भुलाई नहीं जा सकती वह चिरस्मरणीय हैं व रहेंगी जिनका विशेष विस्तृत उल्लेख पाठकगणों को आगे पढ़ने को मिलेगा। मैं ऐसे महान जैन वीर एवं साहसी व्यक्ति के लिए श्रद्धांजलि भेज रहा हूँ और जो समिति ने अभिनंदन ग्रंथ संकलन कर प्रकाशित किया जाने का प्रयत्न चालू किया है वह अति उत्तम है और यह कार्य समिति के कार्यक्रम के अनुसार सम्पूर्ण हो, यही मेरी शुभ कामना है।

जैन मन्दिर के पुस्तकालय के प्रबन्धकों से निवेदन है कि ऐसे ग्रंथ को खरीद कर मन्दिर में व पुस्तकालयों में अवश्य स्मृति हेतु रखें। साहसी वीरता इससे प्रगट होती है। प्रत्येक समाज के चतुर साहसी वीर विद्वान लोग भी इसे अवश्य पढ़ कर पुनरावृत्ति कर साहसी वीर बन कर चलें।

कहं चरे ? कहं चट्टे ? कहमासे ? कहं सए ?
कहं भुजन्तो भासन्तो पावं कम्मं न बन्धइ ?

(भन्ते ! कैसे चले ? कैसे खड़ा हो ? कैसे बैठे ? कैसे सोए ? कैसे भोजन करे ? कैसे बोले ?–जिससे कि पाप कर्म का बन्धन न हों)

जयं चरे जयं चट्ठे जयमासे जयं सए !
जयं भुजन्तो भासन्तो पावं कम्मं न बन्धइ !!

(आयुष्मन् ! विवेक से चलो; विवेक से खड़ा हो; विवेक से बैठो; विवेक से सोए; विवेक से भोजन करे और विवेक से ही बोले तो पाप कर्म नहीं बँध सकता)

कर्मठ सेनानी लाला तनसुखरायजी

बाबूलाल जैन जमादार
नया बाजार बड़ौत, मेरठ

इस नीति को स्मरण करते हुए हम कह सकते हैं कि लाला जी तनसुखरायजी ने समाज और वंश की उन्नति में पूर्ण सहयोग दिया। असाधारण प्रतिभा वाले इस कर्मठ सेनानी के साथ हजारों समाज-सेवक काम करते थे। और हँसते हँसते कार्य को सफल बना देते थे।

श्री बाबू लाल जी जैन 'जमादार' बड़ौत कालेज में जैन धर्म के प्राध्यापक हैं। ओजस्वी वक्ता और कुशल निर्भीक कार्यकर्ता हैं। समाज को आपसे बड़ी आशाएँ हैं। आप समाज के ऐसे आज्ञाकारी सिपाही हैं जब समाज सेवा का अवसर आता है तत्काल सेवा के लिए तत्पर रहते हैं।

लालाजी के साथ कार्य करने का सौभाग्य मुझे भी प्राप्त हुआ। इनमें से कुछ संस्मरण पाठकों के सम्मुख उपस्थित कर रहा हूँ।

संस्मरण नं० १

"मैं कहता हूँ कोई भी वालण्टियर प्रतिकार की भावना से कार्य नहीं करेगा। सिर्फ जूते ही तो हम लोगों पर पड़े हैं, सिर ही तो टूटे हैं, कौनसी बड़ी मुसीबत सामने आ गई जो हम प्रतिशोध की ज्वाला में जलने लगे हैं। जलसा होगा और उसी स्थान पर होगा जहाँ बाबू रतन लाल जी व बाबूलाल धनुजी पिटे हैं। लेकिन नवजवानों हिम्मत से काम लो और रात्रि को मीटिंग में अधिक से अधिक उपस्थित हो जाओ तुम्हारा दस्सा पूजाधिकार प्रस्ताव निश्चित पास होगा।"

"परिवर्तनशील संसारे मृतः को वा न जायते।
स जातो येन जातेन याति वंशः समुन्नतिम् ॥

इन वाक्यों को सुनकर नवयुवकों में असीम चेतना जागृत हुई। बड़ौत, मुजफ्फरनगर, सरधना तथा दिल्ली के युवकों ने अपने नायक की बात मानकर अदम्य उत्साह से सभा-स्थल की ओर कूच किया। और अपने "दस्सा-पूजा-अधिकार" का प्रस्ताव उस प्रांगण में पास किया जहाँ पर दस्सों के विरोधी लोगों ने मारपीट कर के उन्हें पीछे हटा दिया था।

उपर्युक्त घटना १९३८ ई० में श्री हस्तिनापुर क्षेत्र के विशाल मेले पर परिषद के जलसे के समय पर घटित हुई थी। दस्सा पूजा अधिकार के पक्ष वालों की काफी पिटाई शास्त्र सभा-स्थल पर ही हुई थी जिसमें लाला तनसुखरायजी ने अदम्य साहस का परिचय दिया था। इसमें भाई शीलचन्द्रजी मवाने वालों की खतौली पाठशाला में लगी हुई नौकरी छूटी थी लेकिन लालाजी के सहयोग से दैनिक 'विश्वामित्र' में नियुक्ति शीघ्र हो गई थी।

मेरे भी १४ रु० से १६ रु० अर्थात् २ रु० की तरक्की शीघ्र हो गई थी। नव-जवानों को पूर्ण विश्वास आपके सहयोग का सदैव रहा है और यही कारण है कि आपके साथ कार्य करने वाला सदैव प्रसन्न व श्रीसम्पन्न रहा।

संस्मरण नं० दो

सन् १९५० ई० में दिल्ली के परेड ग्राउण्ड में विशाल पण्डाल के चारों ओर परिषद के अधिवेशन के समय पर हरिजन विरोधी आन्दोलन के कार्यकर्ता अपने मोर्चे लगाए हुए डटे खड़े थे। दि० जैन कॉलेज के स्वयंसेवक सतर्कता से ड्यूटी दे रहे थे कि यकायक लालाजी मेरे डेरे पर लपके हुए चले आए। उस समय भाई चतरसेनजी व शीलचन्द्रजी सहित उत्तर प्रदेश के प्रमुख कार्यकर्ता विचार-विमर्श में लीन थे कि लालाजी ने आते ही शीघ्र सेनापति की तरह आदेश दिया कि "आप लोग मेरे मकान पर शीघ्र पहुँचो समस्या विकट हो चुकी है इस पर बात करनी है।" सब लोगों ने कहा कि यहीं बता दी जाए तो अच्छा है इस पर लालाजी एकदम बिगड़ पड़े बोले "विरोधियों के मोर्चे के अन्दर विचार-विमर्श करना अक्लमन्दी नहीं है, तुम जैसा समझो करो मेरा काम जो था कह दिया।"

यह कहकर लालाजी यकायक चले गए। हम लोग शीघ्र लालाजी के मकान पर पहुँचे जहाँ पर मान्यवर बाबू रतनलालजी बिजनौर और कुछ दिल्ली के प्रमुख सज्जन स्व० लाला नन्हेमलजी स्व० लाला रघुवीरसिंहजी लाला भगतरामजी बाबू हंसकुमारजी आदि गंभीर मुद्रा में बैठे हुए कुछ सोच रहे थे।

हम लोगों को यकायक आता देखकर मुस्कराए और बोले कि "लाला तनसुखरायजी को क्या हो गया जो प्रत्येक कार्य में बहम करने लगे हैं। उन्हें उपद्रव का ही खतरा समा रहा है।"

सच यह था कि हम लोगों ने लालाजी की बात का आधा विश्वास किया था और जिन लोगों पर विश्वास किया था वे वास्तव में साथी थे नहीं इस बात को लालाजी अच्छी तरह जानते थे। इसीलिए वे परिषद अधिवेशन के प्रत्येक कार्य को बगैर पदाधिकारी हुए भी पूर्ण जिम्मेवारी से देखते थे।

आखिर परिषद अधिवेशन का उद्घाटन मान्यवर श्री श्रीप्रकाशजी तत्कालीन राज्यपाल बम्बई द्वारा हुआ। माननीय साहू श्रेयांसप्रसादजी ने अध्यक्षता की और मंच पर मा० साहू शान्तिप्रसादजी सहित जैन समाज के प्रसिद्ध कर्मठ कार्यकर्ता उपस्थित होकर अधिवेशन की शोभा बढ़ा रहे थे लेकिन लाला तनसुखरायजी मंच पर न आकर स्वयंसेवकों के पास भागे-भागे फिर रहे थे। उन्हें चैन नहीं था।

जिस समय मंच पर व पण्डाल में हरिजन-मन्दिर-प्रवेश पर हंगामा मचा उस समय सबकी आँखें लाला तनसुखरायजी पर ही जाकर टिकी। उनकी दूरदर्शिता पर सबको विश्वास हुआ। साहू बन्धुओं को येनकेन प्रकारेण पण्डाल से बाहर निकालकर ले जाना पड़ा।

श्री दिगम्बर जैन कालिज

बड़ौत (मेरठ) उत्तरप्रदेश

श्री दिगम्बर जैन कालिज बड़ौत को स्थापना २० जनवरी १९१६ को एक छोटीसी पाठशाला के रूप में हुई थी। सन् १९२१ में हाई स्कूल के लिये मान्यता प्राप्त हुई तथा समाज के सतत प्रयत्नों से हाईस्कूल १९४० से इण्टर कालिज के रूप में परिणत हो गया। उसी समय स्वर्गीय ला० तनसुखरायजी के कर-कमलों द्वारा इसके नवीन भवन का शिलान्यास हुआ। आपने कालिज को १००१) रु० का दान दिया। आजकल उस भवन में दिगम्बर जैन पॉलिटैकनिक कक्षाएँ चल रही हैं।

वर्तमान में दिगम्बर जैन कालिज में एम० ए०; एम० एस० सी०; बी० ए०; बी० एस० सी०, तथा बी० ए० की शिक्षा का समुचित प्रबन्ध है तथा इसी के अन्तर्गत एक इण्टर कालिज, प्राइमरी स्कूल, बालनिकेतन एवं बालिका विद्यालय स्थापित हैं। इन सब संस्थाओं में लगभग ३००० छात्र शिक्षा पा रहे हैं।



श्री दिगम्बर जैन कालिज

बड़ौत (मेरठ) उत्तर प्रदेश

एक निस्तब्ध वातावरण उपद्रव के बाद सामने आया।

रात्रि के तीन बजे लालाजी के मकान पर मीटिंग हुई और अधिवेशन में घटी घटनाओं के प्रति सबके मुख मलिन हो रहे थे कि लालाजी यकायक तमक कर बोल उठे।

"आज काश आप लोग मेरी बात मानते तो यह दृश्य सामने न होता और अच्छा उत्तर दिया जा सकता था। अब अधिवेशन अवश्य होगा, हरिजन-मन्दिर-प्रवेश प्रस्ताव दोहराया जाएगा भले ही हमारी लाशों पर विरोधी लोग आगे बढ़ सकें।"

आप लोग निश्चिन्त रहो मैंने रात ही रात में महावीर दल के स्वयंसेवकों की सेवाएँ और अपने प्रमुख साथियों की सेवाएँ प्राप्त कर ली हैं, और हुआ भी ऐसा ही।

दूसरे दिन अधिवेशन पूर्ण तनाव के वातावरण में, मान्यवर साहू श्रेयांसप्रसादजी की अध्यक्षता में, विरोधियों के महान विरोध के मध्य में, लालाजी की दूरदर्शिता से पूर्ण हुआ। उपद्रवी लोग पण्डाल के अन्दर पहुँच तो क्या सकते थे नजदीक भी नहीं फटक सके।

एक ओर लाला तनसुखरायजी व्यवस्था पर थे तो दूसरी ओर बहिन लेखावती अम्बाला।

हम सब सिपाही उनकी कार्यदक्षता देखकर हैरान थे। आखिर अधिवेशन सफल हुआ।

उपर्युक्त दो संस्मरण तो मात्र संकेत के तौर पर लिखे हैं। आपके कितने ही संस्मरण हैं जो सन् १९३८ से १९६३ तक उनके साथ रहने से सम्बन्धित हैं जिन्हें लेखक हृदय में संजोये है। परन्तु यह सत्य है कि लाला तनसुखरायजी गरीबों के हमदर्द, दुखियों के साथी, मित्रों पर तन मन निछावर करने वाले, समाज-सेवक, देशभक्त मुनिगुरुभक्त और धर्म रक्षक थे। उनके प्रति विनम्र श्रद्धांजलि समर्पित करते हुए लेखनी को यहीं विश्राम देता हूँ।

× × × ×

पराधीनात्तु जीवानां, जीवस्य मरणं वरं,
मृगेन्द्रस्य मृगेन्द्रत्वं, वितीर्णं केन कानने।

पराधीन जीवन से जीवों का मरना अच्छा। सिंह के मस्तक पर रोली से कौन तिलक करता है।

'मेरे भ्राता'

श्री मखमली देवी जैन
१६ दरियागंज, दिल्ली

"बहिन मखमलीदेवीजी जैन समाज की उन तेजस्वी कार्यकर्त्री बहिनों में से हैं जिनमें उदारता, सत्य औरवात्समाज सेवा का भाव असीमित भरा है। आपने मातुश्री चंदाबाईजी की प्रेरणा से श्री जैन महिलाश्रम का कार्य संचालन किया। आज संस्था की जो इतनी उन्नति होती हुई दिखाई दे रही है उसका सारा श्रेय आपके समस्त परिवार को है। आप स्वयं, आपकी सुयोग्य सुपुत्री श्री कान्ता जैशोराम ऑनरेरी मैजिस्ट्रेट और पुत्रवधू लीलावतीजी तथा रायबहादुरजी बा० दयाचंदजी चीफ इंजीनीयर संस्था की उन्नति के लिए अहर्निश प्रयत्नशील रहते हैं। जैन समाज को ऐसे परिवार पर अत्यंत गौरव है जो शिक्षा प्रचार में शक्तिभर तन, मन, धन से सहयोग देते हैं। 'मेरे भ्राता' के नाम से लालाजी के सम्बन्ध में अत्यंत आत्मीय उद्गार प्रकट किए हैं जो मननीय हैं।"

भैय्या तनसुखराय को मैं सन् १६३० से जानती हूँ। वे जैन धर्म के धार्मिकोत्सवों पर तथा राष्ट्रीय कांग्रेस के जलसों में बहुधा भाषण दिया करते थे। दिल्ली उन दिनों उनके इस कार्य-क्षेत्र का केन्द्र था। उनके द्वारा आयोजित बहुधा सभाएँ तथा बहुत-से जलसे भी मैंने देखे हैं। उनके मुखारविंद से परोपकारी एवं मधुर पुष्प समान झड़ते हुए मैंने सुने हैं। और देखा है उनमें मानवता का उज्जवल एवं ज्वलंत प्रतीक।

भैय्या तनसुखराय का व्यवहार प्राय: सीधा-सादा और सौम्यपूर्ण था। उनकी इस आकृति के कारण मेरे मन में उनके प्रति अपनत्व की भावना ओत-प्रोत हुई। मैं उनके जीवन में क्या देखा, क्या सुना आदि सभी पहलुओं का परिचय देने नहीं जा रही, इसके विषय में तो विद्वान लोग, नेता लोग आपको कुछ बताएँगे। परन्तु मैं कुछेक उन वर्षों को दृष्टि में रखकर—जोकि समय के साथ-साथ सुषुप्तावस्था की ओर चले जा रहे हैं—उन में के बिखरे विचार बता रही हूँ। इन्हीं वर्षों में मेरा उनका पड़ौस रहा है। वास्तव में उनका जीवन घटनापूर्ण था। उसके व्यक्तित्व में पूर्ण निष्ठा था। गहरी और गम्भीर प्रेरणा थी और समाज-सेवा का उनमें परम उत्साह था। इस पर भी कुछ लोगों की धारणा है कि वे जिद्दी-स्वभाव के व्यक्ति थे। इस सम्बन्ध में मेरा यह कहना अनुचित न होगा कि वे सचमुच इस धारणा के विपरीत थे। उन्हें तो परखने की थाह तक उतरने की आवश्यकता थी। उनमें अपनों के लिए तथा पीड़ितों के लिए एक टीस थी, तड़प थी। वे पर-सेवा में अपनी शक्ति को भूलकर अपने ऊपर कष्ट उठाने को तत्पर हो जाया करते थे। निराश्रित-व्यक्तियों का तो वे मात्र केन्द्र-बिन्दु थे। भारत की स्वतन्त्रता और धर्म तथा समाज की मान-मर्यादा का प्रश्न उनके जीवन का मात्र लक्ष्य था। इस पर तो सब कुछ न्यौछावर कर देने का एक मूक आह्वान् उनके द्वारा प्रदर्शित होता था। सुडौल

लम्बा क़द, गेहुँवा रंग और उस पर शुद्ध खादी की अपनी शोभा फबती थी। वे एक आदर्शवादी, कर्मठ सुधारक थे। जब से उन्होंने हमारे पड़ौस में अपना निवास-स्थान बनाया तब से उन्हें और भी निकट से देखने का हमें अवसर मिला। मैंने उनमें देश-सेवा, समाज-सेवा, आश्रम-सेवा इन दोनों शक्तियों का अद्भुत-स्रोत प्रवाहित होते देखा है। कार्य पूर्ति के लिए उनमें कठोरता भी थी और कोमलता भी परिपूर्ण थी। अगस्त १९६३ के दिन उनकी अंतिम विदाई के समय, जब मेरे आंसू अबल-धारा बनाकर बह पड़े—तो, मैंने उन्हें अपने सपनों में डूबा हुआ एक समाज-सेवी, समाज-प्रहरी और देश-रक्षक तथा मानवता का पुंज ही कहा ?—वे महान थे। उनका अन्तर-बाहर पवित्र था। हृदय कोमल था। कर्त्तव्य में कठोरता थी, पूर्ण निष्ठा थी। समाज का पतन उनके मन के दीप को जैसे बुझाने जा रहा था। और उस काल महाकाल की ओर से प्रलयंकारी झंझावात का एक अजीब झोंका आया, जो कि उनके विचार-चित्र को गिराकर चकना-चूर करता चला गया। हृदय-गति बन्द हो गई और वे सबके देखते आंखें मूंद इस नश्वर संसार की मोह माया को छोड़ अनन्त की ओर चले गए।

इस थोड़े से जीवन में मेरा सम्बन्ध प्रायः अनेक समाजसेवियों से रहा है। मैं पूर्ण निष्ठा तथा पूर्ण विश्वास के साथ कहती हूँ कि जो व्यक्ति समाजोत्थान की चिन्ताओं के प्रति भावुक होता है, जिसका मन दर्द-पीड़ा से द्रवित हो उठता है, उसकी सहानुभूति उतनी ही गहरी, तीव्र और महान तथा क्रान्तिकारी होती है। उस क्रान्ति से देशसेवा और समाजोत्थान के लिए सुख-सौन्दर्य जन्म लेता है। किन्तु उस सुख-सौन्दर्य को उपजाने वाले क्रान्तिकारी "वीर" बहुधा उस प्रसव की पीड़ा को सहन किया करते हैं। भैय्या तनसुखराय भी इस अपवाद के प्रतीक थे। उन्होंने कितने कष्ट सहन किए। उनका व्यक्तित्व विशाल था और शक्तिशाली था। वे बिना किसी प्रपंच के अपने अन्तिम दिनों तक अपने विचारों के प्रहरी और अडिग रक्षक बनकर रहे। यद्यपि कई लोग उनसे ईर्षा भी रखते थे, परन्तु उन से डर भी वे उतना ही मानते थे। और उन्हें प्यार करते तथा आदर की दृष्टि से देखते थे। समाज-सेवा का मंच उनके बिना हिलता न था और समाज उनकी सेवाओं का मान करता था। ऐसे थे वे महान और ऐसी थीं उनकी महान भावनाएँ।

मैं अपने सम्पर्क में आई अनेक घटनाओं की गुत्थी को सुलझाने के लिए जब भी समय-समय पर उनके पास गई, उन्होंने बड़े प्रेम से, ममता से बिठाकर उन बातों को समझाया और हर बात को सफल बनाने में योग दिया करते थे। आज आश्रम का कार्य उनके बताए हुए पद चिह्नों पर चलता हुआ विशाल प्रगति की ओर चला जा रहा है। महिलाश्रम में हायर सेकेण्ड्री स्कूल तथा छात्रावास आदि आदि योजनाएँ उन्हीं की बताई हुई हैं। हम इन्हें सफल बनाकर रहेंगे। परन्तु हमें इसके साथ-साथ इस बात का खेद है कि वे भाई जो इन परोपकारी योजनाओं के दाता थे, इनके निर्माता होने पर भी हमारे बीच नहीं होंगे। अन्त में मैं भगवान से याचना करती हूँ कि उनकी शुद्ध आत्मा को शान्ति प्राप्त हो।

भा० दि० जैन परिषद के प्राण

श्री तनसुखराय एक तेजस्वी पुरुष थे। उनके हृदय में देश सेवा की आग सुलगती रहती थी। सामाजिक कार्यों में उनका बहुत उत्साह था। जब कठिन से कठिन कार्य का अवसर आता तो उनका साहस बहुत बढ़ जाता था। निःसंदेह वे एक साहसी और दृढ कर्मठ पुरुष थे। भा० दि० जैन परिषद के तो प्राण ही थे। उन्होंने समाज में अपूर्व साहस से कार्य किया। समाज में उनकी स्मृति सदैव बनी रहेगी।

लाला
राजेन्द्रकुमार जैन
बैंकर्स
अध्यक्ष
भा० दि० जैन परिषद्

★ ★ ★ ★

श्रीमन्त तनसुखराय जैन

हजारीलाल जैन 'प्रेमी'
आगरा

योभूरिः सुकृतां सदाशामलतां जीवेषु संजीवताम्।
बामः संयमिने जिनोन्नत जिनाचार रूप संचारनाम्।
बीमा कम्पिनिकासुता सुविदितो बीमावतां ख्यातिमान्।
श्रीमान् तनसुखराय जैन विबुधो भूद् भारतीयो महान्॥
ज्ञानी ज्ञानजने गुणी गुणीजने मानी सदा मानिनि।
त्यागी त्यागीजनोजयी विजायिनि प्राज्ञस्तु विद्वज्जने।
रागी रागीजने पटुः पटुजने जैनेषु जैनाग्रणी।

× × × ×

युवक समाज द्वारा सत्कार

आबू आन्दोलन में आपने देश के विभिन्न भागों में दौरे किए। विशेषकर राजस्थान में यह अत्यन्त महत्वपूर्ण रहे। जगह-जगह समाज की ओर से मान-पत्र भेंट किए गए। थैलियां भेंट की गई। और आपको आश्वासन दिया गया कि आन्दोलन में हम तन-मन-धन से आपके साथ हैं। उस समय के अभिनन्दन पत्रों में प्राप्तयुवक समाज की ओर से दिया गया ऐसा ही एक अभिनन्दन-पत्र इस प्रकार है।

अभिनन्दन-पत्र

महावीर हीरोज

लाडनूं (मारवाड़)

हे कर्मवीर !

आज आपने हमारे नगर में अपने सहयोगियों सहित पधारकर जो अनुगृहीत किया है उसके लिए हम आपके आभारी हैं। हम आपकी पवित्र सेवा में सम्मानरूप यह अभिनन्दन-पत्र भेंट करते हुए फूले नहीं समा रहे हैं। यो तो आप अनेकों राष्ट्रीय एवं धार्मिक कार्यों को तन-मन-धन से करते रहते हैं किन्तु वर्तमान में जो आपने आबू मन्दिर टैक्स आन्दोलन को उठाकर सोती हुई हिन्दू तथा जैन जाति को उसके जातीय अपमान का ध्यान दिलाया है—वह प्रशंसनीय ही नहीं अपितु संसार के इतिहास में स्वर्णाक्षरों से लिखा जायगा।

"आबू के मन्दिरों पर सिरोही स्टेट द्वारा लगाया हुआ टैक्स टैक्स नहीं किन्तु कलंक है। यह टैक्स हमारी धार्मिक स्वाधीनता में बाधक है तथा स्वाभिमान का घातक है" आपके इस पुनीत सन्देश से जनता में क्रान्ति मच गई है और वह अब आप जैसे कर्मवीर नेता के साथ अपने धार्मिक अधिकारों के लिए सब कुछ न्यौछावर करने को तैयार है। हमारे महावीर हीरोज को आप जैसे कर्मठ नेताओं पर अभिमान है। हम आपको विश्वास दिलाते हैं कि जाति और धर्म के प्रत्येक यज्ञ में आपके निर्देश पर सदैव हर प्रकार का त्याग करने को तैयार रहेंगे।

* * *

बड़े नक्षत्रजीवी

डा० महेन्द्र सागर प्रचण्डिया
एम० ए०, पी०-एच० डी०,
खिरनीगेट, अलीगढ़

जिस प्रकार हिन्दू-समाज में व्यक्ति के दिवंगत होने पर परिजनों द्वारा श्राद्ध का आयोजन किया जाता है, उसी प्रकार सामाजिक कार्यकर्ताओं के लिए मनीषी जगत में 'स्मृति-ग्रंथ का प्रकाशन दिया जाता है।

श्राद्ध में सज्जन को असन और कहीं-कहीं पर बसन वेष्टित भी किया जाता है, किन्तु स्मृति ग्रन्थ में प्रायः प्रेरणा का इंजेक्शन भरा जाता है। यहाँ लालाजी ने अपने जीवन के पचास वर्ष—समाज, जाति, तथा धर्म के उत्कर्ष में खपा दिए, यही रहस्य— उद्घाटित होता है।

प्रत्येक अस्तित्व का महत्त्व उसके अभाव में उत्थित हुआ करता है। जब लालाजी कार्यरत रहे बहुतों ने उनकी योजनाओं के प्रति सदिच्छा व्यक्त की किन्तु अनेक ऐसे भी पाए गए जिन्होंने अनिच्छा अभिव्यक्ति की। आज वे सभी मिलकर उनके व्यक्तित्व और कृतित्व को दुहाई देते हैं—यह जगत की, जीवन की विलक्षण विडम्बना है।

समाज की सेवा करना एक व्यसन हो गया है। जो व्यक्ति व्यसन के वशीभूत होकर कुछ करते हैं मेरे दृष्टिकोण से वह काम किसी काम का नहीं मात्र ढेर है लेकिन जो इससे मुक्त होकर कुछ नव्य किन्तु भव्य कार्य-प्रणालियों की स्थापना कर प्राणी मात्र का उपकार करते हैं वह श्रम-सफल बनाता है।

मुझे जहाँ तक पता लगा लालाजी अपने काल और क्षेत्र के अनुसार अपने को ढालकर जिस तन्मयता, कर्मठता और सहनशीलता से सफलता की स्थापना कर सके हैं वह उनका समग्र तन्त्र-तत्व और मन्त्र-महत्त्व वस्तुतः श्लाघनीय है।

लालाजी नक्षत्री जीव थे। जिस प्रकार नक्षत्र अंधेरे से अन्त तक जूझता रहता है, लालाजी हरदम हर बुराइयों से झगड़ते रहें। सत्याग्रही की सदा विजय हुआ करती है। लालाजी सत्याग्रही थे। इसीलिए उन्हें अपने प्रत्येक प्रयास में सफलता प्राप्त हुई। लालाजी महान थे, वे बेमिसाल थे, साकार अनन्वय अलंकार थे।

श्रीमान लाला तनसुखराय जैन स्मृति ग्रन्थ निकालकर उनकी समूची सेवाओं, भावनाओं और कामनाओं को मूर्तरूप देने का प्रयास किया गया है, प्रसन्नता की बात है।

ऐसे सामाजिक कर्ता को मेरे करोड़ों प्रणाम पहुँचे, यही कहकर अपनी श्रद्धाञ्जलि सम्मिलित करने जा रहा हूँ।

श्रीमान देशभक्त, कर्मवीर

लाला तनसुखराय के प्रति

श्री राजेन्द्र कुमार 'कुमरेश' आयुर्वेदाचार्य
चन्देरी (मध्य प्रदेश)

देशभक्त तुममें स्वदेश का था अनुपम अनुराग ।
सदा राष्ट्र के लिए हृदय में जाग रही थी आग ।।

आगे बढ़कर स्वतन्त्रता के लिए किया संग्राम ।
किया दिखावा कभी न तुमने चाहा कभी न नाम ।।

सह न सके तुम कहीं धर्म का किंचित् भी अपमान !
लगा दिए अवसर आने पर अपने तन-मन-प्राण ।।

सदा रूढ़ियों के विरुद्ध तुम करते रहे प्रचार !
नित कुरीतियों की छाती पर करते रहे प्रहार ।।

अलख जगाते रहे जागरण का स्व-जाति में मौन ।
धर्म समाज स्वदेश हितैषी तुमसा साधक कौन ।।

कर्मवीर यश अनाकांक्षी तुम्हें न था अभिमान ।
होता रहे स-शक्त देश यह था उर में अरमान ।।

हे कर्मठ ! सेवक समाज के याद तुम्हारी आय ।
श्रद्धाञ्जलि लो आज हमारी लाला तनसुख राय ।।

★ ★ ★ ★

जैन जाति दया के लिए खास प्रसिद्ध है, और दया के लिए हजारों रुपया खर्च करती हैं । जैनी पहले क्षत्री थे, यह उनके चेहरे व नाम से भी जाना जाता है । जैनी अधिक शान्ति प्रिय हैं ।

श्री आटोरोय फिल्ड सा० कलेक्टर

बोलो जवाहरलाल

ताराचन्द 'प्रेमी'
सदस्य नगरपालिका, फिरोजपुर

धरती का बेटा धरती की नैय्या, लाया भंवर से निकाल ।
किसके सहारे छोड़ा है प्यारे, बोलो जवाहरलाल ।।
रोती है माता बिन तक बेटा, सांसों में ग्राके समाजा ।
रोती है गंगा रोती है जमुना, ग्राजा हिमालय के राजा ।।
खोकर के तुमको भूखा ये नंगा, इन्सा, हुग्रा है पामाल ।
किसके सहारे छोड़ा है प्यारे, बोलो जवाहरलाल ।।
विश्वास इतना तुम पर निछावर, जीवन के ग्रनमोल मोती ।
स्वरूप रानी के पुष्प विकसित, कमला के नैनों की ज्योती ।।
पाया था दिल तूने कितना निराला, जैसे ये सागर विशाल ।
किसके सहारे छोड़ा है प्यारे, बोलो जवाहरलाल ।।

× × × ×

मेरी एक भेंट

लगभग ग्राठ वर्ष पूर्व की बात है दिल्ली दरियागंज में वीर सेवा मन्दिर के भवन का शिलान्यास साहू शान्तीप्रसादजी के करकमलों से होने वाला था साहू जी का पालम हवाई ग्रड्डे पर स्वागत करने वालों में ला० तनसुखरायजी, ला० राजकिशनजी, बा० छोटेलालजी कलकत्ता, तथा मैं "ताराचन्द प्रेमी" चार व्यक्ति स्वागतार्थ उपस्थित थे । ला० तनसुखराय जी के परिचय में आने का मेरे लिए यह प्रथम ग्रवसर था वीर सेवा मन्दिर के इस शिलान्यास समारोह में मुझे भी एक गीत पढ़ना था, मेरे गीत के पश्चात् लालाजी ने गदगद होकर मुझ से कहा था कि प्रेमीजी, ग्रापने तो जादू कर दिया, फिर तो मुझे ग्रनेक बार उनके सम्पर्क में ग्राना पड़ा। उनके व्यक्तित्व को बहुत समीप से देखने का मौका मिला । समाज सुधार के लिए मैंने उनके हृदय में एक बे-मिसाल तड़प देखी । ग्रस्वस्थ होते हुए भी, लालाजी हर समय सामाजिक गतिविधि के लिए चिन्तित रहते । जबकि कभी मैं उनसे मिलता वह एक बात ग्रवश्य कहते कि पुण्य से तुम्हें कला का वरदान मिला है । इस कला का उपयोग ग्रधिक से ग्रधिक धर्म और समाज-सेवा में होना चाहिए ।

२२ जनवरी १६६३ को ग्रस्वस्थ होते हुए भी लालाजी मेरी पुत्री के विवाह में फिरोजपुर-झिरका पधारे । दिल्ली से बाहर जाने की सम्भवतः यह अन्तिम यात्रा थी । फिर मैं समय-समय पर ग्रनेक बार उनके स्वास्थ्य सम्बन्धी समाचार लेता रहा । उनका स्वास्थ्य गिरता ही गया ग्रौर एक दिन सुना कि लालाजी अब नहीं रहे, हृदय को बड़ा आघात पहुँचा । मैं कहूँगा कि ला० तनसुखरायजी का सम्पूर्ण जीवन सामाजिक सेवाओं का एक इतिहास रहा है, वह चले गए उनकी सेवाएँ ग्रमर रहेंगी ।

श्री तनसुखरायजी

—क्रांतिकारी नेता

श्री शीलचन्द्र जैन 'शास्त्री'
भू० पूर्व अध्यक्ष नगरपालिका, मवाना (मेरठ)

जैन समाज में फैली हुई कुरीतियों को दूर करने में जितना सहयोग लाला तनसुखरायजी का रहा है उतना कर्मठ सहयोग जैन समाज उत्थान के सिलसिले में बहुत ही कम लोगों का मिला है।

दिगम्बर, श्वेताम्बर एवं स्थानक वासी सम्प्रदायों को एकता के सूत्र में बाँधने का लाला जी का प्रयास जैन समाज के इतिहास में अक्षुण्ण बना रहेगा। लालाजी का दिल हमेशा जैन समाज के उत्थान के लिए लालायित रहता था। महगांव कांड, आबू पहाड़, एवं दस्सा पूजा अधिकार के आन्दोलन को घर-घर तक पहुँचाने का श्रेय स्व० लाला तनसुखरायजी को ही है।

अपने स्वास्थ्य की कुछ परवा न करते हुए भी देश, समाज की जो कुछ सेवाएं उन्होंने की हैं उनका अवलोकन, उनका त्याग, कार्य-कुशलता, कठोर परिश्रम एवं परोपकार भावना से आंका जा सकता है। समाज में जो कुछ भी आज सुधार दिखाई दे रहा है उसका श्रेय माननीय लालाजी को ही है। हमारी उनके लिए सच्ची श्रद्धाञ्जलि तभी हो सकती है: जब हम उनके किए हुए अधूरे कामों को संलग्नता के साथ पूरा कर सकेंगे।

मिलनसार और प्रेमी सज्जन

श्री रघुवीरसिंहजी जैन कोठीवाला
श्री जैन शिक्षा बोर्ड, कूचा सेठ, दिल्ली

ला० तनसुखराय जैन एक कर्मठ कार्यकर्ता थे। आपका कार्यक्षेत्र कांग्रेस और जैन समाज रही। मेरा आप से परिचय लगभग ३० वर्ष से था। आप हंसमुख, मिलनसार और प्रेमी सज्जन थे। श्रीमती लेखवती जैन के चुनाव को लेकर आपका कांग्रेस में विवाद प्रारम्भ हुआ जिसका अंत तिलक बीमा कम्पनी खुलने से हुआ।

आपने अपने जीवन काल में अनेक आन्दोलन उठाए उन्हें सही मोड़ दिए, सफलता आपका लक्ष्य रहा। अग्रसैन जयंती, बनस्पति घी, आबू का कर, उनमें मुख्य थे।

आपके जीवन का अधिक समय जैन परिषद में बीता, वास्तव में आप उसके प्राण रहे।

आपके कार्य की यह विशेषता रही यदि आपने महसूस किया कि किसी भी कार्य छोड़ने के उसमें प्रगति होगी तो आपने उसको सहर्ष दूसरे को सौंप दिया, सामाजिक कार्य में आपने कभी स्वार्थ का समावेश नहीं किया।

प्रतिष्ठित समाज-सेवक

देशभक्त श्री दौलतराम गुप्ता
लक्ष्मी निवास, रोहतक

सम्माननीय लाला दौलतराम जी गुप्ता पंजाब के प्रतिष्ठित समाज सेवक और कट्टर देशभक्त हैं। आपके साथ लालाजी ने समाज-सेवा का कार्य प्रारम्भ किया। आपके हार्दिक उद्गार इस बात के प्रतीक हैं कि लाला जी में समाज-सेवा के भाव प्रारम्भ से ही कितने अधिक थे जो समय आने पर विकसित होते हुए उच्चकोटि पर पहुँच गये।

लाला तनसुखराय जैन १९२७ से पहिले रोहतक से बाहर रहे थे, वह जब रोहतक में आये तो पहले भारत बीमा कम्पनी तदनन्तर लक्ष्मी बीमा कम्पनी से रोहतक में कार्यवाहक हुए थे, १९२७-२८ में मैं जिला कांग्रेस कमेटी का अध्यक्ष था, तो वह मेरे सम्पर्क में आये, और वह कांग्रेस आन्दोलन में पूर्णरूपेण वा अन्य राजनैतिक संस्थाओं (नौजवान भारत सभा सरीखी) में अपना योगदान देने लगे, तनसुखरायजी में कार्य करने की बड़ी लगन एवम् अथाह उत्साह था, और पूरी क्षमता थी। १९३० में मेरे साथ ही एक ही दिन पकड़े गये, एक साथ ही हम पर अभियोग लगा और कारावास भेज दिये गये, हम दोनों साथ-साथ ही रोहतक, लाहौर, केन्द्रीय जेल एवं मुलतान गये, कारावास में रहे, फिर साथ ही छूटे। तब हम में वह सहयोग सहवास मित्रता में परिणत हो गया १९३२ में हमने गांधीजी के आह्वाहन पर रोहतक में जिला हरिजन सेवक संघ स्थापित किया। मैं और वह उसके अध्यक्ष एवं मंत्री १९३४ तक रहे। हमने यहाँ १९३२ में हरिजन छात्रों के लिए एक छात्रावास भी स्थापित किया, जो अब भी अपनी बिल्डिंग में चालू है। १९३३ में रोहतक जिले में बाढ़ आई थी, हरिजनों की उससे बड़ी हानि हुई थी। उसकी कुछ क्षति पूर्ति के लिए हमने भरसक प्रयत्न किया था, मैं तनसुखराय जी स्वर्गवासी ला० त्रिलोकासंत जी और ला० आशाराम जी लाहौर जाकर भी कुछ धनराशि ल. सके थे और यथाशक्ति हरिजनों के कष्ट निवारणार्थ कार्य्य कर सके थे, इस सब कार्य में तनसुखराय का बड़ा योगदान था। इसके पश्चात् वह दिल्ली चले गये और वहां उनके लिए सार्वजनिक सेवाओं का विस्तृत क्षेत्र था—हमारा जन कल्याण कामों में साथ तो छूट गया, परन्तु हमारी मित्रता उनके अन्तिम दिनों तक गहरी बनी रही। मैं अधिक स्थान न लेकर अपने प्यारे तनसुखराय जी की पुण्य स्मृति में अपनी श्रद्धा के पुष्प भेंट करता हूँ।

★ ★ ★ ★

नवयुवकों के प्रेरणा-स्रोत

श्री सुल्तान सिंह जैन एम०ए०
मंत्री अ०भा०दि० जैन परिषद्-शाखा, शामली (उ० प्र०)

राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त ने कहा है—

"विचार लो कि मर्त्य हो न मृत्यु से डरो कभी,
मरो परन्तु यों मरो कि याद जो करें सभी।
हुई न यों सुमृत्यु तो वृथा मरे, वृथा जिये;
मरा नहीं वही कि जो जिया न आपके लिए।
यही पशु-प्रवृति है कि आप आप ही चरे;
वही मनुष्य है कि जो मनुष्य के लिए मरे।"

उपरोक्त पद में गुप्तजी ने स्पष्ट रूप से अंकित कर दिया है कि विश्व में उन्हीं लोगों का जीना और मरना सफल है जो दूसरों के लिए जीते-मरते हैं। जब हम लाला तनसुखरायजी के जीवन को उक्त पद की कसौटी पर परखते हैं तो वह बावन तोले पाव रत्ती सही उतरता है।

यह बात किसी से छिपी नहीं है कि लालाजी एक पुराने, तपे हुए, कर्मठ, अनुभवी, निःस्वार्थ, कर्त्तव्य-परायण, नम्र एवं लगनशील समाज-सेवक थे। निःसन्देह उनका अधिकांश जीवन समाज-सेवा, राष्ट्र-सेवा तथा जन-कल्याण में व्यतीत हुआ था।

लाला तनसुखरायजी की प्रतिभा सर्वतोमुखी थी। सभी विषयों में उनकी अबाध गति थी। यदि गम्भीरतापूर्वक देखा जाये तो ज्ञात होगा कि वे गुदड़ी के लाल थे; क्योंकि वे छिपे-छिपे वे सभी कार्य करते रहते थे जो कि महान व्यक्ति को करने चाहिए। किन्तु उनकी कभी भी यह आकांक्षा नहीं रही कि किसी भी काम के करने से उन्हें ख्याति प्राप्त होगी और लोग उन्हें महान विभूति के रूप में पूजेंगे।

जब हम लालाजी के समूचे जीवन पर दृष्टिपात करते हैं तो वह हमें चहुँमुखी पल्लवित एवं पुष्पित दृष्टिगोचर होता है। इसका प्रमुख कारण है कि उनका कर्त्तव्य-क्षेत्र ही बहुमुखी था। उन्होंने जीवन-पर्यन्त सामाजिक, राजनीतिक तथा धार्मिक क्षेत्रों में निःस्वार्थरूप से जी-जान से सेवायें की थीं। उनके जीवन की कुछ झलकियाँ देखिए :—

राजनैतिक सेवाएं:—सन् १६१६ में जिन दिनों लालाजी रेलवे-विभाग में नौकरी कर रहे थे, उन्हीं दिनों असहयोग आन्दोलन आरम्भ हो गया। आपने सरकारी नौकरी की चिन्ता न की और तुरन्त ही स्वदेशी वस्तुओं एवं वस्त्रों को अपनाने की दृढ़ प्रतिज्ञा कर ली। सन् १६२१ शेरे पंजाब लाला लाजपतराय जी की प्रेरणा से आपने सरकारी नौकरी को तिलांजली दे दी,

सन् १६२२ में स्वदेशी वस्तुओं के प्रचारार्थ आपने समिति बनाकर अनेकानेक लोगों को स्वदेशी वस्त्र तथा वस्तुओं को अपनाने के लिए प्रोत्साहित किया एवं उनसे दृढ़ प्रतिज्ञायें कराई। सन् १६२२-२४ में आप अपनी जन्मस्थली रोहतक में आकर रहने लगे थे और वहीं पर कर्मठ कांग्रेसी कार्यकर्त्ता के रूप में कार्य करने लगे थे। १६२५ ई० में आपने खादी-प्रचार का बीड़ा उठाया था और तत्सम्बन्धी एक समिति की स्थापना की थी।

लाला तनसुखराय की राजनीतिक गतिविधि यहीं समाप्त नहीं हो जाती है वरन् १६२६ में वे पंजाब की क्रान्तिकारी सोसाइटी—"नौजवान भारत-सभा" के सक्रिय सदस्य बने थे। यही नहीं, १६२७ में आप पंजाब में "मजदूर-किसान सभा" के प्रान्तीय-सम्मेलन के प्रधान मन्त्री निर्वाचित किये गये थे। १६२८ में आपको पंजाब प्रान्तीय कांग्रेस कमेटी की कार्यकारिणी परिषद् का सदस्य चुना गया था। सन् १६२६ में इण्डियन नेशनल कांग्रेस के लाहौर में होने वाले वार्षिक अधिवेशन में आपको पंजाब से प्रान्तीय प्रतिनिधि के रूप में भेजा गया था। वहाँ पर आपने स्वयं सेवकों के कप्तान के रूप में जो-जो सेवाएँ की थीं; उनकी सर्वत्र भूरि-भूरि प्रशंसा की गई थी।

सन् १६३० में जब पुनः असहयोग आन्दोलन प्रारम्भ हुआ, तब आपने रोहतक जिले में सत्याग्रहियों की भारी भरती की थी। आप ही ने उनके रहन-सहन, खाने-पीने आदि का कार्य सुचारुरूप से कुशलतापूर्वक निभाया था। प्रस्तुत आन्दोलन-कार्य में भाग लेने के कारण आपको ६ मास का कठोर कारावास भुगतना पड़ा।

सन् १७४० में आप जिला-मण्डल, देहली के प्रधान-मन्त्री तथा १६४१ में अध्यक्ष निर्वाचित किये गये थे। सन् १६४२ के "भारत-छोड़ो" आन्दोलन के अवसर पर आपने जेल जाने वाले बन्धुओं के कुटुम्बियों की भरसक सहायता एवं सेवा की थी। तभी आपने एक सोसायटी की स्थापना कर जेल-मन्त्रियों की पैरवी करने में सक्रिय भाग लिया था। सन् १६५८ में यद्यपि आप अस्वस्थ रहने लगे थे; किन्तु फिर भी आपको दरियागंज दिल्ली कांग्रेस मण्डल-कमेटी का सक्रिय सदस्य चुना गया था। यह सब कुछ लालाजी की राष्ट्रसेवा एवं राष्ट्रभक्ति के परिणामस्वरूप ही तो।

धार्मिक एवं सामाजिक सेवायें :– यह कहने अथवा लिखने की बात नहीं कि लाला तनसुखरायजी ने बड़ी धार्मिक सेवाएँ की हैं। निःसन्देह शैशव काल से ही उन्हें धर्म से अगाध प्रेम था। उनकी मनोवृति प्रारम्भ से ही धार्मिक कार्यों की ओर अनायास ही प्रवृत होजाती थी।

सन् १६०८ में जब लालाजी केवल नौ वर्ष ही थे, तब ब्रह्मचारी शीतलप्रसादजी का पंजाब में बिहार करते हुए मुल्तान में आगमन हुआ। लालाजी ब्रह्मचारीजी के पास रहते थे और उन्हीं की सेवा में रत रहते थे। सन् १६३४ में आप लक्ष्मी बीमा कम्पनी के मैनेजर होकर दिल्ली आये। इसी वर्ष अखिल भारतवर्षीय दिगम्बर जैन परिषद् का अधिवेशन दिल्ली

में हुआ और आप उसकी स्वागत-समिति के प्रधान-मन्त्री चुने गये। आपके सद्प्रयत्नों से वह अधिवेशन बड़ा सफल रहा। तभी आपके परिषद का मन्त्री चुना गया और आप उस पद पर निरन्तर सन् १९३८ तक आरूढ़ रहे। अपने मन्त्रित्व-काल में उन्होंने परिषद् का प्रचार एवं उन्नति करने में अपनी ओर से कुछ न उठा रखा। सन् १९३९ में आपने जैन कोआपरेटिव बैंक एवं जैन कल्ब की स्थापना की और उसी वर्ष वीर-सेवा मन्दिर" में मनाई जाने वाली 'वीर-शासन जयन्ती' के आप सभापति बनाये गये। उसी वर्ष आप निबखेड़ा (मध्य भारत) में भीलों की एक कान्फ्रेंस के सभापति बनकर गये और वहाँ पर आपके व्यक्तित्व एवं धार्मिक प्रेम से प्रभावित होकर ५००० भीलों ने मांस न खाने की दृढ़ प्रतिज्ञा की।

सन् १९४० में आप मुजफ्फरनगर में होने वाले परिषद् के अधिवेशन में सभापति बनकर गये थे। सन् १९४१ में जब सरकार ने दिल्ली की मस्जिद के सम्मुख जैनियों के जलूस के बाजे बजने पर रोक लगा दी थी तब आपने एक बड़ा आन्दोलन आरम्भ करके सरकार से टक्कर ली और उसमें भारी सफलता प्राप्त की। यही नहीं, सिकन्द्राबाद (उ० प्र०) नामक नगर में जब जैनियों के उत्सव में कुछ उत्पादियों ने रंग में भंग में कर दिया था, तब आपके ही प्रयास से उत्पातियों को लम्बी-लम्बी सजाएँ भुगतनी पड़ी थीं। इसी वर्ष जब आप आबू पर्वत पर वहाँ के मन्दिरों के दर्शनार्थ गये थे, तब सिरोही स्टेट द्वारा यात्रियों से भारी कर (टैक्स) वसूल किया जाता था। आपने उस टैक्स का डटकर घोर विरोध किया और कहा—"यह जैनियों पर टैक्स नहीं वरन् उन पर कलंक है। इतना ही नहीं हमारी स्वाधीनता तथा स्वाभिमान पर कठोर प्रहार है।" आपके इन प्रेरणात्मक शब्दों को सुनकर जैन समाज जागृत हो उठा और उस टैक्स को समाप्त कराके ही शान्ति की बांसुरी बजाई।

आपने दिगम्बर जैन पोलिटैक्निकल कॉलिज, बड़ौत का अपने कर-कमलों द्वारा शिलान्यास करके जैन नवयुवकों को तकनीकी शिक्षा देने की विशाल योजना का श्रीगणेश किया। जिस समय भदैनी घाट पर स्थिति स्याद्वाद महाविद्यालय, काशी के भवन को गंगा नदी के थपेड़े जर्जर कर रहे थे, तथा विशाल जैन मन्दिर की दीवारें डगडगाने लगी थीं, तब लालाजी के प्रयास एवं अथक परिश्रम के द्वारा सरकार ने उसके उद्धार के लिए पर्याप्त धनराशि देकर सहायता की थी।

लालाजी चरित्र चक्रवर्ती आचार्य शान्तिसागरजी महाराज के परम भक्त थे। आप अनेक बार उनके दर्शनार्थ जहाँ कहीं भी वे होते थे, वहीं पहुँचा करते थे।

उपरोक्त धार्मिक कार्यों के अतिरिक्त लालाजी ने वनस्पति घी निषेद्ध कमेटी, अखिल भारतवर्षीय मानव धर्म (ह्यूकोनिटेरियन) सम्मेलन, अग्रवाल महासभा, वैश्य कान्फ्रेंस, वैश्य महासभा, हरिजन आश्रम की स्थापना, मारवाड़ी सम्मेलन कलकत्ता, सेवा-समितियों, बम्बई जीव,

दया मण्डली, भारतीय वैजिटेरियन सोसायटी आदि अनेकानेक संस्थाओं की सक्रिय, निःस्वार्थरूप से सेवा की है।

लालाजी जो भी कार्य करते थे, उसको सम्पन्न करने में आप तन-मन-धन से जुट जाते थे और आशातीत सफलता प्राप्त करते थे।

६४ वर्ष की आयु में लालाजी का देहावसान हो गया; परन्तु अपने जन्मकाल में उन्होंने जो-जो भी राजनीतिक, धार्मिक एवं सामाजिक कार्य किए हैं; वे किसी भी व्यक्ति से भुलाये नहीं जा सकते हैं; अपितु भावी नागरिकों के जीवन को दीपशिखा की भांति सदैव आलोकित करते रहेंगे और उनके जीवन की पतवार के समान सिद्ध होंगे।

अन्त में, यह कहना अत्युक्तिपूर्ण न होगा कि वे जैन-समाज के ही क्या, वैश्य वर्ण के महान् सेवक, सफल कार्यकर्त्ता, नव युवकों के प्रेरक, जैन-परिषद् की अडिग शिला एवं मानवता के सच्चे पुजारी थे।

★ ★ ★ ★

तनसुखरायजी को शुभाशीर्वाद

श्री दयाशंकर ज्योतिषी
८५, मुन्नालाल स्ट्रीट, कानपुर

विधि दें बड़ाई, बाहुबल वीर्य विक्रम को,
ज्ञानमान युक्त बजरंगबली बल दें।

शंकर दें सकल सुफल मनकामना को,
जेतो भूमि वैभव सुरेश सो सकल दें।

राम रमणीयता दें कृष्ण कमनीयता दे,
अम्बिका भवानी शत्रु साहिनी को दल दे।

राजो जैन वंश अवतंस तनसुखराय,
धन दें धनेश श्रीगणेश पुत्र फल दें।

समाज सुधारक

डॉ० नन्द किशोरजी
७, दरियागंज, दिल्ली

लाला तनसुखराय जी से मेरा परिचय दस्सा पूजा अधिकार कान्फ्रेंस के अवसर पर हुआ। उसके पश्चात् हमारे सम्बन्ध बढ़ते ही गए और उनके प्रेम और प्रयत्न ने मुझे कांधला (जिला मुजफ्फरनगर) से दिल्ली बुला लिया। मैंने भाई साहब को बहुत निकट से देखा है। वे चोटी के 'आर्गेनाइजर' तो थे ही, उससे अधिक भी बहुत कुछ थे।

> डा० नन्दकिशोरजी लालाजी के साथियों में से हैं जिन्हें लालाजी की पैनी दृष्टि ने परखा और अपने साथ रख लिया। वे उत्तम कार्यकर्त्ताओं को प्रोत्साहन देते थे। इसी के फलस्वरूप महगाँव काण्ड आबू आन्दोलन आदि कामों में लालाजी को आशातीत सफलता मिली। डा० नन्दकिशोरजी के उद्‌गार प्रशंसनीय हैं। जो इस बात को बता रहे हैं कि लालाजी कितने अतिथि-परायण थे।

सन् १९४२ में जबकि वे जैन मित्र मण्डल दिल्ली के प्रधान मन्त्री थे, उन्होंने महावीर जयन्ती महोत्सव को सर्वप्रथम वह रूप दिया जिसकी नकल अब भी की जाती है। वह प्रथम ऐतिहासिक उत्सव था जिसमें जैन पंडितों और गंधर्वों के अतिरिक्त दिगम्बर और श्वेताम्बर साधुओं के भाषण हुए थे और पार्लियामेंट के जैन तथा जैनेतर सदस्यों ने भाग लिया था। आबू के प्रसिद्ध जैन मन्दिरों में प्रवेश करते समय जैन धर्म अनुयाइयों से कर लिए जाने को वह जैन समाज का अपमान समझते थे और उक्त कर से भक्ति के लिए सन् १९४२ में ब्यावर में उनकी प्रधानता में एक विशाल कान्फ्रेंस हुई थीं। उन्हें जैन धर्म और जैन समाज से कितना प्रेम था। यह इससे विदित है कि तिलक इन्शोरेंस कम्पनी से (जिसके वह मैनेजिंग डायरेक्टर थे) वेतन पाने वाले कई चोटी के कर्मचारी अपना काफी समय जैन समाज के सुधार कार्यों में लगाते थे। वे अपने साथियों पर पूर्ण विश्वास करते थे। और सदैव उन्हें आगे बढ़ाने का प्रयत्न करते थे। उनका दस्तरखान सदैव सबके लिए बिछा रहता था। ये शब्द मैंने भावुकतावश नहीं लिखे हैं बल्कि मैंने जो लिखा है वह सब स्वयं देखा है।

जैन क्षेत्र के अतिरिक्त जैनेतर क्षेत्र में भी उनकी मान्यता थी। तभी तो सन् १९५४ में दिल्ली में होने वाले हरिजन मन्दिर प्रवेश अधिवेशन में जब परिषद् विरोधियों ने वह कहना चाहा जो अशोभनीय था तो लाला तनसुखराय ने अग्रसेन दल के स्वयंसेवकों की दीवार कान्फ्रेंस के द्वारों पर खड़ी कर दी।

जिस कदर कार्य उन्होंने जैन समाज के लिए किया यदि किसी अन्य समाज में कोई व्यक्ति इतना कार्य करता तो उसका नाम धर्म स्थानों और समाज के भवनों में स्वर्ण अक्षरों में लिखा

होता। परन्तु अपना समाज व्यक्ति को सेवा और योग्यता के द्वारा नहीं बल्कि पैसे के गज से नापता है और हमारे धर्म स्थानों और समाज भवनों में उन्हीं गृहस्थों के नाम के पत्थर और फोटू लगाये जाते हैं जो उस नाप में पूरे उतरें।

प्रत्येक व्यक्ति की कुछ निजी कमियां, आकांक्षायें और विवशतायें होती हैं जो उसके द्वारा किए गए कार्यों को या तो पूर्णरूप से प्रकाश में आने में बाधक होती हैं या उनका श्रेय उल्टे या सीधे तौर से दूसरों को पहुँच जाता है।

कुछ भी हो, दस्सा पूजा अधिकार, बालविवाह विरोध, हरिजन मन्दिर प्रवेश, आबू मन्दिर टैक्स विरोध इत्यादि क्रान्तिकारी आन्दोलनों में उन्होंने प्रमुख कार्य किया था और उनके द्वारा की गई सेवायें भुलाई जाना सम्भव नहीं हैं। वे कहा करते थे मैं परिषद का एक सिपाही हूँ और जैन समाज का तुच्छ सेवक और यही उनकी महानता थी।

यद्यपि विधि के विधान के अनुसार वे हमें सदैव को छोड़कर चले गये हैं परन्तु उनकी पवित्र याद हम कभी न भूल सकेंगे।

तू न होगा तो तेरी याद रहेगी।

नेकी कर दरिया में डाल

पं० परमेष्ठीदासजी जैन, न्यायतीर्थ
मालिक जैनेन्द्र प्रेस, ललितपुर (झाँसी)

परिषद के मन्त्री ला० तनसुखराय जी जैन तो परिषद की सफलता को अपनी मुट्ठी में लिए फिरते थे। उनके रहते हुए कभी कहीं कोई अव्यवस्था, गड़बड़ी या परिषद के प्रभुत्व को डिगाने वाला कार्य हो ही नहीं सकता। उनके कार्यों, त्याग और उदारता को देखकर मेरा दृढ़ निश्चय हो गया है कि वे परिषद के प्राण हैं। समाज अभी उनके त्याग को नहीं जान सकी है। उनका त्याग बीज के बलिदान की भाँति है, जिसका बलिदान मिट्टी में मिलना किसी को नहीं दिखाई देता, किन्तु उसके फल ही दिखाई देते हैं। इसी प्रकार समाज को यह नहीं मालूम कि लालाजी परिषद के लिए चुपचाप कितना बलिदान करते रहते हैं, किन्तु परिषद की उत्तरोत्तर सफलता देखकर ही हम सब सन्तुष्ट होते रहते हैं।

मैं जहाँ तक मालूम कर सका हूँ, ला० तनसुखरायजी परिषद के लिए अपना तन-मन लगाये हुए थे। मगर वे किसी को अपनी सेवा ज्ञात नहीं होने देते थे।

लगनशील लालाजी

श्री गुलाबचंद पांड्या
भोपाल (म० प्र०)

श्री गुलाबचंदजी पांड्या भोपाल जैन समाज के सुयोग्य सेवा-भावी कार्यकर्ता हैं। और सामाजिक कार्यों में सदा अग्रसर रहते हैं। आपका लालाजी के प्रति बड़ा प्रेम रहा है।

लाला तनसुखरायजी का जन्म सन् १८६६ ई० में० दि० जैन अग्रवाल लाला जौहरीमल जी के यहाँ हुआ। आपकी माता ने आपमें बड़े ही धार्मिक संस्कार बचपन से ही ऐसे डाले कि लालाजी जीवन पर्यन्त देश, धर्म-समाज की बड़ी भारी लगन से सेवा करते रहे। जैन समाज के महान विद्वान पूज्य ब्रह्मचारी शीतलप्रसादजी से इनको सेवा करने की प्रेरणा प्राप्त हुई—मैं बचपन से ही लाला जी के प्रेरणाप्रद लेख जैन पत्रों में पढ़ता रहा—मैंने देखा—जब भी जैन समाज के किसी भी कार्य में चाहे वह सामाजिक हो चाहे धार्मिक किसी भी प्रकार की रुकावट या शिथिलता आई फौरन लालाजी का प्रेरणाप्रद बुलेटिन पत्रों में आ जाता। आपको ये पसन्द ही नहीं था कि हमारा देश गुलाम रहे। इसीलिए आप गांधीजी के असहयोग आन्दोलन में सन् १६३० ई० में कूद पड़े। आपने अपनी सर्विस से त्यागपत्र दे दिया। आन्दोलन में सक्रिय भाग लिया, फलस्वरूप आपको ६ मास का कारावास भुगतना पड़ा। आप कांग्रेस के कर्मठ कार्यकर्त्ता रहे। पंजाब कार्यकारिणी के सदस्य, मन्त्री आदि कई पदों पर रहे। दि० जैन परिषद के तो आप प्राण ही थे। आप ही के कारण कई अधिवेशन सफल हुए। आप निज की बीमा कम्पनी के डायरेक्टर थे। इसकी भोपाल में भी शाखा थी। मेरा आप से साक्षात्कार का अवसर तब आया जब आप कुछ वर्ष पूर्व ही लाला प्रेमचन्दजी कन्ट्रेक्टर (लाला राजकृष्णजी) जैन दरियागंज दिल्ली के यहाँ ठहरे थे। उसी समय विश्व में शाकाहार सम्मेलन काशी में चल रहा था। भोपाल स्टेशन से एक स्पेशल पास हुई। हमें मिशन संचालक बाबू कामता प्रसाद के पत्र से ठीक समय मालूम हुआ। मैंने लाला जी से कहा स्टेशन चलना है। फौरन तैयार हो गए साथ में गए। अंग्रेजी में उन्होंने जैन धर्म और शाकाहार पर विदेशी विद्वानों से खूब वार्तालाप किया। उस समय आपने मुझसे बातचीत के दौरान में कहा था हमारी समाज ईसाई मिशनरियों के मुकाबले धर्म प्रचार में बहुत पीछे है। हमारा धर्म पूर्णरूप से वैज्ञानिक है। जो विद्वान् इस पर मनन; अध्ययन एक बार करता है हीरे की तरह इसकी कद्र करता है। परन्तु हमारे प्रचार की कमी के कारण जैन धर्मरूपी कोहनूर हीरा सब को प्राप्त नहीं हो पाता। समाज दान देने के लक्ष्य में थोड़ा सुधार करे तो यह काम सहज ही हो जाता है। लालाजी जैसे कर्मठ वीर लगनशील आत्मा का समाज में पैदा होना बड़े गौरव की बात थी। उनके प्रति सच्ची श्रद्धांजली अर्पितु हेतु यह स्मृति-ग्रन्थ का प्रकाशन प्रशंसनीय है। मैं लालाजी के प्रति हार्दिक श्रद्धाञ्जलि अर्पित करता हूँ। समाज के युवक भाइयों का कर्त्तव्य है कि लालाजी के जीवन से प्रेरणा प्राप्त कर;

उत्साहपूर्वक जैन धर्म-अहिंसा धर्म का प्रचार, सामाजिक, कुरीतियों का निवारण करें। आज दहेज प्रथा के कारण जैन समाज का आर्थिक ढांचा अस्त-व्यस्त होता जा रहा है। लालाजी ने परिषद के माध्यम से अन्तर्जातीय विवाह का भारी प्रचार किया। फलस्वरूप आज सैंकड़ों अन्तर्जातीय विवाह हो चुके। इनको प्रोत्साहन देते रहने की आवश्यकता है। स्वर्गीय आत्मा को शान्ति लाभ हो, यही शुभकामना है।

* * *

लाला तनसुखरायजी की संक्षिप्त जीवन झांकी

श्री सुरेश कुमार जैन
दिल्ली

लाला तनसुखराय जैन एक पुराने समाज-सेवी, नम्र और लगनशील कार्यकर्ता थे। इनका अधिकांश जीवन समाजसेवा और जन-कल्याण में बीता। आपकी कार्यशैली बहुत आकर्षक थी और समाज के कठिन से कठिन कार्य करने में भी वे नहीं झिझकते थे।

ला० तनसुखराय जी का जन्म सन् १८९९ में अग्रवाल दिगम्बर जैन घराने में ला० जौहरीमल जी के यहाँ हुआ। इनके परदादा ला० छज्जूमलजी ने अपने पुत्र गनेशीलालजी के साथ गदर के बाद सन् १९६५ में रोहतक से मुलतान की ओर प्रयत्न किया। वहाँ जाकर उन्होंने सर्राफा और लेनदेन का काम शुरू किया। ला० छज्जूमलजी बहुत परोपकारी थे और उन्हें वैद्यक का बहुत शौक था। ग़रीबों को दवा मुफ्त दिया करते थे और घर जाकर रोगियों का देखते थे। अल्पकाल में उन्होंने ख्याति प्राप्त की। सरकार में भी इन्हें बहुत मान मिला। उन्हें सरकारी खजाने का खजानची बना दिया गया। इसके बाद सराफे और लेनदेन का काम बहुत समय तक इनके दादा व पिताजी भी करते रहे। १९१४ में इनके पिता ला० जौहरीमल सकुटुम्ब भटिण्डा (पटियाला) रहने लगे, और वहाँ व्यापार शुरू किया। भटिन्डा में श्री तनसुखरायजी ने १९१८ में सरकारी नौकरी की और गांधीजी के असहयोग आन्दोलन के कारण सन् १९२१ में सरकारी नौकरी छोड़कर राजनैतिक क्षेत्र में कूद पड़े।

सन् १९०८ में ब्रह्मचारी शीतलप्रसादजी मुलतान में पधारे। ला० तनसुखरायजी की बचपन से ही धार्मिक मनोवृति थी। जब तक ब्रह्मचारीजी मुलतान में रहे, वे अपना अधिक समय उनकी सेवा में बिताते रहे। तबसे जीवनपर्यन्त लालाजी की धर्म और सामाजिक कामों में लगन बराबर बनी रही।

सन् १९१४ में आपके पिता ला० जौहरीमलजी भटिण्डा से पटियाला में रहने लगे। उन दिनों पंजाब में सेवा समितियों का बहुत प्रचार था। श्री तनसुखरायजी भी वहाँ की सेवा समिति के एक स्वयं-सेवक बने। उनके उत्साह और सेवा-कार्य की सराहना सबने की और वहाँ की जनता उन्हें बहुत चाहने लगी।

सन् १९१८ में रेलवे के दफ्तर में गवर्नमेंट की मुलाज़मत में प्रवेश किया। सादगी व स्वदेशी कपड़ों से बचपन से ही प्रेम था। गवर्नमेंट मुलाजमत होने हुए भी स्वदेशी वस्तुओं का प्रयोग व स्वदेशी वस्त्रों को धारण करने की प्रतिज्ञा कर ली और राजनैतिक कार्यों में दिलचस्पी लेते रहे।

सन् १९२१ में असहयोग आन्दोलन में शेरे-पंजाब ला० लाजपतरायजी के आदेश पर गवर्नमेंट मुलाजमत को त्याग कर राजनैतिक क्षेत्र में आये। आपने ला० लाजपतरायजी के साथ तिलक स्वराज्य फण्ड एकत्रित करने में काफी काम किया। आप पर ला० लाजपतरायजी का बहुत प्रेम था।

१९२२ में स्वदेशी वस्तु के प्रचारार्थ समिति बनाकर सैंकड़ों लोगों ने स्वदेशी कपड़ा तथा वस्तुओं को धारण करने का प्रण कराया।

१९२३-२४ में आप अपने जन्म-स्थान रोहतक में आ गये और कांग्रेस के कार्य में हिस्सा लेने लगे, कुछ दिनों में वहाँ के अच्छे कांग्रेसी कार्यकर्ताओं में लालाजी की गिनती होने लगी।

१९२५ में खादी प्रचार समिति तथा हिन्दी प्रचार समिति का कार्य किया।

१९२६ में नौजवान भारत सभा जो कि पंजाब की क्रान्तिकारी सोसायटी थी, उसके सदस्य बने और सन् २७ में मजदूर किसान सभा का पंजाब प्रान्तीय सम्मेलन किया, जिसके प्रधानमन्त्री बने। उसके कारण सरकार की कड़ी निगाह हो गई और दो साल तक सी. आई. डी. इनके पीछे लगी रही।

१९२८ में पंजाब प्रान्तीय कांग्रेस कमेटी की कार्य-कारिणी के सदस्य चुने गये और १९२९ के लाहौर कांग्रेस अधिवेशन में आपको प्रतिनिधि चुनकर भेजा गया। इस अधिवेशन में आपने स्वयंसेवकों के कप्तान बनकर बड़ी सेवा की।

१९३० का असहयोग आन्दोलन में आपने बहुत सक्रिय कार्य किया, रोहतक ज़िले में सत्याग्रहियों की भरती, उनके खाने-पीने रहने व धन एकत्रित करने का सारा भार उन पर ही था। आन्दोलन में हिस्सा लेने के कारण आपको ९ मास कारावास में भी रहना पड़ा।

१९३१-३२ में हरिजन-उद्धार का कार्य जोरों से किया और हरिजन विद्यार्थियों के लिए आश्रम की नींव डाली, जिसका बहुत सारा खर्चा आप अपने पास से करते थे।

१९३३ में रोहतक जिले में बहुत जोरों के साथ बाढ़ आई। इस समय बाढ़-पीड़ितों के लिए एक रिलीफ कमेटी बनाकर कपड़ा, औषधि व धन सहायता की, जिसके मंत्री आप थे।

१९३४ में शुरू में आप लक्ष्मी बीमा कम्पनी के मैनेजर होकर दिल्ली चले आये और दिल्ली आने पर आप सेवा-कार्यों में भाग लेने लगे। उसी साल दिल्ली में अखिल भारत दिगम्बर जैन परिषद का अधिवेशन कराया, जोकि एक बहुत सफल अधिवेशन था। उसकी स्वागत समिति के प्रधान मन्त्री आप थे। अ० भा० दि० जैन परिषद के आप मंत्री भी चुने गए। सन् ३४ के बाद सन् ३५—३६—३७—३८ में अ० भा० दि० जैन परिषद का कार्य बहुत जोरों से किया और सारे भारत में धूम मचादी। और उन दिनों सतना खंडवा अ० भा० दि० जैन परिषद के अधिवेशन, इतिहास में अपना विशेष स्थान रखते हैं।

सन् ३९ में जैन को-आपरेटिव बैंक तथा जैन क्लब की स्थापना की और उसी साल सरसावा में वीर सेवा मंदिर की ओर से मनाये जाने वाले वीर शासन जयन्ती के सभापति बन कर गये। वहाँ आपने अनेकांत पत्र के दो साल के घाटे की जिम्मेदारी अपने ऊपर ली और दो वर्ष तक उस पत्र का घाटा पूरा किया। उसी साल निबखेड़ा (मध्य भारत में भीलों की एक कान्फ्रेंस में प्रधान बन कर गये। वहाँ के ५००० भीलों ने मांस न खाने की प्रतिज्ञा आपकी प्रेरणा से ली थी।

सन् ४० में जिलामण्डल देहली के प्रधानमन्त्री चुने गये। उसी साल मुजफ्फरनगर में जिला दिगम्बर जैन कान्फ्रेंस के सभापति बनकर गये। जिस समय जापान ने कलकत्ते पर कमबारी की और वहाँ से हमारे मारवाड़ी भाई कलकत्ता छोड़कर अपने देश आ रहे थे उस समय मारवाड़ी रिलीफ सोसायटी दिल्ली के मंत्री पद पर रहकर सेवा कार्य किया।

सन् ४१ में नई दिल्ली कांग्रेस कमेटी के प्रधान चुने गये। गवर्नमेंट ने मस्जिद के आगे जैनियों के जुलूस के बाजों पर पाबन्दी लगा दी थी। अभी तक जैनियों के जुलूस के बाजे मस्जिद के आगे बराबर बजते थे। इस अधिकार के लिए आपने आन्दोलन प्रारम्भ किया और सफलता प्राप्त की। इस आन्दोलन के मंत्री आप थे। सिकन्द्राबाद यू० पी० में कुछ उत्पातियों ने जैन उत्सव में बाधा पहुँचाई। आपने वहाँ जाकर उत्सव को सफल बनाया और जिन्होंने बाधा डाली थीं उन्हें सजा दिलवाई। उसी वर्ष बड़ौत के दिगम्बर जैन इण्टर कालेज का शिलान्यास आपके द्वारा हुआ। उसी साल आप आबू पर्वत पर दर्शनार्थ गये। वहाँ यात्रियों पर टौल टैक्स लगता था। उसके विरुद्ध आपने भारत व्यापी आन्दोलन प्रारम्भ किया और बड़े संघर्ष के बाद उसमें सफलता मिली। इसी वर्ष ब्यावर जैन कान्फ्रेस के प्रधान बन कर गये।

सन् ४२-४३ में कांग्रेस का भारत छोड़ो आन्दोलन प्रारम्भ हुआ आपने उसमें जेल जाने वाले भाइयों के कुटुम्बियों की सहायता की और एक सोसायटी बनाकर उन भाइयों की पैरवी की तथा सक्रिय भाग लिया।

सन् ४४-४५ में वनस्पति घी निषेध कमेटी के पद पर रहते हुए, आपने आन्दोलन किया और हजारों आदमियों के हस्ताक्षर कराकर, सरकार के पास भेजा।

सन् ४६ में अखिल भारतवर्षीय मानव धर्म (ह्यूमेनिटेरियन) सम्मेलन जिसकी अध्यक्षता श्रीमती रुकमणि देवी अरुण्डेल ने की थी, उस सम्मेलन के प्रधानमंत्री बनकर उसे सफल बनाने का कार्य किया।

सन् ४७-४८ में अग्रवाल महासभा, वैश्य कान्फ्रेंस व वैश्य महासभा तथा मारवाड़ी सम्मेलन कलकत्ता के कार्य को देहली बढ़ाकर उसका संचालन किया।

सन् ४९-५०-५१ में अग्रवाल महासभा को अधिक गति दी। उसका अधिवेशन अग्रवालों के उत्पति स्थान अमरोहा में हुआ, उसके प्रधान श्री कमलनयनजी बजाज बम्बई थे। उस अधिवेशन को सफल बनाने में प्रमुख भाग लिया। अ० भा० अग्रवाल महासभा के प्रधानमंत्री नियुक्त हुए।

सन् ५३-५४ में अ० भारतीय अग्रवाल सभा के अध्यक्ष का कार्य किया। इसी वर्ष बम्बई जीव-दया मण्डली के कार्य का दिल्ली में विशेष प्रचार किया और इस काम को बढ़ाया। साथ ही 'रविदास' जन्म उत्सव की स्वागत समिति के चेयरमैन पद पर रहकर उस उत्सव को सफल बनाया।

सन् ५५ में भारत की वेजिटेरियन सोसायटी द्वारा शाकाहार भोजन का प्रचार किया।

सन् ५६ में अ० भा० दि० जैन परिषद के देवगढ़ अधिवेशन में आपको प्रधानमन्त्री बनाया गया।

सन् ५८ में दरियागंज देहली कांग्रेस मण्डल कमेटी के सदस्य चुने गये।

सन् ५८ से अब तक आप अस्वस्थ रहते हुए भी बराबर धार्मिक, सामाजिक कार्यों में यथाशक्ति भाग लेते रहते हैं। इस प्रकार आपका पूरा जीवन सामाजिक, राजनैतिक तथा धार्मिक कार्यों में ही व्यतीत हुआ। आप समाज के कर्मठ कार्यकर्ता थे। भारत जैन महामण्डल के कार्यों में दिलचस्पी लेते रहे और उस काम को बढ़ाने में प्रयत्नशील रहे।

१४ जुलाई, १९६३ को ६४ वर्ष की अवस्था में आपका स्वर्गवास हो गया। जिससे समाज का एक तेजस्वी नक्षत्र उठ गया। लालाजी के उत्तम कार्यों की स्मृति सदा जनता के मानस पलट पर बनी रहेगी।

× × × ×

कर्मठ सेवा-भावी कार्यकर्ता

श्री रतनलाल जैन
बिजनौर

बाबू रतनलालजी जैन Ex MLA परिषद के संस्थापकों में से हैं। समाज और देश सेवा की ओर आपकी स्वाभाविक रुचि है। त्याग और सेवा की मूर्तिमान ज्योति हैं। दृढ़ कर्मठ, साहसी और निरखे हुए समाज के ऐसे रत्न हैं जिन पर जैन समाज को गौरव है। आपसे युवकों और तरुणों को बड़ा प्रकाश मिलता है। लालाजी के सम्बन्ध में लिखा गया आपका संस्मरण रोचक और पठनीय है।

श्री तनसुखराय जी से मेरा परिचय सन् १९३४ में देहली के भा० दि० जैन परिषद के अधिवेशन में हुआ था। उस समय स्वागत-कारिणी समिति के वे प्रधान मन्त्री थे। उस अधिवेशन के सभापति स्वर्गीय ला० सुमेरचन्द जी एडवोकेट थे। उस अधिवेशन का कार्य बड़ी सफलतापूर्वक सम्पन्न हुआ था। उस अधिवेशन में उनकी कार्यदक्षता देखकर परिषद ने उन्हें मन्त्री और मुझे प्रधान मन्त्री बनाया था।

श्री तनसुखराय जी ने पूरे सप्ताह के साथ परिषद के कार्य को आगे बढ़ाया। उस समय वे देहली स्थित लक्ष्मी इन्श्योरेन्स कम्पनी के मैनेजर व सर्वेसर्वा थे। श्री अयोध्याप्रसादजी गोयलीय व श्री कोमलप्रसादजी उनके साथ उपरोक्त कम्पनी में कार्य करते थे। इन दोनों सज्जनों ने सहयोग से परिषद के कार्य की प्रगति को बड़े वेग के साथ बढ़ाया।

उस समय ग्वालियर राज्य के अन्तर्गत महगांव कांड हुआ। यहां जैनियों की पूज्य प्रतिमाओं का घोर अपमान किया गया। इसके विरोध में परिषद ने आन्दोलन प्रारम्भ किया। उस आन्दोलन के वेग को तीव्र करके भारतव्यापी बना दिया। स्थान-स्थान पर जलसे हुए, भाई तनसुखरायजी ने मेरे साथ महगांव आदि स्थानों का दौरा किया। इस आन्दोलन ने जैन समाज में नया जीवन व स्फूर्ति उत्पन्न कर दी। इस युग में पहला अवसर था कि जब जैन समाज को अपनी संघ शक्ति का भान हुआ। ग्वालियर राज्य का शासन डोल गया और उसने जैन समाज से समझौता किया। वे १९४० तक मेरे साथ सहमन्त्री रहे। इस काल में सतना व खंडवा के अधिवेशन बड़े महत्व के हुए। महगांव कांड के विरोध में सफलता एवं खंडवा आदि अधिवेशनों की सफलता का श्रेय भाई तनसुखराय जी को है।

सन् १९४० में बड़ौत अधिवेशन में मेरे सभापति हो जाने एवं तत्पश्चात् असहयोग आन्दोलन में मेरे कारावास चले जाने पर भाई तनसुखराय जी ने परिषद के प्रधान मन्त्री के पद को सम्भाला और उसके कार्य को बड़ी योग्यता के साथ संचालन किया। उनकी सेवाओं को देखकर बड़ौत जैन समाज ने परिषद अधिवेशन के शुभ अवसर पर उनसे बड़ौत जैन कालिज की नींव रखवाई।

परिषद ने अपने प्रारम्भिक जीवन में अपने कार्यकर्त्ताओं के अथक परिश्रम से पुरानी सदियों से ग्रस्त जैन समाज को उनसे मुक्त किया और नवीन स्फूर्ति प्रदान की जिसके कारण जैन धर्मानुयायी जातियों में अन्तर्जातीय विवाहों को प्रचलित करके छोटी-छोटी उपजातियों के जीवन की रक्षा को जा सकी, मरण भोज आदि कुत्सित प्रथाओं को दूर किया। विवाहो में एक रोज की बारात व सामूहिक विवादों को प्रचलित करके जैन समाज की अपव्यय से रक्षा की। जिस दस्सा पूजा (विनैकबार) के मामले में प्रतिक्रियावादी जैनों ने जैनदस्सों को जिन पूजा से वंचित करके प्रातःस्मरणीय पं० गोपालदास जी वरैया आदि समाज-सुधारकों का अपमान व बहिष्कार किया था उस दस्सा पूजा को जैन समाज से मान्यता दिलाई। श्रद्धा व शुद्धता-पूर्वक आने वाले हरिजनों के लिए जैन मन्दिर के द्वार खुलवाकर जैन धर्म की उदारता का परिचय दिया। जैन समाज को प्रगतिशील व उदार बनाने का बहुत कुछ श्रेय भाई तनसुखराय जी को है।

देहली में परिषद का द्वितीय अधिवेशन लाल मन्दिर के मैदान में साहू श्रेयांसप्रसाद जी की अध्यक्षता में हुआ था। सभामण्डप जैन जनता से खचाखच भरा हुआ था सात आठ हजार जनता थी। रात्रि का समय था। हरिजन मन्दिर प्रवेश का प्रस्ताव रखा जा रहा था। उस समय प्रतिक्रियावादियों का एक समूह हुल्लड़ मचाता हुआ सभा में घुसा और मंच के पास जाकर पं० परमेष्ठीदास जी प्रस्तावक को खींचकर मंच से गिरा दिया, जल्से में गड़बड़ मच गई। परिषद के कार्यकर्त्ताओं को भी सभामण्डप में आना पड़ा। रात्रि के ११ बजे श्री राजेन्द्रकुमारजी की कोठी पर परिषद के नेता व कार्यकर्त्तागण एकत्रित हुए, सभा में प्रतिक्रियावादियों द्वारा किये गये हुल्लड़ व अधिवेशन में पास होने वाले प्रस्तावों पर विचार विनिमय हुआ। कुछ कार्यकर्त्ताओं ने कहा कि प्रतिक्रियावादियों के झगड़े से बचने के लिए यह अच्छा होगा कि हम जलसा नयी देहली के जैन मन्दिर में करके हरिजन मन्दिर प्रवेश का प्रस्ताव पास कर लें। इस पर हम दोनों (भाई तनसुखरायजी व मैंने) ने कहा कि यदि निश्चित स्थान व पंडाल को छोड़कर नयी देहली के जैन मन्दिर में जल्सा करके हरिजन मन्दिर प्रवेश वाला प्रस्ताव पास करलें, तो उसका कोई महत्व नहीं होगा, जनता यही कहेगी कि हरिजन वाला प्रस्ताव फेल हो गया। अतः जल्सा लाल मन्दिर के मैदान में निश्चित पंडाल व निश्चित समय पर ही होना चाहिए, उसके प्रबन्ध की जिम्मेदारी हम दोनों ने ली। श्री तनसुखराय जी ने उसी रात को १०० स्वयंसेवकों का प्रबन्ध किया और अगले दिन निश्चित स्थान व पंडाल को निश्चित समय पर परिषद अधिवेशन को हरिजन मन्दिर प्रवेश आदि प्रस्तावों को पास कराकर अधिवेशन को सफल बनाया।

श्री तनसुखरायजी बड़े उत्साही, साहसी, वीर व लगनशील थे। कार्य करने की क्षमता उनमें अपूर्व थी। वे बड़े मेहमान निवाज (अतिथि सत्कार) थे। अतिथियों का सत्कार करते थे। कोई दिन ही ऐसा व्यतीत होता होगा जबकि उनके यहां कोई न कोई अतिथि न ठहरा हो। ऐसे प्रेमी कार्यकर्ता के निधन से जो क्षति जैन समाज में हुई है उसकी पूर्ति निकट भविष्य में होना कठिन ही प्रतीत होती है।

लालाजी एक संस्था थे

(मधुर स्मृति)

श्री यशपाल जैन
७८, दरियागंज, दिल्ली

भाई साहब तनसुखरायजी से मेरी पहली भेंट कब और कहां हुई थी, याद नहीं आता; लेकिन एक प्रसंग आज भी मेरे स्मृति-पटल पर यथावत अंकित है। उन दिनों वे 'तिलक बीमा कम्पनी' का संचालन कर रहे थे और उनका कार्यालय नई दिल्ली में ओडियन के पास किसी इमारत में था। भाई अयोध्याप्रसाद गोयलीय उनके साथ काम करते रहे थे। उस समय का उनका वैभव और तेजस्विता आज भी भूले नहीं भूलती। पर सबसे बड़ी बात जिसने मुझे अपनी ओर खींचा, यह था कि वैभव के बीच होते हुए भी वे-उस सारे ठाठ-बाट से ऊपर थे। मुझे ऐसा प्रतीत होता है कि उनका अन्तर मानवीय मूल्यों से परिपूर्ण था।

सन् १९४६ के बाद मुझे उनके निकट सम्पर्क में आने का अवसर मिला और मैंने उनके जीवन के विभिन्न पहलुओं को देखा। जैन समाज में उनसे अधिक धनी-मानी व्यक्ति थे, लेकिन उनको जो मान प्राप्त था, वह बहुत ही कम लोगों को उपलब्ध हो सका। उनकी सामाजिक सेवाओं ने उन्हें व्यक्ति से अधिक संस्था का रूप दे दिया था। अखिल भारतीय दिगम्बर जैन परिषद के वे अनेक वर्षों तक महामन्त्री रहे थे, लेकिन सच बात यह है कि वे परिषद के प्राण थे। न जाने कितने वर्षों तक उन्होंने इस संस्था को अपने पसीने से सींचा और अपने परिपक्वानुभव से उसे गति दी। बहुत-सी प्रवृत्तियां उसके अन्तर्गत चलाईं। परिषद के अतिरिक्त और भी बहुत से लोकोपयोगी कार्य उनके द्वारा सम्पादित हुए।

समाज-सेवा की उनकी लौ कभी मन्द नहीं पड़ी। उलटे उत्तरोत्तर तीव्र होती गई। मुझे याद आता है, अपने अन्तिम दिनों में जबकि उनका शरीर साथ नहीं दे रहा था, वे वेजीटेरियन सोसायटी को लेकर कई योजनाएँ बना रहे थे। कुछ साहित्य प्रकाशन की भी बात थी।

इन सारी प्रवृत्तियों के पीछे उनकी एक ही भावना थी और वह यह कि हमारा भारतीय समाज शुद्ध और प्रबुद्ध बने। समाज की मूलभूत ईकाई मानव है और वह मानते थे कि यदि मानव का जीवन परिष्कृत हो जाय तो समाज अपने आप सुधर जायेगा। वे मूलतः धार्मिक व्यक्ति थे, और उनकी मान्यता थी कि मानव का परिष्कार धर्म के आधार पर ही हो सकता है। लेकिन स्मरण रहे कि उनका धर्म रूढ़ियों से बंधा धर्म नहीं था। वे व्यापक धर्म में आस्था रखते थे, अर्थात् वह मानते थे कि मनुष्य को सच बोलना चाहिए, सचाई का जीवन जीना चाहिए, अहिंसा का पालन करना चाहिए, संयम से रहना चाहिए, आदि-आदि। इस प्रकार उनके लिए धर्म का

वास्तविक अर्थ था चरित्र की ऊंचाई। उनका स्वयं का जीवन बड़ा उदार था और उनको इस अमोल गुण के सामने मेरा मस्तष्क बार-बार श्रद्धा से नत होता है।

वे वणिक कुल में पैदा हुए थे, लेकिन वे वणिक नहीं बहीं बने। उन्होंने बड़े-बड़े पदों पर पर कार्य किया। उन्हें जीवन में एक-से-एक बढ़कर सुविधाएँ प्राप्त कीं। यदि इनके स्थान पर दूसरा होता तो लखपति बन सकता था, लेकिन वे लखपति तो क्या, हज़ार पति भी नहीं बने। जिनकी आस्था मानवीय मूल्यों में होता है, वे धन के प्रति आसक्ति नहीं रखते और धन बिना आसक्ति के इकठ्ठा हो नहीं सकता।

उन जैसा साहसी व्यक्ति तो आज के युग में मुश्किल से मिल सकेगा। उन्हें जो बात ठीक लगती थी, उसे कहने में वह कभी नहीं हिचकिचाते थे। उन्हें आजीवन इस बात की चिन्ता नहीं हुई कि उनकी बात से कोई बुरा मानेगा। जो ठीक लगा, उसे उन्होंने साफ़-साफ कहा। चूंकि उनकी बात में दुर्भावना नहीं होती थी, इसलिए उनकी कटु-से-कटु बात भी किसी को चोट नहीं पहुँचाती थी।

परिश्रमशील तो वे हद दर्जे के थे। उच्चे स्थान पर पहुँच कर प्राय: व्यक्ति श्रम से अपने को बचाने लगता है और दूसरे के श्रम का लाभ लेना चाहता है, लेकिन भाई साहब में ये बातें नहीं थीं। वे स्वयं इतना परिश्रम करते थे कि कोई युवक भी उनके परिश्रम को देखकर लज्जा अनुभव कर सकता था। श्रम उनके जीवन का प्रमुख अंग बन गया था इतना कि वे उससे एक पल भी छुटकारा नहीं पा सकते थे।

समाज-सेवा के अतिरिक्त राजनीति में भी उनका भारी योगदान रहा। कुछ समय तक उन्होंने राजनीति में सक्रिय भाग लिया। स्वाधीनता-संग्राम की छोटी-बड़ी सभी प्रवृतियों में मदद की, जीवन के अन्तिम क्षण तक आदतन खादी पहनी, लेकिन जब उन्होंने देखा कि राजनीति में आडम्बर का समावेश आरम्भ हो गया है तो उन्होंने थोड़ा पीछे हटना अच्छा समझा। फिर भी उनसे जो कुछ बना, बराबर करते रहे। पदों के लिए उनके मन में मोह न था। वे चाहते तो किसी भी बड़े-से-बड़े पद पर पहुँच सकते थे। लेकिन चाहते तब न। वे मूक सेवक थे और उनके जीवन का लक्ष्य नि:स्वार्थ-भाव से सेवा करना था।

वे अच्छे वक्ता एवं लेखक भी थे। उनकी एक बड़ी विशेषता यह थी कि वे जो कुछ कहते थे, नाप-तौल कर कहते थे। शब्दों का आडम्बर उन्हें प्रिय न था। यही बात उनके लिखने के बारे थी। उन्हें जो कुछ कहना होता था, थोड़े से शब्दों में कह देते थे। इसलिए उनकी भाषा बड़ी गठी और मंजी हुई होती थी। उनके विचार बड़े स्पष्ट थे, इस वजह से उनकी भाषा और शैली भी स्पष्ट थी।

भाईसाहब ने लम्बी बीमारी पाई, पर वे उनसे पराभूत नहीं हुए। मुझे याद है, वे नित्य नियम से सवेरे राजघाट पर टहलने जाया करते थे। बीमारी ने जब उन्हें अशक्त कर दिया तब

भी उन्होंने साहस नहीं खोया । वे बार-बार कहा करते कि मैं जल्दी ही ठीक हो जाऊँगा और पहले की तरह राजघाट घूमने आया करूंगा । हुआ भी ऐसा ही । ज्योंही उनकी तबियत संभलने लगी, वे रिक्शा में राजघाट आने लगे और बाद में उन्होंने पैदल चलना भी शुरू कर दिया, लेकिन कौन जानता था कि वह बुझते दीपक की अन्तिम चमक थी ।

भाईसाहब चले गये, पर आज भी यह नहीं लगता कि वे हमारे बीच नहीं हैं । उनका हंसमुख चेहरा, मधुर बातें, अच्छे कार्यों के लिए उनकी लगन और न जाने क्या-क्या बातें सामने आती हैं । वे जीवन-भर समाज को देते रहे, लेने की चाह उन्होंने कभी नहीं की । यथार्थतः उनका अन्तर भरा-पूरा था ।

हमारा परम सौभाग्य था कि उन जैसा व्यक्ति हमारे बीच आया । उनको खोकर आज हम बड़ी रिक्तता अनुभव करते हैं । उनकी प्रेरणाएं हमारा मार्ग-दर्शन करती रहें, ऐसी प्रभु से प्रार्थना है ।

मैं उनकी स्मृति में अपनी विनम्र श्रद्धांजलि अर्पित करता हूँ ।

अहिंसा के प्रेमी और पशुधन के रक्षक

माननीय श्री जयन्तीलाल, मानकर

संचालक, जीवदया ह्यूमिनी लीग, बम्बई

भगवान महावीर ने उस समय राज वैभव और ऐश्वर्य को लात मारकर जैनेश्वरी दीक्षा स्वीकार की जब कि रूढिभक्त धर्म के नाम पर पशुओं को यज्ञ की धधकती हुई अग्नि में स्वर्ग प्राप्ति के लिए बलिदान कर देते थे । उन्होंने अहिंसा का बिगुल बजाया और प्राणीमात्र की रक्षा का संदेश दिया । आज भोजन और विटामन के नाम पर पशुओं का बड़ी निर्दयता के साथ बध किया जा रहा है । देश की समृद्धि का मूल स्रोत गोधन का ह्रास हो रहा है । आज देश को अहिंसा की बड़ी आवश्यकता है । पशु धन की रक्षा करना प्रत्येक का कर्तव्य है । लालाजी ने इस सम्बन्ध में महत्वपूर्ण कार्य किया, शाकाहार को प्रोत्साहन दिया और अहिंसा धर्म का प्रचार किया । मैं नेताओं का ध्यान इस ओर आकर्षित करना चाहता हूँ कि वे पशुधन की रक्षा करें । लालाजी के प्रति मैं अपनी श्रद्धांजलि अर्पित करता हूँ ।

× × × ×

तरुण-गीत

श्री कल्याणकुमारजी जैन 'शशि'
रामपुर

वीर ! भरदो फिर वह हुंकार।
मचे अवनी पर धुआँधार ॥

क्रान्ति-नर्त्तन में ले आह्लाद,
उमंगों की आएँ लहरें !
हमारे शौर्य-पराक्रम की,
पताकाएँ नभ में फहरें ॥

मिटे दुखितों का हाहाकार !
वीर ! भरदो फिर वही हुंकार।

नराधम-छलियों की सत्ता,
न जग में कहीं जगह पाए !
हमारे उर की मानवता—
बहुत सो चुकी, जाग जाए ॥

सिखादे, कहते किसको प्यार।
वीर ! भरदो फिर वह हुंकार।

समाई कायरता मन में,
रक्त का हुआ आज पानी।
मुर्दनी-सी मुँह पर छाई—
लुट गई सारी मर्दानी।

बाग फिर हो जाए गुलजार।
वीर ! भरदो फिर वह हुंकार।

न हो हमको प्राणों का मोह,
न हम कर्तव्य-विमुख जाएँ।
धर्म और देश-प्रेम-पूरित,
सदा बलिदान-गान गाएँ ॥

तभी हो जीने का अधिकार।
वीर ! भरदो फिर वह हुंकार।

शक्तिमय, बलशाली जीवन,
विश्व-मंदिर की शोभाएँ !
अहिंसा की किरणें पाकर !
प्रभाकर-तुल्य जगमगाएँ ॥

हो उठे नव जीवन संचार !
वीर ! भरदो फिर वह हुंकार।

बनें हम आशावादी सिंह,
अभय पुस्तक को सिखलाने।
बनालें अन्तरंग को सुदृढ़,
लगे उद्यम पथ अपनाने ॥

निराशा पर कर वज्र-प्रहार।
वीर ! भरदो फिर वह हुंकार।

रूढ़ियों का दुखप्रद विश्वास—
शृङ्खलाओं का पागल प्रेम।
भग्न हो सारा गुरुडम-वाद—
दृष्टिगत हो समाज में क्षेम,

बनावटहीन, स्वच्छ व्यवहार।
वीर! भरदो फिर वह हुंकार॥

धर्म पर मर मिटने की साध-
हृदय में सदा फले फूले
न सुख में, दुख में, संकट में—
हृदय उसको क्षण भर भूले ॥

यही हो जीवन का शृंगार।
वीर! भरदो फिर वह हुंकार॥

लालाजी एक योद्धा

युवकरत्न श्री सत्यंधर कुमार सेठी
उज्जैन

पं० सत्यन्धरकुमार जी सेठी कुशल-व्यवसायी और निर्भीक वक्ता है। मिशनरी भावना से ओतप्रोत जिनशासन के अनन्य भक्त हैं। जैन मिशन के सक्रिय कार्यकर्ता हैं। वे समाज के ऐसे तेजस्वी उदीयमान नक्षत्र हैं जिन पर समाज को गर्व है।

लाला तनसुखरायजी जैन का स्मृति-ग्रन्थ निकालकर दि० जैन समाज ने एक निःस्वार्थ एवं कर्मठ कार्यकर्ता के प्रति अपनी श्रद्धा का परिचय दिया है। लाला तनसुखरायजी जैन का नाम उन पुरुषों की श्रेणी में ले सकते हैं जिन्होंने देश, धर्म, समाज और राष्ट्र के लिए अपने आपको अर्पित कर दिया है। लालाजी का जन्म एक वैश्य परिवार में हुआ था, लेकिन वे यहीं तक सीमित नहीं रहे। वे राष्ट्र और समाज के एक लाड़ले पुत्र माने जाते थे।

सामाजिक क्षेत्र के पहले लालाजी का जीवन राष्ट्रीय क्षेत्र में अधिक विकसित हुआ। सन् १६१८ में लालाजी सरकारी नौकरी करते थे। ज्योंही पूज्य महात्माजी के नेतृत्व में ब्रिटिश गवर्नमेंट के खिलाफ असहयोग आन्दोलन छिड़ा, लालाजी इससे प्रभावित हुए और वे नौकरी छोड़कर निर्भीक सेनानी की तरह असहयोग आन्दोलन में कूद पड़े। यह लालाजी का पहला महान् त्याग था। उस वक्त ऐसा करना ब्रिटिश सरकार की दृष्टि में गहरा अपराध था। लालाजी प्रारम्भ से ही कर्मठ और निर्भीक कार्यकर्ता थे। आपकी कार्यशैली से बड़े-बड़े देश-नेता भी प्रभावित थे। इसलिए थोड़े से समय में ही लालाजी देशनायक पं० जवाहरलाल नेहरू व लाला लाजपतरायजी के संपर्क में आ गये। और आपने डटकर राष्ट्रीय क्षेत्र में कार्य करना प्रारम्भ कर दिया। बड़े-बड़े क्रान्तिकारी नेताओं का ध्यान भी आपकी तरफ गया। वे चाहते थे कि लाला तनसुखरायजी हमारा साथ दें। उस वक्त पंजाब में नौजवान भारत सभा एक क्रान्तिकारी संस्था थी जिस पर सरकार की कड़ी दृष्टि रहती थी। आप उसके सदस्य बने जिससे ब्रिटिश सरकार की दो वर्ष तक आपके ऊपर बड़ी दृष्टि रही। और अन्त में सन् १६३० में आपको कारावास का मेहमान बनना पड़ा।

इसके बाद आपने एक नहीं अनेकों आन्दोलनों में भाग लिया, और देश को आजादी मिली। यहाँ तक आप राष्ट्रीय क्षेत्र में अबाधरूप से कार्य करते रहे जिनमें हरिजन उद्धार हरिजनों के बच्चों के लिए आश्रम बनवाना, रोहतक जिले में बाढ़ पीड़ितों की सहायता करना व कराना। खादी प्रचार समिति व हिन्दी प्रचार समिति आदि का नाम विशेष उल्लेखनीय है।

इसके साथ-साथ आपका धार्मिक और सामाजिक क्षेत्र शून्य नहीं रहा। आप राजनैतिक क्षेत्र के योद्धा थे। फिर भी आपकी आत्मा धार्मिक और सामाजिक क्षेत्र से भी प्रभावित थी। अतः आपने राजनैतिक क्षेत्र में काम करते हुए भी सामाजिक क्षेत्र व धार्मिक क्षेत्र को गौरव नहीं दिया। सामाजिक क्षेत्र में लालाजी ने कई उल्लेखनीय सेवायें की हैं जिनके कारण जैनत्व चमका और उसकी संस्कृति का संरक्षण हुआ। लालाजी ने जैन समाज की चहुँमुखी प्रगति में योग दिया। बड़े-बड़े सामाजिक आन्दोलन किए। लेकिन दुःख है कि जैन समाज ने उनके साथ पूर्ण सहयोग नहीं दिया, और कुछ रूढ़िभक्त लोग तो अन्त तक लालाजी के विचारों का विरोध करते ही रहे लालाजी को जैन समाज में कई बार कठिनाइयों का सामना करना पड़ा है। फिर भी वे अडिग भाव से डटे रहे। वे जानते थे जैन समाज अभी बहुत पिछड़ा हुआ समाज है। वह धर्म क्या है यह भी नहीं जानता। और समाज वैसे ऊंचा उठ सकता है इसका भी विचार नहीं करता। लालाजी ने संक्षिप्त रूप में यह समझ लिया था कि जैन धर्म एक मानवतावादी धर्म है जहाँ प्राणीमात्र को अपना विकास करने का अवसर दिया गया है। धर्म-जाति-वर्ण का कोई स्थान आता नहीं। धर्म तो वस्तुतः स्वभाव है।

लालाजी के विचारों से कुछ बुद्धिजीवी लोग अवश्य प्रभावित हुए, उन्होंने एक अखिल-भारतीय परिषद के नाम से संगठन किया। और उसकी बागडोर लालाजी के हाथ में सौंप दी। लालाजी उसके महामन्त्री रहे। आपके मन्त्रित्व में परिषद के कई अधिवेशन महत्त्वपूर्ण रहे।

लालाजी जिस काम को अपने हाथ में लेते उससे वे क्यां पीछे नहीं जाते और न हटते। सामाजिक क्षेत्र में काम करते हुए भी उन्होंने कई आन्दोलन ऐसे किये जिनमें दूसरा व्यक्ति सफल नही हो सकता था। जैसे महगांव काण्ड आबू मंदिर टैक्स।

इसके अलावा लालाजी की और भी कई सार्वजनिक सेवायें हैं, जैसे जैन कोऑपरेटिव बैंक व जैन क्लब की स्थापना। नीमखेड़ा में ५००० भीलों से मांस छुड़वाना, मारवाड़ी रिलीफ सोसायटी शाखा दिल्ली के मन्त्री पद पर रह कर मारवाड़ी भाइयों की अपूर्व सेवा करना, भारत छोड़ो आन्दोलन में जेल जाने वाले भाइयों के कुटुम्बियों को मदद करवाना, बनस्पति घी निषेध आन्दोलन करना, अखिल भारतवर्षीय मानव धर्म सम्मेलन के प्रधान मन्त्री बनकर उसे सफल बनाना आदि-आदि।

लालाजी की ये सेवायें आज भी मूलरूप ले जीवित हैं और वे हमें प्रेरणा देती हैं। लालाजी वास्तव में प्रेरणा के स्रोत थे। जैन युवकों का कर्तव्य है कि वे लालाजी के जीवन से प्रेरणा लें और जिन कार्यों से उन्हें रुचि थी उनको पूर्ण करने का प्रयत्न करें। लालाजी सामाजिक रूढ़ियों के कट्टर विरोधी थे। समाज में आज भी कई रूढ़ियाँ ऐसी हैं जिनसे समाज जर्जरित हो रहा है जिनमें दहेज प्रथा का नाम विशेष उल्लेखनीय है। इस प्रथा ने समाज में इतना घर कर लिया है कि फलस्वरूप समाज की कई अबोध बच्चियों को इस प्रथा के नाम पर अश्रु बहाने पड़ रहे हैं। क्या समाज हितैषी युवक ध्यान देंगे, और इसके विरोध में अपना कदम बढ़ावेंगे। लालाजी आज भी हमको याद आते हैं। और कभी-कभी हम सोचते हैं कि यदि लालाजी आज होते तो वे कभी भी इस प्रथा को नहीं पनपने देते।

वास्तव में लालाजी एक कट्टर वीर योद्धा थे। जिनके सामने श्रद्धा से अपने आप सर नमित हो जाता है।

आन्दोलनकारी लालाजी

श्री बलभद्र जैन
आगरा

> पं० बलभद्रजी जैन समाज के ऐसे नव-पीढ़ी के विद्वान् हैं जो कलम और वाणी दोनों के धनी हैं। पिछले दो वर्षों से भारत-गौरव आचार्य रत्न देशभूषणजी महाराज के सानिध्य में रह कर आपने अच्छी कीर्ति प्राप्त की है। इससे आपका यश बढा है। हम आशा करते हैं कि समाज ऐसे प्रचारकीय भावना सम्पन्न के विद्वानों को सहयोग देकर उनसे यथोचित लाभ उठावें।

लाला तनसुखराय समाज के उन गिने-चुने सार्वजनिक कार्यकर्ताओं में से थे, जिनकी सूझ-बूझ, कार्य-क्षमता और लगन पर किसी समाज को गर्व हो सकता है। उनका सारा जीवन सार्वजनिक-सेवा में ही बीता। राष्ट्र-सेवा के क्षेत्र में उतर कर उन्होंने अपने सार्वजनिक जीवन का प्रारम्भ किया। इसके लिए उन्हें कई बार कारावास का दण्ड भोगना पड़ा। किन्तु जीवन के अन्त तक उन्होंने राष्ट्र-सेवा के व्रत से मुँह नहीं मोड़ा।

वे प्रगतिशील विचारों के समर्थक थे। रूढ़िवादिता से उन्हें घृणा थी। वे समाज का नव निर्माण करने के हामी थे। वे चाहते थे कि समाज धर्म और संस्कृति के पुरातन आदर्शों पर कायम रह कर अपने कदम युग के साथ बढ़ाये। संकीर्णताओं और निरर्थक बन्धनों में जकड़कर समाज की प्रगति को जिन मान्यताओं ने अवरुद्ध कर दिया है उन मान्यताओं को पुरातनता की दुहाई देकर कायम रखना वे कभी स्वीकार नहीं कर सके। रूढ़िगत मान्यताओं के पुनर्मूल्यांकन और उपयोगितावाद की नींव पर उनके पुनरुद्धार में उनकी गहरी आस्था थी।

उनके काम करने का अपना एक ढंग था। वे जन-मानस को आन्दोलित करने में कुशल थे। संघर्षों को स्वस्थ रूप देना, आन्दोलनों को संचालन करना, विषम परिस्थितियों में अविचल रह कर सूझ-बूझ से काम लेना ये उनकी अपनी विशेषताएं थीं। और इसे मानने में वे वास्तविक नेता कहे जा सकते हैं। आन्दोलन प्रारम्भ करने से पूर्व वे उसके परिणामों पर भली-भांति विचार करते थे। उसकी रूपरेखा बनाते समय भली-भांति निरीक्षण कर लेते थे कि छिद्र तो नहीं रह गया। तब वे समाज में फीलर फेंक कर समाज के मानस में एक परिस्पन्द पैदा करते थे। धीरे-धीरे समाज की चेतना उद्‌बुद्ध करके वे उस पर छा जाते थे। तब वे अनिवार्य समाज के लिए। इस प्रकार का ढंग उनके आन्दोलन करने का। इसीलिए उन्होंने जो आन्दोलन उठाया, उसमें पूर्णतः सफल हुए। जिस कार्य को भी उठाया, उसीको एक आन्दोलन का रूप दे दिया और समाज के मानस को उस पर विचार करने, उससे प्रभावित होने और उसमें सक्रिय सहयोग देने को विवश कर दिया। यदि उन्हें आन्दोलनकर्ता कहा जाय तो उनका सही चित्र सामने आ सकता है।

भा० दि० जैन परिषद में जीवन नहीं था। लालाजी मन्त्री चुने गये और परिषद चमक उठी। उसका विगत चैतन्य लौट आया। लोग आश्चर्य से देखने लगे। कैसा है यह जादू और इसका जादूगर, जिसने जादूगर की छड़ी लगाते ही मुर्दों में जान फूंक दी; सोई नसों में रक्त प्रवाहित होने लगा और मुर्दे जानदारों से भी बाजी मारने लगे। लालाजी के मन्त्रित्व-काल में परिषद सही अर्थों में प्रगतिशील विचारों की एक प्रतिनिधि संस्था थी। परिषद को खड़ा करने में लालाजी को जो कुर्बानियाँ देनी पड़ीं, उसका सही मूल्यांकन समाज ने कभी नहीं किया, यह इतिहास की एक दुर्भाग्यपूर्ण घटना थी। किन्तु लालाजी के मन पर इसका कभी प्रभाव नहीं पड़ा।

आबू का जैन मन्दिर शिल्प और स्थापत्य कला का बे-जोड़, अनुपम नमूना माना जाता है। वह पर्यटकों का आकर्षण केन्द्र है। सिरोही स्टेट ने वहाँ जाने वाले यात्रियों पर टैक्स लगा दिया। यह असह्य अन्याय था। इसके विरुद्ध लालाजी ने आवाज उठाई। जनता के मन में जो विरोध घुमड़ रहा था, उसे आन्दोलन का रूप दिया। यह आन्दोलन जनता का आन्दोलन बन गया। सिरोही स्टेट को घुटने टेकने पड़े और टैक्स हटाना पड़ा।

पशु-रक्षा-आन्दोलन, दहेज प्रथा विरोधी आन्दोलन, दहेज प्रदर्शन विरोधी आन्दोलन, मरण भोज विरोधी आन्दोलन, सामूहिक विवाह आन्दोलन आदि अनेकों आन्दोलन का नेतृत्व करके लालाजी ने अपनी जीवन कार्य-शक्ति का परिचय दिया। वास्तव में लालाजी का जीवन संघर्षों का जीवन रहा है और उन्होंने रचनात्मक प्रतिभा और जीवित नेतृत्व से समाज को जीवन-दान दिया है। क्या समाज-निर्माण से उनका योगदान किसी भी अर्थ में कम महत्वपूर्ण है ?

मरण जीवन का अनिवार्य परिणाम है। किन्तु जन-सेवा करके जिन्होंने अपने जीवन को सफल किया है, उनका मरण शोक नहीं; गौरव का विषय बन जाता है। लालाजी आज हमारे बीच नहीं है, किन्तु उन्होंने अपने जीवन को जन-जन की सेवा में समर्पित करके सार्थक किया था। उनका जीवन उद्देश्यपूर्ण था। इसलिए उनका मरण भी गौरवशाली और स्मरणीय बन गया है।

सामाजिक व धार्मिक सेवायें

ज्योतिष रत्न पं० रामलाल जैन
पंचरत्न, ललितपुर

स्वर्गीय लालाजी के जीवन का प्रत्येक क्षण संस्मरणीय है तथा देश, जाति, समाज और धर्मानुराग से ओतप्रोत है। विदेश तथा सामाजिक सेवाओं के लिए अपने जीवन का प्रभावक चमत्कार हमें दे गये हैं जो जीवन में प्रकाश का काम करता रहेगा।

१. देश-भक्ति के वे बड़े उपासक रहे हैं अपना जीवन स्वदेशी गाढ़े के कपड़ों से साधारणतया बिताते रहे। न कभी शौकीनी व शृंगार की भावना रही, न कभी सिनेमा, नाच, तमाशे और विलासप्रियता के जाल में वे फंसे, जेल भी गये, सब कुछ त्याग किया। बलिदान अपने जीवन का देशभक्ति में अर्पण किया। लालाजी का जीवन, निरभिमानता, सात्विक, सदाचार और सद्विचारों में व्यतीत हुआ है।

वे हमें अपने देश भक्त, कर्मवीर, सादा और सात्विक जीवन व्यतीत करने का सन्देश दे गये हैं।

२. **सामाजिक-सेवा**—लालाजी की सर्वोपरि कही जा सकती है। उन्होंने समाज के संगठन, एकता पर बड़ा भारी प्रयत्न किया और उसमें सफल भी हुए परन्तु दुर्भाग्यवश अवसर आने पर भी आ० दि० जैन महासभा, संघ और परिषद का एकीकरण न हो सका परिषद जैसी प्रगतिशील सुधार संस्था का भी जीवन बलिदान कर देने पर भी एकमात्र महासभा की छत्रछाया में ही रहना स्वीकार कर लिया। साहू शान्तिप्रसादजी जैसे धनकुबेर, उदारमना उत्साही के बार-बार प्रेरणा देने पर भी समाज का भाग्य जाग्रत न हो सका और आज भी सन्निवेश की दशा में पड़ा है। हमारे समाज-सेवी, कर्मवीर ने इस दुराग्रह और कदाग्रह की परवाह नहीं की और कार्यक्षेत्र को उत्साहपूर्ण आगे बढ़ाया। १० हजार सदस्यों की संख्या बा० लालचन्दजी एडवोकेट के नेतृत्व में सतना अधिवेशन के बाद कर संगठन कार्य किया प्रान्तीय के लिए साहूजी के अतुल धनराशि से सुसंगठित कार्य किया, परिषद द्वारा स्वीकृत प्रस्तावों को कार्यान्वित करने के लिए अपने साथियों के सहयोग से पूर्ण सफलता प्राप्त की। कुछ नाम जैसे मरण भोज की कुप्रथा का जनाजा निकाला गया, जैन धर्म पतितोद्धारक निराबाध सिद्ध है प्रत्येक प्राणी शक्ति अनुसार अपनी योग्यता से उससे लाभ ले सका है। अतः किसी को मारना, दुर्व्यवहार करना किसी भी सूरत में ठीक नहीं है। इसमें लालाजी व उनके साथियों को कटुतर अपमान के उन्मुख अनेक प्रयत्न किये गये परन्तु लालाजी का यह दृश्य देखने व स्मरण करने योग्य है। ऐसा मालूम पड़ता था मानो सीना ताने सिकन्दर बादशाह आ रहा है। मानापमान की पर्वाह न करके हताश न हुए और साथियों को सान्त्वना दिलाकर आगे बढ़ने में अग्रसर हुए, सिकन्दराबाद रथोत्सव में अपमान का चकनाचूर किया। देहली महावीर जयन्ती के अवसर पर जब जलूस के

डिक्टेटर लालाजी थे, सरकार के अनुचित प्रतिरोध पर दृढ़ता से सामना कर सफलता प्राप्त की।

(ग) महगांव काण्ड नंगा नाच धर्म-विरोधी आततायियों द्वारा ग्वालियर स्टेट में हुआ। जैन मन्दिर में प्रतिमाओं की चोरी, शास्त्रों का अग्निकाण्ड आदि होने तथा सूबेलाल जैन की मृत्यु आदि से जैन समाज क्षुब्ध हो उठा और उसकी बागडोर हमारे स्व० लालाजी ने संभाली। दर्शकों और योग्य वकीलों, बैरिस्टरों के जाने का तांता बांध दिया फलतः स्टेट सरकार ग्वालियर भयभीत होकर थर्रा गई और हमारी शानदार विजय हुई। स्टेट के इतिहास में यह मौलिक उदाहरण लालाजी छोड़ गये थे।

(घ) **आबू का आन्दोलन**—सिरोही स्टेट में हिन्दू व जैन मन्दिरों पर टैक्स देना पड़ता था। ऐसे दुराग्रह का विरोध करने के लिए ला० तनसुखरायजी ने अपनी सारी शक्ति और उसका त्याग कर सत्याग्रह की तैयारी की, दौरा किया। जगह-जगह थैलियां, मानपत्र मिले उत्साह बढ़ता गया, आखिर सफलता लेकर ही लौटे। ऐसे एक नही सैंकड़ों उदाहरण हैं जिन्हें इस साथी ने प्राणपण से साथ किया।

(च) परिषद अधिवेशन झाँसी, सतना, खंडवा, देहली, भेलसा आदि की सफलता का पूर्ण श्रेय लालाजी को है जो जैन इतिहास में सदा उल्लेखनीय रहेंगे। उन्होंने अपने जीवन में क्रान्ति से आलिंगन करना ध्येय समझा। आंधी आई, ओले बरसे, खूब तिरस्कार हुआ पर वीरात्मा इनकी परवाह नहीं करते हैं सफलता आलिंगन ही करती रही।

हमें समाज-सेवा में लालाजी की लगन, उत्साह, धैर्य का अनुसरण करना चाहिए। अथक परिश्रम करने पर भी हताश नहीं होना चाहिए। धुन का पक्का रहकर समाज-सेवा में दत्तचित्त रहना चाहिए—यह सिखा गए हैं।

धार्मिक जीवन—लालाजी धार्मिक सेवा में जैसे अग्रसर रहते थे वैसा ही उनका आचरण रहा है। कभी नाचरंग, खेल-तमाशा रेडियो पर गाना सुनना सिनेमा देखने के वे विरोधी रहे हैं। खान-पान सात्विक एवं शाकाहारी होना, सादा धार्मिक जीवन व्यतीत करना। सामाजिक कार्य अन्तिम जीवन से बहुत पूर्व करने लग गये थे। यही कारण था कि श्री शान्तिसागरजी आचार्य के अनन्य भक्त थे और भी अनेक गुणगाथाएँ हैं जिन्हें लेख बढ़ जाने से विराम देना ही उचित समझा।

लालाजी की धर्मपत्नी उनके विरह से दुःखी हैं परन्तु उनमें भी लालाजी के समान गुण विद्यमान हैं। वे महिला समाज की जाग्रति तथा जैन महिलाश्रम देहली की सेवा तन-मन-धन से करेंगी और स्व० आत्मा का आशीर्वाद पाकर उनके चरण चिन्हों पर चलकर लालाजी के नाम को अमर बनाकर उनके पदचिह्नों पर चलेंगी, ऐसा मेरा विश्वास है।

कर्मठ समाज-सेवी

श्री मोतीलाल जैन 'विजय'
अमर सेवा समिति, कटनी (म० प्र०)

राष्ट्रीय कार्यों में जैन समाज कभी पीछे नहीं रहा और न रहेगा यह बात निर्विवाद है। इतिहास साक्षी है, राणा प्रताप को हृदय से चाहने वाले नर-रत्न भामाशाह ने आर्थिक-दृष्ट्या विपत्ति आने पर सारा वैभव तथा कोष महाराणा के कर-कमलों में सौंप दिया था। मानवता की सेवा, सभी बन्धुओं में एकत्व तथा समत्व की भावना जागृत करना, संगठन तथा समाज सेवा का व्रत, निरीह, दुखी एवं कपटापन्न व्यक्तियों को सहायता प्रभृति कुछ ऐसे मानवीय कर्म हैं जिनमें हाथ बंटाकर समाज-सेवी, कर्मठ तथा लगनशील व्यक्ति अवश्य ही रुचि लेता है। परतन्त्र भारत में राष्ट्रीय भावनाओं को पल्लवित एवं पुष्पित करने तथा स्वतन्त्रता का जयघोष करने वाले राष्ट्रीय नेताओं की हुंकार को जन-जन तक पहुंचाने में लालाजी सर्वप्रथम एवं अग्रसर रहा करते थे।

राष्ट्र-सेवी महान संगठन—लालाजी में देश-प्रेम तथा सेवा भाव कूट-कूटकर भरा था। राष्ट्र-भक्ति को सर्वोपरि मानकर शासकीय सेवा को छोड़ आप गांधीजी के असहयोग आन्दोलन में सम्मिलित हो राजनैतिक जीवन व्यतीत करने लगे थे। स्वदेशी वस्तु प्रचार, खादी प्रचार, हिन्दी प्रचार, प्रभृति समितियों का संयोजन, नौजवान भारत सभा, मजदूर किसान सभा-सम्मेलन, हरिजनोद्धार, बाढ़-पीड़ितों की सहायता जैसे अनेक ज्वलन्त उदाहरण हैं जिनसे लालाजी की संगठन शक्ति का परिचय मिलता है। लाला लाजपतराय तथा जनता के हृदय-सम्राट पं० नेहरू जैसे अग्रणी नेताओं का स्नेह व सक्रिय साथ से लालाजी ने विभिन्न जिलों में प्रभूत ख्याति अर्जित की थी। उनका स्वभाव अत्यन्त मृदुल, सरल तथा निष्कपट था।

शाकाहार का प्रचार उनके जीवन का महत्त्वपूर्ण कार्य रहा है। सच्चे कांग्रेस सेवक के रूप में उन्होंने जन्मस्थान रोहतक तथा भटिण्डा, एवं अधिकांश समय भारत की राजधानी देहली में दिया था। सन् १९४१ में नई दिल्ली कांग्रेस समिति का प्रधान चुना जाना इस बात का द्योतक है कि उनमें अपूर्व संगठन शक्ति थी।

महान समाज-सेवक—सच्चे स्वतन्त्रता संग्रामी होने के साथ ही लालाजी में धर्म तथा जाति की उन्नति की भावना अपने उदारमना माता-पिता से धरोहर के रूप में मिली थी। इस युग के दि० जैन समाज के निर्माता, ब्र० शीतलप्रसादजी तथा बैरिस्टर चम्पतरायजी जैसे क्रान्तिकारियों तथा समस्त भारत के आध्यात्मिक सन्त आचार्य शान्तिसागरजी महाराज का प्रभाव आपके हृदय पर पड़ा। तदनुसार आपने अखिल भारतवर्षीय दिगम्बर जैन परिषद के माध्यम से जैन समाज तथा जैन धर्म में व्याप्त रूढ़ियाँ, वाद-विवाद, समस्याएं और उनका समाधान ही अपना ध्येय बना लिया था। राष्ट्रीय संगठनों में जहाँ वे अत्यन्त निपुण थे, जातीय संगठन में उतने ही

निष्णात। अहिंसा का प्रचार, माँसाहारियों को माँस की दुरुपयोगिता सहीरूप से समझाकर मांस का त्याग कराना जैसा कठिन कार्य, महावीर जयन्ती पर सार्वजनिक अवकाश दिलाने का प्रयास, वस्त्र औषधि का बाढ़-पीड़ितों के लिए निजी व्यय, धार्मिक कार्यों में पूर्ण अभिरुचि, मिलावट विरोधी कान्फ्रेंस (सभा) का संगठन, वाराणसी स्थित भदैनीघाट के शासन की सहायता से कार्य, दिगम्बर जैन कालेज बड़ौत की उन्नति में रुचि जैसे अनेक कार्य हैं जिनमें लाला तनसुखरायजी हृदय से कार्य करते थे तथा उनकी सफलता के लिए दिन-रात व्यस्त रहते थे।

युवकों के पथ-प्रदर्शक–

अखिल भा० दि० जैन परिषद, भारत जैन महामण्डल, वैश्य कान्फ्रेंस, अग्रवाल सभा, भारत शाकाहारी परिषद के आप परम हितैषी थे। जैन नवयुवकों में प्रेरणा, उत्साह तथा लगन की प्रेरणा आप 'जैन मित्र' आदि पत्रों तथा उपरिलिखित परिषदों के माध्यम से सदैव देते रहते थे। उन्होंने अपने ६४ बसन्तों के प्रारम्भिक बसन्त क्रान्तिकारी के रूप में बिताए थे। सत्य को सत्य कहते हुए भी यदि अंग्रेजों ने बर्बरता का परिचय दिया तो हमारे स्वतन्त्रता प्रेमी नवयुवक मस्तक ऊँचा ही किए रहे हैं। उन्हीं तरुणों में लालाजी भी थे।

महात्मा गाँधी के आह्वान मात्र पर भारत के कितने ही युवक असहयोग आन्दोलन सम्मिलित हो गए थे। लालाजी में धार्मिक संस्कार बाल्यावस्था से ही थे अतः धर्म व जाति के नाम पर अत्याचार वे देख नहीं सकते थे। आबू पर्वत पर टौल टैक्स का बन्द करवाना, दिल्ली स्थित मस्जिद के आगे से जुलूस के बाजों के ले जाने की मनाही पर न्यायिक जांच करवाना, कोई भी सामाजिक आपत्ति आने पर भारतव्यापी समर्थन लेकर उसका सही निर्णय कराना—इन सब सामाजिक कार्यों में वे आगे रहते थे।

विगत दिनों में जैन समाज पर हुए अत्याचारों जबलपुर में दि० जैन मन्दिर, जैन बन्धुओं की दूकानों पर आक्रमण, खाजियाधाना में जैन मूर्त्तियों के सिर उतारा जाना, पुरलिया (प० बंगाल) में स्व० १०८ मुनि चन्द्रसागरजी के शव के साथ दुर्व्यवहार आदि का उल्लेख करते हुए लालाजी जैनमित्र के श्रावण सुदी ६ वी० सं० २४८८ के अंक में नवयुवकों से अपने हृदय की टीस "जैन समाज, चेत" इस शीर्षक में इस प्रकार व्यक्त करते हैं—"जैन समाज के नवयुवको! समाज का भविष्य बनाने वालो! तुम्हें क्या हो गया? क्या तुम्हारी रगों में खून नहीं रहा और स्वाभिमान नहीं जहां जो धर्म पर कुठाराघात चुपके-चुपके सहन कर रहे हो और जोश नहीं आता। मुझे यह कहने में जरा भी संकोच नहीं कि यदि हमने करवट न बदली तो भारत देश जीवित नर-नारियों का देश न रहकर केवल पहाड़ों, नदियों तथा शहरों में खड़ी गगन-चुम्बी अट्टालिकाओं का एक देश रह जाएगा। देव, शास्त्र, गुरु की रक्षा का प्रश्न जैन समाज के लिए आज एक बड़ी चिन्ता का विषय है।"

जैन समाज में संगठन का अभाव उन्हें सदा खलता रहा। उनके विचार इसी लेख में आगे इस प्रकार हैं—"जैन समाज के अखिल भारतवर्षीय संस्थाओं के पदाधिकारियों, विद्वानों, त्यागियों और समाज के प्रमुख महानुभावों से मेरा नम्र निवेदन है कि वह समय को पहचानें और एकचित्त होकर समाज का संगठन बनायें। यदि समाज संगठित हो गई तो आपका धर्म सुरक्षित रह सकेगा, यदि अब भी न चेते तो फिर कुछ न होगा। "फिर पछताए क्या होत है, जब चिड़ियाँ चुग गईं खेत ॥"

लालाजी जैन समाज के भारत व्यापी संगठन को सक्रिय रूप देना चाहते थे जो उनके जीवित रहते न हो सका। समाज-सेवा तथा धर्म-प्रेम उनकी नस-नस में हिलोरें लेता था। उनके हृदय की भावना का सुन्दर दर्शन, एक लेख "जैन समाज के संगठन का रूप कैसा हो" में होता है—

"अ० भा० दि० जैन महासभा, परिषद और भा० दि० जैन संघ अपने-अपने ढंग से अपने-अपने उद्देश्यों का अपने-अपने में प्रचार कर रहे हैं। परन्तु दुःख इस बात का है कि समाज या धर्म पर जब कोई संकट आता है तो एक-दूसरे के मुंह की तरफ झांकते हैं। इसका मुख्य कारण यह है कि भारतवर्ष में दि० जैन समाज का कोई एक प्लेटफार्म नहीं, कोई एक नेता नहीं और न ही तमाम समाज का प्रतिनिधित्व करने वाली समिति ही है।"

उन्हीं के आगे ये शब्द हैं—"मेरा यह सुझाव है कि तमाम भारतवर्ष के दि० जैन समाज का एक प्लेट फार्म हो, एक आवाज हो और प्रतिनिधित्व करने के लिए एक संयुक्त दि० जैन समिति बनायी जानी चाहिए, जो कि तमाम समाज का नेतृत्व करे। इस समिति में सभी अ० भा० दि० जैन संस्थाओं के दो-दो चार-चार प्रतिनिधित्व संस्थाओं की कार्यकारिणी द्वारा चुनकर भेजे हुए सज्जनों को संयुक्त समिति का सदस्य बनाया जाय।

इस प्रकार 'बहुजन हिताय बहुजन सुखाय' की सर्वोच्च भावना से किये गये राष्ट्रीय, सामाजिक, राजनैतिक अथवा धार्मिक कार्य लालाजी की सच्ची निशानी है। वे अहिंसावादी, शाकाहार के पोषक तथा अपने लेखों के माध्यम से युवक, वृद्ध, नारियों सभी को सहज एवं सुकर मार्ग दर्शन देते थे। ऐसे कर्तव्यनिष्ठ, कर्मठ, राष्ट्र, समाज तथा धर्म-सेवी महानर को हमारी भावपूर्ण श्रद्धांजलि !!

★ ★ ★ ★

स्मृतियां और श्रद्धांजलि

श्री श्यामलाल पांडवीय
मुरार, ग्वालियर

जैन समाज के अमूल्य रत्न बाबू तनसुखराय जैन से मेरा सम्बन्ध गत ३० साल अर्थात सन् ३५ से उनकी मृत्यु तक रहा है। समाज भूला नहीं होगा जब आज से ३० वर्ष पूर्व सन् १९३५ में भूतपूर्व ग्वालियर राज्य में जैन धर्म और जैन समाज पर एक बड़ा संकट आकर उपस्थित हो गया जो महगांव काण्ड के नाम से सारा जैन समाज परिचित है। महगांव के जैनियों द्वारा जिन भगवान का रथ तथा समोशरण माधव जयन्ती के लिए माधव महाराज की तसवीर को बिठाकर निकालने के लिए देने से इन्कार कर दिया था और उस पर से क्रुद्ध होकर जैन मन्दिर की प्रतिमाओं का खण्डित किया गया था और जैन धर्म तथा जैन शास्त्रों का अपमान किया गया था जैनियों का वहां रहना कठिन हो गया था। मैं उन दिनों ग्वालियर राज्य जैन ऐसोसिएशन का मन्त्री था। दि० जैन परिषद के दिल्ली अधिवेशन में इस प्रश्न को लेकर दिल्ली अधिवेशन में सहायता करने की माँग लेकर गया था अधिवेशन का अन्तिम दिन था, अधिवेशन समाप्त होने जा रहा था। मैंने सब परिस्थिति रखकर इस संकट में सहायता करने की माँग की पर सब सुनकर रह गये। अधिवेशन खतम हो गया है अब क्या हो सकता है आगे इसे देखेंगे। मैं निराश हो गया आँखें डबडबा आईं कि राजा के डर से कोई सहायता करने का साहस नहीं कर रहा है। इतने में एक तेजस्वी युवक अचकन और चूड़ीदार पायजामा पहिने चेहरे पर मुस्कान तेजस्वी रूप तपक कर सामने आ गया और पूछने लगा कहिये क्या संकट है। यही थे बाबू तनसुखराय और यही था मेरा सन् १९३५ में इस प्रसंग को लेकर मेरा सर्वप्रथम परिचय और तब से मृत्यु दिन तक हम बराबर साथी और मित्र बने रहे।

लाला तनसुखराय ने सारी हालत सुनकर जोर देकर कहा कि हमको सहायता करनी चाहिए और करेंगे। कभी पीछे नहीं हटेंगे और इसके विरोध में परिषद का प्रस्ताव कराया और महगांव काण्ड का आन्दोलन चलाकर सारी जिम्मेदारी ले ली और अन्त तक बड़ी लगन और शक्ति से इसको सफल बनाया।

लाला तनसुखराय के प्रयत्न से परिषद ने भारत-व्यापी जोरदार आन्दोलम उठाया। फलस्वरूप सारे देश में जैन समाज में आग लग गई। जगह-जगह पर महगांव काण्ड विरोधी दिवस मनाया गया, विरोध में जलूस निकाले गये और प्रस्ताव पास किये जाकर ग्वालियर राज्य तथा भारत सरकार को भेजे गये। जैन समाज में यह पहला अवसर था जब उसने संगठित होकर अपनी शक्ति का परिचय दिया। इस अत्याचार के प्रतिकार करने के इस प्रयास से राज्य का आसन डोल गया। इसकी सफलता का सारा श्रेय तनसुखराय को ही है। वे यदि आगे बढ़कर इसको अपने हाथ में नहीं लेते तो न जाने जैन धर्म और जैनियों पर वहाँ क्या बीतती।

बात यहीं पर समाप्त नहीं हुई। ग्वालियर सरकार ने चिढ़कर जैनियों पर मुकद्दमा चलाया जिसकी पैरवी का परिषद की ओर से सारा प्रबन्ध तथा व्यय उठाकर सफलता प्राप्त करने में भी बाबू तनसुखराय का ही प्रयत्न था। श्री दलीपसिंह वकील को तो कई महीनों तक निरन्तर वहाँ रहना पड़ा। लाला श्यामलाल गवर्नमेंट एडवोकेट, बाबू लालचन्दजी आदि वकीलों की सहायता और सहयोग आपके ही सद्प्रयत्नों का फल था इस प्रान्त के आसपास इससे जैनियों की काफी धाक बैठी, उनकी प्रतिष्ठा बढ़ी और फिर किसी को जैन मन्दिर, जैन धर्म और जैनियों को अपमानित करने का हौसला नहीं हुआ। इस क्षेत्र तथा उसके आस-पास के क्षेत्र की जैन जनता उन्हें सदा याद करती रहेगी। उनकी याद वह कभी नहीं भूल सकेगी। बाबू तनसुखराय को इस सम्बन्ध में अनेकों बार आना-जाना पड़ा, व्यवसाय की हानि उठानी पड़ी, कष्ट भी उठाना पड़ा पर मैंने न कभी उत्साह में कमी पाई और न थकान। ऐसे कर्तव्यपरायण बाबूजी का असमय उठ जाना समाज की महान् क्षति है जो पूरी नहीं हो सकती। मुझे महगांव काण्ड के सम्बन्ध में पूरे दो साल तक उनके साथ काम करने और साथ रहने का सौभाग्य प्राप्त रहा। उस आधार पर मैं कह सकता हूँ कि उन जैसे कर्मठ, क्रियाशील और उत्साही नेतृत्व प्रदान करने वाले व्यक्ति समाज में बहुत कम होंगे। खेद इस बात का है कि समाज उनकी योग्यता और क्षमता का पूरा लाभ नहीं उठा सका। वे आज से तीस वर्ष पहिले दि० जैन परिषद में आये और उसको काफी बल प्रदान किया।

वह किसी भी परिस्थिति से न घबराते थे और न हार मानते थे। साहू श्रेयांसप्रसादजी जैन की अध्यक्षता में होने वाले दिल्ली अधिवेशन में रात्रि को जब ललितपुर के बा० परमेश्वरीदास जैन मन्दिरों में हरिजन प्रवेश का प्रभाव प्रस्तुत कर रहे थे तब प्रतिक्रियावादियों के झुण्ड ने जलसे में घुसकर पण्डितजी को धक्का देकर मंच से गिरा दिया और हुल्लड़ मचाकर जलसा छिन्न-भिन्न कर दिया और ऐसी परिस्थिति बन गई कि परिषद के नेताओं को भी जलसा छोड़कर जाना पड़ा। तब बाबू तनसुखराय ने हिम्मत नहीं हारी। रात्रि को घूम-फिर कर स्वयंसेवकों का प्रबन्ध किया और दूसरे दिन उसी स्थान पर उसी मण्डप में दिन के समय शान के साथ हरिजनों का मन्दिर में प्रवेश का प्रस्ताव पास कराकर ही छोड़ा। परिषद की शक्ति और बढ़ी और प्रतिक्रियावादियों के साहस ढीले पड़ गये।

सन् १९३४ में दिल्ली अधिवेशन में वे परिषद के प्रधान मन्त्री चुने गये। सन् १९३५-३६-३७-३८ इन चार सालों में परिषद के कार्यों को इतनी गति दी कि परिषद का प्रभाव देश-व्यापी हो गया। सतना और खंडवा के सफल अधिवेशनों ने परिषद में एक नई जीवन-शक्ति फूंकी। परिषद का कार्य उन्होंने खूब बढ़ाया और मरते दम तक परिषद के हर कार्य में वे सदा सहायक रहे।

जैन समाज की ओर परिषद को उनके न रहने से काफी हानि उठानी पड़ी है। परिषद के कार्य को आगे बढ़ाने में उन्होंने उनका सदा साथ दिया। उन्होंने भारत के स्वतन्त्रता आन्दोलन में बड़ा योगदान देकर जैनियों का मस्तक ऊंचा किया है। कांग्रेस के एक कर्मठ कार्यकर्ता थे

और कांग्रेस में उनकी काफी प्रतिष्ठा थी। उनकी प्रतिभा चौमुखी थी, गजब की काम करने की शक्ति, सूझ-बूझ, कठिनाई में रास्ता निकालने की बुद्धि सदा मुस्कराता चेहरा, काम करने की लगन, सदा उनकी याद दिलाती रहेगी।

स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद मैं मध्यभारत का मन्त्री बना। मेरे लम्बे मन्त्रिकाल में भी मेरा उनका सहयोग सार्वजनिक कार्यों में बराबर रहता रहा। भारत के इस सपूत और जैन समाज के योग्य नेता के असमय में उठ जाने से जो क्षति हुई है वह सहज में पूरी होने वाली नहीं है। मैं उनके प्रति अपनी नम्र श्रद्धांजलि इस अवसर पर भेंट करके अपने को धन्य मानता हूँ। उनकी स्मृतियाँ मेरे हृदय पटल पर सदा अंकित रहेंगी जो मुझे प्रेरणा देती रहेंगी।

परिषद् के प्रमुख संस्थापक

जैनबिम्ब प्रतिष्ठा महोत्सव के अवसर पर देहली में ता० २६ जनवरी सन् १९२३ को श्री भा० दि० जैन महासभा का अधिवेशन श्री खण्डेलवाल सभा के मण्डप में हो रहा था। श्रीमान् साहू जुगमन्दिरदासजी ने "जैन गजट" के उपसम्पादक के लिए स्व० बाबू चम्पतरायजी बैरिस्टर का नाम पेश किया। इसका समर्थन डा० निर्मलकुमारजी ने किया; किन्तु कुछ सज्जनों ने माननीय बैरिस्टरजी (जो महासभा के सभापति पद को सुशोभित कर चुके थे और उन्होंने अपने सभापतित्व में महासभा की श्लाघनीय सेवाएं की थीं) को अयोग्य शब्द कहे, जिनसे झलकता था कि वे बैरिस्टरजी को जैनधर्म का अश्रद्धालु, प्रमाणित कर रहे हैं। इस अयोग्य बर्ताव से अनेक जनों का मन महासभा के अधिवेशन में सम्मिलित होने से उदास हो गया। इसी कारण वे लोग रात को महासभा की सबजेक्ट कमेटी में सम्मिलित न होकर सामाजिक-उन्नति तथा धर्म-प्रचार के लिए एक अन्य संगठन का विचार करने में लग गये। इन सज्जनों की दूसरे दिन २७ जनवरी को सभा हुई। इस दिन की कार्यवाही 'जैनमित्र' वर्ष २४, अंक १४, पृष्ठ १९४ पर जो प्रकाशित हुई थी, वह इस प्रकार है—

दिगम्बर जैन परिषद की स्थापना

देहली में ता० २७ जनवरी सन् १९२३ ई० को राय साहब बाबू प्यारेलालजी वकील देहली के डेरे में एक जलसा होकर निश्चित हुआ था कि—इस जल्से के सभापति रायबहादुर ताजिरुलमुल्क सेठ मणिकचन्दजी झालरापाटन सर्वसम्मिति से निर्वाचित किए जावें। सेठ साहब ने सभापति का आसन ग्रहण किया, तत्पश्चात् निम्नलिखित प्रस्ताव सर्वसम्मति से निर्णीत हुए :—

नं० १—दि० जैन धर्म के प्रचार और जैन समाज की उन्नति के उद्देश्य से भारतवर्षीय दि० जैन परिषद नाम की संस्था स्थापित की जाये।

नं० २—रायबहादुर ताजिरुलमुल्क सेठ मणिकचन्दजी इस परिषद के सभापति निर्वाचित किये जावें। श्रीयुत बैरिस्टर चम्पतराय मन्त्री और श्रीयुत रतनलालजी B.A. LL.B. बिजनौर और बाबू अजितप्रसादजी वकील लखनऊ सहमन्त्री और श्रीयुत ला० देवीदास (सभापति स्थानीय जैनसभा लखनऊ) कोषाध्यक्ष नियत किये जावें।

नं० ३—इस परिषद का एक पाक्षिक मुखपत्र हिन्दी भाषा में "वीर" नाम से प्रकाशित किया जावे। निम्नलिखित महाशयों ने इस परिषद का सदस्य होना स्वीकार किया और सूची पर हस्ताक्षर कर दिये।

नामावली

१. जैनधर्म भूषण, ब्रह्मचारी शीतलप्रसादजी, २. ब्रह्मचारी छोटेलालजी भरतपुर, ३. रा० ब० सेठ माणिकचन्दजी सेठी झालरापाटन, ४. बा० चम्पतराय जैन बैरिस्टर एट-ला हरदोई, ५. बा० ज्योतिप्रसाद जैन सं० "जैनप्रदीप" देवबन्द, ६. रा० ब० ला० द्वारिकाप्रसादजी रईस नहटौर, ७. ला० शिखरचन्द मार्फत ला० देवीदास मदनलाल गोटेवाले लखनऊ, ८. रायबहादुर ला० सुल्तानसिंह दिल्ली, ९. सुमतलालजी मन्त्री, स्याद्वाद महाविद्यालय काशी, १०. बा० फतहचन्दजी जौहरी चौक लखनऊ, ११. ला० बरातीलालजी जैन यहियागंज लखनऊ, १२. ला० जुगलकिशोर मार्फत ला० बंशीधर कुन्दलाल यहियागंज लखनऊ, १३. ला० मंगलसेन मार्फत ला० बद्रीदास छेदीलाल चौक लखनऊ, १४. ला० सुन्दरलाल गोटेवाला चौक लखनऊ, १५. महेन्द्रजी, सम्पादक "जैसवाल जैन" आगरा, १६. रामस्वरूप भारतीय जारखी आगरा, १७. बा० कपूरचन्द जैन मालिक महावीर प्रेस आगरा, १८. श्री चिरंजीलाल जैन बी० ए० हेडमास्टर त्रिलोकचन्द हाई स्कूल इन्दौर, १९. केशरलाल अजमेरी मालिक केशरलाल सुन्दरलाल त्रिपोलिया बाजार जयपुर, २०. गेंदीलाल गंगवाल मार्फत केशरलाल सुन्दरलाल त्रिपोलिया बाजार जयपुर, २१. मोहनलाल जैन मार्फत केशरलाल सुन्दरलाल त्रिपोलिया बाजार जयपुर, २२. रघुनाथसहाय जैन, झाँसी, २३. बाबूलाल जैन टूंडला, २४. पं० जुगलकिशोरजी सरसावा जि० सहारनपुर, २५. डा० भागीरथप्रसाद फैजाबाद, २६. रामचन्द जैन, बी० ए०, बी० एस० जालन्धर, २७. जम्बूप्रसाद देवबन्द, २८. बालमुकन्द जैन बी० ए० मार्फत सर सेठ हुकमचन्द इन्दौर, २९. हीरालालजी जैन एम० ए० एल-एल०-बी रिसर्च स्कालर प्रयाग, ३०. जमुनाप्रसाद जैन बी० ए० जैनहोस्टल प्रयाग, ३१. वैद्यरत्न पं० मित्रसेन अजमेर, ३२, बलवीरचन्द्र जैन मुजफ्फरनगर, ३३. धर्मचन्द जैन डीग (भरतपुर), ३४. कपूरचन्द जैन डीग (भरतपुर), ३५. केशवदेव रेजावाला जैनी डीग (भरतपुर), ३६. सोनपाल छोटेलाल जैन डीग (भरतपुर), ३७. झमनलाल जैन कामा (भरतपुर), ३८. श्रीचन्दजी जैन मुजफ्फरनगर, ३९. विशम्भरदासजी लाहौर, ४०. मुन्नीलाल माणिकचन्द्र कलकत्ता, ४१. ला० अमरचन्द जैन जसवन्तनगर,

४२. राजाराम जैन कुरावली, ४३. मनोहरलाल जैन अम्बाला, ४४. बिश्वम्भरदास गार्गीय झाँसी, ४५. न्यामतसिंह सेक्रेटरी डि० बो० हिसार, ४६. चेतनदास हेडमास्टर मथुरा, ४७. बद्रीदास जैन वकील बिजनौर, ४८. शंकरलाल वैद्य मुरादाबाद, ४९. माईदयाल जैन हिन्दू कालिज देहली, ५०. सी० एस० मलिनाथ सं० "जैन गजट" मद्रास, ५१. अनूपसिंह जैन सदर बाजार देहली, ५२. कनकुमार जैन बोर्डिंग इन्दौर, ५३. कपूरचन्द जैन बोर्डिंग इन्दौर, ५४. ब्रजभूषणलाल जैन हरिौदी, एटा, ५५. आदीश्वरलाल जैन देहली, ५६. दलीपसिंह खजान्ची ताता बैंक हापुड़, ५७. प्यारेलाल कासलीवाल, बी० ए० कौंसिलर जयपुर, ५८. चन्दमलजी रायबहादुर अजमेर, ५९. सेठ ताराचन्दजी नसीराबाद, ६०. सुमेरचन्द सेक्रेटरी जैन सभा शिमला, ६१. लट्टूरमल जैन कोसी, ६२. कुन्दनलाल हेडमास्टर भरतपुर, ६३. खेतीलाल कामा, ६४. मानमल काशलीवाल ७८, क्लाइव स्ट्रीट कलकत्ता, ६५. लछमनलाल मुन्शीराय जयपुर, ६६. दुलीचन्द परवार कलकत्ता, ६७. श्यामलाल पाढ़मीय मुरार ग्वालियर, ६८. अतरसेन जैन मेरठ, ६९. फूलचन्द जैन बिल्सी जि० बदायूं, ७०. बद्रीप्रसाद जैन, जैन कम्पनी मथुरा, ७१. सुगनचन्द जैन आगरा, ७२. सुगनचन्द जैन घीयामण्डी मथुरा, ७३. रा० ब० मोतीसागर जज लाहौर, ७४. रायसाहब बा० पार्श्वदास, दिल्ली, ७५. कन्हैयालालजी मथुरा, ७६. गुलाबचन्द सेठ की कोठी मथुरा, ७७. रतनलाल जैन डीग भरतपुर, ७८. मूलचन्द किशनदास कापड़िया सूरत, ७९. यादव दाजीवा श्रावणे वर्धा, ८०. रघुनन्दनप्रसाद साहू अमरोहा, ८१. चन्द्रलाल जैन फीरोजपुर, ८२. कामताप्रसाद जैन देहली, ८३. शिवनारायणलाल जैन जसवन्त नगर, ८४. जैनेन्द्रकुमार जैन नागपुर, ८५. उत्तमचन्द जैन मेरठ शहर, ८६. नेमीचन्द जैन मुरादाबाद, ८७. हीरालाल जैन प्रेसीडेंट जैन समाज शिमला, ८८. ज्योतिषरत्न जियालाल जैन फर्रुखनगर, ८९. अर्हद्दास पानीपत, ९०. नैनीदास वाइस प्रेसीडेंट जैनसभा शिमला, ९१. बख्तावरसिंह रोहतक, ९२. सिंघाई बंशीलाल पन्नालाल अमरावती, ९३. शम्भूदयाल चांदनी चौक देहली, ९४. ऋषभदास बी०ए० वकील मेरठ।

ये देश के भिन्न-भिन्न स्थानों के ९४ जैन प्रमुख व्यक्तियों के हस्ताक्षर हैं जिन्होंने परिषद की स्थापना की थी। इनमें सबसे ऊपर स्व० ब्रह्मचारी शीतलप्रसादजी के हस्ताक्षर हैं। अतः जैन समाज की प्रगतिशील भा० दि० जैन परिषद के आद्य संस्थापक श्रद्धेय ब्रह्मचारीजी थे।

तरुण-गीत

श्री राजेन्द्र कुमार जैन 'कुमरेश'
आयुर्वेदाचार्य, बिलराम (एटा)

तरुण ! आज अपने जीवन में, जीवन का वह राग सुना दे।
सुप्त-शक्ति के कण-कण में उठ ! एक प्रज्वलित आग जगा दे।।

धधक क्रान्ति की ज्वाला जाए, महाप्रलय का करके स्वागत।
जिससे तन्द्रा का घर्षण हो, जागे यह चेतनता अवनत।।
प्राण विवशता के बंधन का, खण्ड खण्ड करदे वह उद्गम।
अंग अंग की दृढ़ता तेरी निर्मापित कर दे नव जीवन।।

स्वयं, सत्य-शिव-सुन्दर-सा हो, जन जनमें अनुराग जगादे।
तरुण ! आज अपने जीवन में जीवन का वह राग सुना दे।।

तेरा विजयनाद सुन कांपे भूधर सागर-नभ-तारक-दल।
रवि मण्डल भू-मण्डल कांपे, कांपे सुरगण-युत आखण्डल।।
नव परिवर्तन का पुनीत यह गूँज उठे सब ओर घोर रव।
तेरी तनिक हुंकार श्रवण कर कांपें यह ब्रह्माण्ड चराचर।।

तू अपनी ध्वनि से मृतकों के भी मृत-से-मृत प्राण जगा दे।
तरुण ! आज अपने जीवन में जीवन का वह राग सुना दे।।

तेरी अविचल गति का यह क्रम पद-मर्दित कर दे पामरता।
जड़ता की कड़ियाँ कट जाएँ, पाजाए यह ध्येय अमरता।।
हृदतल की तड़फन में नूतन जागृत हो वह विकट महानल।
जिसमें भस्मसात् हो जाए अत्याचार पाप कायर दल।।

तेरा खौलित रक्त विश्व कण-कण से अशुभ विराग भगा दे।
तरुण ! आज अपने जीवन में जीवन का वह राग सुना दे।।

अपने सुख को होम निरन्तर, तू भू पर समता बिखरा दे।
जिसमें लय अभिमान अधम हो, ऐसी शुचि ममता बरसा दे।।
सत्य-प्रेम की आभा से हो अन्तर्धान पाप की छाया।
रूढ़ि, मोह, अज्ञान, पुरातन भ्रम, सब हों सुपने की माया।।

तू प्रबुद्ध हो, सावधान हो, स्वयं जाग कर जगतजगा दे।
तरुण आज अपने जीवन में जीवन का वह राग सुना दे।।

× × × ×

श्रद्धेय ब्रह्मचारी शीतल प्रसादजी की जीवन-झांकी

पं० परमेष्ठी दासजी 'न्यायतीर्थ'
ललितपुर (झांसी)

ब्रह्मचारीजी की प्रतिमा सर्वतोमुखी थी। इस युग के समाज निर्माण तथा इसके सभी क्षेत्रों में ब्रह्मचारीजी की प्रमुख साधना और उनकी व्यापक दृष्टि थी। राजमार्ग के चौराहे पर प्रतिष्ठित उनके कीर्तिस्तंभ की प्रकाश-रश्मियों में वस्तुतः जैन समाज की पिछली अर्द्ध शताब्दी का इतिहास सन्निहित है।

ब्रह्मचारीजी जैन समाज के उन दैदीप्यमान रत्नों में से हैं जिन्होंने जैन धर्म की बड़ी सेवा की। एक लेख २४ मई सन् १८९६ ई० के हिन्दी जैन गजट में प्रकाशित हुआ था। उस लेख का कुछ अंश निम्न प्रकार है :—

ए जैनी पंडितो! यह जैन धर्म आपके ही आधीन है। इसकी रक्षा कीजिये, ज्योति फैलाइये। सोतों को जगाइये। और तन, मन, धन से परोपकार और शुद्धाचार लाने की कोशिश कीजिये जिससे आपका यह लोक और परलोक दोनों सुधरें।

१८ वर्ष की आयुवाले उदीयमान समाजोद्धारक श्री शीतलप्रसादजी के ये लेखांश धर्म-प्रचार और समाज-सेवा के सूत्र थे। स्वनामधन्य सेठ माणिकचंदजी के सम्पर्क से आपके मन में समाजसेवा के भाव जागृत हुए। सेठजी सच्चे कार्यकर्ताओं के पारखी थे। आपने वैरागी जिन-धर्मभक्त और सच्चे समाजसेवी श्री ब्रह्मचारीजी को अपने यहाँ बम्बई में रहने के लिए आग्रह किया। श्री ब्रह्मचारीजी ने उनके पास रहकर उनको धार्मिक कार्यों और समाज-सेवा के लिए उकसाया और अपना सहयोग दिया। स्व० सेठजी ने बम्बई, सांगली, आगरा, अहमदाबाद, शोलापुर, कोल्हापुर, लाहौर आदि स्थानों में जैन बोर्डिंग हाउस सभा आदि जैनोपयोगी अनेक संस्थाओं को स्थापित किया। इनमें अधिकतर स्व० ब्रह्मचारीजी का हाथ था। स्व० सेठजी प्रत्येक धार्मिक और सामाजिक कार्यों में पूज्य ब्रह्मचारीजी से सम्मति लेते थे।

ब्रह्मचारीजी में शुद्ध चरित्र पालन करने के भाव और संस्कार बाल्यकाल से ही होगये थे। ब्रह्मचारीजी के चरित्र में धार्मिकता, जैनधर्म में लगन और चरित्रनिष्ठा को निर्माण करने की आधारशिला का न्यास आपके पितामह द्वारा रक्खा जा चुका था। इसको स्वाध्याय, सत्संग, और आत्म-मनन ने और बढ़ाया। अंत में आपने ३२ वर्ष की आयु में सन् १९११ ई० में मार्गशीर्ष मास में श्री ऐलक पन्नालालजी के समक्ष शोलापुर में ब्रह्मचर्य प्रतिमा धारण की। ब्रह्मचारीजी चरित्र के बड़े पक्के थे। शुद्ध आहार, प्रासुक जल और शुद्धता के कट्टर पक्षपाती थे। त्रिकाल सामायिक ग्रन्थों के स्वाध्याय आदि दैनिकचर्या में कभी कमी नहीं होने पाती।

अध्यात्मरस में उनका अंतरंग रँगा था। उदारता, सहिष्णुता और विश्वकल्याण उनकी अपनी विशेषता थी। जैनों में, अजैनों में, स्वदेश में, विदेश में जैनत्व की झलक भरने का प्रयत्न करना उनका मधुर संगीत बन गया था।

वे पंडितों में पंडित थे और बालकों में विद्यार्थी। उदारता और कट्टरता का उनमें विलक्षण समन्वय था। आटा हाथ का पिसा हो। मर्यादा के अन्दर हो। जल छना हुआ तथा शुद्ध हो। गृहस्थ की जैनधर्म में निःशंकित श्रद्धा हो। वहीं उनका आहार होना था। उनका आहार-विहार शास्त्रोक्त था। साथ ही उनका दृष्टिकोण उदार था। सुधारकों में वे उग्रतम सुधारक थे। कुरीतियों और लोक मूढ़ताओं के लिए तो वे प्रलयकारी ज्वाला थे। जननी जाति के लिए उनका हृदय तड़पता था।

वे असाधारण मिशनरी थे।

जैन धर्म की छाया में आप भी आत्म-कल्याण करें। अजैनों के लिए उनका यह पवित्र सन्देश था। इसी रटना से उन्होंने अटक से लेकर कटक तक और कन्याकुमारी से लेकर रास-कुमारी तक भ्रमण किया था। बौद्ध संस्कृति और साहित्य से निकट सम्पर्क स्थापित करने के लिए वे लंका भी गए। जैनों में ब्रह्मचारीजी एक मात्र ऐसे नेता थे जो जैनदूत बनकर स्व० लाला लाजपतरायजी से मिले और जैन समाज की सेवा के लिए तैयार कर सके। कांग्रेस में भी उन्होंने जैन त्यागियों के लिए स्थान प्राप्ति का प्रयत्न किया। शहरों में नहीं देहातों में भी उन्होंने जागृति का मन्त्र फूंका। आप अजैन विद्वानों के सामने एक सच्चे जैन मिशनरी की स्प्रिट से जा पहुंचते थे। आज पंजाब विश्वविद्यालय के वाइसचांसलर प्रो० वुल्नाद को प्रभावित कर विश्वविद्यालय में जैन दर्शन प्रचार की जड़ जमाई जा रही है तो कल राधास्वामियों के 'साहब' जी को जैनदर्शन की खूबियां समझाने दयालबाग पहुँच रहे हैं।

ब्रह्मचारीजी बड़े तीर्थोद्धारक थे। तीर्थों की रक्षा के लिए आपने बड़ा प्रयत्न किया। द्रव्यसंग्रह और तत्त्वार्थसूत्र को वे जैनों की बाईबिल समझते थे। जहाँ जाते योग्य छात्रों को पढ़ाते। इन ग्रन्थों का अधिक से अधिक प्रचार करते।

वे बड़े देशभक्त थे। राजनीति में उनके विचार कांग्रेस के समर्थक थे। राष्ट्रीय महासभा के प्रत्येक अधिवेशन में वे शामिल होते थे।

धर्म-प्रचार और समाज विशेष सुधार के लिए ब्रह्मचारीजी की आशाएँ वकीलों बैरिस्टरों विद्यार्थियों और नवयुवकों में विशेषरूप से केन्द्रित थीं। इस क्षेत्र में सदैव जागृत रह कर प्रचार करते थे।

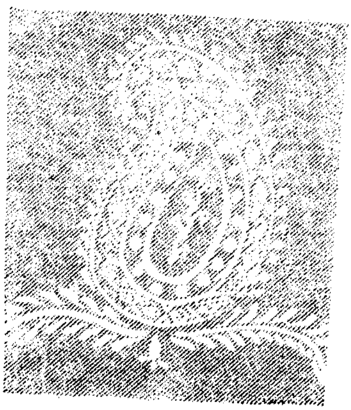
वीर पत्र का भली प्रकार सम्पादन किया। जैनमित्र के तो प्राण ही थे। सनातनधर्म उन्होंने शुरू करवाया। ब्रह्मचारीजी की साहित्य-सेवा अवर्णनीय है। आप प्रतिदिन बारह घन्टे लिखते रहते थे। ब्रह्मचारीजी द्वारा विभिन्न विषयों पर रचना किए गये स्वतन्त्र ग्रन्थों, भाषा-टीकाओं और पुस्तकों की संख्या लगभग ७७ है।

आपकी लेखन-शैली जैसी सरल और सरस है वैसी मनमोहक भी है। आपने तारण-साहित्य का उद्धार किया। उनके ९ ग्रन्थों का सम्पादन कर तारण समाज का उद्धार किया। आपने बौद्ध साहित्य का भी अध्ययन किया। अपने जीवन में अनुपम साहित्य लिखा। उनके ग्रन्थों को देखकर हिन्दी साहित्य परिषद जयपुर ने उनके सम्बन्ध में लिखा। ब्रह्मचारी को जैन साहित्य का अत्यन्त विद्वान् रूढ़िवाद के निष्पक्ष आलोचक, समाज और साधु संस्थाओं के विषय में मौलिक बिचार रखने वाला स्वीकार किया।

वे अनेक संस्थाओं के संस्थापक और संचालक थे। उनके अनुपम कार्यों के कारण वे मूर्तिमान जागृत संस्था बन गये थे। यही कारण था कि २८ दिसम्बर १९१३ ई० को काशी में पूज्य ब्रह्मचारीजी के सम्मान के लिए डा० हर्बन जैकोबी की अध्यक्षता में 'जैन धर्म भूषण' की पदवी से विभूषित किया गया। उन्होंने सामाजिक सुधार के लिए भा० दि० जैन परिषद की स्थापना की। वे उग्र सुधारक थे। अपने पथ के पथिक थे किसी बहिष्कार की पर्वाह नहीं करते थे।

इस बीसवीं सदी में विशाल जैनसंघ के प्रथम संयोजक के रूप में हम उन्हें देखते हैं। इसके लिए उन्होंने अनेक स्थानों पर अनेक परमार्थिक संस्थाएँ स्थापित कीं। वे समाज के श्रीमानों विद्वानों और योग्य कार्यकर्ताओं से मिले और उनसे पृथक्-पृथक् कार्य लिए। महिलाओं को जागृत करने, उनकी जीवन साधनाओं की पूर्ति करने महिलाओं के जन्मसिद्ध अधिकारों की प्राप्ति के लिए उन्होंने अपने मान-अपमान की भी परवा नहीं की। उन्होंने अपनी जीवन-साधना से समाज में अनेक स्थानों पर अनेक युवकों और आदर्श महिलाओं का निर्माण किया। उनके हृदयों में वह मन्त्र फूंका जो जीवन भर देश-समाज की सेवा करेंगे। जैन धर्म के प्रसार के लिए अपने जीवन की बाजी लगायेंगे।

ब्रह्मचारीजी इस युग के समन्तभद्र थे जिनके हृदय में सतत जैन शासक के प्रचार की अद्‌भुत लगन थी। आज ब्रह्मचारीजी नहीं हैं, पर उनका आदर्श सदैव समाज के सेवकों को बल और प्रकाश देता रहेगा।



विद्यावारिधि

बैरिस्टर चम्पतराय जैन, बार एटला

श्री त्रिशला कुमारी जैन

बैरिस्टर चम्पतराय इस युग के महान पुरुषों में से थे। उन्होंने इस मानव जीवन में विश्व को अपने ज्ञान से नवीन आलोक और अपूर्व विचार शैली थी। मानव समाज वास्तविक मानवता को प्राप्त करे, यह आपके जीवन की साधना थी। बैरिस्टर साहब के जीवन के मध्याह्नकाल में जब उनका ज्ञान-सूर्य अपने प्रकाश और प्रताप की किरणों से संसार को आलोकित कर चुका था। बैरिस्टर साहब का कार्यकर्ताओं के प्रति अगाध प्रेम था। बैरिस्टर साहब को अपनी सर्वतोमुखी प्रतिभा और अनवरत उद्योगों से जीवन की विविध साधनाओं में सफलता मिली थी। वे इस युग के धर्म सत्य के खोजियों और तुलनात्मक पद्धति के प्रवर्तकों में प्रमुख साधक थे। देश-विदेशों में जैन धर्म प्रचार करने में इस काल के अकलंक वीर थे। अंग्रेजी के जानकार जैन विद्वानों और जैन युवकों के लिए धार्मिक श्रद्धा की सजीव मूर्ति थे। सोते हुए जैन समाज को जगाने तथा उद्बोधन देने और स्वयं कर्तव्य करने में ही आपकी प्रवृत्ति थी। उनकी समाज-सेवा के भार को न हमारे पास योग्य तराजू है और न उनके प्रचुर साहित्य को ठीक-ठीक आँकने के लिए हमारे पास उपयुक्त मापदण्ड है। जैन समाज में उनकी सम्मेदशिखर की रक्षा की कीर्ति और संसार में उनका साहित्य-सूर्य कभी अस्त न होगा।

वे विश्व की विभूति थे। अपने जीवन में संसार के सभी देशों के विविध विद्वानों और विचारकों से उनका सम्पर्क रहा।

हमारी पीढ़ी ने स्वर्गीय बैरिस्टर चम्पतरायजी को एक सफल बैरिस्टर गम्भीर, विद्वान्, कुशल लेखक, प्रभावशाली वक्ता और आदरणीय नेता के रूप में पहचाना और सराहा। हम उनके कृतज्ञ हैं कि उन्होंने समाज में नये युग का आह्वान किया और विरोध को चुनौती दी। और संघर्ष से टक्कर ली। वह अखिल भारतवर्षीय दिगम्बर जैन परिषद के प्रमुख संस्थापक और आदि सभापति थे। परिषद की पतवार अपने समर्थ हाथों में लेकर उन्होंने न कभी तूफान की परवा की और न प्रलय की। इस अनुभव और उत्साह में सदा तरुण रहे।

बैरिस्टर साहब का सर्व प्रधान गुण सम्यक् श्रद्धान था। वह जैनधर्म के मर्मज्ञ थे। पर उनकी मर्मज्ञता कोरे ज्ञान की प्रखर ज्वाला न बनकर श्रद्धा से ओत-प्रोत दीप-शिखा की तरह शान्त, स्निग्ध, स्थिर और रुचिर थी।

विद्यावारिधी बैरिस्टर चम्पतरायजी समाज के उन धर्मसेवियों में से थे जिन्हें धर्म के उत्कर्ष की महान् चिन्ता थी। उनका दृष्टिकोण जैनधर्म को केवल भारतीय ही बनाये रखने का नहीं था। अपितु जगन्मान्य आत्मोद्धारक श्री वीर प्रभु की पवित्रतम वाणी को प्रत्येक जीव के हितार्थ देश-विदेशों में भी प्रसारित किया जाय। यही उनकी आन्तरिक भावना थी। यह उनकी



बैरिस्टर चम्पतरायजी

स्वनामधन्य बैरिस्टर चम्पतरायजी उच्चकोटि के विद्वान, समाज-सुधारक और जैन सिद्धान्त के दिग्गज विद्वान थे। उन्होंने विदेशों में जाकर जैन धर्म का आधुनिक ढंग से प्रचार किया। वे यह अनुभव करते थे कि पाश्चात्य संसार तार्किक और वैज्ञानिक हैं उन्होंने थोड़े ही समय में आशातीत उन्नति की है। वे बहुत जल्दी वस्तु के सही रूप को गृहण करने में सिद्धहस्त हैं। यदि ऐसे विद्वानों के सम्मुख जैनधर्म का मर्म रक्खा जाय तो उनकी आत्मा को अपूर्व शान्ति मिलेगी और विश्व अहिंसात्मक भावनाओं की ओर अग्रसर होगा। बैरिस्टर साहब इसी भावना से विदेशों में गये और उन्होंने जन्म भर जैन धर्म का प्रचार किया।

बैरिस्टर सा० ने अंग्रेजी में जैन-साहित्य लिखकर मानव समाज की अपूर्व सेवा की है। उनका प्रभाव विदेशों में खूब पड़ा। जहाँ भी वे गये उनका अपूर्व सत्कार हुआ। जैन समाज के कई उदीयमान युवक उनसे इतने प्रभावित थे कि जैन-साहित्य और समाज की सेवा के लिए उन्होंने जीवन में प्रशंसनीय कार्य किया। ला० तनसुखरायजी के जीवन पर उनका अद्भुत प्रभाव पड़ा। जो उन्हें समाज-सेवा के मार्ग की ओर अग्रसर कर सका।

केवल भावना ही नहीं थी बल्कि इसके लिए उन्होने यथा-शक्ति विदेशों में भ्रमण किया। फलतः वह वीर वाणी को विदेशों में प्रसारित कर स्व कर्तव्य में सफल हुए।

किसी भी धर्म का साहित्य ही उसे जीवित रखने में संजीवनी के समान कार्य करता है। और जिस धर्म का साहित्य देशी-विदेशी कई भाषाओं में उपलब्ध हो वह धर्म शीघ्रातिशीघ्र विकास को प्राप्त हो जाता है। बैरिस्टर साहब ने इस आंग्ल भाषा के युग में लगभग २० ग्रन्थ इस भाषा में लिखे हैं। इतना ही नहीं अपितु आपने अपनी प्रभावित वक्तृत्व शैली द्वारा देश-विदेशों में धर्म श्रवण कराकर विदेशियों को प्रभावित किया और अपना जीवन सफल बनाया।

आप बैरिस्टर होकर व विदेश भ्रमण करते हुए भी जैन सिद्धान्त के परम श्रद्धानी थे जिसे कि आजकल के शिक्षित विद्वानों में बहुत कम देख पाते हैं। आपकी धर्मनिष्ठा और आत्मनिष्ठा सदैव स्थिरता रूप रही। यह सुनकर आश्चर्य होता है कि आप रात्रि में जल भी ग्रहण नहीं करते थे। अन्य नियम और स्वाध्यायादि तो आपकी दिनचर्या के साथी ही थे। आपका ज्ञान आपके परिणामों का सदा ही रक्षक रहा था। आप वास्तव में सच्चे कर्मठ धर्मात्मा और जैन समाज के महान पुरुष थे।

चारित्रमूर्ति श्रावक

बैरिस्टर साहब केवल धर्म तत्व के दार्शनिक विद्वान् या उसके श्रद्धालु भक्त मात्र ही न थे। उन्होंने रत्नत्रय धर्म को अपने जीवन में यथा सम्भव मूर्तिमान बनाने का उद्योग किया था। वे महान् थे। इसलिए नहीं कि उनको महान् बनने की आकांक्षा थी। महत्वाकांक्षा कभी भी मनुष्य को महान् नहीं बनाती। त्यागवृत्ति और सेवा धर्म ही मनुष्य को ऊँचा उठाते हैं। बैरिस्टर साहब महान् हुए। क्योंकि वह त्याग और सेवा धर्म को जानते और उस पर अमल करते थे लखनऊ महासभा अधिवेशन के वे सभापति मनोनीत हुए; परन्तु उस पद को ग्रहण करने के पहले उन्होंने स्थूल रूप में पंचाणुव्रत धारण किए।

उन व्रतों का उन्होने यावज्जीवन पालन किया। विलायत में भी वे व्रतों को धारण करने में पूर्ण सावधानी रखते थे। लन्दन से दिए गए एक पत्र में वे लिखते हैं:—

"शाम को मैं अपना भोजन स्वयं बनाता हूँ। मेरे कमरों के पास ही एक छोटा-सा रसोईघर है। भोजन कमरों के किराये में लगभग बीस पौंड प्रतिमास खर्च होता है। प्रातः मैं फल और मलाई लेता हूं कभी-कभी चाय भी पी लेता हूँ। ६--४५ पर उठ बैठता हूँ और पौने आठ बजे सामायक पर बैठ जाता हूँ। जिसमें मुझे ३५ मिनट लगते हैं। उसके बाद ही मैं ६ के करीब फलाहार करता हूँ। उपरान्त पास के बगीचे में घूमने चला जाता हूँ। वहां से १२-३० बजे लौटता हूँ। तब मैं खाना बनाता और खाता हूं जिसमें रोटी और भाजी मुख्यः होती है। दिन में दो बजे से पाँच बजे तक लिखने में समय बिताता हूँ। और ६-३० अपनी शाम की

ब्यांलु बनाकर खाता हूँ। लोगों ने मुझसे कई बार पूछा है कि क्या विलायत में एक व्रती श्रावक का जीवन बिताना सम्भव है ? मुझे तो लगता है सब चीजें बाजार में मिलती हैं और यदि रसोईघर है तो मनचाहा बनाकर खाइए। इसमें दिक्कत ही क्या है ? रही बात मानसिक शान्ति और निराकुलता की सो भारत की अपेक्षा विलायत में अधिक निराकुलता और शान्ति है। क्योंकि यहां उनके विरोधी साधन ही नहीं है। यह सच है कि यहाँ के जीवन में बहुत-सी लुभावनी बातें हैं। परन्तु थोड़े बहुत यह बात तो सभी ठौर है।

मनुष्य लुभावों में पड़कर कहां नहीं गलती कर सकता ? वास्तव में यह प्रश्न तो चारित्र मोहनीय कर्म के क्षयोपशम से सम्बन्ध रखता है। यदि उसका क्षयोपशम है तो वाह्य निमित्त निरर्थक होंगे। और चारित्रमोहनीय के उदय में रहते हुए भी एक व्यक्ति बम्बई में भी भ्रष्ट हो सकता है। अतः आठवीं एवं उससे न्यूनतम प्रतिभाओं के घाटी श्रावक विलायत में सानन्द रह सकता है। एक खूबी इस देश में और है वह यह है कि यहाँ चीटियां और कीड़े-मकोड़े प्रायः होते ही नहीं। अतः हमें उनकी आरम्भजनित हिंसा का भी पाप नहीं लगता।"

पूज्य बैरिस्टर साहब संयमी जीवन पालन करने में कितने जागरूक थे। उनका आदर्श बरबस हमसे कह रहा है कि संयम का पालन करो। श्रावक हो तो श्रावक के आठ मूल गुणों का पालन करो। मद्य, मांस और मधु तथा पंच उदुम्बर फल मत खाओ। पानी छानकर पियो। रात में खाना मत खाओ।

बैरिस्टर साहब तो वहाँ भी दिन ही में भोजन कर लेते थे। जहां सब ही प्रायः रात्रि भोजी थे। वह अपने व्रतों में खूब सावधान थे। एक दफा वह बहुत प्रातः ही रवाना होने को थे। उनके मित्र नाश्ता लाये। झुकझुका हो चुका था। पौ फटने को थी। बैरिस्टर साहब ने कहा, अभी रात है, मैं नाश्ता नहीं करूंगा। मित्र का आग्रह निरर्थक था। बैरिस्टर साहब के जीवन में अपूर्व शान्ति का सिरजन उनकी परीक्षा प्रधानता के कारण ही हुआ। यदि उनकी प्रज्ञा सुवृत्ति न होती वह वस्तुस्थिति के परीक्षक न होने तो विलासता के गहरे गर्त से वह बाहर नहीं निकल सकते थे। उस पर भी वह शास्त्रों में लिखी हुई प्रत्येक पंक्ति को इसलिए ही नहीं स्वीकार कर सकते थे कि उस पर तीर्थङ्कर कथित होने की मुहर लग गई थी। वह उस बात को तर्क और विज्ञान की कसौटी पर कसते थे। और जब उसे ठीक पाते थे तभी उसे मान्य करते थे। पूज्य बैरिस्टर साहब ने सन् १९२६ में नार्वे (Norway) देश की यात्रा की। वहां उन्होंने ता० ११ जौलाई १९२६ को अपनी आंखों से बराबर रातदिन सूर्य को चमकते पाया। वहां तीन-चार महीने तक मुतवातिर सूर्य अस्त नहीं होता। सर्वज्ञ का कथन इस प्रत्यक्ष के अविरुद्ध ही हो सकता है। बैरिस्टर साहब ने वहां का मनोरंजन वर्णन लिखा है। रात के ११॥ बजे सूर्य अस्ताचल रेखा को चूमने लगा। बारह बजते-बजते उसका आधे से ज्यादा भाग डूब गया। शेष भाग आंखों के सामने रहा। आधी रात के पश्चात् सूर्यास्त होना बन्द हो गया। सूर्य का जो भाग नेत्रों के सामने था वह धीरे-धीरे ऊपर को उठने और निकलने

लगा। डेढ़ बजे रात को पूरा सूर्य निकल आया था। चारों ओर धूप ही धूप थी। वह दृश्य देखते ही बनता था। इस प्राकृतिक दृश्य का तारतम्य जैन सिद्धान्त के करणानुयोग से कैसे बैठता है। यह बताने वाले साधन-सूत्र अभी प्रकाश में नहीं आए हैं। बैरिस्टर साहब उन सर्वज्ञ प्रणीत सूत्रग्रन्थ को पाकर फूले न अघाते। वे राष्ट्रीयता के सच्चे पोषक थे। वीर की सिंह गर्जना उनमें थी। शान्ति का अर्थ दब्बूपन और अहिंसा से मतलब कायरता के नहीं। जैनधर्म के लिए स्वार्थ-त्याग और आत्म-बलिदान करने की आवश्यकता है। कोई अत्याचार करे तो उससे दबने की आवश्यकता नहीं। अन्याय को हटाने के लिए हमें धर्म रक्षा के लिए लड़ने-मरने को तैयार हो जाना चाहिए।

बैरिस्टर साहब ने जैन साहित्य की अपूर्व सेवा की वे एक महान् धर्म प्रचारक और परीक्षा प्रधानी श्रावकरत्न थे। हमारा कर्तव्य है कि उनके पद चिन्हों पर चलकर धर्म को जीवन में उतारें।

बैरिस्टर साहब के कतिपय शिक्षा-प्रद आदेश

प्रत्येक जैन युवक जैन धर्म का ज्ञाता बने। शिक्षित जैनों में जैनत्व की भावना पैदा हो।

जैन धर्म तो पारस पत्थर है जो लोहे के समान अशुद्ध जीव को शुद्ध स्वर्ण तुल्य बना सकता है।

जैनों की उपजातियों में परस्पर वैवाहिक सम्बन्ध होना चाहिए। इससे कई लाभ हैं।

जैन धर्म एक विज्ञान है। कारण कार्य सिद्धान्त पर अवलम्बित है। जैसा बोओगे वैसा काटोगे। परन्तु आज हम धर्मविज्ञान को भूल गये। वे धन, यश पुत्रके लिए मन्दिर नहीं जैन मन्दिर भिखारियों के लिए नहीं। मोक्षाभिलाषियों के हैं धर्मशिक्षा और स्वाध्याय की पद्धति में सुधार होना चाहिए। नई पद्धति से वस्तु का स्वरूप समझने व जानने की जरूरत है। मुख्यत: सात तत्वों को जानने की जरूरत है। वैज्ञानिक शैली से पुस्तकें रची जानी चाहिएं। आत्मज्ञान, न्याय, समाज शास्त्र, और इतिहास की नई पद्धति पर प्रतिपादन करना चाहिए।

सीधे-सादे शब्दों में युक्ति और प्रमाण के आधार पर आप गजट में मैत्री प्रमोद, कारुण्य और मध्यस्थ के खिलाफ कोई लेख प्रकट न हो।

विद्वानों को विद्वत्तापूर्वक लेख लिखने के लिए प्रेरणा करो। सम्पादकीय विद्वत्तापूर्ण हो। पहले समाज में जैन संस्कृति मनुष्यमात्र के लिए आदर्श संस्कृति थी। और हर जगह जैनी मनुष्य के नेता थे। वही आदर्श आज हमारे सामने होना चाहिए। हमको अपनी आवाज और चारित्र प्राचीन काल के समान ऊंचा करना उचित है। तब दुनिया खुशी से हमारे पीछे चलेगी।

प्राचीन जैन तत्व की रक्षा कीजिए।

समन्तभद्र स्वामी का अपने सामने आदर्श रूप थे। जैन समाज को उन्नत बनाने के लिए संसार में सुख शान्ति फैलाने के लिए जैन विश्व विद्यालय स्थापित करना आवश्यक है।

लालाजी के नेतृत्व में परिषद् का शानदार अधिवेशन

श्री पंचरत्नजी

आपके प्रधान मंत्रित्वकाल में परिषद के तीन अधिवेशन हुए। तीनों ही अधिवेशन बहुत ही शानदार ढंग से सम्पन्न हुए। जिसमें हजारों की संख्या में देश के विभिन्न भागों से जैन कार्यकर्ता और समाज सेवी सम्मलित हुए। उन्हीं अधिवेशनों में एक सतना अधिवेशन किस प्रकार सम्पन्न हुआ उसका दिग्दर्शक आपके सामने है। परिषद् की जन्मभर सेवा करने वाले पंडित रामलालजी पंचरत्न उस समय प्रचारक थे उनकी ही कलम से आँखों देखा हाल अधिवेशन का इस प्रकार है।

सतना अधिवेशन

परिषद अधिवेशन का निमंत्रण सतना से आया था परन्तु कारण विशेष से १ सप्ताह बाद पत्र मिला कि जो निमंत्रण सतना में परिषद् अधिवेशन का दिया गया था उसे कैन्सिल कर दिया जाय आदि।

जब मैं बाहर से आकर प्रधान मंत्री परिषद् लाला तनसुखरायजी से मिला तो कहने लगे वर्ष अधिवेशन का समाप्त होने वाला है। निमंत्रण सतना का आया था पर न मालूम क्यों इन्कार करते हैं। आप बिस्तर न खोलें और तुरन्त सतना जाकर व्यवस्था करें और कारण ज्ञात करें मैं उसी क्षण सतना को रवाना हो गया अगले दिन दोपहर के समय सतना पहुँचा मालूम हुआ कि श्री मंदिरजी में मीटिंग हो रही है मैं वहाँ पहुँचा। लोगों से मिला। लोगों ने कहा कि पं०जी सतना में रथ ५० वर्ष से निकला नहीं है। श्री महाराजा रीवां नरेश ने बड़ी कठिनता से इस वर्ष रथ निकालने की आज्ञा दी है हम लोग ठाठबाट व प्रभावना के साथ जैन रथ निकालना चाहते हैं। यह भी समाज ने निश्चय किया था कि दि० जैन परिषद् को निमंत्रित भेज दिया जाए। निमंत्रण गया भी, परन्तु जब हम लोग सिवनी रथ माँगने गये जो कि बड़ा सुन्दर बना हुआ है वहाँ के समाज ने कहा कि अगर तुम रथोत्सव पर जैन महासभा को निमंत्रण करते हो तो हम रथ देने को तैयार हैं अन्यथा नहीं इस मजबूरी को देखते हुए हम जबानी स्वीकृति दे आये हैं। इसी संबंध में आज मीटिंग थी। मीटिंग के निश्चयानुसार निमंत्रण महासभा को भेजना स्वीकार किया गया है और यह निमंत्रण है जो भेजा जा रहा है। मैंने आध घंटे परिषद् के संबंध में जोशीला भाषण दिया। फल यह हुआ कि परिषद् को भी निमंत्रण दे दो। दोनों के एकीकरण होने का श्रेय सतना को प्राप्त होगा। मैंने कहा रही रथ की बात सो पं०जी कह ही रहे हैं कि मेरी जिम्मेवारी है हम रथ का प्रबन्ध कर देंगे। निमंत्रण परिषद् को पुनः लिखा गया। यह मुझे दिया गया। महासभा का निमंत्रण जो डाक में डालना था वह भी लिया और वापिस होकर तार द्वारा सूचना निमंत्रण की दी। वहाँ से तार द्वारा जैन मित्र, संदेश आदि को खबर कर दी गई। अगले अंक मित्र संदेश में "परिषद्

अधिवेशन सतना में होगा" ऐसा समाचार पढ़ा गया। शीघ्र ही कार्यसमिति द्वारा योजना प्रकाशित की गई।

दिल्ली से फिर सतना प्रबन्ध करने आया तो लोगों ने कहा परिषद् का निमंत्रण स्वीकारता का मित्र, वीर में प्रकाशित हो गया है। महासभा का कोई जिक्र नहीं आया। मैंने कहा मैं उस दिन डाकखाने गया तो सोचने के बाद निश्चय किया कि एक म्यान में दो तलवारें नहीं आ सकतीं इस वर्ष परिषद् का अधिवेशन सतना में हो जाने दो; दूसरी बार महासभा का। इस कारण दूसरा पत्र मैंने नहीं डाला था। कुछ लोगों ने अच्छा कुछ ने बुरा भी कहा। परिषद् के सम्बन्ध में मंदिरजी में अच्छा प्रभाव डाला। स्वागत समिति का निर्माण किया।

श्री दयाचन्द धर्मदास को सभापति, उपसभापति क्रमशः बनाया। तैयारियां होनी शुरू हो गई। महाराजा रीवां नरेश से सहयोग प्राप्त करने के लिए प्रमुख दरबारी लोगों के साथ मैं भी गया। सबने गिन्नी भेंट की। मैंने श्रीफल और सवा रुपया भेंट कर आशीर्वादात्मक श्लोक पढ़ा महाराजा मेरी ओर देख कर प्रसन्न हुए।

मेरा परिचय होने के पश्चात् मैंने कहा। राजन् ? आपके राज्य सतना में आल इंडिया दि० जैन परिषद् का अधिवेशन होना चाहता है। असेंबली के बड़े-बड़े नेतागण आपके राज्य में पधारेंगे। स्टेट का प्रबन्ध जिनके हाथ में है उनके पधारने की भी आशा है। महाराजा ने प्रसन्न होकर सतना की राजकोठी खाली करने के लिए कर्मचारियों से कहा। यह भी कहा कि आगन्तुक अतिथियों को किसी प्रकार का कष्ट न हो। वे यहाँ से बुरी भावना लेकर न जावें। सोने-चांदी की दो कुर्सी भी भिजवाने के लिए कहा तथा ऊँट, हाथी, घोडे आदि जिस-जिस सामान की जरूरत हो मैं स्वीकृति देता हूँ परन्तु अतिथियों को रंच मात्र भी कष्ट का अनुभव न हो यह ध्यान रहे। मैंने कहा राजन् ! मैं तो आपको पधारने का निमंत्रण देने आया हूँ। महाराजा सा० ने कहा कि मैं जरूर अधिवेशन में आऊंगा। तुरन्त समाचार पत्रों में दिये गए। राज्य की ओर से तैयारियाँ शानदार होने लगीं तहलका मच गया। विशाल सुन्दर मंडप बनाया गया। नाटक का भी प्रबन्ध किया गया। सुन्दर बाजार सजाया गया। तोरण मंडप बनाया गया। राजसी ठाठ किया गया। यह चर्चा अ०जैनों में भी फैली कि जैन रथ में नग्न मूर्ति निकाली जायगी। ब्राह्मणों ने घोर विरोध किया कि ऐसा नहीं होने देंगे। हम जेल भर देंगे। तब उन्होंने ओझा (एक जाति होती है जो यंत्र-मंत्र में प्रवीण होती है जो अपने मंत्र बल से रथ को तोड़ देती है। ऐसा कई जगह हुआ भी है) को बुलाया और जैन के विरोध में नाना तैयारियां होने लगीं यह खबर जैन समाज सतना को मिली सब बड़े चिंतित हुए मुझे बुलाया सब हाल कहा ? मैंने कहा चिंता की कोई बात नहीं है जाकर उस ओझा से कह दो कि हमारे यहां बड़े भारी मंत्र तंत्र वादी विद्वान पधारे हुए हैं उन्होंने कहा कि आपका बड़ा लड़का मरणासन्न है जाकर खबर लो दैव की बात कि उनके पास इस विषय का तार आया और वह चला गया तथा उसका बड़ा बेटा मर भी गया उसने आने से इन्कार कर दिया संकट टला लोगों में मेरा अत्यधिक विश्वास बढ़ा खूब सम्मान दिया।

लोगों ने कहा पं० जी यह सी० पी० प्रान्त है परिषद् के बिरोध में काफी लोग हैं। आगन्तुकों की संख्या थोड़ी होगी तो क्या शोभा होगी। मैंने कहा चिंता की कोई बात नहीं है देखते रहिये मैं क्या-क्या प्रबन्ध करता हूँ जगह-जगह गया यहाँ प्रचार किया कि ओझा द्वारा जैन रथ रोका जायगा जैन विद्वान रथ चलायेंगे ओझा को कीला जाएगा यह दृश्य जैन प्रभावना की दृष्टि से देखने योग्य होगा : काफी तादाद में लोग पधारेंगे। यह चर्चा दूर-दूर तक फैल गई और बेशुमार आदमी आ गया रथ जैसी भीड़ हो गई : महाराजा रीवां नरेश के अन्तर्गत अन्य राजाओं से भी मिला, उन्होंने भी आने का वचन दिया खाने पीने ठहरने आदि की पूर्ण व्यवस्था की गई राजसी प्रबन्ध किया गया। इधर अधिवेशन के दिन निकट आने पर श्री अयोध्या प्रसाद जी गोयलीय सतना आ गये मैंने स्वागत समिति में प्रस्ताव रक्खा कि सभापति अधिवेशन ट्रेन से आयेंगे अतः इलाहाबाद में सभापति महोदय और साथ ही नेताओं का स्वागत होना चाहिए अपना प्रबन्ध वहाँ होना चाहिए गोयलीय जी और मैं इलाहाबाद गये वहां पर कैलाशचन्दजी से मिलकर उन्हें निमंत्रण देकर सभापति का स्टेशन पर शानदार स्वागत किया गया भोजन व्यवस्था की गई इसी तरह मार्ग में कई जगह व्यवस्था की गई। यह सब प्रबन्ध मैंने ही किया सतना स्टेशन पर मखमल तथा तूस के फर्श पर से सभापति को लाया गया उस पर फूल मालाओं से वेष्टिन जयकारों के नारों से सभापति का सम्मान किया गया। सभापति महोदय को सोने के हौदे में हाथी पर बैठाया गया। महिला परिषद् की सभा नेत्री श्री लेखावती जी को दूसरे हाथी पर ऐसे ४ हाथी कई ऊँट कई घुड़ सवार बैंड बाजे बगियों द्वारा शहर में जुलूस निकाला गया मार्ग में हर जैन घर पर हाथी को खड़ा किया गया वहाँ सभापति का सम्मान हुआ अशर्फी रुपया श्रीफल भेंट किये गये दृश्य देखने योग्य था। जिस समय सभापति बा० लालचन्द जी अपना वक्तव्य दे रहे थे। खबर मिली कि महाराजा पधार रहे हैं खलबली मच गई सतना निवासी लोगों ने कहा महाराज रीवां नरेश पधार रहे हैं भाषण बन्द कर देना चाहिए और उनके बैठने का प्रबन्ध खास होना चाहिए।

मैंने कहा—आने दो आखिर सारे भारत का सभापति भाषण दे रहा है महाराजा भी सुनेंगे आखिर सभापति अधिवेशन के बराबर में कुर्सी डालकर सम्मान से उन्हें बिठाया गया और सम्मानित किया गया परन्तु वे बैठे नहीं मखमल के फर्श पर बैठे; भाषण पश्चात् उन्हें उच्च स्तर पर बिठाकर प्रो० हीरालाल जी ने सुसज्जित भाषण दिया और अध्यक्ष महोदय ने जैन सिद्धांत के खास २ ग्रंथ महाराजा को भेंट किये महाराजा को अभिनन्दन पत्र भेंट किया गया जिसका उत्तर महाराजा ने थोड़े शब्दों में महत्वपूर्ण दिया और कहा—"आज हम लोगों का भाग्य है कि इतनी दूर २ से राज्य में अतिथि पधारे हैं उन्हें कोई कष्ट न हो इस बात का ध्यान राज्य निवासियों को रखना चाहिए। राज्य प्रबन्ध तथा समाज की ओर से सब प्रकार का प्रबन्ध था परिषद् के इतिहास में सतना का अधिवेशन अपना महत्वपूर्ण स्थान रखता है।

शाही अधिवेशन कराने में मैंने जो प्रबन्ध किया वह सब प्र० मंत्री परिषद् ला० तनसुखराय जी का ही प्रबन्ध कहा जा सकता है।

(शेष पृष्ठ १५१ पर)

जैन और हिन्दू

बहुश्रुत विद्वान्
डा० ज्योति प्रसाद जैन
M.A. Ph.D.
लखनऊ

"प्रसिद्ध ऐतिहासज्ञ और बहुश्रुत विद्वान डा० ज्योति प्रसादजी ने हमारे विशेष आग्रह पर 'जैन और हिन्दू' सम्बन्ध में एक महत्वपूर्ण निबंध प्रस्तुत किया है। जिसमें आपने उन प्रचलित सभी मान्यताओं का खंडन किया है। जिनके आधार पर कतिपय कानिब जैनों को हिन्दू समझते हैं। राष्ट्रनायक स्व० पं० जवाहरलालजी नेहरू ने अपने प्रसिद्ध-ग्रंथ 'डिस्कवरी आफ इण्डिया' में लिखा है कि जैन धर्म और बौद्ध धर्म निश्चय से न हिन्दू धर्म है और न वैदिक धर्म ही, तथापि उन दोनों का जन्म भारतवर्ष में हुआ और वे भारतीय जीवन संस्कृति एवं दार्शनिक चिन्तन के अविभाज्य अंग रहे हैं। जैन धर्म अथवा बौद्ध धर्म भारतीय विचारधारा एवं सभ्यता का शत प्रतिशत उपज है तथापि उनमें से कोई हिन्दू नहीं है।"

"विद्वान लेखक ने अनेक प्रमाणों के आधार पर इसी बात को सिद्ध किया है जो पठनीय एवं तर्क सम्मत और यथार्थ है।"

क्या जैन हिन्दू हैं ? अथवा, क्या जैनी हिन्दू नहीं हैं ?—यह एक ही प्रश्न के दो पहलू हैं, और यह प्रश्न आधुनिक युग के प्रारंभ से ही रह रह कर उठता रहा है। सन् १६५०-५५ के बीच तो सन् ५१ की भारतीय जन गणना, तदनन्तर हरिजनमंदिर प्रवेश बिल एवं आन्दोलन तथा भारतीय भिखारी अधिनियम आदि को लेकर इस प्रश्न ने पर्याप्त तीव्र वाद विवाद का रूप ले लिया था।

स्वयं जैनों में इस विषय में दो पक्ष रहे हैं—एक तो स्वयं को हिन्दू परम्परा से पृथक् एवं स्वतंत्र घोषित करता रहा है और दूसरा अपने आपको हिन्दू समाज का अंग मानने में कोई आपत्ति नहीं अनुभव करता। इसी प्रकार तथाकथित हिन्दुओं में भी दो पक्ष रहे हैं जिनमें से एक तो जैनों को अपने से पृथक् एक स्वतन्त्र सम्प्रदाय मानता रहा है और दूसरा उन्हें हिन्दू समाज का ही एक अंग घोषित करने में तत्पर दिखाई दिया है। वास्तव में यह प्रश्न उतना तात्विक नहीं जितना कि वह ऐतिहासिक है।

जैन या जैनी 'जिन' के उपासक या अनुयायी हैं। जिन, जिनेन्द्र, जिनेश या जिनेश्वर उन अर्हत् केवलियों को कहते हैं जिन्होंने श्रमपूर्वक तपश्चरणादि रूप आत्मशोधन की प्रक्रियाओं द्वारा मनुष्य जन्म में हो परमात्मपद प्राप्त कर लिया है। उनमें से जो संसार के समस्त प्राणियों के हितसुख के लिए धर्मतीर्थ की स्थापना करते हैं वह तीर्थंकर कहलाते हैं। इन तीर्थंकरों द्वारा आचरित, प्रतिपादित एवं प्रचारित धर्म ही जैन धर्म है और उसके अनुयायी जैन या जैनी

कहलाते हैं। विभिन्न समयों एवं प्रदेशों में वे श्रमण, व्रात्य, निर्ग्रन्थ, श्रावक, सराक, सरावगी या सराग्रोगी, सेवरगान, समानी, सेवड़े, भावड़े, भव्य, अनेकान्ती, स्याद्वादी आदि विभिन्न नामों से भी प्रसिद्ध रहे हैं।

आधुनिक युग में लगभग सौ-सवासौ वर्ष पर्यन्त गंभीर अध्ययन, शोधखोज, अनुसंधान, अन्वेषण और गवेषण के परिणाम स्वरूप प्राच्यविदों, प्ररातत्त्वज्ञों, इतिहासज्ञों एवं इतिहासकारों तथा भारतीय धर्म, दर्शन, साहित्य और कला के विशेषज्ञों ने यह तथ्य मान्य कर लिया है कि जैनधर्म भारतवर्ष का एक शुद्ध भारतीय, सर्वथा स्वतन्त्र एवं अत्यन्त प्राचीन धर्म है उसकी परम्परा कदाचित वैदिक अथवा ब्राह्मणीय परम्परा से भी अधिक प्राचीन है। उसका अपना स्वतन्त्र तत्त्वज्ञान है, स्वतन्त्र दर्शन है, स्वतन्त्र अनुश्रुतिएँ एवं परंपराए" हैं, विशिष्ट आचार विचार एवं उपासना पद्धति है, जीवन और उसके लक्ष्य सम्बंधी विशिष्ट दृष्टिकोण है, अपने स्वतन्त्र देवालय एवं तीर्थस्थल हैं, विशिष्ट पर्व त्यौहार हैं, विविध विषयक एवं विभिन्न भाषा विषयक विपुल साहित्य है तथा उच्चकोटि की विविध एवं प्रचुर कलाकृतियाँ हैं। इस प्रकार एक सुस्पष्ट एवं सुसमृद्ध संस्कृत से समन्वित यह जैनधर्म भारतवर्ष की श्रमण नामक प्रायः सर्वप्राचीन सांस्कृतिक एवं धार्मिक परम्परा का प्रागैतिहासिक काल से ही सजीव प्रतिनिधित्व करता आया है।

इस सम्बन्ध में कतिपय विशिष्ट विद्वानों के मन्तव्य दृष्टव्य है (देखिए हमारी पुस्तक— जैनिज्म दी ओल्डेस्ट लिविंग रिलीजन) यथा...प्रो० जयचन्द विद्यालंकार—"जैनों के इस विश्वास को कि उनका धर्म अत्यन्त प्राचीन है और महावीर के पूर्व अन्य २३ तीर्थंकर हो चुके थे भ्रमपूर्ण और निराधार कहना तथा उन समस्त पूर्ववर्ती तीर्थङ्करों को काल्पनिक एवं अनैतिहासिक मान लेना न तो न्यायसंगत ही है और न उचित ही। भारतवर्ष का प्रारंभिक इतिहास उतना ही जैन है जितना कि वह अपने आपको वेदों का अनुयायी कहने वालों का है।" (वही पृ० १६) इसी विद्वान तथा डा० काशीप्रसाद जायसवाल के अनुसार अथर्ववेद आदि में उल्लिखित व्रात्य अथवा अब्राह्मणीय क्षत्रिय जैन धर्म के अनुयायी थे। (वही पृ० १७) डा० राधाकृष्णन के अनुसार जैन धर्म वर्धमान अथवा पार्श्वनाथ के भी बहुत पूर्व प्रचलित था (वही पृ० २०), तथा यह कि यजुर्वेद में ऋषभ, अजितनाथ और अरिष्टनेमि, इन तीर्थङ्करों का नामोल्लेख है, ऋग्वेदादि के यह उल्लेख तमाम, ऋषभादि, विशिष्ट जैन तो तीर्थङ्करों के ही हैं और भागवतपुराण से इस तथ्य की पुष्टि होती है कि ऋषभदेव ही जैनधर्म के प्रवर्त्तक थे (वही, पृ० ४१-४२)।

प्रो० पार्जिटर, रहोड, एडकिन्स, ओल्डहम आदि विद्वानों का मत है कि वैदिक एवं हिन्दू पौराणिक साहित्य के असुर, राक्षस आदि जैन ही थे। और डा० हरिसत्य भट्टाचार्य का कहना है कि जैन और ब्राह्मणीय, दोनों परम्पराओं के साहित्य के तुलनात्मक अध्ययन से आधुनिक युग के कतिपय विद्वानों का यह साग्रह मत है कि वैदिक परम्परा के अनुयायियों ने राक्षसों को

जो अत्यधिक निन्दा, भर्त्सना की है उसका कारण यही है कि वे जैन थे, यह कि बाल्मीकि रामायण में राक्षस जाति का जैसा वर्णन है उससे स्पष्ट है कि वे जैनों के अतिरिक्त अन्य कोई हो ही नहीं सकते और रामायण के रचयिता ने उनका जो बीभत्स चित्रण किया है वह धार्मिक विद्वेष से प्रेरित होकर ही किया है (वही, पृ० २६, २७, ३०) अन्य अनेक प्रख्यात विद्वानों ने जैनधर्म और उसके अनुयायियों को स्वतन्त्र सत्ता वैदिक परम्परा के ब्राह्मण (या हिन्दू) धर्म और उसके अनुयायियों के उदय से पूर्व से चली आई निश्चित की है, कुछ ने सिन्धु घाटी की प्रागैतिहासिक सभ्यता में भी जैनधर्म के उस समय प्रचलित रहने के चिन्ह लक्ष्य किये हैं। (वही, पृ० ३६ आदि)। उसके ब्राह्मण (हिन्दू) धर्म की कोई शाखा या उपसम्प्रदाय होने का प्रायः सभी विद्वानों ने सबल प्रतिवाद किया है।

अब 'हिन्दू' शब्द को लें। प्रथम तो यह शब्द भारतीय है ही नहीं, विदेशी है और अपेक्षाकृत पर्याप्त अर्वाचीन है। इतिहासकाल में सर्वप्रथम जो विदेशी जाति भारतवर्ष और भारतीयों के स्पष्ट सम्पर्क में आयी वह फ़ारसदेश के निवासी ईरानी थे। छठी शताब्दी ईसा पूर्व में ईरान के शाहदारा ने भारतवर्ष के पश्चिमोत्तर सीमान्त पर आक्रमण किया था और उसके कुछ भाग को उसने अपने राज्य में मिला लिया था तथा उसे उसकी एक क्षेत्रयी (सूबा) बना दिया था। उस काल में वर्तमान अफ़गानिस्तान भी भारतवर्ष का ही अंग समझा जाता था। ईरानी लोग सिन्धु नद के उस पार के प्रदेश को भारत ही समझते थे, इस पार का समस्त प्रदेश उनके लिये चिर काल तक अज्ञात बना रहा। ईरानी भाषा में 'स' को 'ह' हो जाता है, अतएव वह लोग सिन्ध नदी को दरियाए हिन्द कहते थे और उस समस्त प्रदेश को मुल्के हिन्द, तथा उसके निवासियों एवं भाषा को हिन्दी या हिन्दवी कहते थे। उनका यह सूबा भी हिन्द की सत्रयी (क्षत्रयी) कहलाता था और उनकी सेना का भी एक अंग हिन्दी सेना था।

ईरानियों के द्वार से ही यूनानियों को सर्वप्रथम इस देश का ज्ञान हुआ और ईसा पूर्व ३२६ में सिकन्दर महान के आक्रमण द्वारा उसके साथ उनका प्रत्यक्ष सम्पर्क हुआ। यूनानी लोग 'ह' का उच्चारण नहीं कर पाते थे। उन्होंने ईरानियों के 'हिन्द' को 'इन्ड' कर दिया। वह हिन्द (सिन्धु) नदी को 'इन्डस' कहने लगे और उसके तटवर्ती उस हिन्द (सिध) प्रदेश या देश को इन्डि या इन्डिका कहने लगे। जब सिंध नदी के इस पार के प्रदेश से उनका परिचय हुआ तो पूरे भारत देश को भी वे उसी नाम से पुकारने लगे। रोम देश के निवासियों ने भी यूनानियों का ही अनुकरण किया और कालान्तर में यूरोप की अन्य सब भाषाओं में भी भारतवर्ष का सूचन इन्ड, इन्डि, इन्डे, इन्डियेन, इन्डीस, इन्डिया आदि विभिन्न रूपों में हुआ जो सब एक ही मूल यूनानी शब्द की पर्याय हैं। इस प्रकार अंग्रेजी में भारतवर्ष के लिए इन्डिया और भारतीय विशेषण के लिए इन्डियन तथा इन्डो शब्द प्रचलित हुए।

चीनियों को भारतवर्ष की स्पष्ट जानकारी सर्वप्रथम दूसरी शताब्दी ईस्वी पूर्व में उत्तरवर्ती हानवंश के सम्राट वूति के समय में हुई बताई जाती है और उस काल के एक चीनी



माननीय श्री अजित प्रसादजी वर्तमान राज्यपाल केरल प्रदेश का स्वागत करते हुए



← दानवीर साहू शांतिप्रसादजी के साथ
सामाजिक विचार विमर्श
करते हुए



महाराष्ट्र केशरी श्री गाडगिल के साथ →

ग्रन्थ में उसका सर्वप्रथम उल्लेख हुआ बताया जाता है। उसमें सिन्धुनद के लिए 'शिन्तु' शब्द प्रयुक्त हुआ है और यहाँ के निवासियों के लिए 'युश्रान्तु' अथवा 'यिन्तु', कालान्तर में 'ध्यान्तु'शब्द का प्रयोग भी मिलता है।

सातवीं शताब्दी ई० से मुसलमान अरब इस देश में आने प्रारम्भ हुए और वे ईरानियों के आक्रमण से इसे 'हिन्द' और इसके निवासियों को अहले हिन्द कहने लगे। दसवीं शताब्दी के अन्त में अफ़ग़ानिस्तान को केन्द्र बनाकर तुर्क मुसलमानों का साम्राज्य स्थापित हुआ और वे ग़ज़नी के सुलतानों के रूप में भारतवर्ष पर लुटेरे आक्रमण करने लगे। तुर्की का मूलस्थान चीन की पश्चिमी सीमा पर था और भारत एवं चीन के बीच यातायात प्रायः उन्हीं के देश में होकर होता था। यह तुर्क लोग मुसलमान बनने के पूर्व चिरकाल तक बौद्धादि भारतीय धर्मों के अनुयायी रहे थे अतएव दसवीं-ग्यारहवीं शताब्दी में जब वे भारतवर्ष के सम्पर्क में आये तो चीनी, अरबी एवं फ़ारसी मिश्र प्रभाव के कारण वे इस देश को हिन्दुस्तान, यहाँ के निवासियों को हिन्दू और यहाँ की भाषा को हिन्दवी कहने लगे। मध्यकाल के लगभग ७०० वर्ष के मुसलमानी शासन में ये शब्द प्रायः व्यापक रूप से प्रचलित हो गये।

यह मुसलमान लोग समस्त मुसलमानेतर भारतीयों को, जो कि यहाँ के प्राचीन निवासी थे सामान्यतः स्थूल रूप से हिन्दू या अहले हनूद और उनके धर्म को हिन्दू मज़हब कहते रहे हैं, वैसे उनके कोष में काफ़िर, ज़िम्मी, बुतपरस्त, दोज़खी आदि अन्य अनेक सुशब्द भी थे जिन्हें वे भारतीयों के लिए बहुधा प्रयुक्त करते थे, हिन्दू शब्द का एक अर्थ वे 'चोर' भी करते थे। ये कथित हिन्दू एक ही धर्म के अनुयायी हैं या एकाधिक परस्पर में स्वतन्त्र धार्मिक परम्पराओं के अनुयायी हैं इसमें औसत मुसलमान की कोई दिलचस्पी नहीं थी, उसके लिए तो वे सब समान रूप से काफ़िर, बुतपरस्त, जाहिल और बेईमान थे। स्वयं भारतीयों को भी उन्हें यह तथ्य जानने की आवश्यकता नहीं थीं क्योंकि उनके लिए प्रायः सभी मुसलमान विधर्मी थे। किन्तु मुसलमानों में जो उदार विद्वान और जिज्ञासु थे यदि उन्होंने भारतीय समाज का कुछ गहरा अध्ययन किया था प्रशासकीय संयोगों से किन्हीं ऐसे तथ्यों के सम्पर्क में आए तो उन्होंने सहज ही यह भी लक्ष्य कर लिया कि इन कथित हिन्दुओं में एक-दूसरे से स्वतन्त्र कई धार्मिक परम्पराएँ हैं और अनुयायियों की पृथक पृथक सुसंगठित समाजें हैं। ऐसे विद्वानों ने या दर्शकों ने कथित हिन्दू समूह के बीच में जैनों की स्पष्ट सत्ता को बहुधा पहचान लिया। मुसलमान लेखकों के समानी, तायसी, सयूरगान, सराओगान, सेवड़े आदि जिन्हें उन्होंने ब्राह्मण धर्म के अनुयायियों से पृथक पृथक सूचित किया है जैन ही थे। अबुलफ़ज़ल ने तो आईने अकबरी में जैन धर्म और उसके अनुयायियों का हिन्दू धर्म एवं उसके अनुयायियों से सर्वथा स्वतन्त्र एक प्राचीन परम्परा के रूप में विस्तृत वर्णन किया है।

जब अंग्रेज भारत में आये तो उन्होंने भी प्रारंभिक मुसलमानों की भाँति स्वभावतः तथा उन्हीं का अनुकरण करते हुए, समस्त मुसलमानेतर भारतीयों (इण्डियन्स) को हिन्दू और उनके धर्म को हिन्दूइज्म समझा और कहा। किन्तु १८वीं शती के अन्तिमपाद में ही उन्होंने भारतीय

संस्कृति का गम्भीर अध्ययन एवं अन्वेषण भी प्रारम्भ कर दिया था। और शीघ्र ही उन्हें यह स्पष्ट हो गया कि हिन्दुओं और उनके धर्म से स्वतन्त्र भी कुछ धर्म और उनके अनुयायी इस देश में हैं, और वे भी प्रायः उतने ही प्राचीन एवं महत्वपूर्ण हैं भले ही वर्तमान में वे अत्यधिक अल्पसंख्यक हों। १९वीं शती के आरम्भ में ही कोलबुक, डुबाय, टाड, फर्लांग, मेकेन्जी, विल्सन आदि प्राच्य विदों ने इस तथ्य को भली प्रकार समझ लिया था और प्रकाशित कर दिया था। फिर तो जैसे जैसे अध्ययन बढ़ता चला गया यह बात स्पष्ट से स्पष्टतर होती चली गई। इन प्रारंभिक प्राच्यविदों ने कई प्रसंगों में ब्राह्मणादि कथित हिन्दुओं के तीव्र जैन विद्वेष को भी लक्षित किया। १९वीं शती के उत्तरार्ध में उत्तर भारत के अनेक नगरों में जैनों के रथ यात्रा आदि धर्मोत्सवों का जो तीव्र विरोध कथित हिन्दुओं द्वारा हुआ वह भी सर्वविदित है। गत दर्शकों में यह गाँव, जबलपुर आदि में जैनों पर जो साम्प्रदायिक अत्याचार हुए और वर्तमान में बिजोलिया में जो उत्पात चल रहे हैं उनकी उपेक्षा नहीं की जा सकती। हिन्दू महासभा में जैनों के स्वत्वों की सुरक्षा की व्यवस्था होती तो जैन महासभा की स्थापना की कदाचित आवश्यकता न होती। आर्यसमाज संस्थापक स्वामी दयानन्द ने जैन धर्म और जैनों का उन्हें हिन्दूविरोधी कहकर खंडन किया। राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ या जनसंघ में भी वही संकीर्ण हिन्दू साम्प्रदायिक मनोवृत्ति दृष्टिगोचर होती है। स्वामी करपात्री जो आदि वर्तमान कालीन हिन्दूधर्म नेता भी हिन्दू धर्म का अर्थ वैदिक धर्म अथवा उससे निसृत शैव वैष्णवादि सम्प्रदाय ही करते हैं। अंग्रेजी कोष ग्रन्थों में भी हिन्दूइज्म (हिन्दू धर्म) का अर्थ ब्रह्मनिज्म (ब्राह्मण धर्म) ही किया गया है।

इस प्रकार मूल वैदिक धर्म तथा वैदिक परम्परा में ही समय-समय पर उत्पन्न होते रहने वाले अनगिनत अवान्तर भेद प्रभेद, यथा याज्ञिक कर्मकाण्ड और औपनिषदिक अध्यात्मवाद, श्रौत और स्मार्त, सांख्य-योग-वैशेषिक-न्याय-मीमांसा-वेदान्त आदि तथाकथित आस्तिक दर्शन और बार्हस्पत्य-लोकायत वा चार्वाक जैसे नास्तिक दर्शन, भागवत एवं पाशुपत जैसे प्रारम्भिक पौराणिक सम्प्रदाय और शैव-शाक्त-वैष्णवादि उत्तरकालीन पौराणिक सम्प्रदाय, इन सम्प्रदायों के भी अनेक उपसम्प्रदाय, पूर्वमध्यकालीन सिद्धों और जोगियों के पन्थ जिनमें तान्त्रिक, अघोरी और वाममार्गी भी सम्मिलित हैं, मध्यकालीन निर्गुण एवं सगुण सन्त परम्पराएँ, आधुनिकयुगीन आर्यसमाज, प्रार्थनासमाज, राधास्वामी मत आदि तथा असंख्य देवी-देवताओं की पूजा भक्ति जिनमें नाग, वृक्ष, ग्राम्यदेवता, वनदेवता, आदि भी सम्मिलित हैं, नाना प्रकार के अन्धविश्वास, जादू-टोना, इत्यादि—में से प्रत्येक भी और ये सब मिलकर भी 'हिन्दूधर्म' संज्ञा से सूचित होते हैं। इस हिन्दू धर्म की प्रमुख विशेषताएँ हैं ऋग्वेदादि ब्राह्मणीय वेदों को प्रमाण मानना, ईश्वर को सृष्टि का कर्त्ता, पालनकर्त्ता और हर्त्ता मानना, अवतारवाद में आस्था रखना, वर्णाश्रम धर्म को मान्य करना, गो एवं ब्राह्मण का देवता तुल्य पूजा करना, मनुस्मृति आदि स्मृतियों को व्यक्तिगत एवं सामाजिक जीवन-व्यापार का नियामक विधान स्वीकार करना, महाभारत, रामायण एवं ब्राह्मणीय पुराणों को धर्मशास्त्र मानना, मृत पित्रों का श्राद्धतर्पण पिण्डदानादि करना, तीर्थस्नान को पुण्य मानना, विशिष्ट देवताओं को हिंसक पशुबलि-कभी भी नरबलि भी देना, इत्यादि।

हिन्दू धर्म की इन बातों में से एक भी बात ऐसी नहीं है जो जैन धर्म में मान्य हो और न जैन धर्म का इस हिन्दू धर्म के उपरोक्त किसी भी भेद-प्रभेद, दर्शन, सम्प्रदाय, उपसम्प्रदाय आदि में ही समावेश होता है। अतएव हिन्दू धर्म के अनुयायी हिन्दुओं का जैन धर्म के अनुयायी जैनों के साथ उसी प्रकार कोई एकत्व नहीं है जैसा कि बौद्धों, पारसियों, यहूदियों, ईसाइयों, मुसलमानों, सिक्खों आदि के साथ नहीं है, यद्यपि एत्तद्देशीयता को एवं सामाजिक सम्बन्धों एवं संसर्गों की दृष्टि से उन सबकी अपेक्षा भारतवर्ष के जैन एवं हिन्दू परस्पर में सर्वाधिक निकट हैं। दोनों ही भारत मां के लाल हैं, दोनों के ही सम्बन्ध सर्वाधिक चिरकालीन हैं, इन दोनों में से किसी के भी कभी भी कोई स्वदेश बाह्य (एक्स्ट्रा टेरिटोरियल) स्वार्थ नहीं रहे, जातीय, राष्ट्रीय, राजनैनिक एवं भौगोलिक एकत्व दोनों का सदैव से अटूट रहा है, दोनों ही देश की समस्त सम्पत्ति-विपत्तियों में समान रूप से भागी रहे हैं और उसके हित एवं उत्कर्ष साधन में समान रूप से साधक रहे हैं। कतिपय अपवादों को छोड़कर इन दोनों में परस्पर सौहार्द भी प्रायः बना ही रहा है।

इस वस्तुस्थिति को सभी विशेषज्ञ विद्वानों ने और राजनीतिज्ञों ने भी समझा है और मान्य किया है। प्रो० रामा स्वामी आयंगर के शब्दों में 'जैन धर्म बौद्ध धर्म अथवा ब्राह्मण धर्म (हिन्दू धर्म) से निसृत तो है ही नहीं, वह भारतवर्ष का सर्वाधिक प्राचीन स्वदेशीय धर्म रहा है' (जैन गजट, भा. १६, पृ. २१६)। प्रो. एफ. डबल्यू. टामस के अनुसार 'जैन धर्म ने हिन्दू धर्म के बीच रहते हुए भी प्रारंभ से वर्तमान पर्यन्त अपना पृथक एवं स्वतन्त्र संसार अक्षुण्ण बनाए रखा है।" (लिगेसी आफ इंडिया, पृ. २१२) 'कल्चरल हेरिटेज आफ इंडिया' सीरीज़ की प्रथम जिल्द (श्री रामकृष्ण शताब्दी ग्रन्थ) के पृ. १८५-१८८ में भी जैन दर्शन का हिन्दू दर्शन जितना प्राचीन एवं उससे स्वतंत्र होना प्रतिपादित किया है। भारतीय न्यायालयों में भी हिन्दू-जैन प्रश्न की मीमांसा हो चुकी है। मद्रास हाईकोर्ट के भूतपूर्व जज तथा विधान सभा के सदस्य टी. एन. शेषागिरि अय्यर ने जैन धर्म के वैदिक धर्म जितना प्राचीन होने की संभावना व्यक्त करते हुए यह मत दिया था कि जैन लोग हिन्दू डिसेन्टर्स (हिन्दू धर्म से विरोध के कारण हिन्दुओं में से ही निकले हुए सम्प्रदायी) नहीं हैं और यह कि वह इस बात को पूर्णतया प्रमाणित कर सकते हैं कि सभी जैनी वैश्य नहीं हैं अपितु उनमें सभी जातियों एवं वर्गों के व्यक्ति हैं। मद्रास हाईकोर्ट के चीफ़ जज (प्रधान न्यायाधीश) माननीय कुमारस्वामी शास्त्री के अनुसार "यदि इस प्रश्न का विवेचन किया जाए तो मेरा निर्णय यही होगा कि आधुनिक शोध खोज ने यह प्रमाणित कर दिया है कि जैन लोग हिन्दू डिसेन्टर्स नहीं हैं, बल्कि यह कि जैन धर्म का उदय एवं इतिहास उन स्मृतियों एवं टीका ग्रन्थों से बहुत पूर्व का है जिन्हें हिन्दू न्याय (कानून) एवं व्यवहार का प्रमाणस्रोत मान्य किया जाता है......वस्तुतः जैन धर्म उन वेदों की प्रमाणिकता को अमान्य करता है जो हिन्दू धर्म की आधारशिला हैं, और उन विविध संस्कारों की उपादेयता को भी, जिन्हें हिन्दू अत्यावश्यक मानते हैं, अस्वीकार करता है।" (आल इंडिया लॉ रिपोर्टर, १९२७, मद्रास २२८) और बम्बई हाईकोर्ट के न्यायाधीश रांगनेकर के निर्णयानुसार "यह बात सत्य है कि जैन जन वेदों के आप्तवाक्य होने की बात को अमान्य करते हैं और मृत व्यक्ति की आत्मा की मुक्ति के लिए किए जाने वाले अन्त्येष्टि संस्कारों,

पितृतर्पण, श्राद्ध, पिण्डदान आदि से सम्बंधित ब्राह्मणीय सिद्धान्तों का विरोध करते हैं। उनका ऐसा कोई विश्वास नहीं है कि औरस या दत्तक पुत्र पिता का आत्मिक हित (पितृ-उद्धार आदि) करता है। अन्त्येष्टि के संबंध में भी ब्राह्मणीय हिन्दुओं से वे भिन्न हैं और शवदाह के उपरान्त (हिन्दुओं की भांति) कोई क्रियाकर्म आदि नहीं करते। यह सत्य है, जैसा कि आधुनिक अनुसंधानों ने सिद्ध कर दिया है, कि इस देश में जैन धर्म ब्राह्मण धर्म के उदय के अथवा उसके हिन्दू धर्म में परिवर्तित होने के बहुत पूर्व से प्रचलित रहा है। यह भी सत्य है कि हिन्दुओं के साथ, जो कि इस देश में बहुसंख्यक रहे हैं, चिरकालीन निकट सम्पर्क के कारण जैनों ने अनेक प्रथाएँ और संस्कार भी जो ब्राह्मण धर्म से संबंधित हैं तथा जिनका हिन्दू लोग कट्टरता से पालन करते हैं, अपना लिए हैं।'' (आल इंडिया लॉ रिपोर्टर, १९३९, बम्बई ३७७). स्व. पं.जवाहरलाल नेहरू ने भी अपने प्रसिद्ध ग्रन्थ 'डिस्कवरी आफ इंडिया' में लिखा है कि ''जैन धर्म और बौद्ध धर्म निश्चय से न हिन्दू धर्म हैं और न वैदिक धर्म भी, तथापि उन दोनों का जन्म भारतवर्ष में हुआ और वे भारतीय जीवन, संस्कृति एवं दार्शनिक चिन्तन के अभिन्न-अविभाज्य अंग रहे हैं। भारतवर्ष का जैन धर्म अथवा बौद्ध धर्म भारतीय विचारधारा एवं सभ्यता की शत-प्रतिशत उपज है, तथापि उनमें से कोई भी हिन्दू नहीं है। अतएव भारतीय संस्कृति को हिन्दू संस्कृति कहना भ्रामक है।''

ऐतिहासिक दृष्टि से भी, वेदों तथा वैदिक साहित्य में वेदविरोधी व्रात्यों या श्रमणों को वेदानुयायियों—ब्राह्मणों आदि से पृथक सूचित किया है। अशोक के शिलालेखों (३री शती ई० पू०) में भी श्रमणों और ब्राह्मणों का सुस्पष्ट पृथक-पृथक उल्लेख है। यूनानी लेखकों ने भी ऐसा ही उल्लेख किया और खारवेल के शिलालेख में भी ऐसा ही किया गया। २री शती ई० पू० में ब्राह्मण धर्म पुनरुद्धार के नेता पतञ्जलि ने भी महाभाष्य में श्रमणों एवं ब्राह्मणों को दो स्वतंत्र प्रतिस्पर्द्धाओं एवं विरोधी समुदायों के रूप में कथन किया। महाभारत, रामायण, ब्राह्मणीय पुराणों, स्मृतियों आदि से भी यह पार्थक्य स्पष्ट है। ईस्वी सन् के प्रथम सहस्राब्द में स्वयं भारतीय जनों में इस विषय पर कभी कोई शंका, भ्रम या विवाद ही नहीं हुआ कि जैन एवं ब्राह्मणधर्मी एक हैं—यही लोकविश्वास था कि स्मरणातीत प्राचीन काल से दोनों परम्पराएँ एक-दूसरे से स्वतंत्र चली आई हैं। मुसलमानों ने इस देश के निवासियों को जातीय दृष्टि से सामान्यतः हिन्दू कहा, किन्तु शीघ्र ही यह शब्द शैव वैष्णवादि ब्राह्मणधर्मियों के लिए ही प्रायः प्रयुक्त करने लगे क्योंकि उन्होंने यह भी निश्चय कर लिया था कि उनके अतिरिक्त यहाँ एक तो जैन परम्परा है जिसके अनुयायी अपेक्षाकृत अल्पसंख्यक हैं तथा अनेक बातों में बाह्यतः उक्त हिन्दुओं के ही सदृश भी हैं, वह एक भिन्न एवं स्वतंत्र परम्परा है। मुग़लकाल में अकबर के समय से ही यह तथ्य सुस्पष्ट रूप से मान्य भी हुआ। अंग्रेजों ने भी प्रारंभ में, मुसलमानों के अनुकरण से, सभी मुस्लिमतर भारतीयों को हिन्दू समझा किन्तु शीघ्र ही उन्होंने भी कथित हिन्दुओं और जैनों की एक-दूसरे से स्वतंत्र संज्ञाएँ स्वीकार कर लीं। सन् १८३१ से ब्रिटिश शासन में भारतीयों की जनगणना लेने का क्रम भी चालू हुआ, सन् १८३१ से तो वह दशाब्दी जनगणना क्रम सुव्यवस्थित रूप से चालू हो गया। इन गणनाओं में १८३१ से १८४१ तक बराबर हिन्दुओं

और जैनियों की संख्याएँ पृथक्-पृथक् सूचित की गईं। १५ अगस्त १९४७ को हमारा देश स्वतन्त्र हुआ और सार्वजनिक नेताओं के नेतृत्व में यहां स्वतन्त्र-सर्वतन्त्र-प्रजातन्त्र की स्थापना हुई। किन्तु १९४८ में जो जनगणना अधिनियम पास किया गया उसमें यह नियम रक्खा गया कि जैनों को हिन्दुओं के अन्तर्गत ही परिगणित किया जाय—एक स्वतन्त्र समुदाय के रूप में पृथक् नहीं। इस पर जैन समाज में बड़ी हलचल मची। स्व० आचार्य शान्तिसागरजी ने कानून के विरोध में आमरण अनशन ठान दिया, जैनों के अधिकारियों को स्मृतिपत्र दिए, उनके पास डेपुटेशन भेजे। फलस्वरूप राष्ट्रपति, प्रधान मन्त्री तथा अन्य केन्द्रीय मन्त्रियों ने जैनों को आश्वासन दिये कि उनकी उचित मांग के साथ न्याय किया जाएगा।

जैनों की मांग थी कि उन्हें सदैव की भांति १९५१ की तथा उसके पश्चात् होने वाली जनगणनाओं में एक स्वतन्त्र धार्मिक समाज के रूप में उसकी पृथक् जनसंख्या के साथ परिगणित किया जाय। उनका यह भी कहना था कि वे अपनी इस मांग को वापस लेने के लिए तैयार हैं यदि जनगणना में किसी अन्य सम्प्रदाय या समुदाय की भी पृथक गणना न की जाय और समस्त नागरिकों को मात्र भारतीय रूप में परिगणित किया जाय। (देखिए हिन्दुस्थान टाइम्स ६-२-५०)।

जैनों का डेपुटेशन अधिकारियों से ५ जनवरी १९५० को मिला। डेपुटेशन के नेता एस० जी० पाटिल थे। इस अवसर पर दिये गये स्मृति-पत्र में हरिजन मन्दिर प्रवेश अधिनियम तथा बम्बई बैगर्स एक्ट को भी जैनों पर न लागू करने की मांग की। अधिकारियों ने जैनों की मांग पर विचार बिमर्श किया और अन्त में भारत के प्रधान मन्त्री नेहरूजी ने यह आश्वासन दिया कि भारत सरकार जैनों को एक स्वतन्त्र-पृथक धार्मिक समुदाय मानती है और उन्हें यह भय करने की कोई आवश्यकता नहीं है कि वे हिन्दू समाज के अंग मान लिए जाएँगे यद्यपि वे और हिन्दू अनेक बातों में एक रहे हैं।' (हि० टा० २-२-५०) प्रधान मन्त्री के प्रमुख सचिव श्री ए० के० श्री एस० जी० पाटिल के नाम लिखे गये। ३१-१-५० के पत्र में जैन बनाम हिन्दू सम्बन्धी सरकार की नीति एवं वैधानिक स्थिति सुस्पष्ट कर दी गई है। शिक्षा मन्त्री मौलाना अबुलकलाम आजाद ने भी श्री पाटिल को लिखे गये अपने पत्र में उक्त आश्वासन की पुष्टि की और आशा व्यक्त की कि आचार्य शान्तिसागरजी अब अपना अनशन त्याग देंगे। यह भी लिखा कि अपनी स्पष्ट इच्छाओं के विरुद्ध कोई भी समूह किसी अन्य समुदाय में सम्मिलित नहीं किया जाएगा। (वही, ६-२-५०) लोक-सभा में उपप्रधान मन्त्री सरदार वल्लभभाई पटेल ने बलवन्तसिंह मेहता के प्रश्न के उत्तर में सूचित किया कि जनगणना में धर्म शीर्षक के अन्तर्गत हिन्दू और जैन पृथक-पृथक परिगणित किये जाएंगे (वही, ८-२-५०)।

इसी बीच स्व० ला० तनसुखराय ने अखिल भारतीय जैन एसोशिएसन के मन्त्री के रूप में उपरोक्त मेमोरेण्डम के औचित्य पर आपत्ति की (वही, ४-२-५०) और अपने वक्तव्य में उन्होंने इस बात पर बल दिया कि शब्द हिन्दू जातीयता सूचक है, राजनैतिक, सामाजिक एवं आर्थिक दृष्टियों से जैन हिन्दुओं से पृथक नहीं हैं किन्तु उनकी अपनी पृथक संस्कृति है।

कुछ लोगों ने जैनों के इस क्वचित आन्तरिक मतभेद का लाभ उठाया आम जैनों का उपहास किया, उन पर लांछन लगाये, उनकी निन्दा और भर्त्सना की कि वे अपने आपको 'हिन्दूइज्म' से पृथक करना चाहते हैं, अल्प-संख्यक करार दिये जाकर राजनैतिक अधिकार लेना चाहते हैं, पृथक विश्व विद्यालय की मांग द्वारा इस धर्मनिरपेक्ष राज्य में अपने धर्म का प्रचार किया चाहते हैं, इत्यादि (ईवनिंग न्यूज़ १४-३-५० में किन्हीं फर्ज़ी 'राइट एन्गिल' साहब का लेख) वीर अर्जुन (११-६-४६) आदि में इसके पूर्व भी जैनों को स्वतन्त्र सत्ता स्वीकार करने के विरुद्ध लेख निकल चुके थे कुछ पत्रों में इसके बाद भी निकले। इस प्रकार के लेख साम्प्रदायिक मनोवृत्ति से प्रेरित होकर लिखे गए थे और बहुसंख्यक वर्ग द्वारा उस जैन विद्वेषी संकीर्ण मनोवृत्ति का परिचय दिया गया था जिसे बीच-बीच में यत्र-तत्र बहुसंख्यकों द्वारा जैनों पर किये गये धार्मिक अत्याचारों का श्रेय है। जिन विद्वानों, विशेषज्ञों, न्यायविदों एवं राजनीतिज्ञों के मत इसी लेख में पहिले प्रगट किये जा चुके हैं वे प्रायः उसी कथित हिन्दू धर्म के अनुयायी थे या हैं, किन्तु वे मनस्वी, निष्पक्ष और न्यायशील हैं—धर्मान्ध या साम्प्रदायिक मनोवृत्ति के नहीं। अल्पसंख्यक समुदाय से बहुसंख्यक समुदाय वैसे ही भय रहता है जो बहुसंख्यकों के सौहार्द एवं सौभाग्य से दूर होता है, संख्या बल द्वारा दबा देने की मनोवृत्ति से नहीं।

इन लेखों का एक असर यह हुआ कि कुछ जैनों ने, जिनमें स्व० ला० तनसुखराय प्रमुख थे, समाचारपत्रों में अनेकों लेखों एवं टिप्पणियों द्वारा कथित हिन्दुओं के इस भ्रम और आशंका कि जैन हिन्दुओं से पृथक हैं का निवारण करने का भरसक प्रयत्न किया। इसकी शायद वैसी और उतनी आवश्यकता नहीं थी। १९५४ में जब हरिजन मन्दिर-प्रवेश आन्दोलन ने उग्ररूप धारण किया तब भी जैनों में दो पक्ष से दीख पड़े और उस समय भी ला० तनसुखराय ने यही प्रदर्शित करने का प्रयत्न किया कि जैन हिन्दुओं से पृथक नहीं हैं। सन् १९४९-५० से १९५४-५५ तक के विभिन्न समाचारपत्रों में इन विषयों से सम्बन्धित समाचारों, टिप्पणियों आदि की कटिंग्स वह एकत्रित करके छोड़ गये हैं। उनके अवलोकन से यही लगता है कि ला० तनसुखरायजी को यह आशंका और भय था कि कहीं धर्म और संस्कृति संरक्षण के मोह के कारण जैनों ने स्वातन्त्र्य संग्राम में जो धन-जन की प्रभृति आहुति दी है—अपनी संख्या के अनुपात से कहीं अधिक और देश को एवं राष्ट्र की सर्वतोमुखी उन्नति में जो महत्त्वपूर्ण योगदान किया है और कर रहे हैं कि उस पर पानी न फिर जाय। और फिर कुछ नेतागीरी का भी नशा होता है। वरना अपनी सत्ता का मोह होना, अपने स्वत्वों, परम्पराओं एवं संस्कृति के संरक्षण में प्रयत्नमान रहना तो कोई अपराध नहीं है—वह तो सर्वथा उचित एवं श्रेष्ठ कर्तव्य है, केवल यह ध्यान रखना उचित है कि देश और राष्ट्र के महान हितों से कहीं कोई विरोध न हो और किसी अन्य समुदाय से किसी प्रकार का द्वेष या वैमनस्य न हो, सहअस्तित्व का भाव ही प्रधान हो और समष्टि के बीच व्यष्टि भी निर्विरोध रूप से अपना सम्मानपूर्ण अस्तित्व बनाये रख सके।

अस्तु, इस सम्पूर्ण विवेचन से यही निष्कर्ष निकलता है कि भले ही मूलतः हिन्दू शब्द विदेशी हो, अर्वाचीन हो, देशपरक एवं जातीयता सूचक हो, उसका रूढ़ अर्थ, जो अनेक कारणों

से लोक प्रचलित हो गया है, एक धर्मपरम्परा विशेष के अनुयायी ही हैं और उनका धर्म हिन्दूधर्म है। हिन्दू और भारतीय—दोनों शब्द पर्यायवाची नहीं हैं—कम से कम भारत के भीतर नहीं है, भारत के बाहर तो भारतीय मुसलमानों को भी कभी-कभी हिन्दू कहा गया है। जिस प्रकार भारत के बौद्ध, सिक्ख, पारसी, ईसाई, मुसलमान, यहूदी, ब्रह्मसमाजी आदि भारतीय तो हैं किन्तु हिन्दू नहीं, उसी प्रकार जैन भी भारतीय तो हैं, बल्कि जितना भी पूर्णतया कोई अन्य समुदाय किसी भी दृष्टि से भारतीय हो सकता है उससे कुछ अधिक हैं, तथापि वे जिन अर्थों में आज हिन्दू शब्द रूढ़ हो गया है उन अर्थों में हिन्दू नहीं हैं। शब्द का जो रूढ़ और प्रचलित अर्थ होता है वही मान्य किया जाता है—किसी समय 'पाखण्ड' शब्द का अर्थ 'धर्म' होता था, किन्तु आज ढोंग, झूठ और फरेब होता है, अतः यदि आज किसी धर्म को पाखण्ड कह दिया जाय तो भारी उत्पात हो जाय। इस प्रकार के अन्य अनेक उदाहरण दिए जा सकते हैं।

हिन्दू और जैन शब्दों के भी जो अर्थ लोक प्रचलित हैं जनसाधारण द्वारा समझे जाते हैं, उन्हीं की दृष्टि से इस समस्या पर विचार किया जाना उचित है।

❀ ❀ ❀

(पृष्ठ १४१ का शेष)

रथ बड़ी शान व प्रभावना के साथ सरे बाजार निकाला गया विरोधियों ने भी प्रशंसा की।

सतना का अधिवेशन श्री ला० तनसुख राय जी के प्रधान के मंत्रित्वकाल में सफलता से सम्पन्न हुआ। सफलता का विशेष श्रेय प्र० मंत्री को तो है ही परन्तु तमाम सी० पी० बरार प्रान्त तथा बुंदेलखण्ड में प्रचार सब मैंने ही किया।

प्रो० हीरालाल जी एम० ए० एल० एल० बी नागपुर अधिवेशन के अध्यक्ष चुने गये थे उनका जुलूस १४ बैलों के रथ में निकाला गया। प्रबन्ध कार्य में पं० कमल कुमार और मैंने विशेष सहयोग दिया।

विभिन्न विषयों पर लिखे गए

लाला जी के कतिपय लेखों की झलक

लाला तनसुखराय जी एक कर्मवीर समाजसेवी देशभक्त नेता थे। वे कुशल वक्ता भी थे। नई-नई सूझ आन्दोलन के धनी थे। यद्यपि वे कलम के धनी नहीं थे। वे कुशल नेता थे और न कोई ऐसे विशिष्ट विद्वान थे जो ग्रन्थों का निर्माण करते। परन्तु अपने विचारों को प्रकट करने के लिए वे लिखकर बोलकर जैसा भी अवसर आता सदैव तत्पर रहते। वे साहित्यकार तो थे नहीं न कवि न कोई प्रसिद्ध लेखक। परन्तु जैसे ग्राम कविता में तीन गुण पाए जाते हैं अक्षर मिताई पद ललिताई और अर्थ की गंभीरताई। थोड़े अक्षर, पदों की सुन्दरता और अर्थ की गंभीरता उसी प्रकार सुन्दर गद्य में भी तीन गुणवृत्त है। लालाजी की रचना में भी वे सभी गुण पाए जाते हैं जो एक प्रतिभा सम्पन्न प्रचारक में होते हैं। उनकी रचना में जीवन है, जोश है, प्रवाह और हृदय पर असर करने वाली तेजस्वी विचारधारा है। कतिपय लेखों से इस बात की सत्यता सिद्ध हो सकेगी। यह आप स्वयं अनुभव करेंगे।

★ ★ ★ ★

रक्षा-बन्धन

के सम्बन्ध में हमारा दृष्टिकोण

आज रक्षाबन्धन अर्थात् सलोनों का दिन है। कोने कोने में राखियों की चहल-पहल दीख पड़ती है। बहिनें भाइयों के घरों पर जाकर राखी बांध कर अपने पवित्र प्रेम का प्रदर्शन करती हैं। रक्षा-बन्धन की महत्ता के अनेक धार्मिक कारण हैं। जैन दृष्टिकोण से इसका प्रारम्भ निम्न प्रकार है :—'आज से सहस्त्रों वर्ष पूर्व उज्जैन नगरी में धर्मप्रेमी राजा श्री वर्मा के बलि आदि चार जैन-धर्म-द्वेषी मन्त्री थे। एक समय नगर में जब ७०० जैन मुनियों का संघ आया, तब राजा के साथ दर्शनार्थ जाने वाले वे चारों मन्त्री मुनि श्रुत सागर से वाद-विवाद में परास्त होकर बदले की इच्छा से लौटे। रात्रि को उन्होंने मुनि श्रुतिसागर को मारने की इच्छा की। परन्तु वहाँ के देव द्वारा कीलित किए जाने पर वह हिल भी न सके। प्रातः राजा ने यह देख कर क्रोधित हो उन्हें देश निकाला दे दिया। वे ही चारों मन्त्री बाद में हस्तिनापुर के राजा पद्मराय के यहां आकर मन्त्री बन गये और राजा को प्रसन्न कर उससे मुंह मांगी वस्तु पाने का वचन ले लिया। वही मुनि संघ कुछ दिनों बाद विहार करते हुए वहाँ आया। बलि ने राजा से सात दिन के लिए अपने वचनानुसार राज्य लेकर उन मुनियों के चारों ओर हाड़, मांस, चाम, ईंधन आदि की अग्नि जलवा दी, ताकि वह मुनि दम घुट कर मर जावें। मुनि विष्णुकुमारजी पद्मराय के छोटे भाई भी थे, जिन्हें

विक्रयाऋधि (आकृति बदलने की शक्ति) प्राप्त थी उन्हें यह बात जानकर बड़ा दुख हुआ। तत्काल ही वह हस्तिनापुर बारह अंगुल के ब्राह्मण का रूप धारण कर पहुँचे तथा राजा बलि को प्रसन्न कर उससे अपने पग से तीन पग पृथ्वी माँगने का वचन लिया। उन्होंने अपनी अपूर्व शक्ति से संसार की समस्त पृथ्वी को तीन पग में नाप कर राजा बलि को अत्यन्त लज्जित कर मुनि संघ की रक्षा कर उनको मृत्यु के मुख से बचाया। तभी से इस त्यौहार का नाम रक्षाबन्धन पड़ा। यहाँ पर विचारणीय बात है मुनि विष्णुकुमार का रक्षाभाव जिसके उन्होंने अपने ऊपर अधिक से अधिक कष्ट सह कर तथा मुनि पद के कर्तव्य को भी एक बार भूल कर (क्योंकि जैन शास्त्रानुसार प्रायः जैन मुनि को आकृति बदलने व माँगने का अधिकार नहीं है) ७०० मुनियों के संघ की रक्षा की। उसी प्रकार हमारा भी कर्तव्य है कि हम हर प्रकार से अनेकानेक आपत्तियाँ सह कर भी दूसरों की, विशेषतया निर्बलों की, रक्षा करने में अपने तन-मन-धन को लगा दें।

* * * *

दीपावली

भ० महावीर का निर्वाण दिवस—
भारतीय संस्कृति का समन्वय पर्व

भारत माँ की गोद में जब उसके लाड़ले लाल स्वच्छन्द किलोल करते होंगे, तब की दीपावली की बात जाने दीजिए। आज भी हम इस दुर्गन्धमय दूषित वातावरण में जबकि निराकुल और स्वतंत्र श्वास लेना दूभर हो रहा है, तब भी भारतीय अपनी माँ की जिस अविरल अविचल भक्ति से दीपदान द्वारा उपासना करते हैं वह संसार में अलौकिक और अनुपम है।

यों तो सात वार और नौ त्योहार भारत में सदैव मनते रहे हैं और मनते रहेंगे, मुहर्रम के दिन पहले भारतवासियों ने न देखे थे न सुने थे; [यह दुर्दिन तो परतन्त्र होने पर ही देखने को मिले हैं] परन्तु दीपावली महोत्सव सब त्योहारों का सम्राट है। इस उत्सव के मनाने में हिन्दुओं की जिस निष्ठा, श्रद्धा और उत्साह का परिचय मिलता है वह अभूतपूर्व है।

दीपावली महोत्सव कार्तिक कृष्णा ३० को प्रत्येक भारतीय के हृदय पर प्रतिवर्ष एक आनन्द-सा बखेर कर चला जाता है। इसी पुण्यतिथि को मर्यादा पुरुषोत्तम भगवान राम भारत-लक्ष्मी सीता का अपहरण करने वाले राक्षसों का वध करके १४ वर्ष के पश्चात साकेत पधारे थे। साकेत निवासी अपने राम का आगमन सुनकर इसी पुण्यतिथि को आनन्द-विभोर हो उठे थे; उनका मन-मयूर नाचने लगा था। सरयू नदी, जो साकेत वासियों के अश्रुओं को लेकर वन-पर्वतों में राम को ढूंढती फिरती थी, उसी राम के दर्शन पाकर अठखेलियाँ करती हुई जन-जन को यह संवाद सुनाने दौड़ी थी। भारत की खोई हुई निधि और लक्ष्मी को पाकर भारतवासियों ने जो महोत्सव किया था, दीपावलि उसी पुण्यतिथि की स्मारक है।

इसी पावन तिथि को २४६१ वर्ष पूर्व विश्वोद्धारक भगवान महावीर को निर्वाण प्राप्त हुआ था। इस अनुपम विभूति ने अपने आदर्श, त्याग, दुद्धर तपश्चर्या से जो उस समय लोक सेवा की थी। संत्रस्त भारत में सुख-शांति की जो स्थापना की थी, उसी पवित्र स्मृति में भगवान महावीर के निर्वाण प्राप्त होने पर यह दीपावली महोत्सव किया गया था। इसी रोज गौतम गणधर को केवल ज्ञान प्राप्त हुआ था और इसी रोज सुधारक शिरोमणि स्वामी दयानन्द स्वामी स्वर्गासीन हुए थे।

अतः दीपावली महोत्सव सनातन जैन और आर्य सभी लोगों का महान त्योहार है? इस त्योहार के आने से महीनों पूर्व तैयारियां होने लगती हैं। बालक, युवा, वृद्ध सबके हृदय-कमल खिल जाते हैं। भारत की लक्ष्मी भारत में ही, रहे इसी भावना के वशीभूत होकर प्रत्येक हिन्दू नर-नारी उसकी आराधना करते हैं। भगवान वह सुनहरा प्रभात न जाने कब दिखायेंगे जब हम अपनी भारत मां को परतन्त्रता के बन्धन से मुक्त करके उसके मस्तक पर दीपावली का मुकुट अभिषिक्त करेंगे।

× × × ×

कथनी और करनी में समानता लाइये

भगवान महावीर का जन्म-दिन मनाने का उत्तम ढंग

किसी भी महापुरुष का जन्मोत्सव मनाने का सबसे उत्तम ढंग क्या है? बड़े-बड़े मेलों, उत्सवों और कार्यक्रमों इत्यादि का आयोजन अथवा महापुरुष की जीवनी, उसके उपदेशों इत्यादि के सम्बन्ध में व्याख्यान, भाषण इत्यादि की व्याख्या। आमतौर पर हम इसी प्रकार महापुरुषों का जन्मोत्सव मनाते हैं।

किन्तु मेरे विचार में एक अन्य ढंग से भी इस प्रकार के जन्म-दिन मनाये जा सकते हैं। यह ढंग है महापुरुषों के जिन विश्वासों में हम श्रद्धा रखते हैं, उन्हें अपने जीवन में ढालने अथवा अपनाने की चेष्टा। किन्हीं भी उत्सवों, मेलों इत्यादि के आयोजन से यह ढंग किसी भी प्रकार कम महत्वपूर्ण नहीं।

आइये, आज जब हम भगवान् महावीर स्वामी का जन्मोत्सव मना रहे हैं, तब देखें कि इस दिशा में क्या कुछ कर सकते हैं।

अहिंसा

सबसे प्रथम हम अहिंसा को लेते है। आज जो देश और समाज उन्नत हैं, उनकी सफलता का मुख्य कारण यही है कि 'अहिंसा' में हमारे समान श्रद्धा न रखते हुए और उसके

अभिप्राय को पूरी तरह न समझते हुए भी इन लोगों ने अपने आचरण और व्यवहार में अनजाने ही अहिंसा को अपना लिया है। "आत्मनः प्रतिकूलानि परेषां न समाचरेत्" अर्थात् जो बातें, क्रियाएं और चेष्टाएं उन्हें प्रतिकूल प्रतीत होती हैं और दूसरों द्वारा किये गये जिस व्यवहार को वे अपने लिए पसन्द नहीं करते और अहितकर और दुःखदायी समझते हैं, उनका आचरण वे दूसरों के प्रति नहीं करते। फलस्वरूप अपने चारों ओर के वातावरण के प्रेम में उनके हृदय डूबे हुए हैं। उस प्रेम-सने हृदय ने उन लोगों को दृढ़ता से एक सूत्र में पिरो दिया है। उनके संगठन, शक्ति और उन्नति की नींव इस प्रकार अहिंसा पर स्थापित है। भगवान महावीर के जन्मोत्सव के अवसर पर हम यदि इस गुण को अपनालें, तो हमारा समाज भी वैसा ही शक्तिशाली बन सकता है।

सत्य

किसी काल में हमारा समाज अपनी सच्चाई के लिए विख्यात था। उस काल में हमारे समाज को सर्वत्र आदर की दृष्टि से देखा जाता था। व्यक्ति, समाज और यहाँ तक कि दूर-दूर के देश तक हमारा विश्वास करते थे। इसका परिणाम वाणिज्य की वृद्धि, सबसे बन्धुत्व और मैत्री की भावना और हमारी सत्ता के अधिकाधिक शक्तिशाली हो जाने के रूप में हमें प्राप्त हुआ था। कालान्तर में इस सत्य का ह्रास हो गया। फलस्वरूप हम अपनी पूर्व-स्थिति कायम नहीं रख सके। वाणिज्य, आपसी सम्बन्ध और सत्ता हर दृष्टि से हमें हानि उठानी पड़ी। किन्तु सत्य को पुनः उसी दृढ़ता से अपनाकर हम फिर अपने पुराने आदर और गौरव को प्राप्त कर सकते हैं। आज जो देश और समाज उन्नत हैं, उनकी ओर दृष्टिपात करने पर यह बात स्पष्ट हो जाएगी कि वे सत्य को हमारी उपेक्षा अपने-जीवन में अधिक दृढ़ता से अपनाये हुए हैं। उनका प्रत्येक सफलता के पीठ पीछे सच्चाई का छुपा हाथ है। स्वयं अपना प्राचीन गौरव हमें सत्य की ओर प्रेरित करने वाला है।

वीरता

यह बात हम प्रतिदिन अपनी आँखों से देखते हैं कि कमजोर और दुर्बल व्यक्ति जीवन के हर क्षेत्र में पग-पग पर डगमगाता और पराजय का मुँह देखता है। यही बात सभाओं और राष्ट्रों पर भी लागू होती है। इसलिए उन्नति चाहने वाले व्यक्ति, समाज और राष्ट्र निरन्तर अपनी शक्ति को बढ़ाने और अधिकाधिक बलवान बनाये रखने की चेष्टा करते हैं, ये चेष्टाएँ ही ऐसे व्यक्तियों, समाजों और राष्ट्रों को जीवन की दौड़ में पराजय से दूर रखती हैं। हमारे समाज की विगत पिछड़ी हुई स्थिति का कारण यही है कि अपने आपको बलवन् बनाये रखने की इस होड़ में हम पिछड़ गये। इस दिशा में हमारा ध्यान नहीं रहा। यदि हम पुनः अपनी प्राचीन स्थिति को प्राप्त करना चाहते हैं, तो हमें भगवान् महावीर स्वामी के मुख्य उपदेश को भूलना नहीं चाहिए। यह उपदेश है : वीर और बलवान् बनो। स्वयं जीओ और दूसरे लोगों को जीने दो। अपनी शक्ति और वीरता को अन्य लोगों की सहायता और भलाई के काम में

लाओ। किसी पर अत्याचार करना पाप है। किन्तु किसी का अत्याचार सहना उससे भी बड़ा पाप है। इस महापाप को किसी भी दशा में स्वीकार न करो।

शुद्धि

आत्मा के आनन्द के लिए भीतर और बाहर सर्वत्र स्वच्छता आवश्यक है। उसी दशा में हृदय कल-कल निनाद करता हुआ किसी झरने के समान फूट पड़ता है। व्यक्ति, समाज और राष्ट्र तीनों ही के लिए आन्तरिक और बाह्य स्वच्छता की आवश्यकता रहती है। स्वच्छता आनन्द की सृष्टि के अतिरिक्त नाना प्रकार के कला-कौशलों को जन्म देती है। इससे व्यक्ति समाज और राष्ट्र के प्राण में नये-नये रस उत्पन्न होकर उनका स्वास्थ्य-शक्ति और सम्पन्नता बढ़ जाते हैं। जिस युग में हमारे हमाज में स्वच्छता को समुचित स्थान प्राप्त था, उस युग में कला-कौशल की दृष्टि से हम अत्यधिक सम्पन्न थे। हमारे प्राचीन देवालयों, मठों और विहारों से इस बात का अच्छा-खासा परिचय हम प्राप्त कर सकते हैं। आन्तरिक और बाह्य स्वच्छता के सम्बन्ध में सही दृष्टिकोण के अभाव में हमारे कला-कौशलों ने अपनी नित्य नूतनता और अमरता खो दी। वे प्राण और संज्ञा-शून्य होकर रूढ़ि मात्र रह गए। आज जब हम पुनः उन्नति की दिशा में अग्रसर हैं, तब स्वच्छता के सम्बन्ध में हमें उसी दृष्टिकोण को अपनाना होगा, जो आनन्द और सौन्दर्य का सृष्टा है।

इन्द्रिय-निग्रह

आज के भौतिकवादी युग की अशान्ति को यदि हम समाप्त करना चाहते हैं, यदि हमें निरन्तर भय और आशंका का शिकार बने रहना अभीष्ट नहीं, तो हमें इन्द्रिय-निग्रह के महत्त्व को स्वीकार कर उसे अपनाना होगा। इन्द्रियों के मनमाने ढंग पर पूरी छूट से खुल खेलने का इसके अतिरिक्त कोई परिणाम नहीं हो सकता कि हम शारीरिक और मानसिक रोगों से पीड़ित हो जाएँ। रोग-ग्रस्त व्यक्ति केवल अपने लिए ही नहीं, अपितु अपने परिवार और चारों ओर के बातावरण के लिए भी पीड़ा और अशान्ति का कारण बन जाता है। इन्द्रियों की मनमानी से इस प्रकार हम अशान्ति और पीड़ा के ऐसे बवण्डर में फँस जाते हैं, जिनका उपचार सामान्य औषधियों से होना सम्भव नहीं। एक रोग के बढ़ने पर दूसरा सिर उभाड़ लेता है, दूसरे के बाद तीसरे की बारी आ जाती है। इसी प्रकार यह चक्र चालू रहता है। आज के युग में हम यही देख भी रहे हैं। आज संसार एक भीषण पीड़ा और अशान्ति में से गुजर रहा है; एक समस्या का समाधान नहीं होता कि दूसरी सिर उभार कर खड़ी हो जाती है। फिर भी इन्द्रिय-निग्रह के महत्व को हम समझ नहीं पा रहे हैं।

संसार मुखापेक्षी

इन उक्त विश्वासों में हमारी चिरकाल से श्रद्धा और आस्था है। इसी दशा में भगवान् महावीर स्वामी के शुभ जन्म-दिवस के अवसर पर यदि हम अपनी कथनी और करनी में तालमेल

बिठलाने अथवा समानता उत्पन्न करने की चेष्टा करें, तो जहाँ हमारा अपना और हमारे समाज का लाभ होगा वहाँ हम दूसरों के लिए भी हितकर हो सकेंगे। हमारी प्राचीन सफलताओं से प्रभावित होकर सारा संसार हमसे न जाने क्या आशाएँ लगाये बैठा है। वह सदैव प्रतीक्षा करता रहेगा अथवा हम उसकी आशा की पूर्ति का साधन बन सकेंगे, यह बात बहुत कुछ हमारी करनी पर निर्भर करती है।

ढाई हजार वर्ष पूर्व का महान् क्रांतिकारी

विश्वोद्धारक भ० महावीर

आज से तीन हज़ार वर्ष पूर्व के उस युग की तनिक कल्पना कीजिए, जिसमें बलिदानों का बोलबाला था। जिह्वा के रसास्वादन और उदरपूर्ति के लिए आज भी जीवों की हत्या की जाती है, किन्तु उस युग की बात और ही थी। सब इस प्रकार के कर्म धर्म के नाम पर किये जाते थे। धर्म के नाम पर घोड़ों और अन्य पशुओं को काट कर उनसे यज्ञ सम्पन्न किये जाते थे। नर-बलि तक की प्रथा का उस युग में प्रचलन था।

मनुष्य और मनुष्य के बीच भीषण असमानता उस युग की एक अन्य वस्तु थी। मनुष्यों को विभिन्न श्रेणियों में बाँटा जा चुका था। इनमें दास और शूद्र जैसी कुछ ऐसी श्रेणियां भी थीं, जिन्हें मनुष्य स्वीकार न कर पशुओं से भी बुरा समझा जाता था। इन लोगों से हर प्रकार का श्रम कराया जाता था और इसके बदले में इनसे पूर्ण दुर्व्यवहार किया जाता था।

स्त्री-जाति अर्थात् जननी और मां की दशा भी उस युग में निम्न स्थिति में थी। ब्राह्मण धर्म के प्रचार के साथ स्त्रियों की शिक्षा पर बन्धन लगा चुके थे। वेदादि की शिक्षा महिला वर्ग को नहीं दी जाती थी। उच्च-शिक्षा के अभाव में स्त्री-जाति से शिक्षा का धीरे-धीरे लोप हो रहा था।

इस अन्धकारपूर्ण युग का पूरा विवरण ऐतिहासिक छान-बीन में उपलब्ध नहीं। तथापि उपरोक्त तथ्यों को सम्मुख रखते हुए स्थिति की भीषणता का कुछ अनुमान लगाया जा सकता है। इस अनुमान से यह बात स्पष्ट है कि हमारा समाज धीरे-धीरे पतन की दिशा में अग्रसर हो रहा था।

महान् क्रान्ति का जन्म

समाज को पतन के गर्त में गिरने से बचाने के लिए एक महान् विभूति ने जन्म लिया। आकाश में बिजली की आभा सहसा ही प्रज्वलित हुई, जिसने सारे नभ में एक क्षण के लिए

प्रकाश कर दिया। संसार के प्रथम महान् क्रान्तिकारी का यह जन्म एक अनोखी घटना है। इस क्रान्तिकारी ने जिस आलोक को उत्पन्न किया, वह बाद में अनेकों युगों तक संसार को प्रकाश प्रदान करता रहा।

साधुओं की रक्षा, दुष्टों का विनाश और धर्म की रक्षा के लिए आज से ढाई हजार वर्ष पूर्व जिस महापुरुष ने जन्म लिया, उनका नाम है भगवान् महावीर।

भगवान् महावीर का जन्म एक राजकुल में हुआ। मनुष्यों और भूमि पर राज्य करना उनका कुल-धर्म था। किन्तु देश और समाज की जो स्थिति उनके सम्मुख थी, उसने उन्हें अधीर कर दिया। बाह्य शत्रुओं को जीतने के स्थान पर उनकी आत्मा ने अपने आन्तरिक शत्रुओं को पराजित कर एक ऐसा मार्ग ढूँढ़ने का निश्चय किया जिसके द्वारा सारे संसार का कल्याण सम्भव हो सकता था। उन्होंने अपने लिए ऐसे राज्य का चुनाव किया, जो अजेय और अमर हो।

फलस्वरूप ३० वर्ष की आयु में भोग से मुंह मोड़कर आपने जंगलों में बसेरा किया और १२ वर्ष के कठोर तप के पश्चात् उस सत्य की खोज में सफल हो गए, जिसकी प्राप्ति के लिए आप प्रयत्नशील थे और बचपन से ही जिसके लिए आपके मन में अधीरता थी।

अहिंसा का अपूर्व सन्देश

अहिंसा की जो ज्योति बाद के युगों में बुद्ध, ईसा, गान्धी इत्यादि महापुरुषों ने जगायी, उसको सर्वप्रथम जगाने का सौभाग्य भगवान् महावीर स्वामी को ही है। अहिंसा के इस अपूर्व सन्देश का प्रकाश फैलाकर आपने पशुओं और मनुष्यों की बलि के कलुषितापूर्ण कृत्यों को रोका और प्राणिमात्र को प्रेम की दृष्टि से देखने की शिक्षा संसार को सर्वप्रथम दी।

समाज में फैली ऊँच-नीच की भावना पर आपने जो कुठाराघात किया, उसका वास्तविक महत्व तो वर्ग-विहीन समाज की स्थापना के वर्तमान युग में ही भली-प्रकार समझा जा सकता है। इस दिशा में भी एक नये सन्देश का प्रारम्भ कर आपने बताया कि सब मनुष्य समान हैं। न कोई वर्ग अथवा व्यक्ति ऊँचा है और न कोई नीचा। कर्म से ही प्रत्येक व्यक्ति की योग्यता प्रकट होती है। "आत्मवत् सर्व भूतेषु" की शिक्षा प्रदान कर आपने बताया कि जाति, रंगभेद, देशभेद और अन्य आर्थिक भेदों के कारण मनुष्यों को ऊँचा-नीचा नहीं माना जा सकता। सब मनुष्यों से सभ्यता से बरतना आवश्यक है।

आपके उक्त उपदेश के अन्तर्गत ही स्त्री-जाति के पुरुषों के समान अधिकारों की घोषणा की और उन्हें ज्ञान प्राप्ति का पूर्ण अधिकारी बताया। इस प्रकार समाज के रथ का जो चक्र अहिंसा के कारण दुर्बल होता जा रहा था, उसे पुनः पुष्ट बनाने की चेष्टा की गयी।

लोक-कल्याण के लिए भगवान् महावीर ने जिस प्रकाश-पुंज को प्रवाहित किया, उसकी अनेकों धाराएँ हैं। ये आज भी हमारे जीवन-मार्गों को प्रकाशित करती हैं। उसमें से कुछ

महत्वपूर्ण इस प्रकार हैं : "अपने जीवन को सादा बनाओ, शारीरिक सुखों में अपने आपको अधिक न फंसाओ, साधना का जीवन ही वास्तविक जीवन है, बुराई से बचो क्योंकि उसके बुरे परिणाम होते हैं", इत्यादि ।

आज के युग में भगवान् महावीर के सन्देशों का महत्व

आज के अशान्ति और हिंसा से पूर्ण संसार में भगवान महावीर के सन्देशों का बड़ा महत्व है । आज अपने विनाश की जिन तैयारियों में संसार लगा हुआ है, उनको रोकने के लिए भगवान महावीर स्वामी का "अहिंसा परमो धर्मः" सन्देश रामबाण सिद्ध हो सकता है । यह हमें अपने झगड़े आपस में मिलकर निबटा लेने की प्रेरणा देता है । यह हमें परस्पर स्नेह करना सिखलाता है और इस प्रकार उन भीषण अणुशस्त्रों के प्रयोग से हमें रोकता है जिनके द्वारा संसार की भीषण हानि अथवा उसका सर्वथा विनाश सम्भव है ।

एक नयी दिशा की ओर अग्रसर उस देश को भी ढाई हजार वर्ष पूर्व के महान् क्रांतिकारी की प्रकाश किरणों की अत्यधिक आवश्यकता है । इनकी सहायता से हमारा मार्ग प्रकाशित रहेगा और नई दिशा की ओर अग्रसर होते हुए हम अधिक भूलें नहीं करेंगे । भौतिक प्रगति के मार्ग की ओर अग्रसर होते हुए हम उस आध्यात्मिक पहलू को नहीं भुला सकेंगे, जो हमें सच्ची मनुष्यता, आपसी प्रेम और समानता की शिक्षा देता है ।

स्वयं अपने व्यक्तिगत जीवनों में भी इन सन्देशों से एक ऐसी मधुरता उत्पन्न कर सकते हैं, जो हमारे जीवन, पारिवारिक वातावरण और समाज को आनन्द से परिपूर्ण कर सकती है । आज के परिवर्तित जीवन में इस आनन्द का अभाव अत्यधिक खटकने वाली वस्तु है ।

आधुनिक शिक्षा

स्वावलम्बी और चरित्र परायण बनना ही शिक्षा का उद्देश्य है

एक समय था, शिक्षा का उद्देश्य आत्मा के सच्चे आभूषण सदाचार से अलंकृत कर अपनी सन्तान को सच्चरित्र बनाना था । 'सच्चरित्रता' से तात्पर्य उस संकुचित सीमित क्षेत्र की परिधि से निकल कर 'विश्व-बन्धुत्व' की भावना जागृत करना, उसका उचित हृदयांकन करना । जहाँ यह परमोत्तम भावना जगी, अंकित हुई कि शेष सामयिक या आनुषंगिक सद्-व्यवहार अपने आप आ गये । परन्तु अब यह पवित्र उद्देश्य कथामात्र रह गया है, आज की शिक्षा केवल जीविकोपार्जन या स्वार्थ साधन मात्र के लिए रह गई है । अब समाज को इस कटु सत्य का अनुभव होने लगा है । "भारत में विश्व-बन्धुत्व की भावना का सिद्धान्त बालकों के हृदय में शिक्षा द्वारा अंकित किया जाता था परन्तु अब तो जिनके बालक होते हैं उनके मां-बाप

पहले ही गुरुजी से यह निवेदन कर देते हैं कि हमारे बालक को वह शिक्षा देना जिससे वह आनन्द से रोटी खा सके। जिस देश में बालकों के पिता ऐसे विचार वाले हों वहाँ बालक विद्योपार्जन कर परोपकारी बनेंगे, असम्भव है। आजकल शिक्षा का प्रयोजन केवल अर्थोपार्जन तथा कामसेवन मुख्य रह गया है। स्कूलों में धार्मिक शिक्षा का प्रायः अभाव है। नागरिक बनने का कोई साधन नहीं। ऊपरी चमक-दमक में ही सर्वस्व खो दिया।" वस्तुतः शिक्षा का उद्देश्य जबतक धनार्जन-मात्र रहेगा, धार्मिक एवं नैतिक विचारधारा को प्रमुख न बनाया जायगा तबतक हमारा बौद्धिक विकास नहीं; विनाश ही होगा। और यह विनाश अनाकांक्षित एवं असामयिक होने से बहुत खटकने वाला होगा। सुदूर भविष्य में, खटके या निकट भविष्य में, खटकने वाला अवश्य है। हमें चेतना होगा, और अपनी शिक्षा संस्थाओं के पाठ्यक्रम को सर्वतोमुखी लाभदायक बनाना होगा जिसमें धार्मिक तथा नैतिक शिक्षा की प्रधानता होगी। इसके लिए अच्छा यह होता कि स्कूल और कालेज खोलने की अपेक्षा जहाँ कालेज तथा स्कूल हैं वहां जैन छात्रावास स्थापित किये जाएं। छात्रों का खान-पान, दिनचर्या जैन संस्कृति के अनुसार बनाये रखने के लिए यह बहुत जरूरी हो गये हैं। जिन्होंने प्रयाग विश्व-विद्यालय का जैन छात्रावास देखा है वे इस तथ्य को जानते हैं। बम्बई वाले सेठ श्री माणिकचन्दजी की भी यही योजना रहा करती थी पर उस समय न तो इतने स्कूल और कालेज थे और न किसी का ध्यान भी उस ओर अधिक गया। सबसे पहले तो आवश्यक है माता-पिता ध्यान दें। अपने बच्चों का खानपान शुद्ध रखें और जब पढ़ने भेजें तब ऐसे ही विद्यालयों में भेजें जिनके पास जैन संस्कृति को प्रोत्साहन दिये रहने वाले छात्रावास हों। आगे चलकर यही छात्र गृहस्थ होते हैं, पिता के पद पर पहुंचते हैं और यह स्वाभाविक है कि जैसे संस्कार उनके होंगे वैसे ही इनके बच्चों के भी होंगे। अतः यदि अच्छे संस्कारों की परम्परा चली तो वह अधिक कल्याणकारी होगी, जैनधर्म की प्रचारक होगी।

★ ★ ★ ★

पशु-हत्या बन्द कराओ

अन्यथा भारत देश तबाह हो जाएगा

भीषण पशु हत्या के कारण देश की समृद्धि नष्ट हो रही है।

आज से ढाई हज़ार वर्ष पहले की बात है कि उस समय हमारे देश में पशुओं की घोर हत्या होती थी। धर्म के नाम पर जीवित पशुओं को हवन कुन्डों की प्रज्वलित अग्नि में डाल दिया जाता था। उस समय अज्ञानान्धकार, आडम्बर और अशान्ति का साम्राज्य था।

उस ही समय प्रातःस्मरणीय १००८ भगवान महावीर स्वामी का जन्म हुआ। १२ साल की कठिन तपस्या के बाद उन्हें केवल ज्ञान प्राप्त हुआ। उन्होंने अपने आत्मबल और और ज्ञान द्वारा अनुभव किया कि जब तक पशुओं की हत्या बन्द नहीं होगी तबतक संसार में सुख और शान्ति स्थापित नहीं हो सकती। उन्होंने पशु-हत्या बन्द कराने का दृढ़ निश्चय किया।

जो लोग धर्म के नाम पर और जीभ के स्वाद के लिए जीवों की हत्या करते थे, उन्हें युक्तियों द्वारा तथा धर्म उपदेशों द्वारा समझाया था, उनकी अमृतवाणी का लोगों के हृदय पर गहरा प्रभाव पड़ा और उन्हें सही मार्ग दिखाई दिया और किसी भी प्रकार की हत्या न करने का प्रण लिया। भगवान महावीर स्वामी के पद उपदेशों से दुष्ट, दुराचारी और पापियों के हृदय के पट खुल गये। उन्हें सच्चा ज्ञान प्राप्त हुआ, वह सब भगवान महावीर स्वामी की शरण में आये और सब प्रकार के व्यसनों को त्यागने की प्रतिज्ञा की। चारों ओर सुख और शान्ति की लहर दौड़ गई। प्राणीमात्र ने सुख और शान्ति की सांस ली।

भारतवर्ष की दशा आज फिर वैसी ही है जैसी कि २५०० वर्ष पूर्व थी, आज देश में अनुसन्धान के नाम पर विदेशों में पशुओं की खाल, हड्डियां, तांत आदि निर्यात व जीभ के स्वाद के लिए हजारों पशुओं की हत्या प्रतिदिन हो रही है। माँस के कल्पित गुण बताकर उसके खाने और बूचड़खाने खुलवाने का विचार सरकारी स्तर पर हो रहा है। इतिहास इस बात का साक्षी है कि इससे पहले भारतवर्ष में किन्हीं भी देशी या विदेशी शासकों ने मांस खाने और बूचड़खाने खुलवाने का प्रसार सरकारी स्तर पर नहीं किया। भारत सरकार के सामने मांस उत्पादन की जो योजना इस समय है उसका ब्यौरा जो हमें प्राप्त हुआ है वह इस प्रकार है। कई करोड़ मन मांस उत्पादन का प्रोग्राम है। आंकड़ें अति हृदयविदारक हैं—

समय	गोमांस का उत्पादन मनों में	अन्य पशुओं के मांस का उत्पादन	सर्व प्रकार के पशुओं के मांस के उत्पादन का योग
१९६१ से १९६६ तक	११८७५०००	२१५३७५००	३२४१२५००
१९६६ से १९७१ तक	३९३७५०००	२५६७५०००	६५०५००००
१९७२ से १९७६ तक	६९५६२५००	३२४६२५००	१०२०२५०००
१९७६ से १९८१ तक	७१२५००००	४४२७५०००	११५५२५०००

मांस बाजार रिपोर्ट १९५५ में भारत सरकार ने बम्बई, मद्रास, कलकत्ता, दिल्ली, कानपुर, हैदराबाद, लखनऊ, बंगलौर, पटना, आगरा में बूचड़खाने खोलने की सिफारिश की है। देवनार (बम्बई) में इसका श्रीगणेश होने वाला है। यदि देश की जनता ने इसके बन्द कराने का विरोध नहीं किया यो देश के सभी बड़े नगरों में बूचड़खाने खुल जायेंगे, असंख्य पशुओं की प्रतिदिन हत्या हुआ करेगी और देश बरबाद हो जायगा। हमारे धर्मशास्त्रों में लिखा है —

यस्मिन् देशेभवेत् हिंसा, या पशूनाम नागसाम्।
स दुर्भिक्षादिभिर्नित्ये, अन्योपद्रवं तथा ।।

"जिस देश में निरापराध पशुओं की हत्या होती है, वह देश अकाल, महामारी और अन्य उपद्रवों से पीड़ित होकर नाश हो जाता है।"

भारत जैसे देश धर्मपरायण अहिंसाप्रिय देश में जहां की जनता शाकाहारी हो और अहिंसा को धार्मिक सिद्धान्त मानती हो, पशुहत्या और मांस के व्यापारी को पाप समझती हो वहाँ मांस खाने और बूचड़खाने खुलवाने का सरकारी स्तर पर प्रयास करना उचित नहीं, इससे जनता के हृदयों पर गहरी ठेस पहुंचती है।

भारतवर्ष में इस समय जनता का राज्य कहा जाता है। भारतवासियों रामराज्य का स्वप्न देखनेवालो, अहिंसा-प्रेमियों और दया धर्म के मानने वालो, जरा जागो और पशुहत्या को बन्द कराने के लिए जनमत तैयार कराओ, घोर विरोध करो और देश को तबाही से बचाओ।

१००८ भगवान महावीर स्वामी के अनुयायियों और अहिंसा धर्म के मानने वालो ! पशुओं की घोर हत्या बन्द कराकर, देश को समृद्धिशाली सुख और शान्ति का धाम बनाइये और अहिंसा परमोधर्म का झण्डा फहराइये।

वध-योजना

६ घंटे में ६०० भेड़-बकरियां ३०० गाय-बैल-भैंस और १०० सुअरों का वध

विनाश के गर्त में

जिस देश में कभी दूध की नदियाँ बहती थीं आज उस देश के नन्हे-मुन्ने बच्चों के लिए पूरा दूध भी पर्याप्त नहीं। पशुधन जो कि भारतवर्ष की सबसे बड़ी सम्पत्ति मानी जाती थी उसके सर्वनाश के लिए भारतवर्ष में बड़े-बड़े बूचड़खाने खोले जा रहे हैं और मांस का प्रचार सरकारी स्तर पर हो रहा है।

देश जब गुलाम था तो भारत की जनता ने सब प्रकार के कष्ट सहन किये और देश को स्वतन्त्र कराया। हजारों नवयुवकों ने आज़ादी के लिए अपनी जान की बाजी लगा दी और फांसी के तख्तों पर लटक गए। सबके मन में यही उल्लास था कि स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात् रामराज्य स्थापित होगा। सबको पेटभर खाना और बदन ढांपने को वस्त्र मिलने लगेगा। देश में पशुधन की रक्षा होगी और दूध की नदियाँ बहेंगी। परन्तु आज वह सब बातें स्वप्न हो गई हैं। खाद्य पदार्थों तथा वस्त्र के भाव दिन-प्रतिदिन तेज होते जा रहे हैं। भारत का पशुधन बहुत तेजी के साथ कम होता जा रहा है।

दुर्भाग्यवश स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद हमारे देश के कुछ राष्ट्रीय नेताओं के मस्तिष्क में पश्चिमी सभ्यता ने घर कर लिया है वह हर कार्य को उसी दृष्टि से देखते हैं और विदेशों

की नकल करके उनकी सलाह से देश को आगे ले जाने के लिए योजनाएँ बनाते हैं और उनका सहयोग प्राप्त करते हैं। यह स्मरण रहे कि भारत देश धर्मपरायण ऋषि-मुनियों का देश रहा है। पश्चिमी सभ्यता, परम्परायें और वहां की योजनायें हमारे देश के अनुकूल नहीं। भारतवर्ष ने सत्य, अहिंसा और अध्यात्मिकवाद का पाठ संसार को पढ़ाया है। सभ्यता में सबसे ऊँचा सर्व-श्रेष्ठ देश रहा है।

इस समय एक और आश्चर्यजनक बात हमारे राष्ट्रीय नेताओं के दिमागों में घुस गई है। वह कहते हैं कि मांस खाना बहुत लाभदायक है। भारत में मनुष्यमात्र को प्रतिदिन इसका प्रयोग करना चाहिये। उसके लिए उनकी यह चेष्टा है कि भारत की जनता जो कि अधिकतर शाकाहारी है उनकी विचारधारा को प्रचार द्वारा बदल दिया जाय और उनकी रुचि मांस खाने की ओर कराई जाय। इसी बात को ध्यान में रखते हुए भारत सरकार द्वारा प्रकाशित सन् १९५९ की मांस रिपोर्ट में साफ तौर से मांस खाने के लिए प्रचार करने और मांस उत्पादन के लिए भारतवर्ष के बड़े-बड़े नगरों में बड़े स्तर पर स्वयं-चलित यन्त्रों से युक्त बूचड़खाने खोलने की योजनाओं पर जोर दिया है। मांस उद्योग की बहुत प्रशंसा करते हुए उसे बढ़ावा दिया है इसके अतिरिक्त भारत सरकार शिक्षा विभाग द्वारा मांस के प्रयोग का प्रचार कर रही है।

भारत सरकार, महाराष्ट्र सरकार और बम्बई कारपोरेशन चम्बूर के पास मुकाम देवनार (बम्बई) में एक बहुत बड़ा बूचड़खाना शुरू कर रही है। इस बूचड़खाने में प्रतिदिन ६ घण्टे में ६००० भेड़, बकरियां, ३०० गाय, बैल और भैंसें और एक सौ सूअर काटे जाया करेंगे। सरकार इस बूचड़खाने को उद्योगी ढंग पर खोल रही है और उसका विचार पशुओं की हड्डियाँ-खून-जबान-खाल अंतड़ियां और अन्य पशुओं का मांस डब्बों में बन्द करके विदेशों में निर्यात करने का है क्योंकि विदेशों में इसकी मांग बहुत अधिक है। बूचड़खाने के काम करने का समय बढ़ाया भी जा सकता है। यदि विदेशों में पशुओं के मांस और पशुओं के अन्य अंगों की मांग बढ़ी उस समय पशुओं का बध और भी अधिक हुआ करेगा। कितने दुःख की बात है कि जनता का राज्य कहलाने वाली सरकार जनता की भावनाओं का ध्यान न करके उनके दिलों को ठेस पहुंचाने के लिए गऊ तथा अन्य पशुओं का वध करेगी। इससे अधिक दुःख पालियामेंट और विधान सभाओं के उन सदस्यों पर है जो कि जनता के मतों से चुनकर वहां गये हैं और इस विषय में मौन हैं।

अंग्रेजी राज्य में सन् १९२१-२२ में बरमा को गोमांस भेजने के लिए रतौनानगर (पूर्वी मध्य प्रदेश) में अंग्रेजी सरकार ने एक बूचड़खाना बनाने का निश्चय किया था। भारतवासियों ने इसका घोर विरोध किया तो अंग्रेजी सरकार ने भारतवासियों की भावनाओं को ध्यान में रखते हुए बूचड़खाने की योजनाओं को रद्द कर दिया। इसी प्रकार एक और समय की बात है, जबकि अंग्रेजी सरकार ने सैनिकों के लिए मांस उत्पादन के वास्ते लाहौर (पंजाब) के समीप बूचड़खाना बनाने की योजना बनाई थी। बूचड़खाना बनाने का काम भी शुरू हो गया

था और उसका कुछ भाग भी बन चुका था। जनता के तीव्र विरोध पर अंग्रेजी सरकार को वह योजना परित्याग करनी पड़ी।

भारत सरकार को हमारी धार्मिक भावनाओं और परम्पराओं का ध्यान रखकर कोई ऐसा कार्य नहीं करना चाहिए जिससे कि हमारे दिलों को चोट लगे। जनता की भावनाओं, मौलिक अधिकार और परम्पराओं की रक्षा करना सरकार का प्रथम कर्त्तव्य है। इतिहास साक्षी है कि भारतवर्ष में सभी देशी-विदेशी शासकों ने भारतीय जनता की भावनाओं की कभी उपेक्षा नहीं की और उनकी भावनाओं का ध्यान रखते हुए गोमांस निर्यात करने का कभी साहस नहीं किया। यह ठीक है कि हम भारतीय हैं— भारतवर्ष हमारा है और हम देश को उन्नत देखना चाहते हैं परन्तु यह कदापि सहन न होगा कि भारतीय संस्कृति, परम्परा नष्ट हो रही हो और देश का पतन हो रहा हो और हम चुपचाप बैठे रहें। जनता की भावनाओं के विरुद्ध जो भी कार्य सरकार करती है वह अवैधानिक और अनियमित है। भारतवासियों का कर्त्तव्य है कि देश का नाश होने से बचाएं और जनमत संग्रह करके मांस खाने के प्रचार और बूचड़खानों के बनाने की योजनाओं का विरोध करके बन्द करायें।

× × × ×

जैन एकता का मंच

भारत जैन महामंडल को दृढ़ बनाइये

सम्पूर्ण जैन समाज एक झंडे के नीचे

देश में राष्ट्रीय और सामाजिक जागृति की लहर ने जब १९वीं शताब्दी के अन्त में बल पकड़ा तब उसका प्रभाव जैन-समाज पर पड़ना स्वाभाविक था। उस काल में जैन-समाज श्वेताम्बर-दिगम्बर, स्थानक वासी, तेरापंथी और अनेक विभागों में बंटने के उपरान्त छिन्न-भिन्न अवस्था में था। इन विभिन्न विभागों के आपसी मतभेद यद्यपि कुछ धार्मिक विधि-विधानों मात्र तक सीमित थे और अहिंसादि पंचव्रत, आराध्यदेव, तत्वज्ञान आदि बातों में समस्त विभागों में पूर्ण मतैक्य था, तथापि छोटे-छोटे मतभेदों पर बल देने और मतैक्य की महत्वपूर्ण बातों पर ध्यान न देने के कारण जैन-समाज दिन-प्रतिदिन क्षीण होकर आपस में बंटता जा रहा था।

राष्ट्रीय और सामाजिक जागृति के उस युग में जैन-समाज की इस स्थिति की ओर कुछ व्यक्तियों का ध्यान आकृष्ट हुआ। संसार के इतिहास में वह एक क्रांति का युग था, जिसमें पिछड़ी हुई जातियाँ और समाजें अपनी उनींदी आंखों को खोलकर जागने की चेष्टा में संलग्न थीं। इस परिवर्तित परिस्थिति ने इन जैन बन्धुओं को भागीरथ प्रयत्न कर जैन-समाज की दिशा परिवर्तित करने के लिए प्रेरित किया। जैन-समाज को एकता के सूत्र में पिरोने के महान उद्देश्य और शासन

सम्बन्धी तथा अन्य कार्यों में समस्त जैन समाज का प्रभावशाली प्रतिनिधित्व करने की दृष्टि से किसी ऐसी संस्था की आवश्यकता अनुभव की गयी, जो इन कार्यों को सम्पन्न कर सके। फल-स्वरूप आज से ६० वर्ष पूर्व भारत जैन महामण्डल की स्थापना की गयी।

प्रारम्भिक कार्यकर्ताओं की अपूर्व लगन

कार्य की महानता और व्यापकता को दृष्टिगत रखते हुए यह स्पष्ट ही है कि यह कोई सरल काम नहीं था। इस कार्य में अनेक रुकावटें थीं। एक तो अंग्रेज सरकार प्रत्येक वर्ग या क्षेत्र में "फूट डालो और राज्य करो" की नीति को अमल में ला रही थी। दूसरे, छोटे दायरे में जो प्रतिष्ठा और कीर्ति प्राप्त हो सकती थी, वह विशाल और व्यापक क्षेत्र में मिलने में कठिनाई थी। तीसरे, आपसी झगड़ों के चालू रहने में कुछ लोगों का स्वार्थ था।

इन समस्त विपरीत परिस्थितियों के होते हुए भी प्रारम्भिक कार्यकर्ताओं ने बड़े उत्साह, निर्भीकता और लगन के साथ इस कार्य में योग दिया। इन बाधाओं से वे निराश नहीं हुए और पूरी शक्ति से इस भागीरथ कार्य को पूरा करने में जुट गये। इनमें से बैरिस्टर जे. एल. जैनी, बैरिस्टर चम्पतराय जी जैन, प्रो० के. टी. शाह, मानकचन्द जी वकील (खण्डवा), बा० शीतलप्रसाद जी, सूरजमल जी जैन (हरदा), बाड़ीलाल मोतीलाल शाह, सेठ अचलसिंह आदि के नाम स्वर्ण अक्षरों में लिखे जाने के योग्य हैं। प्रारम्भ में सभापति के पद पर अजितप्रसाद जी जैन (लखनऊ), सेठ माणकचन्द जे. पी. (बम्बई), गुलाबचन्द जी ढहा आदि सज्जन रहे और मंत्रिपद मल्हीपुर निवासी मास्टर चेतनदास जी ने संभाला।

समस्त जैन समाज का प्रतिनिधित्व करने वाली इस महान् संस्था के निर्माण में इसके बाद सबसे प्रमुख स्थान श्री चिरंजीलाल बड़जाते का है। अपनी मृत्यु के समय श्री जे. एल. जैनी इस नन्हीं संस्था को समाज की सेवा साधने के महान उद्देश्य को सम्मुख रखते हुए श्री चिरंजीलाल जी को सौंप गये। उस दिन के बाद आप माता के समान इस संस्था का पालन करते आ रहे हैं। आपकी नीति सदैव मितव्ययता से काम लेने और नाम के स्थान पर काम को महत्व देने की रही है। पदों की जिम्मेवारी अपने साथियों पर डाल कर आप सदैव उनके पीछे रहते आये हैं। इस चीज ने संस्था को अत्यधिक बल प्रदान कर अनेक नये कार्यकर्त्ता संस्था के लिये उत्पन्न कर दिये हैं।

अभ्युदय का युग

१९४५ के बाद के काल को संस्था के अभ्युदय का युग कहा जाएगा। इस काल में जैन-समाज में संस्था के लिए आकर्षण बढ़ा। सेठ राजमल जी ललवाणी का सहयोग श्री चिरंजी-लाल जी इससे पूर्व ही प्राप्त कर चुके थे। १९४६ में साहू-परिवार का सहयोग भी संस्था को प्राप्त हो गया। इसके बाद जिन महान उद्योगपति, तपस्वियों आदि का सहयोग इस संस्था को मिला उनमें से अमृतलाल, दलपतशाह, तपस्विनी शांताबाई, दानवीर सेठ श्री सोहनलाल जी दुग्गड़, सेठ लालचन्द जी हीराचन्द जी, बाबू तख्तमल जी जैन इत्यादि अनेक व्यक्ति सम्मिलित हैं। इसके

अतिरिक्त डा० हीरालाल जी व साधुमना कुन्दनलाल जी फिरोदिया के नाम भी उल्लेखनीय हैं। इस काल में बहुत से नये कार्यकर्ताओं को जुटाने में संस्था सफल हुई।

इनके सहयोग से जहां संस्था की शक्ति बढ़ी, वहाँ उसने अनेक नये कार्य भी किये। हैदराबाद अधिवेशन में संस्था के विचारों का प्रसार करने के लिये एक मासिक पत्र की आवश्यकता अनुभव की गयी। फलस्वरूप तब "जैन जगत" श्री जमनालाल जी के सम्पादन में शुरू हुआ, जो अब भी श्री रिषभदास जी रांका के सम्पादकत्व में निकल रहा है। इसके साथ ही मण्डल ने प्रकाशनों का कार्य भी प्रारम्भ किया। श्री विनोबा भावे, महात्मा भगवानदीन, पं० सुखलाल जी, पं० बेचनदास जी दोशी, श्री रिषभदास जी रांका, डा० जगदीशचन्द्र जैन और डा० हीरालाल जी इत्यादि लेखकों का सहयोग प्राप्त कर मण्डल अनेक पुस्तकें अब तक प्रकाशित कर चुका है। इन पुस्तकों को जैनियों में ही नहीं, अपितु हिन्दी साहित्य में भी अच्छी ख्याति मिली है। कई पुस्तकें, स्कूलों और कालेजों के पाठ्यक्रम में सम्मिलित हैं।

वर्तमान युग और उसकी आवश्यकताएं

आज की परिवर्तित स्थिति में जैन-समाज में एकता की आवश्यकता और भी अधिक अनुभव की जाती है। जैन-समाज के पूर्ण विकास अर्थात् उसके मानसिक, आर्थिक और आध्यात्मिक विस्तार की दृष्टि से यह एकता परमावश्यक है। उसी दशा में हमारा समाज परिवर्तित हो रहे इस देश का महत्वपूर्ण अंग बन सकता है। जैन-समाज की शारीरिक, मानसिक, आर्थिक और आध्यात्मिक उन्नति की दृष्टि से भी यह एकता महत्वपूर्ण है। आज जिस चहुंमुखी प्रतिभा अर्थात् उद्योग-धन्धों, व्यापार, शिक्षा, कसरती खेल-कूदों और नौकरियों इत्यादि जीवन के हर क्षेत्र में उत्कृष्टता और बाजी ले जाने की आवश्यकता अनुभव की जाती है, उसे जैन भाई उसी दशा में प्राप्त कर सकेंगे जब सामूहिक रूप में उनकी शक्ति का विकास हो सके।

हर्ष की बात है कि जैन-समाज इस सामयिक आवश्यकता को अधिकाधिक अनुभव करता जा रहा है। भारत जैन महामण्डल के कार्यों में उसकी बढ़ती हुई दिलचस्पी से यह बात स्पष्ट है। इसके साथ ही यह भी कम प्रसन्नता की बात नहीं कि आज उसे योग्य नेतृत्व भी इस कार्य के लिए प्राप्त हो गया है। मण्डल के हीरक जयंती महोत्सव के अध्यक्ष के रूप में श्री शान्तिप्रसाद जैन जैसे समर्थ व्यक्ति का सहयोग प्राप्त कर लिया। साहू शान्तिप्रसाद जी की कर्मठता से कौन व्यक्ति परिचित नहीं। अपनी अद्भुत कार्यशक्ति के फलस्वरूप आज आपकी गणना भारत के प्रमुख उद्योगपतियों में की जाती है। मण्डल का यह सौभाग्य है कि श्री शान्तिप्रसाद जैन समय को परखने की अद्भुत क्षमता के कारण हृदय से जैन-एकता के समर्थक होने के अतिरिक्त इस सम्बन्ध में पूर्ण क्रियात्मक सहयोग दे रहे हैं। जैन-समाज के विभिन्न विभागों को जुटा कर एक करने की दृष्टि से वे कुछ आदर्श, समझदारी और त्याग की भावना से पूर्ण सुझाव भी हमारे सम्मुख रख चुके हैं। यदि हमारे विवेक ने हमारा साथ दिया तो इन सुझावों को हम कार्य रूप में लाकर जैन समाज की शक्ति बढ़ाने का साधन होंगे। जैन-समाज की रक्षा और दृढ़ता की दृष्टि से आवश्यक

होने के कारण यह कार्य देर तक नहीं टाला जा सकता। आज नहीं तो कल हम इन सुझावों को स्वीकार करेंगे।

अपनी और अपने समाज की उन्नति के इच्छुक जैन-बन्धुओं से मेरा अनुरोध है कि वे समय की आवश्यकता को अनुभव करते हुए जैन एकता के प्रश्न में अधिकाधिक दिलचस्पी लें और इस प्रकार भारत जैन महामण्डल के सदस्य बनकर उसके कार्यों का प्रसार करें।

* * * *

भारतवर्षीय दिगम्बर जैन परिषद् के पिछले ३७ वर्ष

एक क्रान्तिकारी संस्था का उदय

जैन समाज की जीर्ण-शीर्ण दशा और उसके सम्बन्ध में जैन महासभा की शिथिल और स्थिति-पालक नीति को देखते हुए सन् १६२३ में कुछ उत्साही सुधारकों ने भारतवर्षीय दिगम्बर जैन परिषद की स्थापना की। इस संस्था के मुख्य संस्थापकों में बैरिस्टर चम्पतराय जी, ब्रह्मचारी शीतल प्रसादजी, श्री अजितप्रसाद जी, श्री रतनलाल जी, साहू जुगमन्दरदास जी और श्री राजेन्द्रकुमार जी के नाम उल्लेखनीय हैं। इन व्यक्तियों ने जैन महासभा के झण्डे तले रहकर समाज-सुधार के कार्य को आगे बढ़ाने का पूरा-पूरा प्रयत्न किया, किन्तु प्रतिक्रियावादी महासभा पर छा गये। उन्होंने उक्त समाज-सुधारकों पर "जाति-पांत लोपक", "विधवा विवाह रचायक", "धर्म-भ्रष्ट" इत्यादि अनेक लांछन लगा कर उन्हें जैन महासभा से निकालना चाहा। साथ ही समाज में किसी प्रकार सुधार करने का भी इन प्रतिक्रियावादियों द्वारा का विरोध किया गया।

आज ३७ वर्ष बाद उस समय की स्थिति को समझना सरल नहीं। समय ने हमारे समाज के रूप में क्रान्तिकारी परिवर्तन कर दिये हैं। जिन बातों के विरोध में एक समय लाठियां छुते निकाले गये थे और लोगों के गले में रस्से डालकर उन्हें खींचा गया था, आज वही बातें रूढ़िवादी, प्रतिक्रियावादी और अनुदार पक्ष तक को भी ऐसे रूप में स्वीकार हैं, मानो किसी काल और स्थिति में उनका विरोध होना संभव ही नहीं हो। समय ने इन बातों को आज सहज और स्वाभाविकता में ला दिया है।

आइये, देखें किन बातों के कारण भारतवर्षीय दिगम्बर जैन समाज के संस्थापकों को "जाति-पांत लोपक", "विधवा विवाह रचायक", "धर्म-भ्रष्ट" इत्यादि विशेषण दिये गये थे।

धर्म-भ्रष्ट

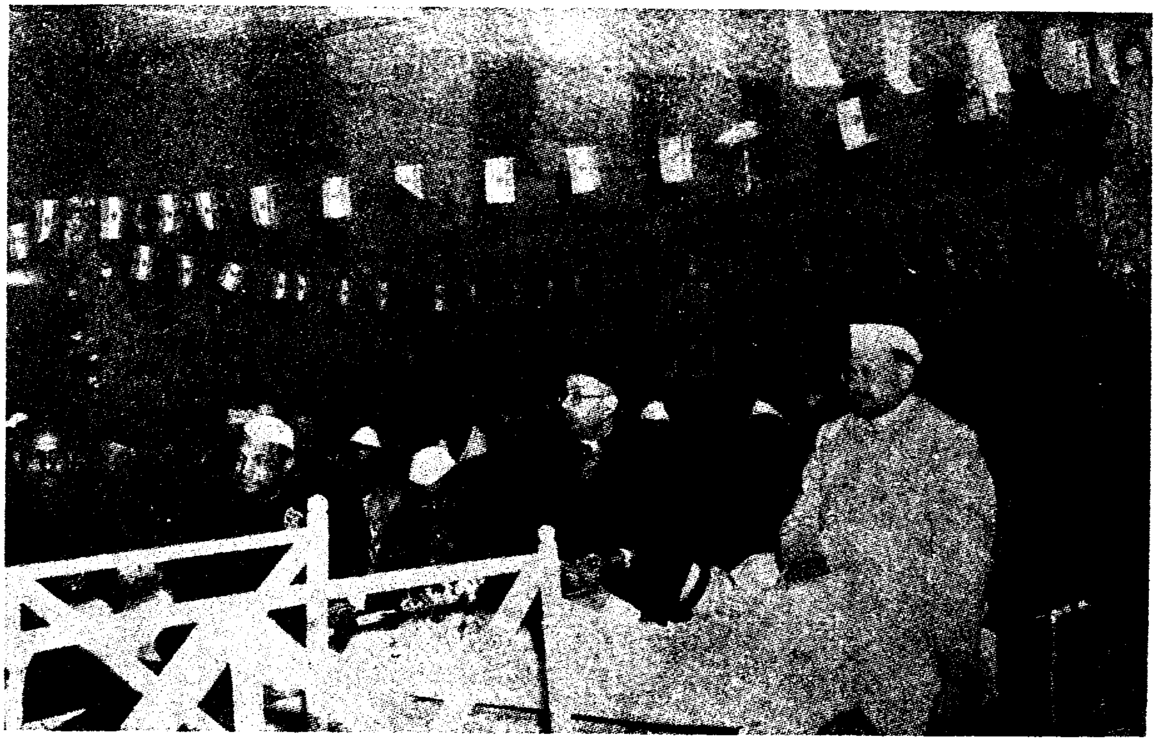
प्रथम महायुद्ध के फलस्वरूप १६२३ के उस काल में भारत की जनता विदेशी के सम्पर्क में आ चुकी थी। यह सम्पर्क युद्ध-काल में फ्रांस और तुर्की इत्यादि रणक्षेत्रों में स्थापित हुआ था। विदेशों की भौतिक उन्नति और शिक्षा का वहां जो प्रसार था, उसने भारतीय जनता को प्रभावित किया। इन बातों से आकर्षित होकर अधिकाधिक भारतीय शिक्षा प्राप्ति के लिए विदेशों में जाने लगे। यह एक ऐसी सामयिक घटना थी, जिससे जैन समाज प्रभावित हुए बिना नहीं रह सकता था। कुछ जैन भाई भी शिक्षा प्राप्ति के लिये विदेशों में गये। बस ये यात्राएं ही समाज में भीषण विवाद का विषय बन गयीं। प्रतिक्रियावादी, रूढ़िवादी दल ने इस प्रकार की यात्राओं का विरोध किया। इसके विपरीत सुधारक दल ने विदेशों से प्राप्त की गयी शिक्षा के महत्व को समझते हुए इनका समर्थन किया।

आज ३७ वर्ष बाद यह बात बिल्कुल स्पष्ट है कि सच्चाई किस ओर थी। आज रूढ़िवादी का घोर से घोर समर्थक ऐसा कोई समर्थ जैन परिवार नहीं, जिसकी संतानें उद्योगों के प्रसार और और शिक्षा प्राप्ति के लिए विदेशों में नहीं गयी हों। महासभा के समर्थकों में से बहुत से लोग स्वयं अनेक बार विदेश-यात्रा पर जा चुके हैं। फिर भी १६२३ के उस काल में महज विदेश-यात्रा का समर्थन करने के कारण सुधारक दल को "धर्म-भ्रष्ट" की संज्ञा दी गयी थी।

ऐसी ही एक अन्य बात मुद्रित अर्थात् छापेखाने द्वारा छपी हुई धार्मिक पुस्तकों का प्रकाशन और वितरण की थी। रूढ़िवादी दल एकमात्र हस्तलिखित धार्मिक पुस्तकों के पक्ष में था और मुद्रित धार्मिक पुस्तकों को वह धर्मविनाशकारी बतलाता था। इसके विपरीत सुधारक दल समय और परिस्थितियों के महत्व को समझते हुए अधिकाधिक जनता में धार्मिक पुस्तकों के प्रचार की दृष्टि से धार्मिक पुस्तकों का मुद्रण और प्रकाशन आवश्यक मानता था। प्रतिक्रियावादी दल निजी गृहों तक में मुद्रित धार्मिक पुस्तकें रखने के विरुद्ध था। ३७ वर्ष बाद आज क्या स्थिति है। आज जैन मन्दिरों तक में मुद्रित जैन-शास्त्र मिलते हैं। जैन-शास्त्रों के मुद्रण के फलस्वरूप आज अनेकों जैन-परिवारों में शास्त्र देखने को मिल रहे हैं। १६२३ से पूर्व केवल अत्यधिक सम्पन्न परिवारों और बड़े-बड़े मन्दिरों में ही जैन-शास्त्र दृष्टिगोचर होते थे।

जाति-पांत लोपक

१६३८ तक जैन दस्साओं एवं बिनेयकवारों को जिन मन्दिर में पूजन के अधिकार प्राप्त नहीं थे। "सब मनुष्य समान हैं" भगवान महावीर स्वामी के इस उपदेश में श्रद्धा रखने वाले जैन समाज तक में अनेक पीढ़ियों पुरानी किसी भूल के कारण वे भाई पूजन के अधिकार से वंचित थे। उन्हें दस्सा एवं बिनयकवार इत्यादि नाम देकर नीच और अछूत जैसा समझा जाता था। परिषद के झण्डे तले सुधारवादी व्यक्तियों ने इस अन्याय का विरोध किया। सन् १६३८ के नवम्बर मास में हस्तिनापुर तीर्थक्षेत्र मेले के अवसर पर श्री रतनलाल जी के सभापतित्व में परिषद सम्मेलन में



दिल्ली में होने वाले भा० दि० जैन परिषद अधिवेशन की एक झाँकी

(दायें से बायें) उद्घाटनकर्ता—माननीय श्री श्री प्रकाश जी भूतपूर्व राज्यपाल, बम्बई

अध्यक्ष—साहू श्रेयांसप्रसाद जी, बम्बई

स्वागताध्यक्ष—श्री तनसुखराय जी जैन



नाना की स्नेहमयी रश्मि

रश्मि लालाजी को अत्यंत प्यारी थी, उन्होंने इसे अपने पास रखा। उनको इस पर अपरिमित स्नेह था। वह उनकी आशा की केन्द्र और स्नेह की बिन्दु थी। खेद है उनकी छत्रच्छाया इस पर अधिक समय तक नहीं रह सकी। नाना के गौरव की प्रतीक प्रसन्नवदना रश्मि।

लालाजी बच्चों के बीच में
अपना नैसर्गिक स्नेह
दर्शाते हुए



दस्सा-पूजन अधिकार का प्रस्ताव पेश किया गया। प्रतिक्रियावादियों ने सैकड़ों की संख्या में सम्मेलन स्थल में पहुंचकर तीन घन्टे तक लगातार हुल्लड़ मचाया और स्वयंसेवकों को मारा-पीटा। इस अवसर पर छुरे भी निकाले गये। किन्तु परिषद के नेताओं और स्वयंसेवकों के धैर्य और अहिंसामयी नीति की अंत में विजय हुई। उस सम्मेलन में दस्सा-पूजन अधिकार जैन जनता ने स्वीकार कर लिया।

जैन एकता को दृढ़ करने वाले इस महान कदम को "जाति-पांत लोपक" का विशेषण दिया गया। किन्तु वास्तविकता यह है कि प्रतिक्रियावादियों ने जो प्रभुत्व जैन समाज पर स्थापित कर लिया था, इस ऐतिहासिक कदम ने उसे चूर-चूर कर दिया। अनेक स्थानों में दस्सा-पूजन करने लगे। इससे भी बड़ी बात यह हुई कि सुधार की भावना जैन-जगत में घर कर गई : इसी का यह परिणाम हुआ कि १६४१ में झांसी में हुए परिषद के अधिवेशन में मनोनीत सभापति सेठ बैजनाथ जी सरावगी ने अपना मत जब कुछ सुधारों के विरुद्ध प्रकट किया, तो जनता इस बात से भड़क उठी। उसने तत्काल सुधारक श्री बालचन्द्र को सभापति चुनकर मंच पर बिठा दिया।

आज सभी व्यक्ति, रूढ़िवादी, प्रतिक्रियावादी और अनुदार पक्ष तक, जैन दस्साओं और विनेयकवारों के पूजन अधिकार के समर्थक हैं। इस बात को समय के परिवर्तन और परिषद के संस्थापकों के साहस और सूझबूझ का चमत्कार घोषित करने के अतिरिक्त क्या कहा जा सकता है।

परिषद के कार्यकर्ताओं को उक्त विशेषण देने का एक अन्य कारण जैन समाज में होने वाले अन्तर्जातीय विवाह हैं। अब सभी जैन-बन्धु इस प्रकार के विवाहों में कोई दोष नहीं समझते हैं और सैकड़ों अन्तर्जातीय विवाह हो रहे हैं, किन्तु ३७ वर्ष इस बात को जिह्वा पर लाना भी अनर्थ समझा जाता था। इस प्रकार के विवाह करने का साहस तो दूर ऐसी बात कहने वाले तक को "जाति-पांत लोपक" की संज्ञा दी जाती थी। परिषद के कार्यकताओं ने इस प्रकार के दुर्नामों को अपने लिये स्वीकार करते हुए युगों में समाज को जकड़ी हुई रूढ़ियों और कुप्रथाओं से उसे मुक्त कर दिया। पुरानी जंजीर जर्जरित होकर एक-एक कर टूटने लगीं।

परिषद के कार्यकर्ताओं के परिश्रम, प्रचार और साहस के फलस्वरूप जिन सामाजिक बुराइयों का अन्त हुआ, उनमें मरण भोज की प्रथा प्रमुखतय है। महगांव काण्ड के सम्बन्ध में अपूर्व, तीव्र एवं प्रभावपूर्ण आन्दोलन चला कर मूर्तियां बरामद करायीं और इस प्रकार जैन मंदिरों की रक्षा के सम्बन्ध में भी इन लोगों ने जैन जनता को सावधान किया। इन घटनाओं से परिषद का लोपकात स्थान पर रक्षक रूप ही दृष्टिगोचर होता है।

विधवा-विवाह रचायक

"किन्तु परिषद के कार्यकर्ताओं को सबसे अधिक दिलचस्प जो विशेषण दिया गया, वह विधवा-विवाह रचायक है। परिषद के मंच से विधवा-विवाह का प्रचार कभी नहीं किया

गया। इसकी वास्तविक कहानी से जो लोग परिचित हैं, वे इस विशेषण पर हँसे बिना नहीं रह सकते । वास्तविक घटना इस प्रकार है—

१९२७ में सम्मेद शिखर पर बड़ा भारी जैन महोत्सव हुआ । लगभग १ लाख जैन जनता वहां उपस्थित थी । इस अवसर पर वहीं परिषद का अधिवेशन भी किया गया । परिषद के विरोधी प्रतिक्रियावादियों ने जनता और मुनिजन को भ्रम में डालने और परिषद का विरोधी बनाने की दृष्टि से एक महान षड्यन्त्र रचा। उसकी ओर से जोरदार प्रचार किया गया कि परिषद विधवा-विवाह की प्रचारक है ।

इस जोरदार प्रचार से जैन समाज में बवण्डर खड़ा हो गया । परिषद के अनेक समर्थक घबड़ा गये । परिषद में दो विचारधाराएं स्पष्ट दीखने लगीं। एक पक्ष कहने लगा कि प्रतिक्रियावादियों के झूठे आरोप व प्रचार का प्रतिरोध करने की दृष्टि से विधवा-विवाह के विरुद्ध प्रस्ताव परिषद् पास करे । दूसरे पक्ष की सम्मति थी कि यदि इस प्रस्ताव को पास कर दिया गया तो सेतवाल, चतुर्थ, पंचम आदि जैन जातियों के लिए, जिसमें विधवा विवाह जारी है, परिषद का द्वार बंद हो जायगा । परिषद उस दशा में समस्त दिगम्बर जैन समाज की प्रतिनिधि नहीं रह सकेगी ।

अन्त में इसी पिछले पक्ष की बात स्वीकार हुई और सम्मेलन में विधवा-विवाह के विरुद्ध कोई प्रस्ताव पास नहीं किया गया । तथापि इस मिथ्या प्रचार से परिषद को कुछ काल के लिये भीषण धक्का पहुंचा और कितने ही व्यक्ति उससे पृथक हो गये । आज भी परिषद की नीति इस प्रश्न के सम्बन्ध में यही है । जिन जैन-समाजों अथवा व्यक्तिगत परिवारों में विधवा-विवाह प्रचलित है, परिषद उनका बहिष्कार करने के पक्ष में नहीं । वह इस कदम को जैन एकता के प्रतिकूल समझती है ।

परिषद के पिछले ३७ वर्षों के कार्यों और उसकी सफलताओं का कच्चा चिट्ठा संक्षेप में इस प्रकार यही है कि विरोधियों की गालियों और भांति-भांति के नाम देने के बावजूद परिषद जैन समाज को एक सूत्र में बांधने वाली मजबूत कड़ी सिद्ध हुई है । यह काम उसने अनेक सामयिक आन्दोलनों में सहयोग देकर, कुप्रथाओं के विरुद्ध आवाज उठाकर, समस्त जैन-बन्धुओं के लिए समान अधिकारों की व्यवस्था कर और साहस और धीरज के साथ सत्य और अहिंसा की नीति पर डटे रहकर सम्पन्न किया है ।

सन् १९५० का दिल्ली में रजत जयन्ती अधिवेशन एक ऐतिहासिक व महत्वपूर्ण था जिसमें कि हरिजन मन्दिर प्रवेश प्रस्ताव पास किया गया था । इस अधिवेशन के सभापति साहू श्रेयांसप्रसाद जी थे । ज्योंही यह प्रस्ताव मंच पर आया प्रतिक्रियावादियों ने हुल्लड़ मचाकर मंच पर धावा बोल दिया । परन्तु परिषद के कार्यकर्ता डटे रहे और अगले रोज खुले अधिवेशन में शान के साथ यह प्रस्ताव पास हुआ और प्रतिक्रियावादियों को मुंहकी खानी पड़ी ।

नये सुधार कार्य

किन्तु सामाजिक कार्यों की कभी समाप्ति नहीं होती। यदि कार्यकर्ताओं में जागरूकता बनी रहे तो अनेक नये कार्य उपस्थित होते रहते हैं। काल और स्थान भी अनेक नये कार्यों की सृष्टि करता है। फलस्वरूप आज भी अनेक कार्य परिषद के सम्मुख हैं। पिछले ३७ वर्षों के समान यदि जैन जनता का परिषद को सहयोग प्राप्त होता रहा, तो इसमें सन्देह नहीं कि परिषद के कार्यकर्ता आज असंभव प्रतीत होने वाले अनेक कार्यों को अगले कुछ वर्षों में उसी प्रकार सहज और संभव बना लेंगे, जिस प्रकार कि भूतकाल के अनेक कार्यों को सर्वथा स्वाभाविक बना देने में उन्होंने सफलता प्राप्त की है।

★ ★ ★ ★

देव-शास्त्र-गुरु

हमारे आराध्य

मंगलम् भगवान् वीरं मंगलं गौतमो गणी।
मंगलम् कुन्दकुन्दाद्यो जैनधर्मोऽस्तु मंगलम् ॥

मंगलमय भगवान महावीर स्वामी, उनकी वाणी-दिव्यध्वनि के विस्तारक गौतम गणधर, तथा वाणी को लिखित रूप देने वाले गुरु आचार्य कुन्दकुन्दादि तथा इन सबके द्वारा प्रचालित मंगलमय जैनधर्म को साष्टांग नमस्कार करता हूँ जिसकी अमल विमल सुखद छाया में हम भव-भव के संताप मेटते आ रहे हैं, जन्म-मरण के अनेकों जन्मार्जित दुःखों का भार ढोते हुए भी इस मंगलमय धर्म की शरण पाने से अपना सौभाग्य समझ रहे हैं। कठिन कार्यों के विपाक होने पर उनकी होली जला निर्वाण प्राप्त करने की आशा से निर्वाण के बाद भगवान को भी भूल जाने वाले हैं।

"तव पद मेरे हिय में मम तेरे पुनीत चरणों में।
तबलों लीन रहे प्रभु ! जबलों प्राप्ति न मुक्तिपद की हो ॥"

यह है वह परमपावन जैनधर्म-देव, शास्त्र, गुरु के द्वारा दिया गया एक अमोघ वरदान; जिसका आज हम दुरुपयोग कर रहे हैं ! 'पतित पावन' के 'अपावन' होने की आशंका तथा भय दिखलाकर उसके मूल—देव, शास्त्र और गुरु को विकृत रूप दे रहे हैं। अब क्रमशः एक-एक को ले लीजिए—

देव—

जिस वीतराग, परम दिगम्बर नाशादृष्टिधारी शान्तछवि के दर्शन से आत्मा मन्त्रमुग्ध हो जाता है, विश्व के विरोधी प्राणी वैरभाव छोड़ साथ-साथ विचरने लगते हैं, उस पवित्र देव को

आज हमने तमाशा बना रखा है। वीतराग कहे जाने वाले देव के चारों ओर सोने-चांदी के ऐसे उपकरण परिग्रहों के ढेर लगा रखे हैं कि जगत के संरक्षण के भी संरक्षक की आवश्यकता पड़ जाती है। मन्दिर एक सेठ साहूकार की 'हवेली' सा दिखाई देता है। ऐसा सजाया जाता है कि मूर्ति की अपेक्षा वहां की सजावट में ही मन व्यस्त हो जाता है। जैन समाज के पूज्य, भारत के आध्यात्मिक सन्त पूज्य श्री वर्णीजी महाराज को भी इस त्रुटि का दर्शन हुआ, उन्होंने कहा—"एक ऐसा मन्दिर नहीं देखा गया जो प्राणीमात्र को लाभ का कारण होता। मूर्ति निरावरण स्थान में होनी चाहिए जिसका दर्शन प्रत्येक कर सके।' (वर्णी-वाणी पृष्ठ १५२) इसी व्यवस्था के अभाव का कारण है लोगों में भगवान के प्रति हीनाधिक भाव की प्रतिष्ठा की जागृति—

"चांदनपुर के महावीर ! मेरी पीर हरो"

भगवान के भक्त को भारत की राजधानी के महावीर पर भी या तो विश्वास नहीं है या है तो चांदनपुर के महावीर से कम। क्या कारण है ? यही कि वहाँ जैसा ठाठ-बाट उसे वहीं नजर आता है अतः वहाँ के महावीर को ज्यादा शक्तिशाली मानता है। अगर मन्दिर को आडम्बर रहित आराधना का सादगीपूर्ण स्थान ही रहने दिया जाता तो यह सब बातें पैदा न होतीं।

शास्त्र—

जब लोगों की दृष्टि बड़ी संकुचित थी, बुद्धि कूपमण्डूक थी, अतः एक दिन था, जब कि छापाखाने के छपे शास्त्र पढ़ना मना था। शास्त्र छापना पाप था। हस्तलिखित शास्त्र की ही पूजा होती थी। पर यह दकियानूसी ख्याल कब तक चलता ? कुछ विकसित बुद्धि के लोग सामने आये और हजारों विरोधों के बाद भी जिन वाणी को प्रकाश में लाये। उसी का फल श्री धवल सिद्धान्त जैसे पवित्र ग्रन्थ को दर्शनमात्र के लिए थे आज घर-घर में प्रवचन के लिए उपलब्ध है। 'गागर' का यह 'सागर' सबको सुलभ है। कुछ शास्त्र ऐसे भी हैं जिन पर समय-समय पर तत्कालीन अन्य विचारधाराओं का प्रभाव पड़ता रहा है और इस प्रभाव के कारण उस एक ही ग्रंथ में परस्पर विरोधी विचारधाराएँ भी मिल जाती हैं। ऐसे विरोधी विचार इतिहास की दृष्टि से देखकर उनमें सामंजस्य स्थापित किया जा सकता है। सत्य का निर्णय कर जो दूसरों के विचार हमारी संस्कृति में, हमारे धर्म में आ गये हैं उन्हें दूर किया जा सकता है। इस प्रवाह की ऐतिहासिक कारण सामग्री से अनभिज्ञ, कुछ लोगों का एक प्रवाह चल पड़ा है। वह प्रवाह है नये शास्त्रकारों का जो अक्ल में शून्य पर नकल में बहुत तेज हैं। जो देखो वही अपनी बात को कहता है—और प्रमाणिकता के लिए दुहाई देता है—

"अस्य ग्रन्थस्य कर्तारः सर्वज्ञ देवाः तदुन्तर ग्रन्थ कर्तारः श्री गणधर देवाः प्रतिगणधर देवाः तेषा वचोऽनुसारमासाद्यामया शास्त्रमिदं प्रणीतम्"

"इस ग्रन्थ के मूल कर्ता सर्वज्ञ देव हैं, उनके पश्चात् गणधर देव, प्रतिगणधर देव हैं। बस उन्हीं की वाणी का सार लेकर हमने इस शास्त्र की रचना की है।" थोड़ी देर को यह सही भी मान लिया जाय। पर माने तो कैसे ? शास्त्रों में पाये जाने वाले परस्पर-विरोधी विचार क्या

इस उक्ति के साधक हैं ? हमारे आज के व्यक्तियों को यह आचार्य परम्परा चलाने के नाम पर शास्त्र रचना का रोग हो गया है । जनता भोली है जो सामने होता है वही उसको सर्वज्ञ प्रतीत होने लगता है, शास्त्र प्रकाशक और विक्रेता हजारों प्रतियां छापकर, बेचकर अपना भण्डार भर लेते हैं । अपने को ठगते हैं, दूसरों को भी ठग लेते हैं ! जैन समाज के शास्त्र-भण्डारों में प्राचीन आचार्यों की विमल वाणी के अक्षय भण्डार भरे पड़े हैं, न उनके दर्शन होते हैं, न प्रकाशन होते हैं । नागौर आदि जैसे अनेकों शास्त्र-भण्डार दीमक का भोजन बन रहे हैं !

गुरु—

देव, शास्त्र, गुरु का यह प्रकृत-विकृत रूप आज चिन्ता का विषय बन गया है । परन्तु चिन्ता करने मात्र से तो काम नहीं होगा । काम करने से, उपाय निकालने से होगा । मेरा निवेदन यह है--

१—मन्दिरों को अजायबघर न बनाया जाय । नई-नई मूर्तियां न लगाई जावें और जहां-जहां मन्दिर हों वहाँ नए-नए मन्दिरों का निर्माण न कराया जाए । प्राचीन जो मन्दिर हैं उनका जीर्णोद्धार कराया जाय, यत्र-तत्र जो प्रतिमाएँ पड़ी हैं उन्हें एक सुव्यस्थित जगह पर लाने का प्रयत्न किया जाए ।

२—शास्त्र प्रकाशन के पूर्व विद्वत्परिषद् में भेजा जाए । सभी विद्वानों द्वारा निर्दोष कहे जाने पर ही प्रकाशित किया जाए । शास्त्रों में जहाँ कहीं भी दूसरे धर्मों के प्रति कटाक्ष हों उन्हें दूर कर दिया जाए जिससे श्रोताओं को शास्त्र श्रवण से सद्भावना ही प्राप्त हो । शास्त्रों के आलंकारिक तथा शृंगरिक वर्णनों को कम कर शास्त्रों के संक्षिप्त रूपान्तर प्रकाशित किये जावें जिससे लोग कम समय और कम पैसे में जैनधर्म के मान को समझ सकें ।

३—किसी प्रतिष्ठित विद्वान जैनाचार्य या उनके अभाव में विद्वत्मण्डली तथा समाज के अग्रगण्य लोगों के द्वारा विद्वत्ता तथा सदाचरण की परीक्षा करने पर ही कोई त्यागी, व्रती, प्रतिभा-धारी तथा मुनि या आचार्य हो सके । कोई मुनि या क्षुल्लक ग्रन्थमाला आदि के नाम पर न तो स्वयं चन्दा करे न दूसरों से कराये । जो ऐसे काम में सहयोग दें उन्हें स्थानीय समाज दण्डित करे ।

ऐसे और भी अनेक सुझाव हो सकते हैं । पर इतना हो जाय तो भी पर्याप्त है ।

राजस्थान नहर योजना और उसके प्रवर्तक

राजस्थान की प्यासी भूमि को शस्य श्यामला बनाने का एक मात्र साधन

अपने मित्र का महान् प्रशंसनीय कार्य

भारत की इस पीढ़ी के लोगों को एक स्वप्न तथा एक मधुर कल्पना को साकार होते देखने का सौभाग्य प्राप्त होगा। राजस्थान के मरुस्थल प्रदेश में एक बड़ी नहर का निर्माण संभवत: अब भी कुछ लोगों को एक मधुर कल्पना ही प्रतीत हो। सन् १९४८ में जब उस समय की बीकानेर रियासत के एक मुख्य इन्जीनियर श्री कंवरसैन ने सबसे पहले यह विचार रखा तो बड़े-बड़े इन्जीनियरों और विशेषज्ञों को यह कोरी कल्पना ही लगी। लेकिन अब यह विचार कल्पना नहीं रहा। अब यह साकार रूप ले रहा है और केवल राजस्थान के लोगों के लिए ही नहीं बल्कि समस्त देश की जनता के लिए सुख-समृद्धि के द्वार खोल रहा है। राजस्थान नहर योजना में समस्त देश के साथ संकट को भी दूर करने की क्षमता है।

राजस्थान नहर योजना की प्रेरणा की कहानी बड़ी दिलचस्प है। देश के एक इलाके के लोगों को असीम कष्ट और दारुण दुख उठाते देख कर एक व्यक्ति के हृदय में उनके कष्ट दूर करने की भावना जाग उठी। उस व्यक्ति ने उनकी समस्या का समाधान निकाला और उसी समाधान ने समस्त देश की समृद्धि के द्वार खोल दिये।

यह कहानी स्वयं इस महान योजना के प्रवर्तक ने शब्दों में व्यक्त की है :—

"बहुत कम बारिश होने की वजह से इस इलाके के लोग फसलें नहीं उगा पाते, पानी जमीन के नीचे बहुत गहराई में मिलता है और फिर भी यह पानी पीने तथा सिंचाई के लायक नहीं होता—पशुओं के लिए चारे की कमी और पीने के पानी की कमी— इन दैवी विपत्तियों के कारण इन लोगों के कष्ट और समस्त देश में अन्न का अभाव—इन सब बातों से मुझे एक ऐसा रास्ता ढूंढ निकालने की प्रेरणा मिली जिससे यह सारा रेगिस्तान हरे-भरे खेतों से लहलहा उठे।"

लोगों की इन कठिन परिस्थितियों को देख कर श्री कंवरसैन के मस्तिष्क में एक विचार आया। इस विचार ने दृढ़ निश्चय का रूप ले लिया। वह दृढ़ निश्चय था देश के साधनों का जनता के कल्याण के लिए उपयोग और इस प्रकार देश की समृद्धि के लिए नया मार्ग प्रशस्त करना।

राजस्थान नहर योजना की कल्पना करने के दस वर्ष बाद आखिर एक दिन आया जब भारत के इतिहास में एक नए परिच्छेद का आरम्भ हुआ। यह चिरस्मरणीय दिन तीस मार्च १९५८ था जब केन्द्रीय गृह मंत्री श्री गोविन्दवल्लभ पन्त ने संसार की इस महानतम योजना की खुदाई के काम का समारम्भ किया।

अब पहली दिसम्बर को श्री कंवरसैन ने प्रधान मंत्री श्री जवाहरलाल नेहरू के परामर्श पर राजस्थान नहर योजना के प्रशासक का पद संभाल लिया। बाद में दिसम्बर १६५८ में केन्द्रीय सिंचाई और विद्युत मंत्री के सभापतित्व में एक उच्चस्तरीय निर्देश समिति स्थापित की गई। यह समिति सरकार की प्रमुख नीतियां निर्धारित करेगी। इसी समिति के अन्तर्गत राजस्थान नहर मण्डल की स्थापना हुई जिसके प्रधान श्री कंवरसैन हैं। यह मण्डल राजस्थान नहर योजना के समस्त कार्य को शीघ्रता तथा कुशलता के साथ पूरा कराएगा। इसके अतिरिक्त नहर योजना क्षेत्र के समस्त विकास कार्यों की जिम्मेदारी इसी मण्डल पर रहेगी। निर्देश समिति और मण्डल की स्थापना एक नई प्रणाली है जो इस महान् योजना के लिए भारत में पहली बार अपनाई गई है।

राजस्थान नहर योजना

राजस्थान नहर ४२६ मील लम्बी होगी और इसका साढ़े अट्ठारह हजार घन फुट पानी सतलुज नदी पर बनाए गए हरिके बांध से आएगा। अनुमान है जलाशय के बांधों के निर्माण व्यय को छोड़ इस योजना पर साढ़े ६६ करोड़ रुपए की लागत आएगी। आशा है योजना के पूर्ण हो जाने पर देश की अन्न की उपज में बीस लाख टन वार्षिक की वृद्धि हो जाएगी, जिसका मूल्य कोई तीस करोड़ रुपया बैठता है।

यह कहना अतिशयोक्ति न होगी कि राजस्थान नहर योजना संसार की एक बहुत बड़ी सिंचाई योजना होगी। अभी तक संसार में कहीं भी इतनी बड़ी सिंचाई योजना का कार्य हाथ में नहीं लिया गया है। इस नहर में से बहुत बड़ी संख्या में रजबाहे और सिंचाई के लिए छोटी-छोटी नहरें निकलेंगी। भारत और एशिया में यह सबसे लम्बी नहर होगी।

राजस्थान नहर योजना के लाभ

मुख्य नहर के निर्माण काल में लगभग पचास हजार से अधिक लोगों को रोजगार मिलेगा। इसके अलावा नहर का निर्माण हो जाने पर कृषि के क्षेत्र में कोई पचास हजार परिवारों को काम मिल जाएगा। रेलवे, सड़क निर्माण, समाज सेवा, व्यवसाय और उद्योग के क्षेत्र में भी बहुत लोग काम पर लग जाएंगे।

जहाजरानी

इस समय राजस्थान के मरुस्थल प्रदेश में सड़कें नाम को भी नहीं हैं, उचित संचार और परिवहन व्यवस्था स्थापित करने में समय लगेगा, इसलिए नहर इतनी बड़ी बनाने का विचार है, जिसमें जहाज और बड़ी नौकाएं चल सकें। इससे नहर क्षेत्र में बस्तियां बसाने और डाक-तार, रेल आदि के निर्माण के लिए लकड़ी काफ़ी बड़ी मात्रा में हरिके बांध से लाई जा सकेगी। इसके अलावा राजस्थान नहर की जहाजरानी, कृषि, अन्य पदार्थों तथा ऐसी ही अन्य चीज़ों को मण्डियों में लाने का एक सस्ता साधन सिद्ध होगी।

पानी की सप्लाई

इस नहर से जैसलमेर और बीकानेर रियासत के नगरों को भी पानी दिया जा सकेगा। अधिक गहराई पर पानी पाया जाता है।

रेगिस्तान को फैलने से रोकने में सहायक

उपरोक्त कुछ लाभों के अतिरिक्त इस क्षेत्र में सिंचाई होने से उत्तर प्रदेश, पंजाब और रेगिस्तान का विचार रुक जाएगा।

टिड्डियों का संकट

इस क्षेत्र में बस्तियां बस जाने और खेती होने से टिड्डियों का खतरा दूर हो जाएगा क्योंकि टिड्डियां रेगिस्तान में ही अधिक पनपती हैं। इस प्रकार टिड्डियों से अनाज की जो भारी हानि होती है वह बच जाएगी।

सभ्यता का विस्तार

शांतिपूर्ण जीविकोपार्जन के साधन हो जाने से इस इलाके में डाकेज़नी से गुज़ारा करने वाले लोग भी सभ्य नागरिकों की तरह स्थायी रूप से बस कर अपना जीवन बितायेंगे।

अकाल का निवारण

खेती के स्थायी साधन हो जाने से अकाल का डर जो सदा बना रहता है, दूर हो जाएगा।

यह नहर राजस्थान के लिए वरदान सिद्ध होगी। जिसका मूर्तमान रूप आपके घनिष्ठ मित्र श्री कुंवरसैन जी के मष्तिस्क में आया।

वैश्य वर्ग साहस और उद्यम को अपने हृदय में स्थान दे

"मेड इन इण्डिया" की साख को मजबूत करना हमारा नया नारा है

मनुष्य शरीर के साथ समाज की तुलना करते हुए हमारे प्राचीन शास्त्रकारों ने शरीर के भिन्न-भिन्न अंगों में से वैश्य वर्ग को उदर अर्थात् पेट की संज्ञा दी है। शरीर को जीवित और पुष्ट रखने के लिए उदर का कार्य भोजन को पचाकर मांस, रक्त, मज्जा इत्यादि तैयार करने वाले विविध रस जुटाना है। पेट की यह क्रिया जितनी उत्तम होगी, शरीर का पोषण और उसकी

रक्षा भी उतनी ही भली प्रकार हो सकेगी। यही स्थिति समाज के निर्माण में वैश्य वर्ग की बतलाई गयी है।

कृषिप्रधान प्राचीन अर्थ-व्यवस्था में वैश्य वग का महत्व यदि उक्त कथन से स्पष्ट है, तो वर्तमान युग की उद्योग-प्रधान अर्थ-व्यवस्था में इसमें और भी अधिक अभिवृद्धि हो जाने की बात सहज ही समझी जा सकती है। आज किसी भी समाज और देश की शक्ति, सम्पन्नता, सुरक्षा और गौरव उसके व्यापार-कार्य में संलग्न व्यक्तियों अर्थात् वैश्य वर्ग की सफलताओं पर पूर्णतया निर्भर करते हैं।

इस कथन के अभिप्राय को पूरी तरह समझने के लिए इस सम्बन्ध में विस्तार से विचार आवश्यक है। तनिक सोचिए तो सही कि देश की जनता अपनी दैनिक विविध आवश्यकताओं अर्थात् भोजन, वस्त्र, वाहन और अन्य सामग्री की व्यवस्था के लिए किस वर्ग पर निर्भर है। स्पष्ट रूप से यह कार्य वैश्य वर्ग द्वारा ही सम्पन्न किया जाता है। फिर विदेशी मुद्रा से देश के कोश को समृद्ध बनाने वाला और विदेशों को नाना प्रकार की आवश्यक वस्तुएं प्रदान कर इस प्रकार देश के गौरव और शान को चार-चान्द लगाने वाला वर्ग कौन-सा है ? यह कार्य भी निर्यात व्यापार के लिए नाना प्रकार की वस्तुएँ तैयार कर वैश्य वर्ग सम्पन्न करता है। शान्तिकाल में देश की इतनी महत्वपूर्ण सेवा करने के उपरान्त युद्धकाल में देश की रक्षा का वास्तविक उत्तरदायित्व किस वर्ग पर है ? युद्ध के लिए शस्त्रास्त्रों, तोपों, टैंकों, अणु-हथियारों, गोला-बारूद, विमानों, जलपोतों और वाहनों, विभिन्न परिधानों और अन्य सामग्री का निर्यात कौन करता है ? स्पष्ट रूप में यह कार्य भी वैश्य वर्ग द्वारा ही सम्पन्न किया जाता है। इस वर्ग द्वारा चलाए जाने वाले जो कल-कारखाने शान्तिकाल में विविध प्रकार की उपयोगी सामग्री तैयार करते हैं, वे ही युद्धकाल में लड़ाई के उपयोग में आने वाले विविध प्रकार के पदार्थों का निर्माण करते हैं।

समाज की रीढ़ की हड्डी

ऐसी दशा में समाज में आज वैश्य वर्ग का वही स्थान है, जो शरीर में रीढ़ की हड्डी का है। प्रत्येक समाज का सहारा अथवा आधार वैश्य वर्ग बन गया है। इसी नींव पर समाज का समूचा भवन खड़ा किया जाता है। अपने कार्य में वैश्य वर्ग के निपुण और योग्य होने की दिशा में समाज बड़े-बड़े भूचालों और तूफानों को सुगमता से झेल जाता है। दृढ़ आधार पर स्थापित इस अट्टालिका को कोई डगमगा नहीं सकता। इस प्रकार का समाज अथवा देश चिरकाल तक फलता-फूलता रहता है। नींव पक्की होने के कारण ऐसे भवन का निरन्तर विस्तार सम्भव है। नयी मंजिलें बनती और बढ़ती रहती हैं। पुरानी मंजिलों को सुधार कर, उनका नित्य नया श्रृंगार करके, नयी-नयी समयोचित सुविधाओं का सदा विकास होता रहता है। इस प्रकार समाज चिर-स्थायी रूप धारण कर लेता है।

आज जो देश और समाजें उन्नत और स्थायी हैं, उनके इतिहास की मामूली-सी छान-बीन करने से इस कथन की सत्यता का परिचय हम प्राप्त कर सकते हैं। इंग्लैंड लगभग दो सौ वर्ष

तक सारे संसार पर राज्य करता रहा। बृटिश साम्राज्य का उस काल में इतना अधिक विस्तार था कि उसके बारे में यह बात कही जाती थी कि बृटिश साम्राज्य में सूर्य कभी नहीं छिपता। सातों समुद्रों पर उसका शासन था। ब्रिटिश शक्ति के इस विस्तार का वास्तविक कारण उसका वणिक समाज अर्थात् वैश्य वर्ग ही था। आज ब्रिटेन की वह शक्ति नहीं रही, फिर भी "मेड इन इंगलैंड" (इंगलैंड में तैयार) इस शब्द का चमत्कार पूर्णतया नष्ट नहीं हुआ है। मोटे से और सर्वथा पिछड़े जापान को ५० वर्ष से भी कम समय में पूरब का उगता हुआ सूर्य विशेषण प्रदान करने वाला कौन था। निश्चित रूप से इसका श्रेय जापान के वैश्य वर्ग को प्राप्त है। अल्पसमय में असाधारण उन्नति कर उन्होंने जापान को इतना समर्थ बना दिया कि एक ओर तो वह जर्मनी, इंगलैंड आदि देशों की व्यापारिक प्रतिस्पर्द्धा को झेलने योग्य हो गया, दूसरी ओर रूस से टक्कर लेकर वह उसके दांत खट्टे कर सका। जापानी वैश्य-वर्ग का यह चमत्कार था, जिसने उस पिछड़े हुए और पराजित देश की काया पलट दी। आज संसार में संयुक्त राज्य अमरीका को प्रथम स्थान प्राप्त है। कौन नहीं जानता कि उसे यह पद दिलाने का श्रेय किसको है। अपनी प्रत्येक आवश्यकता के लिए ब्रिटेन पर निर्भर रहने वाले इस पिछड़े हुए महाद्वीप को सौ वर्ष के कठोर परिश्रम के उपरान्त अमरीकी व्यापारिक वर्ग ने संसार में सबसे अग्रणी बना दिया है। आज संसार में सबसे अधिक उत्पादन इसी देश का है। अमरीकी व्यापारिक वर्ग इस स्थिति से संतुष्ट नहीं। अपने उत्पादन में और भी अधिक वृद्धि करने का उसका प्रयत्न चालू है।

हेमू और भामाशाह

वर्तमान युग के वैश्य वर्ग की चमत्कारिक सफलताओं की कुछ झलकियां ये हैं। यदि हम अपने इतिहास की खोज करें, तो हमें अपने वैश्य वर्ग की असाधारण देनों से पूर्ण अनेक कहानियां इतिहास के पन्नों में छिपी हुई मिल जायेंगी। भारतवर्ष को 'सोने की चिड़िया' विशेषण किसने दिलाया था। नाना प्रकार की सामग्री ढो-ढोकर देश-विदेश की यात्रा करने वाले वणिक पुत्रों के परिश्रम का ही यह परिणाम था। अपनी मेहनत से इन लोगों ने इतनी धन-संपदा अर्जित की कि इस देश का भंडार लबालब भर गया। देश की यात्रा करने वाले विदेशियों की आँखें इस धन की चमक से चौंधिया गयीं और उन्होंने इस देश का यह नाम रख दिया।

अपने प्राचीन इतिहास की खोज करने पर हमें ऐसे अनेक युगों का परिचय मिल सकेगा जिनमें इस देश के व्यापारिक वर्ग ने दूर-दूर विदेशों में इस क्षेत्र का नाम उज्ज्वल किया। कई सहस्र वर्ष पूर्व भारतीय वस्त्रों की बिक्री करने वाले व्यापारी मिस्र और उससे भी दूर के देशों में पहुँचे। भारतीय वस्त्र कला के नमूने प्रस्तुत कर उन्होंने भारत का नाम इन देशों में चमकाया देश का कोष भरने के लिए ये लोग अपने साथ विपुल सम्पदा भी लाए।

इसके बाद के युगों में भी विदेशों से वैश्य वर्ग का सम्बन्ध इसी प्रकार बना रहा। पूर्व में बहुत दूर समुद्रों की वणिक पुत्रों ने यात्रायें कीं। इनके पूर्ण विवरण यद्यपि उपलब्ध नहीं और उनकी खोज का काम शेष है, फिर भी जिन देशों में ये लोग गये वहां प्राप्त की गई सफलताओं के

स्मृति-चिह्न स्वरूप बहुत से खंडहर और अन्य यादगारें बिखरे हुए मिलते हैं। इनसे इन यात्राओं और वहां अर्जित यश और कीर्ति और साथ ही धन-सम्पदा इन सबका पता मिलता है।

मध्यकाल में देश के गौरव को चार-चांद लगाने वाले हेमू बनिए और भामाशाह के नाम से कौन परिचित नहीं। उनकी स्मृति इतिहास के पन्नों में स्वर्णाक्षरों में अंकित है।

पतन का काल

किन्तु वैश्य वर्ग की यह स्थिति और गौरव सदैव इस रूप में बने नहीं रहे। जब तक वैश्य समाज में साहस और पराक्रम बना रहा, वह फलता-फूलता रहा और देश का दृढ़ आधार सिद्ध हुआ। किन्तु उसमें धीरे-धीरे शिथिलता आने लगी। इसका स्पष्ट चिह्न विदेश यात्रा पर लगने वाले प्रतिबंध थे। फलस्वरूप वैश्य वर्ग की सम्पदा अर्जन करने की अपूर्व क्षमता समाप्त हो गयी। साहसपूर्ण कार्यों को सम्पन्न करने की उसकी वृत्ति पर रोक लग गई। यात्राओं के अभाव में परिवहन व्यवस्था को अपने नियन्त्रण से रखकर उसमें निरन्तर सुधार करने की आवश्यकता नहीं रह गयी। फलस्वरूप इसके संगठित रूप का अन्त हो गया। विदेशी सम्पर्क के अभाव में संसार की व्यापारिक स्थिति में होंने वाले सामयिक परिवर्तनों का कोई ज्ञान वैश्य वर्ग को नहीं रहा। फलस्वरूप नये-नये समयानुकूल धन्धों और कला-कौशलों का प्रारंभ नहीं किया जा सका। साथ ही पुरानों को नया रूप देना भी संभावित नहीं रहा। इस स्थिति के फलस्वरूप जिन कार्यों से पहले काफी धन मिलता था, वे हानि अथवा कम लाभ के बन गये।

इन सब बातों का परिणाम यह हुआ कि वैश्य समाज ऐसे कार्यों में संलग्न हो गया, जो अपेक्षाकृत कम जोखिम भरे थे। जमींदारी, साहूकारी और दलाली जैसे कुछ धन्धों तक ही उसने अपने आपको सीमित कर लिया। बृटिश शासनकाल में यही स्थिति वैश्य समाज की थी। भारतीय समाज के लिए भी वैश्य वर्ग के पतन का यह काल गुलामी का काल सिद्ध हुआ। वैश्य वर्ग की गिरावट से सारे समाज के छिन्न-भिन्न हो जाने की बात उक्त उदाहरण से अधिक अन्य किसी बात से स्पष्ट नहीं होती।

हमारी वर्तमान स्थिति

हमारी वर्तमान स्थिति और भी अधिक खराब है। देश के आजाद होने के बाद से ऊपर गिनाये रहे-सहे कार्य भी वैश्य समाज के हाथ से निकलते जा रहे हैं। कानून बनाकर जमींदारी की प्रथा समाप्त कर दी गई। ऋण देने की विविध प्रकार की राजकीय व्यवस्थायें अब तक की जा चुकी हैं। इनके फलस्वरूप साहूकारी का धन्धा भी लगभग समाप्त हो गया है। दलाली के बहुत से काम समाप्त हो चुके हैं। जो शेष हैं, उन पर भी नियन्त्रण लगा रहे हैं। इस प्रकार वैश्य समाज की स्थिति अब लगभग शोचनीय और दयनीय बन गयी है।

इसमें सन्देह नहीं कि हमारे समाज का यह चित्र काफी डरावना है। फिर भी इसे ऐसा नहीं स्वीकार किया जा सकता कि इससे हमारे साहस की समाप्ति होकर पूर्ण निराशा फैल

जाए। वर्तमान स्थिति जो केवल हमें सजग और सावधान करती है। यदि वैश्य वर्ग ने अपनी शिथिलता का परित्याग नहीं किया तो निश्चय ही उसका विनाश और समाप्ति हो जाएगी। किन्तु इसके विपरीत यदि उसने अपनी चिर-निद्रा से जागकर साहस और उद्यम से भरा अपना पूर्व रूप धारण कर लिया, तो बहुत शीघ्र ही वह सारे संसार पर उसी तरह छा जाएगा जैसे कि ४ हजार या इससे भी अधिक समय पूर्व से लेकर आज से लगभग २ हजार वर्ष पूर्व तक वह सारी पृथ्वी पर छाया हुआ था। आवश्यकता केवल साहस और सूझ-बूझ से काम लेने की है।

यह कोई कोरी कल्पना नहीं। जिन थोड़े से भाइयों ने इन गुणों का परिचय दिया है, वे देश-विदेश में आंशिक रूप में अपनी कीर्ति-ध्वजा फहराने में सफल हो चुके हैं। उनकी छोटी-छोटी सफलताओं से हम भविष्य की महान झांकी का अनुमान आज भी लगा सकते हैं। अपने भविष्य का पूर्णरूपेण निर्माण हमारे अपने प्रयत्नों पर निर्भर करता हैं।

उत्तरदायित्व की महानता

हमारे प्रयत्नों की पूर्ण सफलता के लिए तीन बातों की जानकारी हमारे लिए आवश्यक है :—(१) वैश्य वर्ग का प्राचीन गौरव, (२) समाज की रचना में वैश्य वर्ग का महत्व और (३) वैश्य वर्ग के उत्तरदायित्व की महानता। प्रथम दो बातें जहां हमारे साहस और सूझ-बूझ को उकसाकर हमें आगे बढ़ाने वाली हैं, वहां वैश्य वर्ग के उत्तरदायित्व की जानकारी हमें सही मार्ग पर अग्रसर होने में सहायक है। महत्व ज्यों-ज्यों बढ़ता जाता है, उसके साथ ही व्यक्ति का उत्तर-दायित्व भी अधिकाधिक होता चला जाता है। यदि इनका संतुलन बना रहे अर्थात् बढ़ते हुए महत्व के साथ उत्तरदायित्व की भावना की वृद्धि न हो, तो कोई भी व्यक्ति वर्ग अथवा समाज उन्नति नहीं कर सकता।

आज जबकि वैश्य समाज नई दिशा की खोज में संलग्न है, जबकि वह अग्रसर होने की बात सोच रहा है, उसमें उत्तरदायित्व की इस भावना का विकास भी आवश्यक है। व्यापार-कार्य संकट और जोखिम से पूर्ण कार्य है। वह अत्यधिक साहस और सूझ-बूझ की मांग करता है। कोई भी व्यक्ति सरल मार्ग को अपनाकर इस धन्धे में लाभ नहीं कमा सकता। केवल तत्काल लाभ पर दृष्टि रखने से हमारा कार्य व्यापार में नहीं चल सकता। सफल व्यापारी भविष्य और दूर भविष्य सभी पर नजर रखता है और उसका आचरण उसके अनुसार होता है। सभी दशा में वह देश-विदेश में कीर्ति और सम्पदा का उपार्जन कर सकता है।

ऐसी दशा में हमारा वर्तमान नारा 'मेड इन इंडिया' (भारत में निर्मित) की साख को इस देश और विदेशों में पुष्ट करना है। यदि हम इस कार्य में सफल हो गए, तो शीघ्र ही संसार की मण्डियों में हमारी तूती बजने लगेगी। इसके फलस्वरूप स्वयं हमारा समाज और देश दोनों नव-स्फूर्ति प्राप्त कर अधिकाधिक दृढ़ होते चले जाएंगे।

आइये महावीर जयंती पर राष्ट्र-निर्माण की प्रतिज्ञा करें

वात्सल्य और प्रभावना अंग को फैलायें

यह सर्वविदित है कि जैन धर्म किसी एक व्यक्ति विशेष का नहीं अपितु उस हर व्यक्ति का है जो अपनी इन्द्रियों पर काबू पाकर सांसारिक वासनाओं को जीत सके। उसे जिन (इन्द्रियों को जीतने वाला) या जैन कह सकते हैं।

जैन धर्म एक सार्वभौमिक धर्म है और मनुष्य मात्र इसको अपना सकता है। यह आवश्यक नहीं कि वह किस जाति, सम्प्रदाय अथवा समाज से ताल्लुक रखता है, बल्कि जो उसके सिद्धांतों में विश्वास रखता है और उनका पूर्णरूपेण पालन करता है वह जैन है।

आज यह किसी से छिपा नहीं है कि जैन धर्मानुयाइयों ने समय-समय पर अपनी वीरता व धर्म-परायणता के जो कार्य किए एवं देश के निर्माण में जो अद्वितीय भाग लिया उससे जैन समाज ही का नहीं वरन् भारत भर का मस्तिष्क ऊँचा हुआ है। भारत के एक कोने से दूसरे कोने तक इसके प्रमाण मिलते हैं। इतिहास इसका साक्षी है।

माना कि जैन धर्म एक अहिंसक और सर्वपालक धर्म है किन्तु कायरता की भावनाओं वाला नहीं, वीरत्व की भावनाओं से पूर्ण उदार धर्म है। इसके प्रतिपालक और प्रवर्तक प्रायः क्षत्री वीर ही हुए हैं जिन्होंने सदैव जैन धर्म के मुख्य सिद्धांतों को पाला। उनका दृढ़ विश्वास था कि किसी को सताना पाप है किन्तु किसी के द्वारा सताया जाना भी पाप है और इसी को कार्यान्वित भी किया। उन्होंने सदियों तक भारत पर शासन किया किन्तु उनके शासनकाल में किसी भी अन्य राष्ट्र और शासक की हिम्मत न हुई कि वह भारत पर आक्रमण कर सके। यही कारण है कि आज भी उनके शानदार कारनामे तथा नाम जिन्दा है।

जीओ और जीने दो का सिद्धांत मानव-जाति के लिए अमूल्य और एक नई रोशनी देने वाला है। यही कारण है कि हमारा देश संसार में इस सिद्धांत को पूरा करने में अग्रणी रहा है। यही सिद्धांत आज से बहुत समय पूर्व भगवान महावीर ने अपने संदेश में दिया और इस सिद्धांत को प्रसारित करने के लिए विदेशों में भी हमारे बड़े-बड़े पूर्वज गए।

सैकड़ों वर्षों की दासता के बाद अपना देश स्वतन्त्र हुआ है। इस स्वातन्त्र्य आंदोलन में वही जैन समाज का अहिंसा-सिद्धांत एक शस्त्र था जिसे भारत के देशभक्त जैनों ने घर-घर पहुँचाने की भरसक कोशिश की। बापू और देश के अनेक उत्साही देश-सेवकों के सद्प्रयत्न से यह अहिंसा-शस्त्र कारगर हुआ। इसी अहिंसा के प्रवर्तक और उद्घोषक प्रातःस्मरणीय भगवान महावीर का जन्म दिवस इस वर्ष की २८ मई १९५३ को है। इस शुभ अवसर पर, जब कि हम

स्वतन्त्र हैं, हमारा कर्तव्य क्या हो जाता है ? देखना अब यह है । केवल जलूस या जलसे मात्र से तो हमारे काम की इतिश्री नहीं हो जाती है अपितु एक जिम्मेदारी और भी बढ़ जाती है और वह है देश का नव-निर्माण । आइए, आज हम सब बैठकर इस पुनीत अवसर पर, जबकि भगवान महावीर स्वामी के जीवन-चरित्र से हमें एक नई रोशनी व प्रेरणा मिल रही है, प्रतिज्ञा करें कि हम देश का मान-स्तर संसार में सर्वाधिक ऊंचा करेंगे ताकि अहिंसा की वह ध्वजा संसार में सर्वोन्नत होकर गर्व से लहराया करे ।

भगवान् महावीर और अहिंसा

भगवान महावीर की अहिंसा का पाठ आज विश्व में फैला हुआ है और इससे भी इंकार नहीं किया जा सकता कि भारतीय स्वातंत्र्य संग्राम में इसी अहिंसा-शस्त्र की तीक्ष्ण धार के सम्मुख बृटिश साम्राज्य भी नहीं ठहर सका ।

भगवान महावीर इसके प्रवर्तक थे । उनकी वाणी, मन और कर्म में अहिंसा की भावना व्याप्त थी जिसने संसार को एक कर्मशीलता और विश्वबन्धुत्व की प्रेरणा दी । निःसन्देह जैन समाज उसी का अनुयायी है । हम चाहते हैं जैन समाज उनके पदचिह्नों पर चलकर मानवता की भावनाओं और उनके सन्देशों का प्रतिपादन करे । अधिक विवाद में न पड़ कर इतना ही कहना काफी होगा ।

आज जैन समाज और अहिंसा के अनुयायी तीर्थंकर भगवान महावीर का जन्म दिवस मना रहा है । यह बड़ी प्रसन्नता की बात है । उनके सन्देश की रोशनी में देश की उन्नति हो, यह हमारी कामना है ।

महावीर जयन्ती पर सरकारी छुट्टी न होने से कुछ विवाद-सा छिड़ गया है और जैन समाज ने इसके लिए भारत सरकार से मांग की है । सरकार यदि सम्भव समझती है तो अवश्य ही इस ओर कदम उठाया जाना चाहिए ।

महावीर क्या थे

भगवान महावीर के विषय में कुछ प्रमुख विद्वानों के कथन इस प्रकार हैं :—

"भगवान महावीर अहिंसा के अवतार थे । उनकी पवित्रता ने संसार को जीत लिया था ।······महावीर स्वामी का नाम यदि इस समय किसी भी सिद्धांत के लिए पूजा जाता है तो वह अहिंसा है ।······प्रत्येक धर्म की उच्चता इसी बात में है कि उस धर्म में अहिंसा तत्व की प्रधानता हो । अहिंसा तत्व को यदि किसी ने अधिक से अधिक विकसित किया है तो वे महावीर स्वामी थे ।"

—महात्मा गान्धी

"वे महावीर अर्थात् महान विजयी इतिहास के सच्चे महापुरुष हैं। उद्धतता और हिंसा के नहीं किन्तु प्रेम और निराभिमानता के महावीर थे।"

—टी० एल० वास्वानी

"प्राचीन भारत के निर्माता पुरुषों में श्री महावीर स्वामी एक थे।"

—श्री विजयराघवानन

"महावीर की शिक्षायें ऐसी प्रतीत होती हैं मानों वे आत्मा की विजय ज्ञार्य हों। जिसने अन्ततः इसी लोक में स्वाधीनता और जीवन पा लिया हो। हजारों आदमी उनकी ओर टकटकी लगाये हैं। उनको वैसी पवित्रता और शांति की चाह है।"

—डा० अल्बेर्टो पाग्गी, जिनोवा (इटली)

"संसार सागर में डूबते हुए मानवों ने अपने उद्धार के लिए पुकारा। इसका उत्तर महावीर ने जीव को उद्धार का मार्ग बतलाकर दिया। दुनिया में ऐक्य और शांति चाहने वालों का ध्यान श्री महावीर का उदात्त शिक्षा की ओर आकर्षित हुए बिना नहीं रह सकता।"

—डा० वाल्टर शूब्रिग

"महावीर ने भारत में निर्वाण के इस सन्देश का घोष किया कि धर्म रिवाजमात्र नहीं बल्कि यथार्थता है। निर्वाण पद की प्राप्ति सम्प्रदाय के बाह्य संस्कारों के कर लेने से ही नहीं हो जाती बल्कि सच्चे धर्म का आश्रय लेने से ही होती है धर्म मनुष्यों के मध्य कोई भेदभाव नहीं उत्पन्न करता। कहने की आवश्यकता नहीं कि इस उपदेश ने जाति-भेद को दबा दिया और समस्त देश को जीत लिया।

—रवीन्द्रनाथ ठाकुर

जैन दर्शन बहुत ही ऊंची पंक्ति का है। इसके मुख्य तत्त्व विज्ञान शास्त्र के आधार पर रचे हुए हैं। ऐसा मेरा अनुमान ही नहीं, पूर्ण अनुभव है। ज्यों-ज्यों पदार्थ विज्ञान आगे बढ़ता जाता है, जैन धर्म के सिद्धांतों को सिद्ध करता है और मैं जैनियों को इस अनुकूलता का लाभ उठाने का अनुरोध करता हूँ।

अहिंसा सभ्यता का सर्वोपरि और सर्वोत्कृष्ट दरजा है। यह निर्विवाद सिद्ध है और जबकि यह सर्वोपरि और सर्वोत्कृष्ट दरजा जैनधर्म का मूल है तो इसकी ओर सर्वाङ्ग सुन्दरता के साथ यह कितना पवित्र होगा, यह आप खुद ही समझ सकते हैं। जैनी लोग अहिंसा देवी के पूर्ण उपासक होते हैं और उनके आचार बहुत शुद्ध और प्रशंसनीय होते हैं, उनके व्रत और सप्त व्यसन वगैरह बातों के जानने से मुझे बहुत खुशी हुई और उनके चरित्र की तरफ मेरे दिल में बहुत आदर उत्पन्न हुआ। जैन मुनियों के आचार देखने से मुझे वे अति कठिन जान पड़ते हैं लेकिन वे ऐसे तो पवित्र हैं कि हर एक के अन्तःकरण में बहुत भक्तिभाव और आदर उत्पन्न करते हैं। ऐसे चरित्र से सर्व साधारण पर प्रभाव पड़ता है।

—डा० एल० पी० टेसीटोरी इटालियन

— धर्म देशना से

जैन समाज के संगठन का रूप कैसा हो

एक मंच और प्रचार की आवश्यकता

सन् १८५७ के गदर के बाद कुछ वर्षों तक भारतवर्ष के हालत बहुत बिगड़े रहे। सारे देश में आतंक छाया रहा और जनता भयभीत रही; जिसके कारण सब कामों में शिथिलता आ गई। धीरे-धीरे विदेशी शासकों के पांव पूरी तरह भारतवर्ष में जम गए तब जनता को भी कुछ चैन मिला। विदेशी शासकों को भारतवर्ष में राज्य के कार्यों को चलाने के लिए क्लर्कों की जरूरत पड़ी। उन्होंने अपने ढंग की शिक्षा सिखाने के लिए स्कूल और कालेज खोले। विदेशियों की शिक्षा आचार-विचार, रहन-सहन और खान-पान में और भारत की शिक्षा, सभ्यता, आचार-विचार, रहन-सहन, और खान-पान में बहुत अन्तर था।

कुछ ही दिनों बाद जनता ने अनुमान किया कि हमारे बच्चों में नैतिकता और धार्मिक संस्कारों की कमी होती जा रही है, जिसके बिना मनुष्य का जीवन सार्थक नहीं। यदि इस ओर ध्यान न दिया तो हमारा पतन हो जाएगा। तमाम देश में एक ऐसी लहर दौड़ी कि भारतवर्ष की सब जातियों, समाजों और वर्गों ने नैतिक और धार्मिक संस्कार बच्चों में पैदा करने के लिए अपना-अपना संगठन बनाकर उनमें नैतिकता और धर्म-शिक्षा का प्रचार करने के लिए विचार किया।

जैन समाज में भी जागृति की लहर दौड़ी। सन् १८७५-७६ के लगभग जैन समाज के कुछ विवेकशील उत्साही और धर्म-प्रेमी नवयुवक विद्वानों का एक दल मैदान में आया जिनके हृदयों में समाज-संगठन और धर्म-प्रचार की उत्कट भावना और तड़प थी। उन्होंने समाज संगठन और धर्म-प्रचार का दृढ़ निश्चय कया जिनमें पं० गोपालदास जी बरैया—पं० चुनीलालजी—पं० मुकंदीराम जी मुरादाबाद, पं० छेदालाल जी अलीगढ़—पं० प्यारेलाल जी अलीगढ़ और पं० धन्ना लाल जी कासलीवाल के नाम विशेषकर उल्लेखनीय हैं। यह सब विद्वान अपनी-अपनी दिशाओं अपने-अपने ढंग से समाज-संगठन और धर्म-प्रचार का काम करने लगे। पं० छेदालाल जी और पं० प्यारेलालजी ने पाठशाला की स्थापना की और बहुत से विद्वान तैयार किए। अन्य विद्वान देश के चारों कोनों में निकल पड़े, स्थान-स्थान पर घूमकर लोगों को इकट्ठा करना, सभायें बुलाना, भाषण व उपदेश देना और स्थानीय सभायें कायम करना मुख्य कार्य था। सैकड़ों स्थानों में सभायें बन गईं। सभायें बनने के बाद लोगों के दिलों में भावना पैदा होना स्वाभाविक था कि समाज को संगठित किया जाय जिससे कि तमाम भारतवर्ष के दिगम्बर जैन समाज को एक सूत्र में पिरोया जा सके और उसके द्वारा धर्म और समाज की उन्नति के उपाय सोचे जायें और ठोस कार्य किया। इन महानुभावों ने बड़े उत्साह और लगन के साथ काम किया जाय। बीच में बहुत-सी अड़चनें आईं पर हिम्मत नहीं हारी और अपना ध्येय पूरा करने में जुटे रहे।

पूरे बीस साल के अथक परिश्रम के बाद इनका मनोरथ सफल हुआ। श्री जम्बू स्वामी की निर्वाण भूमि चौरासी (मथुरा) में कार्तिक के मेले के अवसर पर संगठन कार्य को मूर्त रूप देने के लिए उपयुक्त समय समझा गया और सन् १८९५ मेले के मौके पर दिगम्बर जैन सभा की नींव डाली गई।

इसका पहला अधिवेशन १८९६ में माननीय राजा सेठ लक्षमणदास जी के सभापतित्व में मथुरा में बहुत शान के साथ हुआ। अधिवेशन में जैन गजट को भी निकालने का निश्चय किया गया जिसका सम्पादक बाबू सूरजभान जी वकील सहारनपुर को नियुक्त किया गया। महासभा के अधिवेशन का आयोजन भारत के विभिन्न स्थानों में किया गया। हर स्थान में महासभा के अधिवेशनों को अभूतपूर्व सफलता मिली। दि० जैन महासभा का कार्य बहुत व्यापक होता जा रहा था जिसका श्रेय राजा सेठ लक्षमणदास जी मथुरा, डिप्टी चम्पतराय जी कानपुर, सर सेठ हुकमचन्दजी इन्दौर, बाबू निर्मलकुमारजी आरा, बैरिस्टर चम्पतरायजी, दानवीर साहू सलेखचन्दजी नजीबाबाद, तीर्थभक्त लाला देवीसहायजी फिरोजपुर, सेठ टीकमचन्दजी सोनी (अजमेर) और ला० जम्बूप्रसादजी रईस सहारनपुर को है।

सन् १९२०-२२ तक तो अ० भ० दि० जै० महासभा का कार्य बहुत ठीक चलता रहा, सब कार्यकर्त्ता लगन और प्रेमपूर्वक उत्साह के साथ महासभा का कार्य करते रहे; बाद में प्रतिक्रियावादी (रूढ़िवादी) और सुधारक विचारधारा रखने वाले सुधारकों का मुद्रित जिन शास्त्रों के प्रचार, नवयुवकों को शिक्षा प्राप्त करने के लिए विदेशों में शिक्षा के लिए जाने देना, दस्सा विनेकवारों का जिन मन्दिरों में पूजा का समान अधिकार देने और समाज में जैनों की विभिन्न जातियों में अन्तर्जातीय विवाह करने के विषयों को लेकर सुधारक और रूढ़िवादियों के दो दल हो गए जिसके फलस्वरूप १९२३ में दिल्ली की विम्ब प्रतिष्ठा के समय कुछ उत्साही सुधारक कार्यकर्त्ताओं ने भारतवर्षीय दि० जै० परिषद की स्थापना कर दी, जिसके मुख्य संस्थापकों में बैरिस्टर चंपतरायजी, ब्रह्मचारी शीतलप्रसाद जी, बाबू अजीतप्रसाद जी लखनऊ, बाबू रतनलाल जी बिजनौर और साहू जुगमन्दरदास जी नजीबाबाद के नाम उल्लेखनीय हैं।

अ० भा० दि० जै० परिषद के उत्साही कार्यकर्त्ताओं ने बहुत संकटों का सामना करके बड़े-बड़े कार्य धर्म और समाज की उन्नति के लिए किए। आज मुद्रित जैन शास्त्र प्रायः सभी मन्दिरों में दिखाई पड़ते हैं। विदेश यात्रा पर किसी को कोई आपत्ति नहीं, दस्सा और विनेकवार भाइयों के लिए जैन मन्दिरों में पूजा करने की कोई रोक-टोक नहीं है। जैनों के आपस में अन्तर्जातीय विवाहों की कोई रुकावट नहीं।

मेरा यह सुझाव है कि तमाम भारतवर्ष के दि० जैन समाज का एक प्लेटफार्म हो, आवाज और प्रतिनिधित्व करने के लिए एक संयुक्त दि० जैन समिति बनाई जानी चाहिए जो कि तमाम समाज का नेतृत्व करे। इस समिति में सभी अ० भा० दि० जैन संस्थाओं के दो-दो चार-चार प्रतिनिधि उन संस्थाओं की कार्यकारिणी द्वारा चुन कर भेजे हुओं को संयुक्त समिति का सदस्य बनाया जाए।

देश की रक्षा और एकता के लिए जबकि भारतवर्ष के सभी सम्प्रदाय, जातियाँ और राजनैतिक दल एक प्लेटफार्म पर एकत्रित हो सकते हैं तो कोई कारण नहीं कि एक धर्म के मानने वाले दि० जैन भाई अपने धर्म और समाज की उन्नति और रक्षा के लिए क्यों नहीं एक प्लेटफार्म पर एकत्रित हो सकते ?

मुझे आशा है कि दि० जैन समाज के अग्रगण्य महानुभाव यदि इस ओर ध्यान देंगे तो अवश्य सफलता मिलेगी। श्रावकशिरोमणि साहू शांतिप्रसादजी जैन—सर सेठ भागचन्दजी सोनी—जैनरत्न भैया साहब राजकुमार सिंह जी जो पहले से ही प्रयत्न कर रहे हैं उनसे मेरा नम्र निवेदन है कि वह अपने प्रयत्नों को चालू रखें। और एकता की योजना में उलट-फेर करके कोई न कोई नया रास्ता जरूर निकालें। इस समय समाज की परिस्थिति बड़ी गम्भीर तथा शोचनीय है, आप सब इसका संरक्षण करें।

भगवान् महावीर और उनके संदेश

ईसा पूर्व पांचवीं-छठी शताब्दी में विदेह देश की राजधानी वैशाली (बसाढ़ के निकट) गंडक नदी के तट पर क्षत्रिय कुण्डग्राम और ब्राह्मण कुण्डग्राम दो सुन्दर नगर स्थित थे। इन्हीं दो नगरों में से प्रथम नगर क्षत्रिय कुण्डग्राम में ईसा से ५९९ वर्ष पूर्व, यहां के गणराजा सिद्धार्थ के घर चैत्र शुक्ला त्रयोदशी के दिन भगवान महावीर का जन्म हुआ था।

वैशाली का गणराज्य बहुत शक्तिशाली था। यहां गणसत्तात्मक राज्य की व्यवस्था प्रत्येक गण के चुने हुए नायकों के सुपुर्द थी। यह 'गण राज्य' कहे जाते थे। राजा तो नाम मात्र का होता था और वह राज्य का शासन सदैव गणनायकों की सम्मति से ही करता था। उस समय चेटक वैशाली का बलशाली शासक था। वह ९ गण राज्यों का अधिनायक था। इन्हीं चेटक की बहिन त्रिशला का विवाह कुण्डग्राम के गणराजा सिद्धार्थ से हुआ था।

जन्म-समारोह

अपने घर पुत्र जन्म का समाचार पाकर सिद्धार्थ की खुशी का ठिकाना न रहा। पुत्रोत्पत्ति के हर्ष में क्षत्रिय कुण्डग्राम में दस दिन तक अपूर्व समारोह मनाया गया। कर माफ कर दिया गया, श्रमण संतों को दान-मान से सम्मानित किया गया, आनन्द और उत्साह की सीमा न

रही। सिद्धार्थ ने सबके समक्ष कहा, "भाइयो ! इस बालक के जन्म से हमारे कुल में धन-धान्य, सेना, घोड़े आदि की वृद्धि हुई है अतएव बालक का नाम 'वर्द्धमान' रखना ठीक होगा।"

वर्द्धमान बचपन ही से बड़े वीर, धीर, गम्भीर और निर्भीक प्रकृति के थे। उनके बचपन की एक रोचक घटना है—एक बार वर्द्धमान अपने साथियों के साथ उद्यान में क्रीड़ा कर रहे थे। इतने ही में उनके साथियों ने देखा कि वृक्ष की जड़ में लिपटा हुआ एक सर्प फुंकार मार रहा है। यह देख वर्द्धमान के साथी घबड़ा गये। सबको अपने प्राणों की पड़ गई। परन्तु वीर वर्द्धमान न डरे। वह अचल भाव से खड़े रहे और खेल ही खेल में उस सांप को अपने हाथ में पकड़ लिया। इसी प्रकार एक बार वर्द्धमान राजमहल में बैठे हुए थे। नगर में अचानक कोलाहल मचने की आवाज कानों में पड़ी। पूछने पर विदित हुआ कि राजा का हाथी मतवाला होकर बन्धन-मुक्त हो गया है और लोगों को दुःख दे रहा है। इतना सुनते ही वर्द्धमान तुरन्त घटनास्थल पर जा पहुँचे और हाथी को पकड़ कर महावत के हवाले कर दिया। इसी प्रकार के अन्य संकटों के समय अपनी दृढ़ता और निर्भयता प्रदर्शित करने के कारण वर्द्धमान 'महावीर' कहे जाने लगे।

हृदय द्रवित हो गया

वेद काल से चली आनेवाली विचार-धाराओं का मन्थन महावीर ने गम्भीरतापूर्वक किया था। उनके जीवन पर इन विचारधाराओं का गहरा प्रभाव पड़ा था। मानव उस समय मायावी, वासनासक्त और वक्र हो गया था। हिंसा और वासना से अन्धा बना हुआ था। धर्म के नाम पर यज्ञ आदि में मूक पशुओं की बलि दी जाती थी।

भगवान महावीर ने देखा कि चारों ओर अज्ञान फैला है। निज स्वार्थ से लोग दूसरे जीवों की हिंसा कर रहे हैं। सब जगह दुख ही दुख फैला हुआ है। यह देख कर महावीर का कोमल हृदय द्रवित हो गया। उन्होंने जग का कल्याण करने, उसमें सुख, शांति और समता भाव पैदा करने तथा सर्वप्रथम आत्मबल प्राप्त करने की दृढ़ प्रतिज्ञा की।

महावीर ने वस्त्रादि, आभूषणों, स्वादिष्ट भोजन, मित्र, बन्धु, धन आदि को सदा के लिये तिलांजलि देकर गृह त्याग दिया और ज्ञातृपंड उद्यान में जाकर पंचमुष्टि से केशों का लौंच कर ३० वर्ष की आयु में नग्न दिगम्बर मुनि हो गये। लगभग १२ वर्ष तक उन्होंने घोर तपश्चर्या की। इस काल में उन्हें भयंकर से भयंकर कष्टों का सामना करना पड़ा परन्तु, एक वीर योद्धा की भांति वे अपने कर्त्तव्य-पथ से कभी विचलित न हुए।

तपस्वी जीवन में महावीर ने दूर-दूर तक भ्रमण किया और अनेक कष्ट सहे। वे बिहार में राजगृह (राजगिरि), चम्पा (भागलपुर), भद्दिया (मुंगेर), वैशाली (वसाढ़), मिथिला (जनकपुर) आदि प्रदेशों में घूमे। पूर्वी उत्तरप्रदेश के बनारस कौशाम्बी (कोमस) अयोध्या, श्रावस्ती आदि स्थानों में गये तथा पश्चिमी बंगाल के लाढ़ (राढ़) आदि प्रदेशों में उन्होंने भ्रमण किया।

इस प्रकार १२ वर्ष की घोर साधना के बाद महावीर को जंभियग्राम के बाहर ऋजु-बालिका नदी के तट पर स्थित एक खेत में शाल वृक्ष के नीचे ध्यानमग्न अवस्था में बोध प्राप्त हुआ। महातपस्वी की कठोर तपस्या सफल हुई।

अहिंसा का उपदेश

तदुपरान्त महावीर ने जनता में सत्य, अहिंसा प्राणीमात्र के प्रति प्रेम तथा अपरिग्रह का उपदेश देना प्रारम्भ कर दिया। सर्वत्र महावीर के लोकोत्तर उपदेशों की चर्चा होने लगी। लोग दूर-दूर से उनका उपदेश सुनने आते। बहुतों ने उनके धर्म में दीक्षा ली। इनमें मगध, कोशल, विदेह आदि देशों के ११ कुलीन ब्राह्मण मुख्य थे। महावीर का प्रथम उपदेश था अहिंसा। उन्होंने कहा—"सब जीना चाहते हैं, सबको अपना जीवन प्रिय है, सब सुखी बनना चाहते हैं, अतएव किसी प्राणी को कष्ट पहुँचाना ठीक नहीं।"

महावीर अहिंसा-पालन में बहुत आगे बढ़ जाते हैं और वे समस्त प्रकृति में जीव का आरोपण कर पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और वनस्पति तक की रक्षा का उपदेश देते हैं। इस प्रकार उनकी अहिंसक वृत्ति और विश्व-कल्याण की भावना चरम सीमा पर पहुँच जाती है. महावीर ने जिस सर्वमुखी अहिंसा का उपदेश दिया था वह अहिंसा केवल व्यक्तिपरक न थी बल्कि जगत के कल्याण के लिये उसका सामूहिक रूप से उपयोग हो सकता था।

भगवार महावीर का कहना था कि जो अधिकार पुरुष प्राप्त कर सकते हैं वही अधिकार स्त्रियों के लिये भी हैं। पुरुषों की भांति स्त्रियां श्राविका हो सकतीं हैं तथा श्रावकों की भांति व्रत पाल सकती हैं। यदि पुरुष मुनि हो सकता है तो स्त्रियां भी आर्यिका हो सकती हैं यदि पुरुष तद्भव मोक्ष प्राप्त कर सकता हैं तो स्त्रियां भी परम्परागत मोक्ष प्राप्त कर सकती हैं। भगवान महावीर के समवशरण (सभा) में जहां एक लाख श्रावक थे वहां तीन लाख १८ हजार श्राविकायें थीं। उनके भिक्षुणी संघ में चन्दनवाला, राजमती तथा रानी चेलना के नाम उल्लेखनीय हैं। चन्दनवाला महावीर की प्रथम स्त्री शिष्या तथा संघ की अधिष्ठात्री थी। अपने संघ में स्त्रियों को प्रमुख स्थान देकर गहावीर ने स्त्री जाति के महत्व को स्वीकार किया था।

महावीर का धर्म

महावीर का सीधा-सादा उपदेश था कि आत्मदमन करो, अपने आपको पहिचानो और स्व-पर-कल्याण के लिये तप और त्यागमय जीवन बिताओ। किसी जीव को न सताओ, झूठ न बोलो, जो एक बार कह दो उसे पूरा करो। आवश्यकता से अधिक वस्तु पर अपना अधिकार मत रखो, पर स्त्री को मां, बहिन और पुत्री के समान समझो तथा सम्पत्ति का यथायोग्य बँटवारा होने के लिये धन को बटोर कर मत रखो।

इस प्रकार हम देखते हैं कि महावीर ने आत्म-विकास, आत्म-अनुशासन और आत्म-विजय पर ही जोर दिया है।

× × × ×

जैन समाज के सामने एक समस्या

संगठन की आवश्यकता

इतिहास बताता है कि जैन समाज का भूतकाल अति उज्ज्वल और शानदार रहा है। "अहिंसा प्रेमी, सेवाभावी, दयालु और परोपकारी होने के कारण छोटे-से-छोटे गांव में और बड़े से बड़े शहर में जैन धर्म के अनुयायी बहुत लोकप्रिय रहे हैं। जन-साधारण को दिल्ली में सदा जैन समाज और जैन धर्म के प्रति अगाध श्रद्धा और प्रेम रहा है।

त्यागियों और मुनियों के लिए बहुत सन्मान रहा है। जिस भी स्थान में वे पधारते थे वहाँ की जनता उनका भव्य स्वागत करती थी, उनके प्रवचनों में आकर रस लेती थी। बड़ी रुचि से सुनती थी। शासकों को दिल्ली में भी जैन समाज और जैन धर्म के प्रति बहुत श्रद्धा थी।

सच्चाई, ईमानदारी और लोकप्रिय होने के कारण जैन भाइयों को सरकारी दरबार में अच्छे और ऊंचे पदों पर नियुक्त किया जाता था। शाही खजानों का कार्य भार तो प्रायःकर जैनों के हाथों में रहा है। राजस्थान में चिरकाल तक मन्त्री पदों और विश्वस्त स्थानों पर जैन भाई आरूढ़ रहे हैं। जैनी बड़े-बड़े सेनापति हुए हैं, दानवीर हुए हैं। धनकुबेर सेठ भामाशाह जिसने कि महाराणा प्रताप का आड़े समय में साथ दिया था और अपने धन के कोठे उनकी मदद के लिए खोल दिए थे जिससे महाराणा प्रताप ने मुगलों से बारह साल तक युद्ध लड़ा। दानवीर महाप्रतापी भामाशाह जैन ही तो थे। राजस्थान की चप्पा-चप्पा जमीन पर जैन वीरों की बहादुरी, दानवीरता, देशसेवा, स्वामिभक्ति और धर्मपरायणता की छाप अंकित है। जैन धर्म के शास्त्रों के बड़े-बड़े भंडार राजस्थान में हैं। राजस्थान में गगनचुम्बी विशाल मंदिर भी बहुत हैं। संसार विख्यात आबू में दिलवाड़ा का जैन मन्दिर राजस्थान में ही है। राजस्थान की ही बात क्या देहली और अन्य स्थानों में भी हमारे पूर्वजों ने बहुत बड़े-बड़े कार्य किए हैं जो सदा अमर रहेंगे और जैन समाज उन पर जितना गौरव करे थोड़ा है। यदि उन सब का वर्णन करें तो एक पोथा बन जाएगा।

कितना आनन्द का समय था जबकि भारतवर्ष के जैन समाज में संगठन था, बिरादरी में एकता थी, आचार-विचार और खान-पान शुद्ध था, धर्म में रुचि थी, पंचायतों का मानता थी, बिरादरी के बड़े-बूढ़ों का अदब-लिहाज था। किसी को मजाल नहीं थी कि बिरादरी के फैसले में जरा इधर-उधर करे। भारतवर्ष में देहली मुख्य स्थान माना जाता था। तमाम भारतवर्ष के जैन भाई देहली की जैन पंचायत और बिरादरी की ओर निहारते थे और उन पर भरोसा करते थे। जो फैसले दिल्ली की पंचायतें या बिरादरी करती थीं सारा जैन समाज उन सुझावों का पूरा-पूरा लाभ उठाता था। तमाम भारतवर्ष में जैन भाइयों का आपस में बहुत प्रेम था। कोई भी जैन भाई किसी स्थान से आता था तो वहाँ के भाई उसको देखकर बहुत प्रसन्न होते थे। उनके ठहरने और भोजन की व्यवस्था करते थे। किसी तरह उन्हें कष्ट नहीं होने देते थे। जैन बिरादरी का अन्य धर्मावलम्बियों—समाजों—बिरादरियों और जातियों से बड़ा मेल-जोल था और उन पर बड़ा प्रभाव था। सब एक-दूसरे के दुःख-सुख में काम आते थे। तीज-त्योहारों, मेले-

ठेलों और धार्मिक उत्सवों को सब मिलकर मनाते थे और सम्मिलित होकर पूर्णरूप से भाग लेते थे और उसे सफल बनाते थे। जनता में जैन समाज की बड़ी धाक थी। शासकों को दिल्ली में जैन धर्म के प्रति बहुत श्रद्धा थी और समाज के लिए सन्मान था।

आज समाज की दुर्दशा देखकर रोना आता है। तमाम भारतवर्ष में समाज का नक्शा बदल गया है। स्थिति चिन्ताजनक और शोचनीय है। आपस में वह प्रेम नहीं—समाज में संगठन नहीं—बिरादरी में एकता नहीं—बड़े-बूढ़ों का अदब-लिहाज नहीं। आचार-विचार ठीक नहीं। धर्म में रुचि नहीं खान-पान में शिथिलता आ गई है। कहाँ तक बताएं, समाज का सारा ढांचा बिगड़ गया है। हमारे संगठन न होने के कारण हमारे गुरुओं और देवस्थानों पर प्रहार हो रहे हैं। हमारी कला और संस्कृति को लोग नष्ट करने से भी नहीं चूकते। राज्य में भी हमारी कोई सुनाई नहीं और वह प्रभाव नहीं। समाज का यह हाल है कि हर एक अपनी-अपनी ढपली और अपना-अपना राग अलाप रहे हैं।

महावीर जयंती और हमारा कर्त्तव्य

यह सर्वविदित है कि जैन धर्म का सम्बन्ध किसी एक व्यक्ति विशेष से नहीं, अपितु, हर उस व्यक्ति से है, जो अपनी इंद्रियों पर काबू पाकर सांसारिक वासनाओं को जीत सके। इंद्रियों के जीतने वाले को जिन या जैन कहते हैं।

जैन धर्म एक सार्वभौमिक धर्म है, और मनुष्यमात्र इसको अपना सकता है। यह आवश्यक नहीं कि वह किस जाति, सम्प्रदाय अथवा समाज से सम्बन्ध रखता है, बल्कि जो व्यक्ति जैन धर्म के सिद्धान्त में विश्वास रखता है और उनका पूर्णरूपेण पालन करता है वह जैन है।

ऐतिहासिक प्रमाण

जैन धर्मानुयायियों ने समय-समय पर अपनी वीरता और धर्मपरायणता के जो कार्य किये एवं देश के निर्माण में जो अद्वितीय भाग लिया उससे जैन समाज का ही नहीं वरन् भारत भर का मस्तक ऊंचा हुआ है। भारत के एक कोने से दूसरे कोने तक इसके प्रमाण मिलते हैं।

इतिहास इसका साक्षी है। उन्होंने मद्रास, बिहार और राजस्थान आदि में जिस वीरता के साथ अनुशासन प्रदर्शित किया वह अपनी एक निराली और शानदार छाप छोड़ गया है, जो हमारे लिये गर्व की वस्तु है। किन्तु सबसे अधिक गौरवशाली गाथा, जो हमें इतिहास के पृष्ठों में मिलती है, वह है सम्राट् चन्द्रगुप्त मौर्य की धर्मपरायणता और उसके शौर्य की जिसने सैल्यूकस को पछाड़ा ही नहीं, वरन् सदैव के लिये भारत पर हमला करने की भावना से उसका मुंह मोड़ दिया।

कायरताशून्य अहिंसा

जैन धर्म एक अहिंसक और सर्वपालक धर्म होते हुए भी कायरता की भावनाओं वाला नहीं है। इसके विपरीत वह वीरत्व की भावनाओं से पूर्ण उदार धर्म है। इसके प्रतिपालक और प्रवर्तक प्रायः क्षत्रिय वीर ही हुए हैं जिन्होंने सदैव जैन धर्म के मुख्य सिद्धान्तों को पाला। जहाँ उनका यह दृढ़ विश्वास था कि किसी को सताना पाप है वहाँ वे यह भी मानते थे कि किसी के द्वारा सताया जाना भी पाप है। इसी सिद्धान्त को उन्होंने कार्यान्वित भी किया। उन्होंने सदियों तक भारत पर शासन किया, किन्तु उनके शासनकाल में किसी भी अन्य राष्ट्र और शासक की हिम्मत न हुई कि वह भारत पर आक्रमण कर सके। यही कारण है कि आज भी उनके शानदार कारनामे और नाम जिन्दा हैं।

जीओ और जीने दो

"जीओ और जीने दो" का सिद्धान्त मानव जाति के लिये अमूल्य और एक नई रोशनी देने वाला है। यही कारण है कि हमारा भारत संसार में इस सिद्धान्त को पूरा करने में अग्रणी रहा है। यही सिद्धान्त आज से बहुत समय पूर्व भगवान महावीर ने अपने संदेश में दिया और इसी सिद्धान्त को प्रसारित करने के लिये विदेशों में भी हमारे बड़े-बड़े पूर्वज गये जिसका प्रभाव और स्मृति आज भी विदेशों में शेष है जिसका प्रमाण इतिहास के पृष्ठों में दृष्टिगोचर है।

बापू और अहिंसा

सैकड़ों वर्षों की दासता के बाद हमारा देश स्वतन्त्र हुआ है। इस स्वातन्त्र्य आन्दोलन में जैन समाज का वही अहिंसा-सिद्धान्त एक शस्त्र है जिसे भारत के देश-भक्तजनों ने घर-घर पहुंचाने की भरसक कोशिश की। बापू और देश के अनेक उत्साही देश-सेवकों के सतत प्रयत्न से यह अहिंसा-शस्त्र कारगर हुआ।

हम प्रतिज्ञा करें

इसी अहिंसा के प्रवर्तक और उद्घोषक प्रातःस्मरणीय भगवान महावीर का जन्म दिवस हम आज २८ मार्च, १९५३ को मना रहे हैं। देखना अब यह है कि इस शुभ अवसर पर, जब कि हम स्वतन्त्र हैं, हमारा कर्तव्य क्या हो जाता है? केवल जलूस या जलसे मात्र से तो हमारे काम की इतिश्री नहीं हो जाती है; अपितु एक जिम्मेदारी और भी बढ़ जाती है; और

वह है देश के नव-निर्माण की। आइये आज हम सब बैठ कर इस पुनीत अवसर पर, जब कि भगवान महावीर स्वामी के जीवन-चरित्र से हमें एक नई रोशनी और प्रेरणा मिल रही है, प्रतिज्ञा करें कि हम देश का मान-स्तर संसार में सर्वाधिक ऊंचा करेंगे, ताकि अहिंसा की वह ध्वजा संसार में सर्वोन्नत होकर गर्व से लहराये।

आज देश एक भयंकर दौर में से गुजर रहा है। देश को उत्साही, कर्मशील और ईमानदार व्यक्तियों की आवश्यकता है। यह कार्य हम कहां तक पूरा कर सकते हैं ? यह हमें सोचना होगा। हमने अब तक हर कार्य में प्रमुख भाग लिया है और हर आपत्ति का डट कर मुकाबला किया है। विशेषकर ऐसी हालत में जब कि दहकती आग में कूदने के लिये कोई तैयार नहीं होता था। किन्तु आज तो हमारा और भी अधिक कर्तव्य हो जाता है। इसी बात ने हमें आज तक जिन्दा रखा है। यह हमारे लिये एक मूल मन्त्र है।

जैन भाइयों से अपील

अन्त में मैं अपने भाइयों से एक अपील करूंगा कि केवल जैन परिवार में उत्पन्न हो जाने से ही हम जैन नहीं हो जाते। हमें चाहिये कि हम जैनत्व के मुख्य चिन्ह, उसके आदर्शों और सिद्धान्तों का पालन न करें, तो मैं यह हरगिज मानने के लिये तैयार नहीं। मनुष्य उसके नाम व रंग से नहीं पहचाना जाता, बल्कि वह उसके आचरणों और कर्तव्यों से पहचाना जाता है।

मैं प्रार्थना करूंगा कि जो भाई अब तक अपने को इस ओर उदासीन समझते हैं, आगे आयें और इस पावन दिवस पर प्रतिज्ञा करें कि अपने खाली समय में कुछ न कुछ समय जरूर भगवान महावीर के संदेश को कार्यान्वित करने के लिये देगें—जय जिनेन्द्र।

महावीर जयन्ती पर देश के नवनिर्माण के लिये प्रतिज्ञा करें

यह सर्वविदित है कि जैन धर्म किसी एक व्यक्ति विशेष का नहीं अपितु उस हर व्यक्ति का है जो अपनी इन्द्रियों पर काबू पाकर सांसारिक वासनाओं को जीत सके। उसे "जिन" (इन्द्रियों को जीतने वाला) या जैन कह सकते हैं।

जैन धर्म एक सार्वजनिक धर्म है और मनुष्य मात्र इसको अपना सकता है। यह आवश्यक नहीं कि वह किस जाति, सम्प्रदाय अथवा समाज से ताल्लुक रखता है, बल्कि जो उसके सिद्धांतों में विश्वास रखता है और उनका पूर्णरूपेण पालन करता है वह जैन है।

'जीओ और जीने दो' का सिद्धांत मानव-जाति के लिये अमूल्य और एक नई रोशनी देने वाला है। यही कारण है हमारा भारत संसार में इस सिद्धांत को पूरा करने में अग्रणी रहा है। यही सिद्धांत आज से बहुत समय पूर्व भगवान महावीर ने अपने संदेश में दिया और इस

सिद्धांत को प्रसारित करने के लिए विदेशों में भी हमारे बड़े-बड़े पूर्वज गये, जिसका प्रमाण इतिहास के पृष्ठ और पद-चिन्ह बताते हैं।

सैकड़ों वर्षों की दासता के बाद देश स्वतन्त्र हुआ है। इस स्वातंत्र्य आंदोलन में वही जैन समाज का अहिंसा-सिद्धांत एक शस्त्र था, जिसे भारत के देशभक्त जैनों ने घर-घर पहुंचाने की भरसक कोशिश की। इसी अहिंसा के प्रवर्तक और उद्घोषक प्रातःस्मरणीय भगवान महावीर इस शुभ अवसर पर, जबकि हम स्वतन्त्र हैं, केवल जलूस मात्र से हमारे काम की इतिश्री नहीं हो जाती है। अपितु एक जिम्मेदारी और भी बढ़ जाती है, और वह है देश का नव-निर्माण। आइये आज हम सब बैठ कर इस पुनीत अवसर पर, जब कि भगवान महावीर स्वामी के जीवन-चरित्र से हमें एक नई रोशनी और प्रेरणा मिल रही है, प्रतिज्ञा करें कि हम देश का मान-स्तर संसार में सर्वाधिक ऊंचा करेंगे ताकि अहिंसा की वह ध्वजा संसार में सर्वोन्नत होकर गर्व से लहराया करे। मैं प्रार्थना करूंगा कि जो भाई अब तक इस ओर अपने को अकर्मण्य अवस्था में समझते हैं वे आगे आएं और और इस पावन दिवस पर प्रतिज्ञा करें कि वे अपने खाली समय में कुछ-न-कुछ समय देकर जरूर भगवान महावीर के संदेश हेतु करेंगे।

❀ ❀ ❀

Report on the Marketing of Meet In India, 1955

Page—165.

This state of affairs is inevitable because, though meat in cities and towns is consumed in considerable quantities, its trade is in the hands of numerous small butchers, who pay no heed whatsoever, to hygiene production of meat. As the consumption of unfit or unwholesome meats must affect the health and reduce the life of a large cross section of the population, the first pressing necessity is to purge the country of a large number of small, scattered and highly insanitary and uncontrolled slaughter-houses spread all over and to construct modern Central Slaughter-houses, in all cities and big towns and lease the same for a period of say five years, to one authority on certain conditions. It is suggested that the scheme should be tried in the first instance, on an experi-

mental basis, at 9 centres, namely at Bombay, Calcutta, Delhi, Madras, Lucknow, Banglore, Hyderabad, Patna and Agra.

Page—166.

PRODUCTION

The annual value of meat along with edible offals produced in India is estimated to be over 100 crores of rupees The Importance of the industry should not, however, be Judged merely from this figure. Meat is vitally important to the Indian population because their diet is deficient in first class proteins and these could easily be obtained from meat. Therefore from economic, nutritional and public health points of view, the meat industry is of considerable importance to the country and deserves a lot more attention that it has received in the past.

Page—167

CONSUMPTION

Meat has not yet received sufficient recognition as an important food item and has hitherto been regarded as a luxurty for the town dwellers. The nutritional importance of meat is also practically unknown. For these reasons, the per capita consumption of meat in the Indian Union is very low, hardly 3.2 Lb. In many foreign countries large sums are annualy spent on "Consumers education" and sustained and successful efforts are made to drive home successfully to the consumers the value of meat and its products. Happily, there is not the same prejudice in India today against meat eating, particularly mutton and goat flesh, as existed before. Efforts to increase production are unlikely to bear fruit if steps are not simultaneously taken to increase consumption.

It is, therefore, recommended that extensive propaganda may be carried out to educate the peoples as regards high nutritive and protective value of meat and on the advisability of its increased consumption in their daily diet.

मानव-धर्म

१. दुखिया जनि कोई देखिये, देखत ही दुःख होय ।
दुखिया रोइ पुकारि है—सब गुड़ माटी होय ।।

२. तुलसी हाय गरीब की कबहुँ न निष्फल जाय ।
मरी खाल की सांस सो, लोह भस्म हो जाय ।।

३. कबीरा सोई पीर है, जो आने पर पीर ।
जो परपीर न जानिये, सो काफिर बे-पीर ।।

(१) हम विश्व-प्रेम के पक्षपाती बने ।

(२) सत्य और अहिंसा के सिद्धान्त को अपना आदर्श मानें ।

(३) मानव समाज में सद्-भावना और प्रेम उत्पन्न करें ।

(४) समस्त विश्व को एक परिवार मानकर आगे बढ़ें ।

(५) आपस के वैमनस्य और द्वेष को इस महान आदर्श के लिए त्याग दें ।

यह है उस सन्देश की कुछ पंक्तियां जो संसार को अनादिकाल से प्रकाश देती आई हैं । जैन धर्म के २४वें तीर्थङ्कर प्रातःस्मरणीय भगवान महावीर ने इस ज्योति से मानवता के एक बहुत बड़े भाग को जगमगा दिया । तब से अब तक विश्व को शान्ति के पथ पर ले जाने के लिए यह एक मार्ग साबित हुआ ।

अपने नफे के वास्ते, मत और का नुकसान कर ।
तेरा भी नुकसां होयगा, इस बात पर ध्यान कर ।।

खाना जो खा देखकर, पानी जो पी तो छानकर ।
यां पांव को रख फूंककर, और खौफ से गुजरान कर ।।

कलयुग नहीं करयुग है यह, यां दिन को दे और रात ले ।
क्या खूब सौदा नकद है, इस हाथ दे और उस हाथ ले ।।

कठिनाईयां

आदमी कठिनाइयों में पड़कर ही चमकता है ।
रत्न रगड़ा जाने पर ही रत्न प्रतीत होता है ।

विरोध का उचित रीति से सामना करना आदमी के व्यक्तित्व को निखारता है ।

श्रम शरीर को और कठिनाइयाँ मस्तिष्क को बलवान बनाती हैं।

दुःख जीवन का सबसे बड़ा गुरु है। एक आंसू दूर देखने की आंखों को वह शक्ति दे देता है जो कोई दूरबीन भी नहीं दे सकती।

आज के सुख को, पुराने दुःख की याद मधुर बना देती है।

प्रकृति पशु, पक्षी, मनुष्य सभी पर दयालु है किसी का उससे विरोध तो है ही नहीं खतरा मोल लीजिए डरिए नहीं, बढ़े चलिये। आपकी केवल शुभ से भेंट होगी।

बुद्धिमान से बुद्धिमान व्यक्ति भी चोट खा जाता है पर चोट खाकर रोता मूर्ख ही है।

जो व्यक्ति असफलताओं के कड़वे घूट पीने को तैयार नहीं होता उसे सफलता का मधुर रस कभी पीने को नहीं मिलता।

मूल्य सफलताओं का नहीं आपने उसकी प्राप्ति के लिए जो उद्योग किया है उसका है।

शुभ–कामना

कुछ लोग शरीर के रोगी होते है, कुछ लोग दिमाग़ के, पर आज के वैज्ञानिक युग में जितने दिमाग़ के रोगी होते हैं उनकी तुलना में शरीर के रोगी कम ही होते हैं। आपको चारों ओर जो रोगी ही रोगी दिखाई देते हैं उनमें से अधिकांश चाहें तो अच्छे हो सकते हैं पर उनका मानसिक दृष्टिकोण उन्हें बीमार ही रखता है।

जो लोग दूसरों का भला चाहते हैं और जहां तक बनता है उनकी भलाई के लिए कुछ करते भी हैं, वे दूसरों के ही कष्ट वहन करने और कष्ट से मुक्त होने में मददगार नहीं होते। इस विधि से वे अपने शरीर और आत्मा को भी स्वस्थ रखते हैं मदद एक ऐसी दवा है जो लेने और देने वाले दोनों को ही फायदा पहुँचाती है यदि आप दूसरों की भलाई के काम में अपने को भूल जायें तो रोग स्वयं जाने की ओर प्रवृक्त होते हैं, दूसरों की भलाई से जो सन्तोष प्राप्त होता है वह हमारी कल्पना को बनाता है और स्वस्थ कल्पना करने वालों को भी स्वस्थ ही देखती है।

भलाई करने का आनन्द मन को उत्साहित अवस्था में रखता है और वह उत्साह सारे अवसादों को दूर कर शरीर को सम्पादित अवस्था में रखता है। उपकार-रत व्यक्ति का मुँह खुशी से चमकता रहता है। उसकी मुख मुद्रा उसके आत्म-विश्वास और उसकी आत्मा की उच्चता को प्रकट करती है। खुदगर्ज का चेहरा उतरा, दबा हुआ रहता है और उस पर धुआं-सा उड़ता रहता है उसके चेहरे पर उसके मन की मलीनता स्पष्ट रहती है।

अपने सम्बन्ध में विचार करते रहना रोगों को बनाये रखने का अचूक उपाय है। यह भी एक तरह की स्वार्थ परायणता ही है। आदमी अपने ही लाभ की ही सोचता रहता है।

दूसरे की भलाई की ओर ध्यान ही नहीं जाता। लोगों की शुभकांक्षा और आशीर्वाद रोग के दूर करने के लिए रसायन का काम करते हैं और जो यह रसायन लोगों की सहायता कर प्राप्त करता रहता है और वह इनके जीवनदायक गुण का स्पष्ट अनुभव करता है।

दुनिया में कष्टों की कमी नहीं है। कठिनाई, कष्ट-परीक्षा और दुःख आते ही रहते हैं पर जो लोग दुःख की कल्पना करते रहते हैं वे अपने कष्टों को आसानी से दूना भारी बना लेते हैं यदि उनको कहीं विपरीत अवस्था या निराशा से सामना करना पड़ता है तो वे सोचने लगते हैं कि उनका ही बेड़ा ग़र्क होने वाला है। भाग्य उनके विरुद्ध है और वे हर तरह से लुटने वाले हैं। इस तरह वे अपने को दुर्दशाग्रस्त समझने लगते हैं। जिसकी छाया उनके साथ रहने वालों पर पड़ने लगती है। जीवन उनके लिए एक बोझा बन जाता है। यह अवस्था बुरी है पर बदली जा सकती है उन्हें अपनी विचारधारा को बदलने के लिए कठिन प्रयत्न करना पड़ेगा। हमें अपने शारीरिक और मानसिक शक्ति का अपव्यय और दुरुपयोग करने का कोई अधिकार नहीं है।

कई बार घर की परेशानी शरीर में जोंक की तरह लिपट जाती है और जीवन-रक्त को ही चूसती रहती है। किसी-किसी के लिए पाप का पश्चाताप जलाता रहता है और उनके शरीर को क्षीण और मस्तिष्क को विकृत करता रहता है। कुछ लोग अतृप्त आकांक्षाओं से पीड़ित रहते हैं। पीड़ित वासना उन्हें गुमराह रखती है। आत्मा उन्हें धिक्कारती रहती है। उन्हें लगता है कि अपने पर से उनका वश छूट गया है। अपनी आंखों में ही वे गिर जाते हैं। जीवन में उन्हें किसी सफलता की कोई आशा नहीं रह जाती।

पाप और रोग में कार्य और कारण का सम्बन्ध है। यदि विचार ग़लत है तो यह उनका स्वाभाविक परिणाम होना चाहिए कि आप शरीर में बे-आरामी महसूस करें जिसके शरीर को रोग ने जर्जर बना दिया है उन्हें एक ही नुकसान नहीं होता कि उनका शरीर अशक्त हो जाता है। शारीरिक दुःख तो वे आसानी से सह लेते हैं। पर मानसिक दुःख उन्हें अधिक परेशान करते हैं।

अशुभ कल्पना रोग को तो बढ़ा ही देती है। वह रोग को जन्म भी देती है लोग जन्म भर बीमार रहते हैं। यह चिररोगी भी यदि अपने दिमाग़ को स्वस्थ होने के काम में लगा दें तो स्वस्थ हो सकती है। कुछ लोगों की यह धारणा होती है कि ज़रा-सी ठण्डक लगी और वे बीमार पड़े और वे ठण्डक लगते ही बीमार पड़ भी जाते हैं क्योंकि वे इसकी आशा करते हैं कि बहुतों की तो ऐसे रोग से जिसका कारण काल्पनिक हुआ करता है मृत्यु ही हो जाती है।

सदा अपने लिए शुभ चिन्तन ही कीजिए। कल्पना को कभी गुमराह नहीं होने दीजिए।

माता—

आते ही उपकार याद हे माता तेरा।
हो जाता मन मुग्ध, भक्ति भावों का प्रेरा।
तू पूजा के योग्य, कीर्ति तेरी हम गावें।
जी होता है, तुझे उठाकर शीश चढावें।

ईश्वरोपासना

सब मिल के आज जय कहो श्री वीर प्रभू की ।
मस्तक झुका कर जय कहो श्री वीर प्रभू की ॥१॥

विघ्नों का नाश होता है लेने से नाम के ।
माला सदा जपते रहो श्री वीर प्रभू की ॥२॥

ज्ञानी बनो दानी बनो बलवान भी बनो ।
अकलंक सम बनकर करो जय वीर प्रभू की ॥३॥

होकर स्वतंत्र धर्म की रक्षा सदा करो ।
निर्भय बनो और जय करो श्री वीर प्रभू की ॥४॥

तुझको भी अगर मोक्ष की इच्छा हुई ए 'दास' ।
उस वाणी पर श्रद्धा करो श्री वीर प्रभू की ॥५॥

प्रार्थना

ऐ वीतराग स्वामी, मैं हूं गुलाम[१] तेरा ।
आठों पहर जबां पै रहता है नाम तेरा ॥१॥

रहता है मुझको हर सुबह शाम तेरा ।
जपता हूं तेरी माला लेता हूं नाम तेरा ॥२॥

हर गुल[२] में देखता हूं जलवानुमा[३] मैं तुझको ।
बुलबुल की है जबां पै शीरीं[४] कलाम तेरा ॥३॥

यह बात मुझको हासिल तहरीर से हुई है ।
जिसमें दया भरी है वो है कलाम तेरा ॥४॥

कोई है तुझ पै माइल[५] कोई है तुझ पै मफ्तूं[६] ।
शैदाई[७] हो रहा है हर खासो आम तेरा ॥५॥

दिल आइना बनाया जिसने खुदी मिटा कर ।
वो देखता है दिल में दर्शन मुदाम[८] तेरा ॥६॥

हैं 'दास' तुझ पै माइल कल्याणकारी भगवन् ।
जादू भरा सुना है जब से कलाम तेरा ॥७॥

---

१ सेवक २ फूल ३ चमकता हुआ ४ ठण्डा ५-६ मिटा हुआ ७ प्रेमी ८ हमेशा ।

स्तुति

ऐ वीतराग स्वामी बेशक तू लामकां है ।
लेकिन हमारे दिल के अन्दर तेरा निशां है ॥१॥

ये है जमीन किसकी किसका यह आस्मां है ।
तू है जहां का मालिक तेरा ही यह जहां है ॥२॥

सहरा[1] में है चमन में गुलशन[2] में है खिजां[3] में ।
ऐ वीतराग स्वामी मस्कन[4] तेरा कहां है ॥३॥

आंखों में है कि दिल में या है मेरी नजर में ।
मैं क्या बताऊं तुझको तेरा निशां कहां है ॥४॥

हर शै[5] में तेरे जलवे ऐसे बसे हुए हैं ।
हम देखते हैं तुझको नजरों से गो निहां[6] है ॥५॥

ऐ दीनबन्धु भगवन हामी है तू दया का ।
दुनियां में जब सुनहरी सिक्का तेरा रवां है ॥६॥

ऐ 'दास' क्या बताऊं जिनराज का मैं तुल्बा ।
वोह अपना शहंशाह है वो अपना हुक्मरां है ॥७॥

* * * *

भगवान् महावीर

विषम दुःख की ज्वालाओं से जला हुआ था जब संसार ।
दानव बन, मानव था करता अबलाओं पर अत्याचार ॥
शूद्र-जनों का सुन पड़ता था संसृति तल में हाहाकार ।
धर्म नाम पर होता था नित पशुओं का भीषण संहार ॥

प्रकृति प्रकम्पित होकर अपने गिन-गिन अश्रु बहाती थी ।
मानवता रोती थी केवल दानवता हँस पाती थी ॥
कर्मकाण्ड का जाल बिछाकर दम्भी मौज उड़ाते थे ।
नीति न्याय गला घोंटकर न्यायी पीसे जाते थे ॥

---

१ जंगल २ बाग़ ३ पतझड़ ४ मकान ५ वस्तु ६ छुपा हुआ ।

जातिवाद ने छीन लिये थे शूद्र-जनों के सब अधिकार ।
मानुषता से वंचित मानव फिरता था बस मनुजाकार ।।
उसी समय इस पृथ्वीतल पर तुमने लिया पुण्य अवतार ।
राजपाट तज पुनः जगत का करने लगे सतत् उद्धार ।।

ललनायें तेरे चरणों में तेरे स्वागत पुष्प चढ़ाती थीं ।
उत्सुकता से पावन-पथ में बढ़कर पुण्य कमाती थीं ।।
शूद्रम्लेच्छ सब ही में तुमने भातृ भाव दरसाया था ।
अन्यायों की होली करके नव-जीवन सरसाया था ।।

सिंह-गर्जना सुनकर तेरी हुए पराजित अत्याचार ।
मानुषता सिखलाई तूने हे मानवता के शृङ्गार ।।
कोरी कर्म-काण्डता विघटी, हुआ मूक पशु-बलि संहार ।
फूले थे जो अन्यायों से पछताते अब बारम्बार ।।

अनेकान्त की अद्‌भुत शैली सब जग को दिखलाई थी ।
धर्म-समन्वय करके सब की मौलिकता दिखलाई थी ।।
सम्प्रदाय के द्वन्द्व भगाकर निज पर भेद मिटाया था ।
आध्यात्मिकता सिखा जगत को आनन्द पाठ पढ़ाया था ।।

जनमत की परवाह न करके जगहित की दिखलाई राह ।
हुआ विरोध तुम्हारा लेकिन घटा न उससे कुछ उत्साह ।।
अन्त विजय-लक्ष्मी ने डारी कण्ठ तुम्हारे वर-वरमाल ।
'जिन' कहलाये, शत्रु नशाये, गावें अब तक सब गुण माल ।।

दुखियों को गोदी में लेकर तुम्हीं खिलाने वाले थे ।
प्यासों को सुधाम्बु निज कर से तुम्हीं पिलाने वाले थे ।।
मुर्दों में भरकर नव जीवन, तुम्हीं जिलाने वाले थे ।
अन्यायों की पकड़ जड़ों को, तुम्हीं हिलाने वाले थे ।।

महावीर थे वर्धमान तुम, सन्मति-नायक जगदाधार ।
सत्पथ दर्शक विश्व प्रेममय दया-अहिंसा के अवतार ।।
प्रमुदित होकर मुझे सिखाओ सेवा पर होना बलिदान ।
मिट जाऊँ पर मिटे न मेरा सेवामय उत्सर्ग महान ।।

प्रार्थना

महावीर स्वामी तेरा आसरा है ।
कि गुमकरदां[1] मंजिल का तू रहनुमा[2] है ॥१॥

तू है केवल ज्ञानी तु ही जानता है ।
मुक़द्दर में जो कुछ कि लिक्खा हुआ है ॥२॥

तू मालिक है अपना तू आक़ा है अपना ।
वसीला तेरा है सहारा तेरा है ॥३॥

किनारे से हमको लगादे ए स्वामी ।
तू कस्तिए उम्मीद का नाखुदा[3] है ॥४॥

गरज द्वेष से है न है राग से कुछ ।
तेरा शीशए दिल खुदी से सफा है ॥५॥

मुजस्सिम है तू शाने वहदत का पुतला ।
तेरा हुस्न सांचे में गोया ढला है ॥६॥

न होगी कभी भूल कर जीव हिंसा ।
दया का सबक हमको तूने दिया है ॥७॥

करम कर तू मुझ पै मैं हूं 'दास' तेरा ।
यह दस्तबस्ता मेरी इल्तजा है ॥८॥

हृदय की तान

हृदय में गूँजे ऐसी तान ।

न्याय मार्ग से नहीं डरें हमें, अनुत्साह को नहीं धरें हम,
प्राणी मात्र से प्रेम करें हम, करें देश उत्थान;
हृदय में गूँजे ऐसी तान ।

दीनों के सब दुःख दूर हों, कार्य क्षेत्र में सुशूर हों,
अन्यायी के लिए क्रूर हों, रक्खें अपनी तान;
हृदय में गूँजे ऐसी तान ।

---

१ भूला हुआ २ बताने वाला ३ मल्लाह

कायर वचन न मुख से बोलें, ज्ञान सुधा रस घट-घट घोले।
सत्य तुला में सब कुछ तोलें, जब तक तन में प्रान।
हृदय में गूँजे ऐसी तान।

निर्बल कहीं न समझे जावें, जग में कभी न दीन कहावें,
विघ्न करोड़ों सिर पर आवें, झेलें सब शुभ जान।
हृदय में गूँजे ऐसी तान।

—: o :—

क्यो कर हो कल्यान

मुझे दो ऐसा वर भगवान ॥टेक॥

सुख-दुख में ना धर्म को भूलूं और न घबराऊं।
जुल्मो-सितम चाहे जितने हों, कभी न भय खाऊं॥
भले ही तन से निकले जान।

मेरे तन से दुश्मन तक का, कभी न हो अपकार।
बालक वृद्ध युवा सबका ही, पूर्ण करूं सत्कार॥
इसी में समझूँ अपनी शान।

देश के हित मैं मरना सीखूँ, देश के हित जीना।
तीरो तुफंग भी इसपै बरसै, अड़ादऊं सीना॥
देश का सह न सकूँ अपमान।

चाहे जान भले ही जावे, छूटे कभी न धर्म।
देश-जाति की सेवा करना, समझूँ अपना कर्म॥
यही है वीरों की पहिचान।

भारत में से कलह ईर्षा, फूट का निकले बीज।
इसने भारत गारत करके, बना दिया है नीच॥
गुंजा दूं मधुर प्रेम की तान।

यह नरभव कहीं व्यर्थ न जावे, सोच-समझ ए 'दास'।
मोक्ष मिलन की इच्छा है तो कर्मों का कर नाश॥
तभी होगा तेरा कल्याण।

फर्मा दिया वीर जिनेश्वर ने

जिन धर्म का डंका आलम में बजवा दिया वीर जिनेश्वर ने।
सुख-शांति से रहना दुनिया को सिखला दिया वीर जिनेश्वर ने ।।१।।

अपना गौरव अपना जलवा दिखला दिया वीर जिनेश्वर ने।
हां मृग केहरि को एक जगह बिठला दिया वीर जिनेश्वर ने ।।२।।

यज्ञों में गूंगे मूक पशू जब लाखों मारे जाते थे।
हिंसा से बढ़कर पाप नहीं फर्मा दिया वीर जिनेश्वर ने ।।३।।

जब जीव हुए थे धर्मभ्रष्ट तब पापों की बन आई थी।
चुंगल से इनके जीवों को छुड़वा दिया वीर जिनेश्वर ने ।।४।।

मिथ्यात्व का खण्डन कर डाला अभिमान का मर्दन कर डाला।
गौतम जैसे गणधर को परचा लिया वीर जिनेश्वर ने ।।५।।

हृदय में जिनके राग-द्वेष की अग्नि सदा ही जलती थी।
जग तजो द्वेष तब मोक्ष मिले फर्मा दिया वीर जिनेश्वर ने ।।६।।

ऐ 'दास' हकीकत दुनिया की दम भर में हुई सब हमको अयां।
जो राज था आंखों-आंखों में समझा दिया वीर जिनेश्वर ने ।।७।।

—: ० :—

स्वार्थ

खिल-खिल कलियाँ मन को हरतीं, मन्द-मन्द मुसकाती हैं।
अपनी सुन्दर छटा दिखा कर, भौरों को ललचाती हैं।।
देख ऊपरी सुन्दरता को, भौरे नहीं ललचते हैं।
मधु पाकर ही मधुप मनोहर, कलियों को आ छलते हैं।।

कैसा सुन्दर मधुर स्वार्थ है, मीठा रस इसमें रहता।
स्वार्थ हेतु कट जाय शीश भी, तो भी नर इसको गहता।।
प्यारे भाई ! स्वार्थ-ग्रस्त नर, संधिवाद के योग्य नहीं।
दुख-ही-दुख है स्वार्थ समर में, सुख की मात्रा कहीं नहीं।।

हमारी हस्ती

अबस[1] अपनी हस्ती पै फूला हुआ है।
जिएगा हमेशा न कोई जिया है ॥१॥

है दो सांस पर जिन्दगानी बशर[2] की।
कि एक आ रहा दूसरा जारहा है ॥२॥

किए जा किए जा भलाई किए जा।
कि रुतबा भलाई का सबसे बड़ा है ॥३॥

तेरे कर्म ही तुझको कर देंगे रुस्वा[3]।
मगन अपने दिल में तू क्या हो रहा है ॥४॥

न मालूम कब कूच हो जाए तेरा।
ग़नीमत समझ सांस जो आ रहा है ॥५॥

न दुनियाए दूं[4] में कभी दिल लगाना।
कि इसकी मोहब्बत नवींदे[5] कज़ा[6] है ॥६॥

फना[7] हो न, जिसको मिले वो मसर्रत[8]।
यही दिल का मतलब यही मुद्दआ है ॥७॥

महावीर भगवान से दिल लगाओ।
कि पापों का अपना यही खूं बहा है[9] ॥८॥

मिटाये से ऐ 'दास' क्योंकर मिटे वो।
मुक़द्दर में अपने जो लिक्खा हुआ है ॥९॥

× × × ×

जैन-धर्म सर्वथा स्वतन्त्र है। मेरा विश्वास है कि वह किसी का अनुकरण नहीं है। और इसलिए प्राचीन भारतवर्ष के तत्व ज्ञान का, धर्म पद्धति का अध्ययन करने वालों के लिए वह बड़े महत्व की वस्तु है।

—डा० हर्मन जैकोबी

---

१ व्यर्थ २ इन्सान। ३ बदनाम ४ कमीनी ५ पैग़ाम ६ मौत ७ मिटना ८ खुशी
९ प्रायश्चित

उपदेशामृत

कर्म तू जैसा करेगा वैसा फल पाएगा तू।
साथ अपने कुछ न लाया है न ले जाएगा तू ॥१॥

जब मिटाकर अपनी हस्ती सुर्मा बन जाएगा तू।
अहले आलम की निगाहों में समा जाएगा तू ॥२॥

बुख्ल[१] सेकांरू[२] शिफत[३] क्या खाक फल पाएगा तू।
साथ दौलत के जमीं में दफन[४] हो जाएगा तू ॥३॥

इक तेरे ऐमाल[५] ही जायेंगे तेरे साथ-साथ।
और क्या इसके सिवा दुनिया से ले जाएगा तू ॥४॥

चार दिन की जिन्दगी पर मुश्ते खाक[६] इतना गरूर।
नक्शे बातिल[७] की तरह दुनिया से मिट जाएगा तू ॥५॥

आखिरत की लाज गर चाहे तो नेकी कर सदा।
मालोदौलत सब यहीं पर छोड़ कर जाएगा तू ॥६॥

ये जो हैं अहबाब[८] तेरे सब बनी के यार हैं।
दारे फानी[९] से अकेला ही फ़क़त जाएगा तू ॥७॥

जैसी करनी वैसी भरनी यह मसल मशहूर है।
काम गर अच्छा करेगा अच्छा फल पाएगा तू ॥८॥

दौलतो हशमत में हरगिज़ 'दास' मत कीजो घमंड।
आलमे फानी से खाली हाथ ही जाएगा तू ॥९॥

०००

१ कंजूस २ खजाना ३ तरह ४ गड़ना ५ कर्म ६ मुट्ठी भर ७ मिट्टी के पुतले, बुलबुले
८ दोस्त ९ फना होने वाली दुनिया।

साज़े-हस्ती

हंस आया है फकत दो-चार दाने के लिए।
बाग़े आलम में हवा दो दिन की खाने के लिए ॥१॥

है श्री जिनराज की बानी सुनाने के लिए।
याद कर लो शौक से तुम इसको गाने के लिए ॥२॥

जैनियों के दिल में होगा जब कहीं पैदा सरूर[1]।
साजेहस्ती[2] चाहिए कौमी तराने[3] के लिए ॥३॥

दूर हो जिससे स्याहबख्ती[4] हमारी कौम की।
हाथ में हो ज्ञान की मशअल[5] जलाने के लिए ॥४॥

राजनीति का सबक भी सीख लो ऐ जैनियो।
जंग में अपना कदम आगे बढ़ाने के लिए ॥५॥

आए हैं क्या इसलिए दुनिया में हम ऐ दोस्तो।
खुवार होने ठोकरें ग़ैरों की खाने के लिए ॥६॥

जीव हो जाएगा क़ालिब[6] से जुदा जब देखना।
लाश ही रह जाएगी बाकी जलाने के लिए ॥७॥

न्यामते दुनिया[7] खिलाते थे जो औरों को कभी।
दर-बदर फिरते हैं अब वह दाने-दाने के लिए ॥८॥

चादरे गुल[8] पै जिन्हें मुश्किल से कल आती थी नींद।
ढूंढ़ते हैं ईंट वो तकिया लगाने के लिए ॥९॥

मिस्ले महमा 'दास' इस दुनिया में रहना चाहिए।
तू जो आया है यहां आया है जाने के लिए ॥१०॥

---

१ नशा २ दिल का साज़ ३ जातिय ज्ञान ४ बदनसीबी ५ मशाल ६ शरीर ७ दुनिया अच्छी वस्तु ८ फूलों की सेज।

जिगर की आग

तरक्की[1] धर्म की और देश की रोने रुलाने से।
नहीं बुझती जिगर की आग दो आंसू बहाने से ॥१॥

न लेते थे जो दम भर चैन औरों को मिटाने से।
उन्हें भी एक दिन लगना पड़ा अपने ठिकाने से ॥२॥

निशां[2] तक भी नहीं मिलता जहां में आज तक उनका।
जिन्हें आनन्द मिलता था जफ़ा औ जौर ढाने से ॥३॥

दुखे दिल से जो निकली आह तुझको फूक डालेगी।
सितमगर[3] बाज़ आ[4] मज़लूम[5] औ बेकस के सताने से ॥४॥

जो खुद ही गर्दिशे तकदीर[6] से बर्बाद फिरते हैं।
भला क्या फैज़[7] पाएगा कोई उनको सताने से ॥५॥

कठिन है धर्म की मंज़िल[8] मगर हिम्मत न हारो तुम।
यूं ही चलते रहे तो लग ही जाओगे ठिकाने से ॥६॥

बसी है जिनके रग-रग में मोहब्बत मुल्कोमिल्लत की।
नहीं वोह चूकते ऐ 'दास' अपना सर कटाने से ॥७॥

राग मालकोष

जिया जग धोके की टाटी ॥ टेक ॥
झूठा उद्यम लोग करत है जिसमें निश दिन घाटी।
जास बूझ कर अंडे बने हो आँखिन बांधी पाटी।
निकल जायेंगे प्राण छिनक में पड़ेनी माटी।
'दौलतराम' समझ नर अपने दिल की खोल कपाटी।

---

१ उन्नति २ चिह्न ३ पाप करने वाले ४ मान जा ५ निर्बल ६ किस्मत का फेर
७ भलाई ८ राह (मार्ग)।

प्यारा है वतन अपना

ज़लीलो ख्वार होकर भी न बदला गर चलन अपना ।
तो खो बैठेंगे हाथों से किसी दिन हम वतन अपना ।।१।।

फ़ना हो जाएंगे, मिट जाएँगे इसको बचाएँगे ।
कि हमको स्वर्ग से बढ़कर प्यारा है वतन अपना ।।२।।

मिटा जिस रोज भारत, कुल जमाने में अंधेरा है ।
कि सारे बिश्व की शोभा बढ़ाता है वतन अपना ।।३।।

न पहना आज तक हमने विदेशी कोई भी कपड़ा ।
तमन्ना है कि बादेमर्ग[1] देशी हो कफ़न अपना ।।४।।

उधर बेदाद[2] गैरों की, इधर आपस के झगड़े हैं ।
विधाता दूर भी होगा कभी रंजोमहन[3] अपना ।।५।।

बनाया आदमी जिनको सिखाया बोलना जिनको ।
हमारे सामने ही खोलते हैं वो दहन[4] अपना ।।५।।

मगर अब भी खबर इसकी न ली ऐ 'दास' यारों ने ।
खिज़ा[5] की नज़्र हो जाएगा इकदिन यह चमन अपना ।।६।।

साफ प्रकट है कि भारतवर्ष का अध:पतन जैनधर्म के अहिंसा सिद्धान्त के कारण नहीं हुआ था, बल्कि जब तक भारतवर्ष में जैनधर्म की प्रधानता रही थी, तब तक उसका इतिहास स्वर्णाक्षरों में लिखे जाने योग्य है और भारतवर्ष के ह्रास का मुख्य कारण आपसी प्रतिस्पर्धामय अनैक्यता है जिसकी नींव शंकराचार्य के जमाने में डाली गई थी ।

मि० रेवरेन्ड जे० स्टीवेन्सन

१ मरने के बाद २ जुल्म ३ दुख, तकलीफ ४ मुँह ५ पतझड़ ।

हिन्दोस्तां हमारा

क्या पूछते हो हमसे नामोनिशां[1] हमारा ?
मालिक हैं हम जमीं के है आस्मां हमारा ॥१॥

भारत पै जान देगा इक इक जवां हमारा ।
ऐ चर्ख[2] ले रहा है क्या इम्तहां हमारा ? ॥२॥

लड़ते हैं हक़[3] की खातिर हक़ है हमारा हामी[4] ।
हम पासदारे हक़ हैं हक़ पास्बां हमारा ॥३॥

दुश्मन की सारी शेखी अब खाक़ में मिलादो ।
देखें तो क्या करेगा दौरे ज़मां[5] हमारा ॥४॥

क्या ज़िक्र मालो ज़र का तन और मन से अपने ।
बहरे वतन[6] है हाज़िर खुरदोकलां[7] हमारा ॥५॥

बागे जहां में खिलकर दिखलाएँ रंग क्योंकर ।
दुश्मन बना हुआ है खुद बाग़बां[8] हमारा ॥६॥

ए 'दास' हो न जाए बरबाद अपनी मेहनत ।
सय्याद की नज़र में है आशियां हमारा ॥७॥

❀ ❀ ❀

विद्या जीवन की दिशा है, जिसे पाकर मनुष्य अपने इष्ट स्थान पर नहीं पहुँच पाता । चरित्र जीवन की गति है । सही दिशा मिल जाने पर भी गति-हीन व्यक्ति इष्ट स्थान पर नहीं पहुँच पाता । सही दिशा और सही गति दोनों मिलें, तब काम बनता है ।

* * * *

सेवा का सबसे पहला कदम अपनी जीवन-शुद्धि है । यह आत्म-सेवा है, जिसके बिना जन-सेवा बन नहीं सकती ।

---

१ चिन्ह २ आसमान ३ न्याय, सच्चाई ४ तरफदार ५ संसार-चक्र ६ देश के खातिर ७ छोटे-बड़े ८ बाग का माली ९ बुलबुल का पकड़ने वाला ।

भारत-दुर्दशा

आंखों से देखते हो क्या दुर्दशा[1] वतन की।
कुछ तो खबर लो अपने उजड़े हुए चमन की ॥१॥

फ़ाक़ाकशी[2] से लाखों बे मौत मर रहे हैं।
बिगड़ी हुई है हालत अब किस कदर वतन की ॥२॥

"अकलंक" "वीर" जैसे पैदा हुए यहीं पर।
यूं स्वर्ग से है बढ़कर भूमी मेरे वतन की ॥३॥

तीरो तुफंग[3] का अब हरगिज न गम करेंगे।
रक्खेंगे जान देकर हम आबरू[4] वतन की ॥४॥

सबसे बड़ा यही है फ़र्ज अपनी ज़िन्दगी का।
हमले से दुश्मनों के रक्षा करें वतन की ॥५॥

तेरी चिता पै मेला हर साल ही लगेगा।
ऐ 'दास' जान देकर शोभा बढ़ा वतन की ॥६॥

वीर प्रतिज्ञा

हम अपनी जिन्दगानी धर्म की खातिर मिटा देंगे।
अगर आया कोई मौका ये जलवा भी दिखा देंगे ॥१॥

जो हैं सरशार दौलत में, जो हैं मखमूर हशमत में।
यही अशखाश इक दिन कुछ न कुछ करके दिखा देंगे ॥२॥

हमारे नौजवा जैनी नहीं हटने के पीछे अब।
बनाकर संगठन अपना क़दम आगे बढ़ा देंगे ॥३॥

रहा गर संगठन अपना, रहा गर दम में दम अपना।
किसी दिन देखना कलियुग में हम सतयुग दिखा देंगे ॥२॥

अगर वो गालियां भी हमको देगा तो भी सुन लेंगे।
दिले दुश्मन पै यूं तेरो करम अपनी चला देंगे ॥५॥

समझ रक्खा है क्या ऐ 'दास' अपने नाल-ए-दिल को।
जमीं का जिक्र ही क्या आसमां तक को हिला देंगे ॥६॥

---

१ बुरी हालत २ भूखे मरना ३ तमंचा ४ इज्जत।

श्री वीर की असली जयन्ती

श्री वीर की जयन्ती असली मनानी होगी ।
तक़लीद[1] उनकी हमको करके बतानी होगी ॥ १ ॥

एकान्तभ्रम तअस्सुब[2] जड़ से उखाड़ फेंकें ।
सत्यार्थियों की हरजा[3] संगति बनानी होगी ॥ २ ॥

फिर्कों की बन्दिशों[4] में बरबाद हो चुके हैं ।
मत-पंथ की अटक हठ खुद ही हटानी होगी ॥ ३ ॥

मठ मन्दिरों की बढ़ती मूढ़ों की वेष पूजा ।
इन रूढ़ियों में फँसती जनता बचानी होगी ॥ ४ ॥

सिद्धान्त-तत्व-निर्णय गुण ठाण का चढ़ाना ।
उपयोग शक्ति अपनी इनमें लगानी होगी ॥ ५ ॥

सब जीव मोक्ष सुख के हक़दार हैं बराबर ।
यह साम्यवाद-शिक्षा पढ़नी-पढ़ानी होगी ॥ ६ ॥

छीने न प्राण-सत्ता कोई प्रमाद-वश से ।
जीवों की, यह व्यवस्था हमको जमानी होगी ॥ ७ ॥

परतंत्र बंधनों से सब मुक्त हो रहेंगे ।
भारत-वसुन्धरा की सेवा बजानी होगी ॥ ८ ॥

है वीर-धर्म-शासन पुण्यार्थ क्रान्तिकारी ।
घर-घर में ज्योति 'सेठी' इसकी जगानी होगी ॥ ९ ॥

❀ ❀ ❀

विद्या का फल मस्तिष्क-विकार है, किन्तु है प्राथमिक । उसका चरम फल आत्म-विकास है । मस्तिष्क-विकास चरित्र-विकास के मध्य से ही आत्म-विकास तक पहुँच जाता है, इसलिए चरित्र-विकास दोनों के बीच की कड़ी है ।

---

१ अनुकूल प्रवृत्ति २ पक्षपात ३ जगह-जगह ४ जाति उपजातियों के बन्धनों में ।

समाज-सम्बोधन

दुर्भाग्य जैन समाज, तेरा, क्या दशा यह हो गई ।
कुछ भी नहीं अवशेष, गुण-गरिमा सभी तो खो गई ।।
शिक्षा उठी, दीक्षा उठी, विद्याभिरुचि जाती रही ।
अज्ञान दुर्व्यसनादि से मरणोन्मुखी काया हुई ।।

वह सत्यता, समुदारता तुझमें नजर पड़ती नहीं ।
दृढ़ता नहीं, क्षमता नहीं, कृतविज्ञता कुछ भी नहीं ।।
सब धर्मनिष्ठा उठ गई, कुछ स्वाभिमान रहा नहीं ।
भुजबल नहीं, तप बल नहीं, पौरुष नहीं, साहस नहीं ।।

क्या पूर्वजों का रक्त, अब तेरी नसों में है कहीं ?
सब लुप्त होता देख गौरव जोश जो खाता नहीं ।
ठंडा हुआ उत्साह सारा, आत्मबल जाता रहा ।
उत्थान की चर्चा नहीं, अब पतन ही भाता रहा ।।

पूर्वज हमारे कौन थे ? वे कृत्य क्या-क्या कर गये ?
किन-किन उपायों से कठिन भव-सिन्धु को भी तर गये ?
रखते थे कितना प्रेम वे निज धर्म-देश-समाज से ?
परहित में क्यों संलग्न थे, मतलब न था कुछ स्वार्थ से ?

क्या तत्व खोजा था उन्होंने आत्म जीवन के लिये ?
किस मार्ग पर चलते थे वे अपनी समुन्नति के लिये ?
इत्यादि बातों का नहीं तव व्यक्तियों को ध्यान है ।
वे मोह-निद्रा में पड़े, उनको न अपना ज्ञान है ।।

सर्वस्व यों खोकर हुआ तू दीन, हीन, अनाथ है ।
कैसा पतन तेरा हुआ, तू रूढ़ियों का दास है ।।
ये प्राणहारि-पिशाचिनी, क्यों जाल में इनके फँसा ।
ले पिण्ड तू इनसे छुड़ा, यदि चाहता अब भी जिया ।।

जिस आत्मबल को तू भुला बैठा उसे रख ज्ञान में ।
क्या शक्तिशाली ऐक्य है, यह भी सदा रख ध्यान में ॥
निज पूर्वजों का स्मरण कर, कर्तव्य पर आरूढ़ हो ।
बन स्वावलम्बी गुण-ग्राहक कष्ट में न अधीर न हो ॥

सद्दृष्टि-ज्ञान-चरित्र का सुप्रचार हो जग में सदा ।
यह धर्म है, उद्देश है; इससे न विचलित हो कदा ॥
'युगवीर' बन यदि स्वपरहित में लीन तू हो जायगा ।
तो याद रख, सब दुःख-संकट शीघ्र ही मिट जायगा ॥

❀ ❀ ❀

साधु-विवेक

असाधु

वस्त्र रँगाते, मन न रँगाते, कपट-जाल नित रचते हैं ।
हाथ ! सुमरनी पेट कतरनी, परधन-वनिता तकते हैं ॥
आपा पर की खबर नहीं, परमार्थिक बातें करते हैं ।
ऐसे ठगिया साधु जगत की, गली-गली में फिरते हैं ॥

साधु

राग, द्वेष जिनके नहिं मन में, प्रायः विपिन विचरते हैं ।
क्रोध, मान, मायादिक तज कर, पंच महाव्रत धरते हैं ॥
ज्ञान-ध्यान में लीन चित्त, विषयों में नहीं भटकते हैं ।
वे हैं साधु, पुनीत, हितैषी, तारक जो खुद तरते हैं ॥

⚜ ⚜ ⚜ ⚜

वास्कोडिगामा द्वारा किये गये उल्लेखों से यह बात पूर्ण रूप से विदित हो जाती है कि, मालाबार प्रान्त के समुद्री किनारे पर उस समय जो बस्ती थी वह न कभी हिंसा करती थी, इतना ही नहीं किन्तु समुद्र के किनारे पर रहने पर भी मांस मच्छी आदि के आहार को निषिद्ध ही मानती थी । इस वस्तु स्थिति से अनुमान होता है कि वह प्रजा जैनधर्मी ही होनी चाहिए, जिसका प्रभाव तमाम प्रजा पर पूर्ण रूप से पढ़ा था । इसके उपरांत जैनधर्म के सम्बन्ध में ईस्ट इण्डिया कम्पनी के समय के अनेक उल्लेख मि० कोलब्रुक की डायरी में पाये जाते है ।

जैन सम्बोधन

जनियो ! किस धुन में हो तुम क्या खबर कुछ भी नहीं ।
हो रहा संसार में क्या, ध्यान कुछ इस पर नहीं !
म्लेच्छ और अनार्य जिनको, तुम बताते थे कभी;
देख लो किस रंग में हैं, आज वे मानव सभी ॥१॥

और अपनी भी अवस्था का मिलान करो जरा ।
पूर्व थी वह क्या ? हुई अब क्या ? विचार करो जरा ॥
है कहाँ वह ज्ञान-गौरव, राज्य-वैभव आपका ?
वह कहाँ बहु ऋद्ध्यलंकृत तप, विनाशक पाप का ?२ ॥

वृष अहिंसा आपका वह, उठ गया किस लोक में ?
प्रेम पावन आपका सब, जा बसा किस थोक में ?
है कहाँ वह सत्यता, मृदुता, सरलता आपकी ?
वह दयामय दृष्टि और परार्थपरता सात्विकी ?३॥

पूर्वजों के धैर्य-शौर्योदार्य-गुण, तुम में कहाँ ?
है कहाँ वह वीरता, निर्भीकता, साहस महा ?
बाहुबल को क्या हुआ ? रणरंग-कौशल है कहाँ ?
हो कहां स्वाधीनता, दौर्बल्य शासन हो जहाँ ?४॥

वे विमान कहाँ गये ? कुछ याद है उनकी कथा ?
बैठ जिनमें पूर्वजों को, गगन पथ भी सुगम था ?
है कहाँ निर्वाह प्रण का ? और वह दृढ़ता कहाँ ?
शीलता जाती रही, दुःशीलता फैली यहाँ ?५॥

उठ गई सब तत्व चर्चा, क्या प्रकृति बदली सभी !
स्वप्न भी, निज अभ्युदय का, जो नहीं आता कभी !
खो गया गुण-ग्राम सारा, धर्मधन सब लुट गया !
आँख तो खोलो जरा—देखो सवेरा हो गया ॥६॥

धर्म-निष्ठर पर बिराजीं, रूढ़ियाँ आकर यहाँ,
धर्म ही के वेष में, जो कर रहीं शासन महा ।
थीं बनाई तुम्हीं ने ये, निज सुभीते के लिए,
बन गये पर अब तुम्हीं, इनकी गुलामी के लिए ॥७॥

देखिये, मैदाने उन्नति में कुलांचें भर रहे,
कौन हैं, निज तेज से विस्मित सबों को कर रहे ?
नव नवाविष्कार प्रतिदिन, कौन कर दिखला रहे ?
देव दुष्कर कार्य विद्युत-शक्ति से करवा रहे ?८।।

हो रहा गुणगान किनके, यह कला-कौशल्य का ?
बज रहा है दुन्दुभी, विज्ञान-साहस शौर्य का ?
कौन हैं ये बन रहे, विद्या-विशारद आजकल ?
नीतिविद, सतकर्म शिक्षक, पथ-प्रदर्शक आजकल ?९।।

सोचिये, ये हैं वही, कहते जिन्हें तुम नीच थे,
धर्मशून्य असभ्य कह कर आप बनते ऊँच थे।
सद्विचाराचार के जो, पात्र भी न गिने गये,
नहा डाला उसी दम यदि, कभी इनसे छू गये ।।१०।।

अनवरत उद्योग से औ, आत्मबल विस्तार से,
अभ्युदय इनका हुआ है, प्रबल एक्य विचार से।
स्वावलम्बन से इन्हें जो, सफलता अनुपम मिली,
शोक ! उसको देख करके, सीख तुमने कुछ न ली ।।११।।

आत्म-बल गौरव गंवाया, भूल शिथिलाचार में,
फँस गये हो बेतरह तुम, जाति-भेद-विचार में !
साथ ही अपरीतियों का जाल है भारी पड़ा;
हो रहा है कर्मबन्धन से भी यह बन्धन कड़ा ।।१२।।

तोड़ यह बन्धन सकल, स्वातन्त्र्यबल दिखलाइये;
लुप्त गौरव जो हुआ, उसको पुनः प्रकटाइये।
पूर्वजों की कीर्ति को बट्टा लगाना क्या भला ?
सच तो यों है, डूब मरना ऐसे जीवन से भला ।।१३।।

जातियां, अपनी समुन्नति-हेतु सब चंचल हुईं;
पर न आया जोश तुम में, क्या रगें ठिठरा गईं ?
पुरुष हो, पुरुषार्थ करना, क्या तुम्हें आता नहीं ?
पुरुष-मन पुरुषार्थ से, हरगिज़ न घबराता कहीं ।।१४।।

जो न आता हो तुम्हें वह, दूसरों से सीख लो ;
अनुकरण कहते किसे, जापानियों से सीख लो।
देखकर इतिहास जग के, कुछ करो शिक्षा ग्रहण;
हो न जिससे व्यर्थ ही संसार में जीवन-मरण ॥१५॥

छोड़ दो संकीर्णता, समुदारता धारण करो,
पूर्वजों का स्मरण कर, कर्तव्य का पालन करो।
आत्मबल पर जैन वीरो! हो खड़े बढ़ते रहो;
हो न ले उद्धार जब तक, 'युग प्रताप' बने रहो ॥१६॥

प्रार्थना

हृदय हो प्रभु, ऐसा बलवान।

विपदाएँ घनघोर घटा सी, उमड़ें चहुँ दिशि आन।
पर्वत-ऊपर-पतित विन्दु-सी, झेलूँ मन सुख मान ॥१॥

असफल होकर सहस बार भी, मन को करूँ न म्लान।
लक्ष गुणित उत्साह धार कर, करूँ कार्य प्रण ठान ॥२॥

पूर्ण आत्म कर्तव्य करूँ या, खुद होऊँ बलिदान।
सन्मुख ज्वलित अग्नि भी लखकर, हटूँ न शंका ठान ॥३॥

करो स्तवन परिहास करो या, यह संसार अजान।
सत्य मार्ग को इंच न छोड़ूँ, भय नहीं लाऊँ ध्यान ॥४॥

विकसित आत्म स्वरूप करूँ निज, बल का अतुल निधान।
तनबल धनबल तृणवत समझूँ, धरूँ नहीं अभिमान ॥५॥

जो जितना अधिक नियन्त्रणहीन होता है, वह उतना ही अधिक अपने आस-पास मर्यादा का जाल बुनता है। हमारा घर साफ-सुथरा होगा तो पड़ौसी को उससे दुर्गन्ध नहीं मिलेगी।

हम अहिंसक रहेंगे तो पड़ौसी को हमारी ओर से क्लेश नहीं होगा।

दूसरों को कष्ट न हो इसलिए हम अहिंसक रहें, अहिंसा का यह सही मार्ग नहीं है।

हमारे मन में किसी को कष्ट देने की भावना ही न हो।

मैत्री, प्रमोद, करुणा और माध्यस्थ अहिंसा की चार भावनायें हैं।

हृदयोद्गार

कब आयगा वह दिन कि बनूँ साधु विहारी ।।टेक।।

दुनिया में कोई चीज मुझे थिर नहीं पाती,
और आयु मेरी यों ही तो है बीतती जाती।
मस्तक पै खड़ी मौत, वह सब ही को है आती,
राजा हो, चाहे राणा हो, हो रंक भिखारी ।।१।। कब०

संपत्ति है दुनिया की वह दुनिया में रहेगी;
काया न चले साथ, वह पावक में दहेगी।
इक ईंट भी फिर हाथ से हर्गिज न उठेगी;
बंगला हो चाहे कोठी हो, हो महल अटारी ।।२।। कब०

बैठा है कोई मस्त ही, मसनद को लगाये;
मांगे है कोई भीख फटा वस्त्र बिछाये।
अंधा है कोई, कोई, बधिर हाथ कटाये;
व्यसनी है कोई मस्त, कोई भक्त पुजारी ।।३।। कब०

खेले हैं कई खेल, धरे रूप घनेरे;
स्थावर में त्रसों में भी किये जाय न सेरे।
होते ही रहे हैं यों सदा शाम सवेरे;
चक्कर में घुमाता है सदा कर्म मदारी ।।४।। कब०

सब ही से मैं रक्खूँगा सदा दिल की सफाई;
हिन्दू हो, मुसलमान हो, हो जैन ईसाई।
मिल-मिल के गले बाँटेंगे हम प्रीति मिठाई;
आपस में चलेगी न कभी द्वेष-कटारी ।।५।। कब०

सर्वस्व लगाके मैं करूँ देश की सेवा,
घर-घर पै मैं जा-जा के रखूँ ज्ञान का मेला।
दुःखों का सभी जीवों के हो जायगा छेवा;
भारत में न देखूँगा कोई मूर्ख-अनारी ।।६।। कब०

जीवों को प्रमादों से कभी मैं न सताऊं,
करनी के विषय देव हैं, अब मैं न लुभाऊँ।
ज्ञानी हूं सदा ज्ञान की मैं ज्योति जगाऊँ;
समता में रहूंगा मैं सदा शुद्ध-विचारी ।।७।। कब०

❀ ❀ ❀

सफल जन्म

मत झिझको, मत दहलाओ, यदि बनना महामना है।
जो नहीं किया वह 'पर' है, कर लिया वही 'अपना' है॥
दो दिन का जीवन-मेला, फिर खंडहर-सी नीरवता—
यश-अपयश बस, दो ही हैं, बाकी सारा सपना है॥

दो पुण्य-पाप रेखायें, दोनों ही जग की दासी।
है एक मृत्यु सी घातक, दूसरी सुहृद् माता-सी॥
जो ग्रहण पुण्य को करता, मणिमाला उसके पड़ती।
अपनाता जो पापों को, उसकी गर्दन में फांसी॥

इस शब्द कोष में केवल,—है 'आज' न मिलना 'कल' है।
'कल' पर जो रहता है वह, निरुपाय और निर्बल है॥
वह पराक्रमी-मानव है, जो 'कल' को 'आज' बनाकर—
क्षणभंगुर विश्व-सदन में, करता निज जन्म सफल है।

वीर निर्वाण

फिर सरसता जग उठी है प्राण में संचरित होकर।
मानसर में भर रहा है कौन यह जीवन निरन्तर ?

फिर नया सा हो रहा है रोम-रोम प्रदीप्त प्रमुदित।
बज उठेगी, उल्लसित हो आज हृत्तंत्री कदाचित॥

लग रहा है और कुछ ही—आज मुझको दिव्य जीवन।
आज मानों लहलहाया—हो शतोमुख विश्व-उपवन॥

प्राण के प्रत्येक कण में—आप्त-व्याप्त नवीनता है।
मग्न हो, जयकेतु बन, फहरा रही स्वाधीनता है॥

हाँ, इसलिये आनन्द है सर्वत्र खग-नर-देव-घर।
आज पाया है महाप्रभु—'वीर' ने निर्वाण गुरुतर॥

आवश्यक हिंसा को अहिंसा मानना चिन्तन का दोष है। हिंसा आखिर हिंसा है। यह दूसरी बात है कि आवश्यक हिंसा से बचना कठिन है। गृहस्थी संकल्पी हिंसा का त्यागी होता है।

आत्म-तोष का एकमात्र मार्ग आत्म-संयम है। दोनों का परस्पर अटूट सम्बन्ध है। प्राणी संयम और इन्द्रिय संयम दो प्रकार का है।

नवयुवकों से नम्र निवेदन

क़ौम की ख़ातिर ख़ुशी से सर कटाना चाहिये।
मर्दे मैदां बनके दुनिया को दिखाना चाहिये ॥ १ ॥

अपने रुख़ से परद-ए ग़फ़लत उठाना चाहिये।
तालिबानेदीद[1] को जलवा दिखाना चाहिये ॥ २ ॥

राग से मतलब न जिसको वास्ता हो देश से।
उसके आगे हमको अपना सर झुकाना चाहिये ॥ ३ ॥

इक दया ही धर्म है ले जायगा जो मोक्ष में।
जैन का यह फलसफा[2] सबको सिखाना चाहिये ॥ ४ ॥

धर्म से अपने पतित जो हो चुका हो दोस्तो !
फिर नये सर से उसे जैनी बनाना चाहिये ॥ ५ ॥

खाकसारी[3] की दलील इससे कोई बढ़कर नहीं।
कीनओ[4] बुग़जो[5] हसद[6] दिल से मिटाना चाहिये ॥ ६ ॥

देखते हैं आजकल ग़ैरों को हम सीनासिपर।
ऐ जैनियो मैदान में तुमको भी आना चाहिएँ ॥ ७ ॥

जा रहे हैं अपने भाई ग़ैर की आग़ोश[7] में।
शर्म की जा है, उन्हें अपना बनाना चाहिये ॥ ८ ॥

काटती है 'दास' क्योंकर पाप के बन्धन को वे।
जैन की तलवार का जौहर दिखाना चाहिये ॥ ९ ॥

आत्मा का पतन न हो इसलिए हिंसा न करें, यह है अहिंसा का सही मार्ग ! कष्ट का बचाव तो स्वयं हो जाता है।

---

१. देखने के इच्छुक २. धर्म, तालीम ३. नम्रता ४-५-६ दूसरे से जलना ७. गोद।

करो कुछ काम दुनिया में

अहिंसा धर्म का हर घर में गर प्रचार हो जाए ।
तो प्यारा स्वर्ग से बढ़कर यही संसार हो जाए ।। १ ।।

करो वो काम दुनिया में कि पर-उपकार हो जाए ।
तुम्हारे साथ औरों का भी बेड़ा पार हो जाए ।। २ ।।

जो प्यासा है लहू का, क्यों न वोह ग़मख़्वार हो जाए ।
रवां दुनिया में पर-उपकार की जब धार हो जाए ।। ३ ।।

न ज़ख्मी हो कोई उससे न वोह तलवार हो जाए ।
मगर फिर भी जो निकले मुँह से दिल के पार हो जाए ।।४।।

अहिंसा धर्म की रंगीनियों[1] में बूए उल्फ़त है ।
ये वो मय[2] है पिए जो उम्र भर सरशार[3] हो जाए ।।५।।

अगर औरों के दर्दोग़म को अपना दर्दोग़म समझें ।
अहिंसा धर्म की नय्या भँवर से पार हो जाए ।। ६ ।।

रह ऐ 'दास' माथे पर न फिर टीका गुलामी का ।
अगर भारत हमारा नींद से बेदार[4] हो जाए ।। ७ ।।

धर्म एक प्रवाह है । सम्प्रदाय उसका बाँध है । बाँध का पानी सिंचाई और अन्य कार्यों के लिए उपयोगी होता है । वैसे ही सम्प्रदाय से धर्म सर्वत्र प्रवाहित होता है । इसके विपरीत सम्प्रदायों में कट्टरता, संकीर्णता आ जावे, तो यह केवल स्वार्थ-सिद्धि का अंग बनकर कल्याण के स्थान पर हानिकारक और आपसी संघर्ष पैदा करने वाला हो जाता है ।

शोषण का द्वार खुला रखकर दान करने वाले की अपेक्षा अदानी बहुत श्रेष्ठ है, चाहे वह एक कौड़ी भी न दे ।

मनुष्य अपनी ग़लती को नहीं देखता, दूसरे की ग़लती को देखने के लिए सहस्राक्ष बन जाता है । अपनी ग़लती देखने के लिए जो आँखें हैं, उनको भी मूंद लेता है ।

---

१ खूबियां २ शराब ३ बेहोशी ४ जागना ।

धनिक सम्बोधन

भारत के धनिको ! किस धुन में, पड़े हुए हो तुम बेकार ?
अपने हित की खबर नहीं; या नहीं समझते जग व्यवहार ?
अन्धकार कितना स्वदेश में; छाया देखो आँख उघार।
बिल बिलाट करते हैं कितने, सहते निश दिन कष्ट अपार ।।

कितने वस्त्रहीन फिरते हैं, क्षुत्पीड़ित हैं कितने हाय !
धर्म-कर्म सब बेच दिया है, कितनों ने होकर असहाय !!
जो भारत था गुरु देशों का, महामान्य, सत्कर्म प्रधान।
गौरवहीन हुआ वह, बन कर पराधीन, सहता अपमान ।।

क्या यह दशा देख भारत की, तुम्हें न आता सोच-विचार।
देखा करो इसी विधि क्या तुम, पड़े-पड़े दुख-पारावार ।।
धनिक हुए जिसके धन से क्या, योग्य न पूछो उसकी बात !
गोद पले जिसकी क्या उस पर, देखोगे होते उत्पात !!

भारतवर्ष तुम्हारा, तुम हो भारत के सत्पुत्र उदार।
फिर क्यों देश-विपत्ति न हरते, करते इसका बेड़ा पार ।।
पश्चिम के धनिकों को देखो, करते हैं वे क्या दिन-रात।
और करो जापान देश के, धनिकों पर कुछ दृष्टिनिपात ।।

लेकर उनसे सबक स्वधन का, करो देश उन्नति-हित त्याग।
दो प्रोत्साहन उन्हें जिन्हें है, देशोन्नति से कुछ अनुराग ।।
शिल्पकला विज्ञान सीखने, युवकों को भेजो परदेश।
कला-सुशिक्षालय खुलवाकर, मेटो सब जनता के क्लेश ।।

कार्य-कुशल विद्वानों से रख प्रेम, समझ उनका व्यवहार।
उनके द्वारा करो देश में, बहु उपयोगी कार्य प्रसार ।।
भारत हित संस्थायें खोलो, ग्राम-ग्राम में कर सुविचार।
करो सुलभ साधन वे जिनसे, उन्नत हो अपना व्यापार ।।

चक्कर में विलासप्रियता के, फँस मत भूलो अपना देश।
प्रचुर विदेशी व्यवहारों से, करो न अपना देश विदेश ।।
लोक दिखावे के कामों में, होने दो नहिं शक्ति-विनाश।
व्यर्थ व्ययों को छोड़, लगो तुम, भारत का करने सुविकाश ।।

वैर-विरोध, पक्षपातादिक, ईर्षा, घृणा सकल दुष्कार।
रह न सकें भारत में ऐसा, यत्न करो तुम बन समुदार।
शिक्षा का विस्तार करो यों, रहे न अनपढ़ कोई शेष।।
सब पढ़लिख कर चतुर बनें औ, समझें हित-अनहित सविशेष।।

करें देश उत्थान सभी मिल, फिर स्वराज्य मिलना क्यों दूर ?
पैदा हों 'युगवीर' देश में, तब क्यों रहे दशा दुख-पूर।।
प्रबल उठे उन्नति-तरंग तब, देखें सब भारत-उत्कर्ष।
धुल जावे सब दोष कालिमा, सुखपूर्वक दिन कटें सहर्ष।।

धर्म-स्थिति निवेदन

कहाँ वह जैनधर्म भगवान !

जाने जग को सत्य सुझायो, टालि अटल अज्ञान।
वस्तु-तत्व पै कियो प्रतिष्ठित, अनुपम निज विज्ञान।। कहाँ०।।

साम्यवाद को प्रकृत प्रचारक, परम अहिंसावान।
नीच-ऊँच निरधनी-धनी पै, जाकी दृष्टि समान।। कहाँ०।।

देवतुल्य चाण्डाल बतायो, जो है समकित वान।
शूद्र, म्लेच्छ, पशुहू ने पायो, समवशरण में स्थान।। कहाँ०।।

सती-दाह, गिरिपात, जीव बलि, मांशासन मद-पान।
देव मूढ़ता आदि मेटि सब, कियो जगत कल्यान।। कहाँ०।।

कट्टर बैरी हू पै जाकी—क्षमा, दयामय बान।
हठ तजि, कियो अनेक मतन को, सामंजस्य-विधान।। कहाँ०।।

अब तो रूप भयो कछु औरहि, सकहिं न हम पहिचान।
समता-सत्य-प्रेम ने इक संग, यातें कियो पयान।। कहाँ०।।

जीवन सरस भी है, नीरस भी है। सुख भी है, दुःख भी है। सुख कुछ भी है, कुछ भी नहीं है। नीरस को सरस, दुःख को सुख, कुछ भी नहीं को सब बनाने वाला कलाकार है।

पदार्थ प्राप्ति पर जो आनन्द मिलता है, वह तो क्षणिक होता है।...किन्तु वस्तु-निरपेक्ष आनन्द ही स्थायी होता है।

उपदेशिक ढाला

(देशी—जब वक्त पड़ा तब कोई नहीं)

अब मोह नींद से उठ चेतन, क्यूं भूल रहा जोबन धन में।
तेरे सुख के साथी मात-पिता, सुत-बांधव सोच ज़रा मन में ॥

नर जन्म अमूल्य मिला तुझको, क्यों सोय रहा सुख चैनन में।
कर ले अब तो सत्संग ज़रा, समझाय रहे गुरु सैनन में ॥१॥

तेरा कुटुम्ब कबीला स्वारथ का, बिन स्वारथ देत दगा खिन में।
यह चाँदनी चेतन दो दिन की, बिन काम लुभाय रहा किन में ॥२॥

दिन खेल-कूद में खोय दिया, नहीं धर्म किया बालापन में।
प्रभु का गुन गान किया न कभी, विषया वश हो भर जोबन में ॥३॥

हय हाथी ऊपर केल करा, रंग-रेल करा चढ़ स्यंदन में।
चरचा तन केशर चन्दन में, नहीं चित्त दिया गुरु वन्दन में ॥४॥

अब वृद्ध भया कच श्वेत भया, कफ वाय ने घेर लिया छिन में।
तेरी डगमग नाड़ी डोल रही, मनु कम्पन वाय हुआ तन में ॥५॥

गये रावण विक्रम भोज बली, प्रजली मनु होरी फागन में।
उस मौज का खोज रहा न रती, नर तू मूली किस बागन में ॥६॥

दया धर्म का संग्रह तू कर ले, धर ले गुरु शिक्षा कानन में।
कहा सोहन उत्तम धर्म यही, जिन आगम वेद पुरानन में ॥७॥

लोग संयम को निषेधात्मक मानते हैं, पर वह जीवन का सर्वोपरि क्रियात्मक पक्ष है।

जिसकी चाह नहीं है, उसकी राह सामने है और जिसकी चाह है, उसकी राह नहीं है। आज का मनुष्य विपर्यय की दुनिया में जी रहा है। चाह सुख की है, कार्य दुःख के हो रहे हैं।

सुख का हेतु अभाव भी नहीं है और अति भाव भी नहीं है। सुख का हेतु स्वभाव है।

नीच और अछूत

नाली के मैले पानी से मैं बोला हहराय;
हौले बह रे नीच कहीं तू मुझ पर उचट न जाय।

'भला महाशय' कह पानी ने भरी एक मुसकान;
बहता चला गया गाता सा एक मनोहर गान ।। ।।

एक दिवस मैं गया नहाने किसी नदी के तीर;
ज्योंही जल अञ्जलि में लेकर मलने लगा शरीर।

त्योंही जल बोला मैं ही हूं उस नाली का नीर;
लज्जित हुआ, काठ मारा सा मेरा सकल शरीर ।। २ ।।

बैंगुअन तोड़ी मुँह में डाली वह बोली मुसकाय;
ओह महाशय ! बड़ी हुई मैं नाली का जल पाय।

फिर क्यों मुझ अछूत को मुँह में देते, हो महाराज !
सुन कर उसके बोल हुई हा ! मुझको भारी लाज ।। ३ ।।

खाने को बैठा भोजन में ज्योंही डाला हाथ;
त्योंही भोजन बोल उठा चट विकट हँसी के साथ।

नाली का जल हम सबने किया एक दिन पान;
अतः नीच हम सभी हुए फिर क्यों खाते श्रीमान ।। ४ ।।

एक दिवस नभ में अभ्रों की देखी खूब जमात;
जिससे फड़क उठा हर्षित हो मेरा सारा गात।

मैं यों गाने लगा कि आओ अहो ! सुहृद घन वृन्द।
बरसो, शस्य बढ़ाओ, जिससे हो हमको आनन्द ।। ५ ।।

वे बोले, हे बन्धु, सभी हम हैं अछूत औ नीच;
क्योंकि पनाली के जल-कण भी हैं हम सबके बीच।

कहीं अछूतों में ही जाकर बरसेंगे जी खोल;
उनके शस्य बढ़ेंगे, होगा उनको हर्ष अतोल ।। ६ ।।

मैं बोला, मैं भूला था, तब नहीं मुझे था ज्ञान;
नीच-ऊंच भाई-भाई हैं भारत की सन्तान।

होगा दोनों बिना न दोनों का कुछ भी विस्तार;
अब न करूँगा उनसे कोई कभी बुरा व्यवहार ।। ७ ।।

वे बोले यह सुमति आपकी करे हिन्द का त्राण;
उनके हिन्दू रहने में है भारत का कल्याण।

उनका अब न निरादर करना, बनना भ्रात, उदार;
भेदभाव मत रखना उनसे करना मन से प्यार ।। ८ ।।

❀ ❀ ❀

क्रान्ति-पथे

तोड़ो मृदुल वल्लकी के ये सिसक-सिसक रोते से तार,
दूर करो संगीत कुञ्ज से कृत्रिम फूलों का शृंगार।

भूलो कोमल, स्फीत-स्नेह-स्वर भूलो क्रीड़ा का व्यापार,
हृदय-पटल से आज मिटा दो स्मृतियों का अभिनय आगार।

भैरव शंखनाद की गूंज फिर-फिर वीरोचित ललकार,
मुरझाए हृदयों में फिर से उठे गगन भेदी हुंकार।

धधक उठे अन्तस्तल में फिर क्रान्ति गीतिका की झंकार—
विह्वल, विकल, विवश पागल हो नाच उठे उन्मद संसार।

दीप्त हो उठे उरस्थली में आशा की ज्वाला साकार,
नस-नस में उद्दण्ड हो उठे नवयौवन रस का संचार।

तोड़ो वाद्य, छोड़ दो गायन, तज दो सकरुण हाहाकार;
आगे है अब युद्ध-क्षेत्र-फिर, उसके आगे—कारागार।

× × × ×

व्रती समाज की कल्पना जितनी दुरूह है, उतनी सी सुखद है। व्रत लेने वाला कोरा व्रत ही नहीं लेता, पहले वह विवेक को जगाता है। श्रद्धा और संकल्प को दृढ़ करता है। कठिनाइयां झेलने की क्षमता पैदा करता है। प्रवाह के प्रतिकूल चलने का साहस लाता है; फिर वह व्रत लेता है।

चेतावनी

चेत चतुर नर कहै तनै सतगुरु, किस विधि तू ललचाना है।
तन धन यौवन सर्व कुटुम्बी, एक दिवस तज जाना है। चे० ॥१॥

मोह माया को बड़ो जाल है, जिसमें तू लोभाना है।
काल आहेरी चोट आकरी, ताक रह्यो नीशाना है। चे० ॥२॥

काल अनादि रो तूं ही रे भटक्यो, तो पिण अन्त न आना है।
चार दिनां की देख चांदनी, जिसमें तू लोभाना है। चे० ॥३॥

पूर्व भवरा पुण्य योग थी, नरकी देही पाना है।
मास सवा नौ रहा गर्भ में, उन्धै मुख भूलाना है। चे० ॥४॥

मल-मूत्र की अशुचि कोथली, मांहे सांकड़ दीना है।
रुधिर शुक्रनो आहार अपवित्र, प्रथम पड़े तैं लीना है। चे० ॥५॥

ऊंट क्रोड सुई सार की, ताती कर चोभाना है।
तिण सू अष्ट गुणी वेदना गर्भ में, देख्या दुःख असमाना है। चे० ॥६॥

बालपणों थे खेल गँवायो, यौवन में गर्वाना है।
अष्ट प्रहर कीधो मद मस्ती, खोटी लाग लगाना है। चे० ॥७॥

रंगी चंगी राखत देही, टेढ़ी चाल चलाना है।
आठ प्रहर कीधो घर धन्धो, लग रहा आर्त्तध्याना है। चे० ॥८॥

मात-पिता-सुत बहिन-भाणजी, तिरिया सूं दिल लीना है।
वे नहीं तेरे तू नहीं उनका, स्वार्थ लगी संगीना है। चे० ॥९॥

अर्थ अनर्थ करी धन मेल्यो, घणां सूं बैर बँधाना है।
लक्ष्मी तो तेरे लारै न चलसी, यहां की यहां रह जाना है। चे० ॥१०॥

ऊंचा-ऊंचा महल चिणाया, करै घना कारखाना है।
घड़ी एक राखत नहि घर में, चालत जाय मशाना है। चे० ॥११॥

धर्म सेती द्वेष न धरना, परभव सेती डरना है।
चित्त आपनो देख मुसाफिर, करनी सेती तरना है। चे० ॥१२॥

छिन-छिन में तेरी आयु घटत है, अञ्जली जैसे झरना है।
कोड़ों यत्न करे बहुतेरा, तो पिण एक दिन मरना है। चे० ॥१३॥

साधु-सन्त की सुनी न वाणी, दान सुपात्र न दीना है।
तप जप किया कछू न किधी, नर भव लाभ न लीना है। चे० ॥१४॥

चक्री केशव राजा राणा, इन्द्र सुरों का इन्दा है।
सेठ सेनापति सब ही मानव, पड़्या काल के फन्दा है। चे० ॥१५॥

यौवन गंवाय बूढ़ा होय बैठा, तो पिण समय न आना है।
धर्मरत्न तुझ हाथ न आयो, परभव में पछताना है। चे० ॥१६॥

नीतिवाद

उस तरफ सौख्य का आकर्षण, इस ओर निराशा का दुलार।
इन दो कठोर सत्यों में है, निर्वाचित एक प्रवेश-द्वार॥

हँस ले, रो ले इच्छानुसार, क्षण-भंगुर है सारा विधान।
अस्थिर-जीवन को बतलाने, साँसें आती हैं बार-बार॥

यदि भिन्न-भिन्न हो जाएँ रंग, तो इन्द्रधनुष का क्या महत्व ?
नयनाभिराम है 'मिलन' अतः, है प्राप्त विश्व से कीर्ति स्वत्व॥

बस इसी मिलन को कहते हैं, हम-तुम वह सब मिल विश्व-लोक।
क्षण भर का है यह दर्शनीय, पाते यथार्थ में यही तत्व॥

जो आज प्रेम का भाजन है, देता है कल वह कटु-विषाद।
है पूर्ण शत्रुता जिसे प्राप्त, आता वह रह-रह हमें याद॥

यह दुख-सुख की परिभाषाएँ, इनमें ध्रुवता कितनी विभक्त।
बस स्वानुभूति के बल पर है, अस्तित्व, कह रहा नीतिवाद॥

× × × ×

अहिंसा के दो पहलू हैं—विचार और आचार। पहले विचार बनते है, फिर तदनुसार आचरण होता है।

जैन धर्म की प्राचीनता

इस धर्म की प्राचीनता के चिह्न मिलते जा रहे।
उपलब्ध मथुरा-स्तूप और उदय-गिरी बतला रहे।।

प्राचीनता इसकी जगत भर कर रहा स्वीकार है।
इस धर्म का ही इस दिशा में गत ऋणी संसार है।।१।।

हाँ जब न पृथ्वी पर कहीं भी बौद्ध-वैदिक धर्म थे।
कल्याण-प्रद सर्वज्ञ तब इस धर्म के शुभ कर्म थे।।

जितने पुराने जैन मन्दिर आज मिलते हैं यहाँ।
उतने पुराने बोलिये अन्यत्र मिलते हैं कहाँ।।२।।

था राष्ट्र-धर्म कभी यही सिद्धान्त अति अभिराम थे।
बलवान थे, वरदान थे, गुणधाम थे, शिवधाम थे।।

इस धर्म का ही मुख्यतः ध्रुव केन्द्र भारतवर्ष था।
यह ज्ञान में विज्ञान में सबमें प्रथम उत्कर्ष था।।३।।

चमका न धर्मादित्य केवल सर्व हिन्दुस्तान में।
फैली प्रभा दूरस्थ इसकी एशिया यूनान में।।

कार्थेज-अफ्रीका तथा मिश्रादि रोम फिनीशिया।
जाकर वहाँ तक भी सदैव निवास जैनों ने किया।।४।।

जग के पुरातन वेद भी अस्तित्व इसका मानते।
इतिहासवेत्ता धर्म की प्राचीनता को जानते।।

जो बौद्धमत से जैनियों की मानते उत्पत्ति को।
निष्पक्ष हो देखें तनिक इतिहास की सम्पत्ति को।।५।।

× × × ×

रत्नत्रय अत्यन्त दुर्लभ वस्तु है। मानवजीवन की सफलता रत्नत्रय के पाने में है।

× × × ×

पहले-पहल बुराई करते घृणा होती है, दूसरी संकोच, तीसरी बाद निःसंकोचता आ जाती है और चौथी बार ये साहस बढ़ जाता है।

जैन झण्डा गायन

ऊँचा झण्डा जिन शासन का, धर्म अहिंसा दिग्दर्शन का ।।
गंगा का ज्यों निर्मल जल है, कान्ति शशि की ज्यों निर्मल है ।।
त्यों यह झण्डा परम प्रवल है, मैल हरे सब ही के मन का ।।
ऊँचा झण्डा जिन शासन का० ।।१।।

प्रेम से पूरित इसके धागे, वात्सल्य के रस में पागे ।
इसे देख कायरता भागे, मन्त्र पढ़ावे निर्भयपन का ।।
ऊँचा झण्डा जिन शासन का० ।।२।।

हिय उमंग उत्साह बढ़ावे, कर्मवीर बनना सिखलावे ।
सेवा भाव का पाठ पढ़ावे, पथ पर दर्शक यह वीरन का ।।
ऊँचा झण्डा जिन शासन का० ।।३।।

सब से ऊँचे पर फहरावे, करुणारस का स्रोत बहावे ।
शिव मंदिर का मार्ग दिखावे, कारण है यह अघ नाशन का ।।
ऊँचा झण्डा जिन शासन का० ।।४।।

शुभ लेश्या का पाठ पढ़ाता, धर्म ध्यान का ध्यान दिलाता ।
रत्न त्रयनिधि का है दाता, और विधाता शुभ भावन का ।।
ऊँचा झण्डा जिन शासन का० ।।५।।

जैन मात्र का है यह प्यारा, यासे सब मिल वचन उचारा ।
ऊँचा झण्डा रहे हमारा, यह सद्भाव सभी के मन का ।।
ऊँचा झण्डा जिन शासन का० ।।६।।

फर-फर झण्डा फहराता है, शान्ति विश्व में फैलाता है ।
धर्म अहिंसा दर्शाता है, परम हितैषी जन-जीवन का ।।
ऊँचा झण्डा जिन शासन का० ।।७।।

या झण्डे नीचे तुम आओ, प्रेम सहित औरों को लाओ ।
सब मिल ज्योति भावना भाओ, हो कल्याण सभी जग-जन का ।।
ऊँचा झण्डा जिन शासन का, धर्म अहिंसा दिग्दर्शन का ।।८।।

हम और हमारे पूर्वज़

जैसे हमारे पूज्य थे उनकी न हम में गन्ध है।
रहते हुए सम्बन्ध भी उनसे न अब सम्बन्ध है ॥
वे कौन थे क्या कर गये इसको भुलाया सर्वथा।
आडम्बरों ने आज तो हमको लुभाया सर्वथा ॥१॥

उनकी कथाओं पर कभी विश्वास भी आता नहीं।
उनका सुखद वह नाम भी अब कान को भाता नहीं ॥
उनके अलौकिक कार्य को हम आज मिथ्या मानते।
अपने हिताहित को तनिक भी हम नहीं पहचानते ॥२॥

पूर्वज प्रबल रणवीर थे तो आज हम गृहवीर हैं।
वे क्षीर थे विख्यात तो हम आज खारे नीर हैं ॥
जीवन बिताते थे सकल अपना परम पुरुषार्थ में।
हम भी बिताते आज जीवन को यहाँ पर-स्वार्थ में ॥३॥

वे चाहते थे लोक में सबका सतत उपकार हो।
हम चाहते हैं एकदम सबका महासंहार हो ॥
उनके सदा इच्छा रही नित दूसरे उन्नत बने।
लिप्सा हमारी है यही नित दूसरे अवनत बने ॥४॥

वे थे जगत के रत्न अनुपम हम न पद की धूल हैं।
वे फूल थे मकरन्दयुत पर हम न किंशुक फूल हैं ॥
त्रैलोक्य के वे चन्द्रमा थे पर न हम नक्षत्र हैं।
पूर्वज हमारे प्रेम से पुजते रहे सर्वत्र हैं ॥५॥

❀ ❀ ❀

विचार के अनुरूप ही आचार बनता है अथवा विचार ही स्वयं आचार का रूप लेता है।

आचार-शुद्धि की आवश्यकता है, उनके लिए विचार-क्रान्ति चाहिए। उसके लिए सही दिशा में गति, और गति के लिए जागरण अपेक्षित है।

× × × ×

लाला तनसुखराय जी को ये कवितायें और भजन अत्यंत प्रिय थे। वे इन कविताओं से प्रकाश ग्रहण करते थे। उन्होंने अपने हाथ से लिखकर इन सब कविताओं को बड़े प्रेम से संजोकर रक्खा था।

सद्धर्म सन्देश

मन्दाकिनी दया की जिसने यहाँ बहाई; हिंसा कठोरता की, कीचड़ थी धो बहाई।
समता-सुमित्रता का ऐसा अमृत पिलाया; द्वेषादि रोग भागे, मद का पता न पाया।।

उस ही महान प्रभु के, तुम हो सभी उपासक; उस वीर धीर जिनके सद्धर्म के प्रचारक।
अतएव तुम भी वैसे बनने का ध्यान रक्खो; आदर्श भी उसी का, आँखों के आगे रक्खो।।

संकीर्णता हटाओ, दिल को बड़ा बनाओ; निज कार्य-क्षेत्र की अब, सीमा को कुछ बढ़ाओ।
सब ही को अपना समझो, सबको सुखी बना दो; औरों के हेतु अपने, प्रिय प्राण भी लगा दो।।

ऊँचा उदार पावन, सुख-शांति पूर्ण प्यारा। यह धर्म वृक्ष सबका, निजका नहीं तुम्हारा।।
रोको न तुम किसी को, छाया में बैठने दो। कुल जाति कोई भी हो, संताप मेटने दो।

जो चाहता हो अपना, कल्याण मित्र ! करना जगदेक बन्धु जिनकी, पूजा पवित्र करना।
दिल खोल करके उसको, करने दो कोई भी हो; फलते हैं भाव सबके, कुल-जाति कोई भी हो।।

संतुष्टि शांति सच्ची, होती है ऐसी जिससे, ऐहिक-क्षुधा पिपासा, रहती है फिर न जिससे।
वह है प्रसाद प्रभु का, पुस्तक-स्वरूप इसको; सुख चाहते सभी है, चखने दो चाहे जिसको।।

यूरुप अमेरिकादिक, सारे ही देश वाले, अधिकारी इसके सब है, मानव सफेद काले।
अतएव कर सकें वे, उपभोग जिस तरह से, यह बाँट दीजिए उन, सबको ही उस तरह से।।

ऐ धर्मरत्न धनिको ! भगवान की अमानत; हो सावधान सुन लो, करना नहीं खयानत।
दे दो प्रसन्न मन से, यह वक्त आ गया है; इस ओर सब जगत का, अब ध्यान जा रहा है।।

कर्त्तव्य का समय है, निश्चित हो न बैठो; थोथी बड़ाइयों में, उन्मत्त हो न ऐंठो।
सद्धर्म का संदेशा, प्रत्येक नारि-नर में; सर्वस्व भी लगा कर फैला दो विश्व भर में।।

—: o :—

प्रार्थना

मुझे है स्वामी उस बल की दरकार।

अड़ी खड़ी हों अमित अड़चने, आड़ी अटल अपार।
तो भी कभी निराश निगोड़ी, पटक न पावे द्वार।। मुझे०।।

सारा ही संसार करे यदि, दुर्व्यवहार-प्रहार।
हटे न तो भी सत्य मार्ग-गत; श्रद्धा किसी प्रकार।। मुझे०।।

धन-वैभव की जिस आंधी से, अस्थिर सब संसार।
उससे भी न कभी डिग पावे; मन बन जाय पहार ।। मुझे० ।।

असफलता की चोटों से नहिं, दिल में पड़े दरार।
अधिकाधिक उत्साहित होऊँ, मानूं कभी न हार ।। मुझे०।।

दुख-दरिद्रता-कृत अति श्रम से, तन होवे बेकार।
तो भी कभी निरुद्यम हों नहिं, बैठूं जगदाधार ।। मुझे० ।।

जिसके आगे तन बल धन बल, तृणवत तुच्छ असार।
महावीर जिन ! वही मनोबल, महामहिम सुखकार ।। मुझे० ।।

× × × ×

समाज

पाठक अहिंसा धर्म पर स्थित धर्म की भीत है।
करना दया जी मात्र पर यह जैन धर्म पुनीत है ।।
निज की दशा उल्लेख में यह लेखनी बन कर्कशा।
कैसे लिखे निज की घृणा-मय दुःखप्रद हा दुर्दशा ।।१।।

जैसा अहिंसा धर्म निज वक्तव्य में रहता यहाँ।
वैसा अहिंसा धर्म हा ! कर्तव्य में रहता कहाँ ?
जल छानने में बस समझ रक्खा अहिंसा धर्म है।
करते कुठाराघात नर पर हाय ! कैसा कर्म है ।।२।।

श्रीमान् होकर हम अविद्या अन्धता के दास हैं।
परमार्थ से अति दूर होकर स्वार्थता के पास है ।।
निज पूजते हैं पीर-पैगम्बर कुगुरु हित जान के।
श्रद्धा हटी निज धर्म से मिथ्यात्व-मग को मान के ।।३।।

उपहास मस्तक का हुआ जिससे न समझें तत्व को।
हटग्राहिता धारण करें छोड़ा धवल सम्यक्त्व को ।।
होकर कलंकी धर्म को हमने कलंकित कर दिया।
आदर्श अनुपम में सदा को पाप अंकित कर दिया ।।४।।

हम-सी अधम सन्तान से सद्धर्म-दीपक बुझ चला।
श्रावक न होते और कुछ होते तभी होता भला ।।

हत रूढ़ियों को धर्म का रूपक बनाया आज है।
फंसकर उसीमें जाति भी अब हो रही मुहताज है ॥५॥

हा! न्याय-नीति नियम नशाकर घोर हटधर्मी बने।
परिणत किया जिन धर्म को सन्ताप शापों में सने ॥
सुनते न क्यों कहते यदपि उत्थान की निज वार्ता।
भावी समुन्नति के लिए मन में न नेक उदारता ॥६॥

सोये बहुत हे बन्धुओ! अब शीघ्र ही जागो, उठो।
अज्ञान निद्रा मोह कलमष द्वेष को त्यागो उठो ॥
इससे अधिक कुछ और मुझको आपसे कहना नहीं।
श्रम से हमारी जाति उन्नति शीघ्र पा सकती सही ॥७॥

पूज्य पिता की जय जय जय

जय जय महाघोष से गूंजीं, दशों दिशायें विश्व महान।
पुण्य नींद से चकित इन्द्र ने, सुना श्री जिनवर का गान ॥

दिग्गज कँपे और दिग्पालों ने, गुण-गौरव गान किये।
पुण्यवान सर सेठ हुकमचन्द, युग-युग सौ-सौ वर्ष जियें ॥

नेत्रहीन दीपक दिखलावें, जगमग दीपक वाले को।
और पंगु यदि छूना चाहे, रजत ज्योति उजियाले को ॥

नभ के तारे गिन जाने का, पूर्ण हो सके यदि विज्ञान।
तो शायद कोई कर पाये, पूज्य पिताश्री का गुणगान ॥

किन्तु स्वयं की लौह लखनी, पर मेरा अधिकार नहीं।
नहीं पूर्ण होगी यश गाथा, मौन रहूँ स्वीकार नहीं ॥

रोम-रोम पुलकित है मेरा, मेरा मुझे अपना भी भान।
गाजे अपनी हृदय बीन पर, पूज्य पिताश्री का यशगान ॥

त्याग किया जिसने इस जग में, उसकी कीर्ति ध्वजा फहरी।
राग और वैराग सभी ले, जिनकी जयति ध्वजा लहरी ॥

महिमामय कर्तव्यशील, औदार्य दुन्दुभी बाज रही।
सहनशीलता, गुणग्राहकता गजारूढ़ हो गाज रही ॥

नीतिकुशल चारित्रवान्, निर्भीक साहसी और विनीत।
उत्साही अभिमान रहित, गम्भीर विवेकी और पुनीत ।।

धर्म अर्थ अरु काम मोक्ष, सब एक साथ तुमने साधे।
साम दाम और दण्ड भेद से, जन समूह रक्खा बाँधे ।।

पुण्ययोग सब शुभ कर्मों के, तव चरणों पर न्यौछावर।
और विश्व की धवल कीर्ति सब, तुम्हें रिझाये त्याग प्रवर ।।

भरत चक्रवर्ती-सा वैभव, पाकर भी तुम अमल धवल।
और उन्हीं से पंचम युग में, पङ्क हीन जल भिन्न कमल ।।

ओ दीनों के प्राण, पीड़ितों के रक्षक, आधार महान।
जैन जाति के मेरुदण्ड, औ विद्वद्गुण के मित्र प्रधान ।।

अन्न, वस्त्र, औषधि, शिक्षा के मुक्तहस्त दानी विद्वान।
धर्म दिवाकर औ कुल भूषण, मूर्तिमान आदर्श महान ।।

हम छोटे बालक सब तेरे, श्रीचरणों की छाया में।
निडर और निर्भीक रह रहे, इन्द्रजाल-सी माया में ।।

तव प्रसाद से हीरा भैया, हीरा सम है ज्योतिर्मान।
और हमारे छोटे भैया, भी उनसे ही कीरतिवान ।।

आत्म-ज्योति की जगी दीपिका, कंचन-सी आभा पाकर।
आत्मलीन हो गई आत्मा, प्रेमामृत घन बरसाकर ।।

आज प्रार्थना करते हम सब, यह आशीष हमें भी दो।
तेरे पदचिन्हों पर चल दें, हममें इतना बल भर दो ।।

प्रभु से इतनी विनय हमारी, ध्येय तुम्हारा प्राप्त तुम्हें।
तुमसी धवल कीर्ति श्री गरिमा, धर्म भाव हो प्राप्त हमें ।।

अवनि और अंबर तक छाये, इस गुण यश गाथा की जय।
गगन गुंजा दें हम सब मिलकर पूज्य पिता की जय जय जय ।।

* * * *

धर्म जो कि पुस्तकों, मन्दिरों और मठों में बन्द है, उसे जीवन में लाना होगा। बिना जीवन में उतारे केवल आस्तिकवाद की दुहाई देने मात्र से क्या होने वाला है।

महापुरुष

जो विपत्ति में धैर्य क्षमा रखते ऊँचे बन ।
जगत्प्रलोभन देख नहीं होते चंचल मन ।।
सभा भूमि में वचन कुशल हैं गौरवशाली ।
युद्ध-भूमि में दिखलाते वीरता निराली ।।

सदाचार संन्याय पर मरने को तैयार हैं ।
महापुरुष वे ही यहाँ ईश्वर के अवतार हैं ।।

सम्पति आई हर्ष नहीं पर आया मन में ।
आई अगर विपत्ति क्षीणता नहीं बदन में ।।
सत्तू पावें कभी-कभी या मोदक पावें ।
पर घबरावें नहीं, नहीं मन में इतरावें ।।

ऐसी जिनकी रीति है पुरुष सदा वे धन्य हैं ।
उन समान सौभाग्य तो कभी न पाते अन्य हैं ।।

★ ★ ★ ★

स्वदेश सन्देश

महावीर के अनुयायी प्रिय पुत्र हमारे—श्वेताम्बर, ढूँढिया, दिगम्बर-पंथी सारे ।
उठो सवेरा हो गया, दो निद्रा को त्याग; कुक्कु बाँग लगा चुका, लगा बोलने काग ।
अँधेरा गत हुआ ।।

उदयाचल पर बाल-सूर्य की लाली छाई; उषा सुन्दरी अहो, जगाने तुमको आई ।
मन्द-मन्द बहने लगा, प्रातः मलय-समीर;सभी जातियाँ हैं खड़ी, उन्नति-नद के तीर ।
लगाने डुबकियाँ ।।

उठो उठो इस तरह कहाँ तक पड़े रहोगे; कुटिल काल की कड़ी धमकियाँ अरे ! सहोगे ।
मेरे प्यारो ! सिंह से, बनो न कायर स्यार; तन्द्रामय-जीवन बिता, बनो न भारत भार ।
शीघ्र शय्या तजो ।।

मत इसकी परवाह करो क्या कौन कहेगा; तथा सहायक कौन, हमारे संग रहेगा ।
क्या चिंता तुम हो वही, जिसकी शक्ति अनंत; जिसका आदि मिला नहीं, और न होगा अंत ।
अटल सिद्धान्त है ।।

यद्यपि कुछ कुछ लोग, मार्ग रोकेंगे आकर: किन्तु शीघ्र ही भाग जायेंगे धक्के खाकर।
यदपि मिलेंगे मार्ग में, तुमको कितने शूल; पग रखते बन जायेंगे वे सबके सब फूल।
यही आश्चर्य है ॥

युद्ध स्वार्थ अथवा असत्य से करना होगा; जीने ही के लिए, तुम्हें अब मरना होगा।
तब न मरे अब ही मरे, मरना निस्सन्देह; अब न मरे सब कुछ रहे, रहे न केवल देह।
देह ममता तजो ॥

सुनो-सुनो ! जो आज, कहीं साहस तुम हारे; डूबोगे यों, नहीं लगोगे कभी किनारे।
तन-मन-धन से देश हित, करो प्रमाद विसार; सबके संग मिलकर सहो, भूख-प्यास या मार।
पुनः आनन्द भी ॥

पिछड़ गये हो बहुत, लड़ रहे हो आपस में; पकड़-पकड़ रूढ़ियाँ, घोलते हो विष रस में।
ऐसा ही करते रहो, तो विनाश है पास; बस भविष्य में देयगा, तव-परिचय इतिहास।
एक मृत जाति कह ॥

—: o :—

लेखनी

हे लेखनी निर्भीक लिख दे कौम की असली दशा।
प्रत्येक मानव रूढ़ियों के जाल में कैसा फँसा ?
करनी पड़ेगी बन्धु कृत्यों की तुझे आलोचना।
प्रियवर हमारे क्या कहेंगे यह न मन में सोचना ॥१॥

प्रिय सत्य लिखने में तुझे परमेश पति का भय नहीं।
ध्रुव सत्य से डरकर कभी होती जगत में जय नहीं ॥
लज्जा-विवश यदि दोष हम कहते नहीं तो भूल है।
भीषण तनिक-सी भूल वह सर्वत्र अवनति मूल है ॥२॥

जब तक न दोषों की कड़ी आलोचना की जायगी।
तब तक न यह नर जाति अपना पथ-प्रदर्शक पायगी ॥
कर्तव्य वश करना पड़े जो कार्य इस संसार में।
वह कार्य कर आधार प्रभु कर्तव्य पारावार में ॥३॥

समाज सम्बोधन

ऐ जैन क़ौम अपना तू संगठन बनाकर।
अब सुर्खरू भी होजा बदनाम हो हुआ कर ॥ १ ॥

जुल्मोसितम के बदले लाजिम है ये दया कर।
हो रोग दूर जिससे ऐसी कोई दवा कर ॥ २ ॥

दिल से खुदी मिटाकर दिल आइना बनाकर।
क़िस्मत हमें दिखा दे बिगड़ी हुई बनाकर ॥ ३ ॥

जब हम कहेंगे तुमको तुम वीर के भगत हो।
इस क़ौम का दिखा दो इक संगठन बना कर ॥ ४ ॥

पीछे हटो न हरगिज़ कुरबान जान कर दो।
मैदाने मार्फ़त में रक्खो क़दम जमा कर ॥ ५ ॥

क्या देखते हो आओ उठो कमर को कसके।
खिदमत करो वतन की अब खूब मन लगाकर ॥ ६ ॥

लुत्फोकरम के बदले जुल्मोसितम न करना।
क्या खाक पाओगे सुख औरों का दिल दुखा कर ॥ ७ ॥

ऐ 'दास' आरज़ू है घर-घर में हो उजाला।
कर दो जहाँ में रोशन मन का दिया जला कर ॥ ८ ॥

× × × ×

हृदयोद्बोधन

हृदय तू मेरा कहना मान।

सबसे बन्धुभाव रख मन में, तज अनुचित अभिमान।
नीच न समझ किसी नर को तू, नीच कर्म जिय जान ॥१॥

भाव-भेष-भाषा-भोजन हो भाइयन के सामान।
इनको एक विवेक युक्त कर, हो तेरा उत्थान ॥२॥

क्या जीना जो निज हित जीना, शूकर-स्वान-समान।
कर पावे यदि देश हेतु कछु, तो तू है धीमान ॥३॥

आपस की फूट

इस दर्जा तेरी हालत ऐ क़ौम गिर रही है।
काग़ज़ की नाव गोया पानी पै तिर रही है।।
तक़दीर आज तेरी क्यों तुझसे फिर रही है।
सुख-शान्ती के बदले आफ़त में घिर रही है।।

तेरे ही दम क़दम से थी रोशनी जहाँ में।
तू क्या थी कह सके ये ! ताक़त नहीं ज़बां में।। १।।

ऐसा भी एक दिन था तू लाखों पै थी भारी।
अफ़सोस आज खुद ही तू बन गई भिखारी।।
सीने पै तेरे हरदम चलती है ग़म की आरी।
लुत्फ़ों अदा के बदले सीखी सितम शआरी।।

हाथों से खुद तू अपने बरबाद हो रही है।
सेजों को छोड़कर तू कांटों पै सो रही है।। २।।

आपस की फूट तुझको बरबाद कर रही है।
मैदान जीतकर तू खुद आप हर रही है।।
संसार की हवस में नाहक़ तू मर रही है।
जुर्मो गुनाह की गठरी क्यों सर पै धर रही है।।

ग़फ़लत का परदा अपनी आंखों से अब उठा दे।
शाने कुहन का जलवा इक बार फिर दिखा दे।। ३।।

औरों की तरह तू भी दुनिया में नाम करले।
जो काम कल है करना, वोह आज काम करले।।
मरना पड़ेगा आख़िर गो इन्तजाम करले।
भक्ति दिखा के अपनी मालिक को राम करले।।

ग़फ़लत की नींद में क्यों मदहोश हो रही है।
कांटे तू अपनी राह में खुद आप बो रही है।। ४।।

खोल आँख देख ग़ाफिल दुनियाँ की क्या है हालत ?
हर कौम की तमन्ना हासिल हो जाहो[1] हशमत[2]।।
हर शख्श के लबों पर ज़िक्रे हुसूलेरफ़अत[3]।
तुझको मगर नहीं है पर्वाए नंगोज़िल्लत[4]।।

ऐ क़ौम होश में आ कुछ नाम कर जहां में।
जो काम मोक्ष के हों, वोह काम कर जहां में।। ५।।

---

१. रुत्बा २. शान ३. बुलन्दी का हासिल करना ४. बदनामी।

हुनर अपने दिखाओ तुम

अजीजों[1] कीनओ[2] बुग़जो[2] हसद[2] दिल से मिटाओ तुम।
खुशी से क़ौम की खातिर लहू अपना बहाओ तुम ॥ १ ॥

जो भूखे मर रहे हैं कुछ इन्हें खाना खिलाओ तुम।
मुईने बेकसां[3] होकर न इतना जुल्म ढाओ तुम ॥ २ ॥

करो कुछ दीन की भी फिक्र ऐ दौलत के मतवालो।
न पीकर वाद-ए पिन्दा[4] कि खुद को भूल जाओ तुम ॥ ३ ॥

सखी, जय्याज, दानी, रहमदिल हो नेक खसलत हो।
जो रखते हो हुनर मैदान में आकर दिखाओ तुम ॥ ४ ॥

ज़रा तो रहम खाओ बेकसों की आहो ज़ारी पर।
खुदा के वास्ते जुल्मोसितम इतने न ढाओ तुम ॥ ५ ॥

तसाहुल[5] से तुम्हारे हो गये बेधर्म जो लाखों।
करो तदबीर कुछ ऐसी उन्हें अपना बनाओ तुम ॥ ६ ॥

तुम्हारे दिल में गर हुब्बे वतन का जोश बाक़ी है।
बनाकर संगठन अपना हमें भी तो दिखाओ तुम ॥ ७ ॥

मसल मशहूर है ऐ दास 'दास' यह सारे जमाने में।
दुबारा फिर गिनो गर गिनते-गिनते भूल जाओ तुम ॥ ८ ॥

इस धर्म को बचा दो

ऐ जैन नौजवानो काहिलपना हटा दो,
उट्ठो कमर को कसके आगे कदम बढ़ा दो ॥ १ ॥

निकलंक की तरह तुम मजहब पै सीखो मरना,
ग़ैरों के आक्रमण[6] से इस धर्म को बचा दो ॥ २ ॥

ऐ सेठ साहूकारो ऊँची दुकान वालो,
परचार धर्म का हो कुछ धन को भी लुटा दो ॥३॥

तुम संगठन बनाओ छोड़ो निफ़ाक़[7] अपना,
हम एक हो गए हैं औरों को यह दिखा दो ॥ ४ ॥

---

१. प्यारों २. दूसरों से द्वेष-भाव ३. ग़रीबों के मददगार ४. गफ़लत की शराब ५. लापरवाही।
६. हमला ७. फूट।

सन्तान वीर होकर नामर्द बन रहे हो,
होते हैं वीर कैसे आलम को यह दिखा दो ।। ५ ।।

मशगूल[1] ऐश[2] में हो टुक ध्यान दो इधर भी,
भूखे जो मर रहे हैं खाना इन्हें खिला दो ।। ६ ।।

बिगड़े हुए तुम्हारे सब काम ठीक होंगे,
हाँ धर्म पर तुम अपना तन-मन ये सब मिटा दो ।। ७ ।।

मुस्लिम जो हो रहे हैं प्यारे तुम्हारे भाई,
फिर फिक्र अपना करना पहले इन्हें बचा दो ।। ८ ।।

यह फर्ज़ है तुम्हारा यह धर्म है तुम्हारा,
सबको सबक़ दया का ऐ जैनियो सिखा दो ।। ९ ।।

ऐ वीर ! 'दास' की अब अन्तिम विनय यही है,
तुम बेकसां की सेवा करना मुझे सिखादो ।। १० ।।

अधिकार

जल जाये प्राणों की ममता, मिट जाये जग का अनुराग ।
ओ गायक ! गा ऐसा गायन, धधक उठे जो ऐसी आग ।।

कम्पित मन दृढ़ता को पाए—जाए सुप्त हृदय भी जाग ।
उस स्वराग में लय हो, करदूँ—मैं अपने प्राणों का त्याग ।।

मर जाए कायरता मन की—नाहरता पाए सन्मान ।
मानवता उत्सुक मन होकर—निर्मित करे भविष्य महान ।।

विकसित हों अभिलाषाएँ भी—और अलौकिक सुखप्रद-ज्ञान ।
छेड़-छेड़ ! बस मेरे गायक वही सुरीली मोहक तान ।।

क्षेम रहे, या प्रलय मचे, या—विश्व कर उठे हाहाकार ।
पर स्वतंत्र बन जाने का हो—मन में मेरे भव्य-विचार ।।

वाणी, आकृति, और क्रिया से—हो बस, प्रगट यही उद्गार ।
नहीं चाहिये मुझे पराया—मिल जाये मेरा अधिकार ।।

---

१. मस्त २. ऐशो-आराम ।

वन्दे वीरम्

पुण्य दिवस है आज वीर प्रभु ने अवतार लिया था।
दुख-विश्व के साथ एक गुरुतर उपकार किया था॥

कठिन कार्य नेतृत्व-लोकहित को स्वीकार किया था।
मन्त्र अहिंसा का जगती को करुणाधार दिया था॥

है जिसके नेतृत्व काल की अब तक हम पर छाया।
'हम उनके' यह कहने भर का गौरव हमने पाया॥

यदि हम उनके पथ पर चलते तो मिट जाती माया।
रहता नहीं कभी भी यह मन सुख के हित ललचाया॥

वह विभूति! जिनका दर्शन है सबको मंगलकारी।
जिनकी शान्ति-मुखाकृति से तर जाते पापाचारी॥

नाम मात्र जिनका अ-व्यर्थ कहलाता संकटहारी।
अभय लोक का वारी बनता वीर-नाम व्यापारी॥

वन्दनीय वह अखिल विश्व के माया-मोह विजेता।
सर्व शक्ति-शाली परमेश्वर! जग के अनुपम नेता॥

सीमा-हीन ज्ञान के बल पर, हैं अणु-अणु के वेता।
गाते जिनकी सतत् महत्ता मुनि सुर-गण अधिनेता॥

हृदय उन्हीं के चिन्तन में अब भक्ति युक्त होकर हम।
बदल वासना-पूर्ण विश्व का यह मिथ्या कार्य-क्रम॥

तभी वेदना-वह्नि स्वतः ही, हो जावेगी उपशम।
अतः प्रेम से कहो निरन्तर सुख-कर वन्दे वीरम्।.

छोटे भिखारियों के लिए तो सरकार भिखारी-बिल बना देगी; पर मैं पूछता हूँ कि इन बड़े भिखारियों का सरकार क्या करेगी? जब चुनाव आते हैं, तब ये बड़े भिखारी घर-घर डोलते हैं—"लाओ वोट और लो नोट!"

मैं चाहता हूँ, प्रत्येक व्यक्ति एक-दूसरे के सद्विचारों का समादर करे। समस्त धर्मों के प्रति सहिष्णुता रखे। उदार बनेंगे तो पाएँगे, संकुचित बनेंगे तो खोयेंगे।

अतीत-स्मृति

इन सूखे हाड़ों के भीतर भरी धधकती-ज्वाला ।
जिसे शान्त करने समर्थ है नहीं असित घनमाला ।।
इस भग्नावशेष की रज में समुत्थान की आशा—
रखती है अस्तित्व, किन्तु है नहीं देखने वाला ।।

माना, आज हुए हैं कायर त्याग पूर्वजों की कृति ।
स्वर्ग अतीत, कला-कौशल, बल, हुआ सभी कुछ विस्मृति।
पर फिर भी अवशिष्ट भाग में भी इच्छित जीवन है—
वह क्या ? यही कि मन में खेले नित अतीत की स्मृति ।।

पतन मार्ग से विमुख, सुपथ में अग्रणीयता देकर ।
मानवीयता के सुपात्र में अमर-अमिय-रस को भर ।।
कर सकती नूतन-उमंगमय ज्योति-राशि आलोकित—
भूल न जाएँ यदि हम अपने पूर्वगुणी-जन का स्वर ।।

वह थे, हाँ ! सन्तान उन्हीं की हम भी आज कहाते ।
पर कितना चरणानुसरण कर कीर्तिराशि अपनाते ।
'कुछ भी नहीं !' इसी उत्तर में केन्द्रित सारी चेष्टा—
काश ! याद भी रख सकते तो इतना नहीं लजाते ।।

घर के धन्ना सेठ

हैं वीर वही कुछ दुनिया में, जो देश के हित मर जाते हैं ।
रहते हैं हमेशा वोह जिन्दा, जो धर्म पै जान गँवाते हैं ।। १ ।।

कुढ़ता है कोई तो कुढ़ने दो, जलता है अगर तो जलने दो ।
जो भाई हमारे ग़ाफिल हैं, सोते से हम उनको जगाते हैं ।। २ ।।

वो घर के धन्ना सेठ सही, बलवान सही, धनवान सही ।
लेकिन ये बताए तो कोई कुछ क़ौम के भी काम आते हैं ।। ३ ।।

अपनों से मोहब्बत रखते हैं ग़ैरों से नहीं कुछ बैर हमें ।
मिल जुल के रहो संसार में तुम पैग़ाम ये सबको सुनाते हैं ।। ४ ।।

ऐ 'दास' न कर ग़म कुछ इसका, जलने से न ग़ैरों के घबरा ।
हम अपने बिछुड़े भटकों को सीने से अपने लगाते हैं ।। ५ ।।

तेरी आयु में कमती पड़े रोज पल छिन की

तेरी आयु में कमती पड़े, रोज पल छिन की, रोज पल छिन की।
करना सो करले आज खबर नहीं कल की ।।

तू न गर्भ मास में निश दिन कष्ट सहे था ।
ऊपर को पैर नीचे तेरा शीश रहे था ।।
तेरे आस-पास मल और मूत्र बहे था ।
पड़ा घोर नरक में तू राम ही राम कहे था ।।
मैं सदा करूंगा भजन विपत कर हल की ।
तेरी आयु में कमती पड़े रोज पल छिन की ।।

फिर धरती में आये छूटा उस दुःख से ।
घुट्टी और दूधी लगा पीवने मुख से ।।
सठ मोहे नींद में भूल फूल गया सुख में ।
नीति विमुख हुए कर रहा राम के दुख से ।।
हुई खेल-कूद में बाल अवस्था हलकी ।
तेरी आयु में कमती पड़े रोज पल छिन की ।।

फिर तरुन अवस्था हुई, वीरेतन जागी ।
और मोह में अंधा हुआ नार अनुरागी ।।
नहीं धोये दिल के दाग बना ना वेदागी ।
सब कौल बैन गया भूल हुए नर भागी ।।
तेने रतन जवानी खोई बराबर खल की ।
तेरी आयु में कमती पड़े रोज पल छिन की ।।

फिर तरुन अवस्था गई बुढ़ापा आया ।
सब इन्द्री निर्बल हुईं सुकड़ गई काया ।
फिर सुत दारा मंजा बाहिर बिछवाया ।।
कहे शीशराम मल मल के हाथ पछताया ।
जब मरन लगा तब सुमरनी छलकी ।
तेरी आयु में कमती पड़े रोज पल छिन की ।।

★ ★ ★ ★

महगांव आन्दोलन

श्री श्यामलाल पांडवीय
मुरार, ग्वालियर

जिस महगांव कांड ने सारे जैन समाज को झकझोर दिया था और जिसके विरोध में सारे समाज ने अपने भेदभाव भूलकर संगठित होने का परिचय दिया था, वह महगांव कांड क्या है और उसमें स्वर्गीय लाला तनसुखराय का कितना और क्या योगदान रहा है ? उसकी जानकारी दिये अपने बिना उनका स्मृति ग्रंथ अधूरा ही रहेगा यह घटना सन् १९३५ की है।

पुराने ग्वालियर राज्य में महगांव एक छोटा सा नगर है, वहां पर थोड़े से घर जैनियों के हैं और एक जैन मन्दिर है। वहां पर कुछ सम्प्रदायवादी हिन्दू तथा जैन धर्मद्वेषियों को जैन मन्दिर का होना बहुत खटकता था। अतः वे सदा धार्मिक विद्वेष के कारण उनके धर्म-पालन में सदा अड़चनें डालते रहते थे। उनका विरोध करके हर प्रकार से उनको तंग किया जाता था। सन् १९३५ में यहां पर तहसील का मुकाम होने के कारण कुछ सम्प्रदायवादी अधिकारियों द्वारा उनको समर्थन मिल जाने के कारण उनके जैनविद्वेष को और बल मिलने लगा। स्वर्गीय महाराज माधवराव की जयन्ती राज्य भर में मनाई जाती थी। जैनियों से हमेशा सबसे अधिक चन्दा लिया जाता था, जिसको वे दे दिया करते थे और कभी उनको इसकी कोई शिकायत नहीं रही। इस हालत में भी जबकि उनसे सख्ती से ज्यादा चन्दा वसूल कर लिया जाता था ।

सन् १९३५ की माधव जयन्ती पर जो २ नवम्बर को होनी थी, इस अवसर पर किये जाने वाले रंडी के नाच के लिए जैनियों ने चन्दा देने से इन्कार कर दिया। इस पर साम्प्रदायिक अधिकारी भी कूद गये। जैनधर्म द्वेषियों ने जो पहले से धर्मद्वेष रखते थे, अधिकारियों को उकसाने और भड़काने लगे। संयोग से तहसीलदार और जुडीशियल आफिसर उस दिन महगांव नहीं थे। नायब तहसीलदार इंचार्ज था। नायब तहसीलदार और थानेदार ने माधव जयन्ती मनाने के लिये स्वर्गीय महाराजा का चित्र बैठाकर निकालने के लिये मन्दिर का विमान, समोशरण और सिंहासन जिसका उपयोग केवल जिनेन्द्र भगवान के लिये ही किया जाता है उन सबको मांगा। जैनियों ने अपने धार्मिक विश्वास के अनुसार कि भगवान की ये वस्तुयें किसी व्यक्तिगत उपयोग के लिये नहीं लाई जा सकतीं, देने से अपनी असमर्थता प्रकट की। इस पर जैनियों को बहुत बुरा-भला कहा और बुरी-बुरी गालियां दीं। यह भी धमकी दी कि देख लेंगे तुम्हारे मन्दिर और समाज को; उसकी जरूरत ही नहीं रखेंगे। उस साल माधव जयन्ती का जुलूस सदा की भांति जैनियों के चबूतरे पर भी नहीं ठहरा। जैनी लोग, जब चबूतरे पर जब जुलूस ठहरता था तो स्वर्गीय महाराजा के चित्र की आरती तथा इत्रपान किया करते थे। इस घटना पर जैनों का जो अपमान किया गया था उस समय यह किसी ने नहीं सोचा था कि जैन मन्दिर (धर्मस्थान) को भी अपमानित और भ्रष्ट किया जायगा।

जयन्ती उत्सव के दूसरे दिन (३ नवम्बर १९३५) की रात को किसी समय जैन मंदिर में घुसकर सबकी सब २७ मूर्तियां वहां से उठा ली गईं जिनमें कई मूर्तियां वजन में बहुत भारी थीं। जैन शास्त्र जलाये गये और मन्दिर के भीतर पाखाना-पेशाब करके धर्मस्थान को अपवित्र किया गया। कीमती माल चांदी की छड़िया आदि कोई नहीं उठाई, सब पड़ा छोड़ गये। कीमती कपड़े न ले गये और न जलाये गये। जलाये तो केवल धर्मग्रंथ ही जलाये। यह सब सुनियोजित धर्म का अपमान और धर्मस्थान भ्रष्ट करने का षडयन्त्र था जिसकी पुष्टि इससे भी होती है कि बिल्कुल तड़के ही उन धर्मद्वेषियों ने जैनियों को आकर यह तानाजनी करना शुरू कर दिया कि जाओ मन्दिर को जाकर देखो, क्या हो गया। इस प्रकार हंसी उड़ाना शुरू कर दिया। जैनी कुछ समझ नहीं पाये। पर जब मन्दिर को सवेरे पूजा-दर्शन को खोला तो यह दृश्य देकर स्तब्ध रह गए और तब धर्मद्वेषियों द्वारा किए गये उपहास और कहीं गई बातों का अर्थ समझ में आया।

सब से पहले इटावा के जैनों को महगांव के जैनियों ने खबर दी और उन्होंने जैन महासभा को न्याय प्राप्त करने एवं सहायता के लिये लिखा। इसके बाद महगांव के जैन पंचों ने ग्वालियर दिगम्बर जैन ऐसोसियेशन को अपना यह मामला बतलाकर सहायता मांगी। ग्वालियर दिगम्बर जैन ऐसोसियेशन ने राज्य के उच्च अधिकारियों से मिलकर मूर्तियों के सुराग के लिये सी० आई० डी० की नियुक्ति कराई। महगांव पुलिस के सब-इन्सपेक्टर का तबादला कराया। दरबार कौंसिल में पूरा विवरण देने वाला एक मेमोरेन्डम भेजकर न्याय की मांग की। सर्वसाधारण की जानकारी के लिये पूरा विवरण प्रकाशित किया गया। मूर्तियों की बरामदगी तथा मुलजिमों की गिरफ्तारी के लिये २०० रुपये का इनाम सरकारी गजट में निकलवाया गया। नियुक्ति सी० आई० डी० द्वारा प्रयत्न कराकर मूर्तियां बरामद कराई गईं जिनमें दो पीतल की छोटी मूर्तियों को छोड़कर शेष २५ मूर्तियां ३०० रुपये मल्लाहों देकर बरामद हुईं। ऐसोसियेशन के तत्कालीन उत्साही मन्त्री श्री श्यामलाल पांडवीय ने मौके पर पहुँचकर जैनों को धीरज बंधाया। कितनी ही बार जा जाकर अपने समक्ष साक्षियां कराईं, सबूत इकट्ठा किया। पांडवीयजी को जहर देने का असफल प्रयत्न किया गया जिससे वे रास्ते से दूर कर दिये जायें। यह सब प्रयत्न करने पर भी कुछ हो नहीं पा रहा था और राज्य के भय से बड़े-बड़े श्रीमान इसकी सहायता करने में राज्य विरोध का खतरा लेना नहीं चाहते थे। इधर ग्वालियर राज्य इसको साधारण चोरी का रूप देकर इसको समाप्त कर देना चाहता था। यही नहीं उस चोरी में एक जैनी को भी शामिल किया गया और मारपीट करके उससे व उसकी स्त्री से इकबाल भी करा लिया गया। स्थिति जटिल बनती जा रही थी। पुलिस ने प्रतिवाद करके यह आरोप भी लगाया कि यह एक राज्य-विरोधी व्यक्ति का धार्मिक अपमान का रंग देकर राज्य को बदनाम करने का प्रयत्न है। यह इशारा दि० जैन एसोसियेशन ग्वालियर के मन्त्री के प्रति था।

श्री श्यामलाल पाण्डवीय ने इस काण्ड को दिगम्बर जैन परिषद के दिल्ली अधिवेशन के अवसर पर दिल्ली जाकर परिषद के सामने रखा। वहां भी ठण्डे रूप में ही लिया जाने लगा पर स्वर्गीय बाबू तनसुखराय जैन का अन्तरमानस धर्म के इस अपमान से विकल हो उठा और

उन्होंने इस काण्ड के लिये कदम उठाये जाने की अपील की। परिषद ने इस काण्ड को अपने हाथ में लिया। बाबूजी ग्वालियर आये, सारी जानकारी ली। लेखक के घर पर ही जब तक पूरी रिपोर्ट तैयार नहीं करली गई, रहे।

उस दिन दिल्ली परिषद् अधिवेशन में पंडाल में सबजैक्ट कमेटी की बैठक हो रही थी। महगांव कांड का प्रस्ताव था। समाज केवल प्रस्ताव पास करना जानती है। उसके खून में जोश नहीं है। आंसू बहाने में कुछ तथ्य नहीं। न्याय की मांग कर देने में कुछ नहीं होता। आप में अनेक कानून के पंडित हैं। आप कुछ कर लीजिए। आगे हमारी बारी है। मैं अपने साथी बन्धुओं में जो कुछ हो सकेगा करूंगा। ये थे शब्द जिससे आशा की एक किरण नजर आई और उद्देश्यसिद्धि के लिए एक आवाज सुन पड़ी। यह शब्द थे श्री अयोध्याप्रसाद गोयलीय के जिन्होंने एक स्फूर्ति पैदा कर दी। परिषद ने १६ जनवरी सन् १६३६ को महगांव अत्याचार विरोधी दिवस मनाये जाने का निश्चय किया।

१६ जनवरी सन् १६३६ को भारतवर्ष में महगांव अत्याचार विरोधी दिवस मनाया गया, उपवास रखा गया, सभा की गई और प्रस्ताव पास करके ग्वालियर दरबार तथा रेजीडेन्ट को भेजा गया। स्वयं श्री अयोध्याप्रसाद गोयलीय मा० दि० जैन परिषद की महगांव काण्ड सब कमेटी के मन्त्री थे। बड़े जोश-खरोश के साथ सारे देश में महगांव डे मनाया गया। १६ जनवरी इतवार सन् १६३६ के दिन भारत के कौने-कौने में महगांव अत्याचार दिवस मनाया गया। भारत के जैनी मात्र ने साम्प्रदायिक और पार्टीबाजी के भेदभाव को भूलकर महगांव दिवस मनाया। अनेक स्थानों पर हिन्दू-मुसलमानों ने भी सहयोग दिया। उस रोज भारत के जैनी मात्र ने यथासाध्य व्रत किया, कारोबार बन्द रखा और हड़ताल रखी, शोक प्रदर्शक जुलूस निकाले, विरोध में परिषद द्वारा दिया गया प्रस्ताव पास किया।

परिषद ने इस अत्याचार के विरोध में जैसे ही आवाज उठाई। समस्त जैन समाज विक्षुब्ध हो उठा और महगांव दिवस ने जैन समाज में खलबली पैदा कर दी। महगांव कांड से जैन समाज गोली खाये शेर की भांति उत्तेजित हो उठा। बहुत से स्थानों से सत्याग्रह छेड़ने की सलाह दी गई। लोग समझते थे कि जैन समाज असंगठित है अकर्मण्य है। उनकी इस हलचल से आंखें खुल गई। महगांव के देश-व्यापी आंदोलन से लोग समझ गये कि जैन आपस में चाहे कितने ही लड़-झगड़ लें पर धर्म की आन-मान के प्रश्न पर उन्हें एक होते देर नहीं लगेगी। वे अपमान नहीं सह सकते।

जैनियों ने किसी धर्म से कभी द्वेष नहीं किया बल्कि वे सब धर्मों का सदा आदर करते हैं। वे सभी धर्म-स्थानों के प्रति आदर रखते हैं। किसी भी धर्म के धर्मस्थान को अपवित्र करने को वे पाप समझते हैं। अतः वे इस प्रकार के अन्याय और अपमान को सह नहीं सकते—इस जागृति ने यह सिद्ध कर दिया। महगांव कांड से जो जागृति हुई उससे भविष्य उज्ज्वल बनने की पूरी आशा है। इस आंदोलन से ग्वालियर सरकार के कान खड़े हुए और उन्होंने इसको साधारण चोरी का रूप देकर संसार को भुलावे में डालना चाहा। परिषद ने उसका प्रतिवाद करके बता दिया कि वास्तव में यह चोरी नहीं थी। यह तो जान-बूझकर जैन

धर्मद्वेषियों का सुनियोजित रूप में धर्म का अपमान किया था। यदि चोरी की नियत से आततताई मन्दिर में घुसे होते तो कई हजार रुपये का सामान, चांदी-सोने का सामान उठाकर ले गये होते किन्तु कीमती सामान पड़ा रहा। केवल मूर्तियां एक नहीं—दो नहीं—सब की सब २७ उठाकर ले गये। केवल धर्मग्रन्थ जलाये—मलमूत्र से मन्दिर को अपवित्र किया। यह काम चोरों का नहीं हो सकता। क्योंकि ३०—४० सेर वजन की एक एक मूर्ति और वह भी पत्थर की जिसके उठाने की मजदूरी भी वसूल नहीं हो सकती, कौन उसकी चोरी करेगा। जनता को धोके में डालने का इस प्रकार का प्रयत्न किया गया। धर्मद्वेषियों तथा ग्वालियर राज्य की यह चाल इसलिये चली कि महगांव दिवस न मनाया जा सके; पर यह चाल व्यर्थ गई और यह दिवस सारे भारतवर्ष में बड़े जोर-शोर से मनाया गया—भारत के अपने पत्रों में भी इस कांड के विरोध में लेख लिखे गए और इस अत्याचार के विरोध में आवाज उठाई गई तथा इस कृत्य की निन्दा की गई।

इसके बाद इस मामले को अदालत में ले आया गया और स्वर्गीय बाबू तनसुखराय ने इसमें भी बड़ा परिश्रम किया। वकीलों की नियुक्ति, अदालत में पैरवी सभी व्यवस्था बड़े परिश्रम और योग्यता से की तथा गर्वनमेंट एडवोकेट जनरल ला० श्यामलाल, प्रसिद्ध एडवोकेट श्री लालचन्द जैन आदि को पैरवी के लिये लाये। महगांव कांड की इस सफलता का बहुत कुछ श्रेय ला० तनसुखराय को है। इसके द्वारा हुई जैन-जागृति उनकी एक बहुमूल्य स्मृति सदा अमर रहेगी।

दस्सा पूजन अधिकार

श्री राजेन्द्रकुमार जैन

जैन समाज किसी समय करोड़ों की संख्या में था। उस समय सम्यक्त्व के आठ अंगों का पालन करना प्रत्येक जैन के लिए आवश्यक था। अन्य समाज के व्यक्ति जैनों के लिए वात्सल्य और स्थितिकरण को देखकर भूरि-भूरि प्रशन्सा करते थे। परन्तु धीरे-धीरे इन गुणों का समाज में अभाव होता गया और छोटी-छोटी बातों पर समाज में एक-दूसरे पर दोषारोपण होने लगा; किसी व्यक्ति के चरित्र में कोई दोष आया तत्काल उसे जाति से बाहर निकाल दिया। धीरे-धीरे ऐसे व्यक्तियों की संख्या बढ़ने लगी। वे ही आगे चलकर 'दस्सा' या 'विनेकवार' के नाम से पुकारे जाने लगे। उन लोगों के साथ रोटी और बेटी का सम्बन्ध बन्द कर दिया गया। उनके साथ यह अन्याय इतना बढ़ा कि भगवान जिनेन्द्र देव के पूजन और प्रक्षाल से उन्हें वंचित कर दिया गया। इससे उन भाइयों के अन्तःकरण पर अत्यधिक ठेस लगी और अनेक अपना धर्म छोड़कर विधर्मी हो गये। भाइयों ने अदालत की शरण ली और कई मन मारकर धर्मध्वजों को कोसते हुए आंठ-आंठ आंसू रोने लगे। उनकी ऐसी दीन परिस्थिति देखकर समाज के नेताओं से न रहा गया और उन्होंने अनेक कठिनाई आने पर भी दस्सा पूजन सम्बन्धी प्रस्ताव

शान के साथ पास किया और उन भाइयों के वास्तविक अधिकार को देने के लिए पूर्ण प्रयत्न किया। १९३८ में हस्तिनापुर में जो परिषद का अधिवेशन हुआ और उसमें दस्सा पूजन अधिकार प्रस्ताव रक्खा गया तो कितनी उथल-पुथल हुई। उसका संक्षिप्त विवरण प्रकट करते हैं जिससे भावी कार्यकर्ता समझें कि श्रेष्ठ सुधारकों को कितनी कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है।

श्री हस्तिनापुर क्षेत्र पर अखिल भारतवर्षीय दि० जैन परिषद की ओर से कान्फ्रेंस ४ तारीख से आरम्भ हुई। इस साल विशेषतौर से जनता कान्फ्रेंस के कारण पिछले साल से दुगुनी आई थी। वीर-सेवक संघ रोहतक, प्रेममण्डल गोहाना, सेवा संघ छपरौली, जैन स्कूल बड़ौत, जैन सेवकमण्डल बड़ौत, जैन कालिज एसोसियेशन मेरठ, जैन यंगमैन्स एसोसियेशन शिमला व न्यू देहली आदि वालिंटियर कोरों के २०० स्वयंसेवकों के अतिरिक्त और बहुत सी कोरें आई थीं। कान्फ्रेंस में हर रोज ३ हजार से लगाकर ४ हजार तक जनता रहती थी।

चार तारीख को परिषद् की कान्फ्रेंस नियमित रूप से प्रारम्भ हुई। प्रातः ही कई सौ आदमियों की उपस्थिति में प्रभात फेरी हुई। दोपहर को एक बजे बा० उलफतराय जी इंजीनियर मेरठ के हाथों झण्डा फहराया गया और उन्हीं के सभापतित्व में कान्फ्रेंस आरम्भ हुई जिसमें पण्डित शीलचन्द जी न्यायतीर्थ के मंगलाचरण पश्चात् बा० उग्रसेनजी हैडमास्टर ने स्वागत तथा कान्फ्रेंस का उद्देश्य बताया। जैन अनाथ आश्रम छपरौली और बड़ौत आदि की भजनमण्डलियों के भजनों के पश्चात् कान्फ्रेंस के मन्त्री मास्टर उग्रसेनजी ने परिषद् परीक्षा बोर्ड के आए हुए सन्देश पढ़कर सुनाये। उसके बाद भाई कौशलप्रसाद जी देहली ने परिषद् की नीति तथा अब तक की सेवाओं पर और आगे के प्रोग्राम पर प्रकाश डाला। बाद में पण्डित शीलचन्दजी ने जैन धर्म की उदारता और जैन जाति की संकीर्णता पर सामयिक भाषण दिया। मास्टर उग्रसेनजी की कुछ सामयिक अपील तथा भजनों के उपरान्त शाम को ४।। बजे सभा समाप्त हुई।

पश्चात् रात को सात बजे से फिर कान्फ्रेंस की दूसरी बैठक मनोनीत सभापति (जो समय पर आ नहीं सके थे) बा० रतनलालजी एम० एल० सी० बिजनौर के सभापतित्व में आरम्भ हुई। मास्टर शिवरामसिंह जी के भजन और पण्डित शीलचन्दजी के मंगलाचरण के पश्चात् बा० रतनलालजी का सभापति की हैसियत से व्याख्यान हुआ। पश्चात् श्रीमती लेखवतीजी का परिषद् के अधिक से अधिक सदस्य बनने तथा शाखायें स्थापित करने का प्रस्ताव पेश हुआ और उस पर व्याख्यान हुआ। उसके बाद स्वामी कर्मानन्दजी ने प्रस्ताव के समर्थन में एक व्याख्यान दिया इसके बाद श्री भन्नूलालजी जौहरी की कविता हुई और आज की कार्यवाही समाप्त हुई।

ता० ५ को फिर प्रभात फेरी हुई और दोपहर को १२।। बजे से मास्टर शिवरामसिंह जी रोहतक के भजनों तथा पं० शीलचन्दजी न्यायतीर्थ खतौली के मंगलाचरण के साथ कान्फ्रेंस की कार्यवाही आरम्भ हुई। श्री अयोध्याप्रसाद गोयलीय ने दस्सा पूजाधिकार वाला प्रस्ताव ओजस्वी भाषण के बाद पेश किया। अखिल भारतवर्षीय दि० जैन परिषद् ने अपने खण्डवा अधिवेशन में दस्सा पूजाधिकार का जो प्रस्ताव पास किया है उसे यह हस्तिनापुर क्षेत्र की जैन कांफ्रेंस सम्मानित और आदर की दृष्टि से देखती हुई सहारनपुर मोहल्ला चौधरान, बड़ौत, कान्धला, गोहाना, धामपुर, नजीमाबाद, सिकन्दरपुर कलां, शामली, अलीगंज, बड़ागांव, पानीपत, बिजनौर

सोनीपत, गंगेरु, मल्हीपुर, शाहदरा, देहली करौलबाग, रोहतक, बुलन्दशहर, करनाल झज्झर, गढ़ीपुख्ता, सिकन्दरपुर, बड़सू, रमाला आदि की जैन पंचायतों की भी सराहना की गई जिन्होंने अपने यहां दस्से भाइयों को पूजा-प्रक्षाल का अधिकार देने की उदारता दिखलाई है। साथ ही अन्य स्थानों की जैन पंचायतों के लिए निश्चय करती है कि वे भी अपने यहां के दस्सा भाइयों को पूजा-प्रक्षाल करने के लिये उत्साहित करके जैन धर्म के प्राचीन आदर्श को उपस्थित करें। प्रस्ताव पेश होते समय पंडाल में तकरीबन ४ हजार आदमी मौजूद थे। स्थितिपालक दल के कई विद्वान भी स्टेज पर बैठे हुए थे। परन्तु प्रस्ताव ऐसे शब्दों तथा ऐसी सामाजिक स्थिति का बखान करते हुए पेश किया गया कि कोई भी उसके विरोध में नहीं बोल सका और जनता तकरीबन डेढ़ घन्टे तक मन्त्र-मुग्ध की नाईं सुनती रहती। इसके पश्चात् प्रस्ताव का समर्थन करने के लिये जब बा० बलबीरचन्द जी एडवोकेट मुजफ्फरनगर खड़े हुए तो ३० या ३५ आदमियों ने जो कि कान्फ्रेंस में केवल दंगा ही करने आये थे, हल्ला मचाया और उनके साथ स्थितिपालक विद्वान भी उठकर चले गये।

पश्चात् बा० लालचन्दजी एडवोकेट आदि के पुरजोर समर्थनों के बाद केवल २० के विरोध से प्रस्ताव पास हुआ। पश्चात् झण्डा गीत होकर सारे बाजार में श्री अयोध्याप्रसादजी गोयलीय के नेतृत्व में भजन गाता हुआ जुलूस सारे मेले में घूमा। रात को फिर कान्फ्रेंस की बैठक हुई। भजनो और पंडित शीलचन्द के मंगलाचरण और स्वामी कर्मानन्दजी के भाषण के पश्चात् श्री गोयलीयजी का जैन जाति के महान् पुरुषों के जीवन पर सामायिक और जोशीला व्याख्यान हुआ, बाद को कौशलप्रसादजी जैन ने वीर के लिये अपील की और सभा समाप्त हुई।

चार तारीख को परिषद् की कान्फ्रेंस नियमित रूप से प्रारम्भ हुई। प्रातः ही कई सौ आदमियों की उपस्थिति से प्रभात कान्फ्रेंस शुरू हुई। सबसे पहिले भजन और मंगलाचरण के बाद पं० ताराचन्दजी न्यायतीर्थ का व्याख्यान हुआ। पश्चात् मास्टर उग्रसेनजी तथा सभापति जी आदि के बाद कान्फ्रेंस समाप्त की गई।

कमनीय कामना

पापाचार न एक भी जग में, होवे कहीं भी कभी;
बूढ़े, बाल, युवा, तथा युवति हों; धार्मिक—प्रेमी सभी।
पृथ्वी का हर एक मर्त्य पशु से; साक्षात् बने देवता,
पावे पामर पापमूर्ति जगती, स्वर्लोक से श्रेष्ठता।

* * * *

मुझे तो अणुबम और उद्जनबम जितने प्रलयंकारी नहीं लगते, उतनी प्रलयंकारी लगती है—चरित्रहीनता, विचारों की संकीर्णता। बम तो उन अपवित्र विचारों का फलितार्थ-माप है।

दूध-घी मिलावट कान्फ्रेंस

स्वास्थ्य के लिए शुद्ध खानपान की आवश्यकता है। पर जिस देश में घी-दूध की नदियाँ बहती थीं आज वहाँ के निवासियों को शुद्ध वस्तु का मिलना दुर्लभ हो गया है। लालाजी ने इस बात का अनुभव किया और २१-२२ फरवरी १६४१ को दिल्ली में श्री सेठ शान्तिदासजी आसकरण, मेम्बर कौंसिल आफ स्टेट की अध्यक्षता में दूध-घी मिलावट कान्फ्रेंस की जिसका संक्षिप्त विवरण आपके सामने प्रस्तुत करते हैं। इससे आप भली प्रकार समझ सकेंगे कि इस कान्फ्रेंस का कितना प्रभावशाली असर हुआ।

भारतवर्ष कृषिप्रधान देश है। यहां की ६० प्रतिशत जनता गांवों में रहती है और पशुपालन यहां का मुख्य व्यवसाय है। एक समय था जब भारत में पशुपालन धर्म समझा जाता था और एक ही गृहस्थ लाखों की संख्या में पशु रखता था। यहां दूध-घी की नदियां बहती थीं। प्रत्येक गृहस्थ चाहे वह अमीर है चाहे गरीब, पर्याप्त मात्रा में दूध, घी और अन्न से परिपूर्ण रहता था। कृषि से बहुत अन्न उत्पन्न होता था और पशुओं की अधिकता के कारण दूध-घी बहुत होता था। यहां के नर-नारी दूध-घी के सेवन से बलवान और बुद्धिमान होते थे। देश में हनुमान, भीम, महाराणा प्रताप और शिवाजी जैसे पराक्रमी और बलवान हुए हैं, जिन्होंने अपने बल से हाथियों तक को पछाड़ दिया था।

पहले की बात जाने दीजिये, अब भी जब तक हमें शुद्ध दूध और घी मिलता रहा हमारे देश में राममूर्ति जैसे बलवान हुए हैं। क्या यह सच नहीं है कि गत १६१४ के महायुद्ध में ताकत में भारत की फौजें दुनिया की सारी फौजों से बढ़-चढ़कर थीं। यह सब यहां के दूध-घी का ही प्रभाव था। हम देखते हैं कि हम नवयुवकों से हमारे बूढ़े अब भी अधिक बलवान हैं। हम दिन-दिन क्यों कमजोर होते जा रहे हैं? हमने बूढ़ों को कहते सुना है कि जब हम जवान थे ५० और ६० मील पैदल चल सकते थे। किन्तु खेद है कि आज ऐसा नवयुवक शायद ही कोई हो।

आज भारत के चारों ओर भयानक युद्ध हो रहा है। एक देश दूसरे देश को निगले जा रहा है। जो अधिक शक्तिशाली है उसी का आज जीवन समझा जा रहा है। और इस भयानक युद्ध की लपटें किसी भी समय भारत में आ सकती हैं। हमें आतताइयों का चारों ओर से भय है। तब क्या हमें निर्बल होकर, दूसरों के पाँवों नीचे दबकर, कुत्ते की मौत मर जाना शोभा देगा? क्या आपने कभी सोचा कि आज हमारे देश के नवयुवकों का स्वास्थ्य क्यों दिन-दिन खराब होता जा रहा है? क्यों नित्य नई बीमारियां पैदा हो रही है और निर्बल होने के कारण क्यों हमें चारों ओर से सताया जा रहा है? इसका केवल एक कारण है कि हमें शुद्ध दूध और घी खाने को नहीं मिलता। जहां दूसरे देशों में युवकों के स्वास्थ्य का इतना ध्यान रखा जाता है वहां हमारे देश में दुर्भाग्यवश नवयुवकों के स्वास्थ्य को खराब करने वाली नई-नई चीजें

का प्रचार बढ़ रहा है। आज हमें अधिक से अधिक मूल्य पर भी शुद्ध दूध और घी मिलना असम्भव सा हो गया है।

दूध में पाऊडर और घी में वनस्पति तेल की मिलावट से आज शुद्ध दूध व घी नहीं मिल रहा है। पहले तो यह पाऊडर और वनस्पति तेल विदेशों से आता था किन्तु दुर्भाग्यवश आज वनस्पति तेल की भारत में भी कई मिलें बन गई हैं, जिससे घी के व्यापारी और दलाल शुद्ध घी में वनस्पति तेल (जो जमाने या अन्य प्रयोगों से घी जैसा बन जाता है) आसानी से मिला सकते हैं।

वनस्पति घी के सस्ता होने के कारण उसे शुद्ध घी में मिला कर बेचने से व्यापारियों को बहुत अधिक लाभ होता है। डाक्टरों के कथन के अनुसार वनस्पति घी असली घी का कभी स्थान नहीं ले सकता। वनस्पति घी धीरे-धीरे मनुष्य में भयानक रोगों को उत्पन्न कर देता है। वनस्पति घी की शुद्ध घी में मिलावट के कारण जनता अब वनस्पति घी को ही अधिक खरीदने लग गई है, क्योंकि जनता को शुद्ध घी कह कर मिलावटी घी बहुत अधिक मूल्य में दिया जाता है। इससे उनके स्वास्थ पर बहुत बुरा असर पड़ रहा है। यदि वनस्पति घी का इसी प्रकार प्रचार बढ़ता रहा तो पशुओं की कोई आवश्यकता नहीं रह जायगी और भारत से पशु-धन नष्ट हो जायेंगे। दूध-घी-माखन में मिलावट के कारण हालत बहुत बुरी हो गई है। इस अवस्था को देखते हुए देहली में अ० भा० दूध-घी-माखन मिलावट निषेध कान्फ्रेंस २१, २२ फरवरी को करने का आयोजन किया गया है। इस आन्दोलन से सब बड़े-बड़े नेताओं और महात्मा गांधीजी की भी सहानुभूति है। इस कान्फ्रेंस में देश के बड़े-बड़े नेताओं के पधारने की आशा है।

अ० भा० दूध-घी-मक्खन मिलावट निषेध सम्मेलन

अध्यक्ष

श्री सेठ शांतिदास आशकरणजी

श्री सेठ शान्तिदासजी आशकरण, मेम्बर कौंसिल आफ स्टेट बम्बई के सभापतित्व में बड़ी सफलतापूर्वक हो गया। सभापति जी ने अपना व्याख्यान अंग्रेजी में दिया था जिसका सार निम्न प्रकार है :—

सभ्य गृहस्थो !

मैं अपना वक्तव्य अंग्रेजी में पढ़ना चाहता था किन्तु स्वागतकारिणी की सूचना और जनता की सहूलियत के लिये मैं अपने कुछ भाव हिन्दी में भी आपके सन्मुख रख रहा हूँ।

मेरी भाषा गुजराती है, अतः हिन्दी पढ़ने में कोई त्रुटि हो तो क्षमा करें।

आज के सम्मेलन का अध्यक्ष होने का मान आपने मुझको दिया इसके लिये मैं आपका आभार मानता हूं। आपके सहकार से यह कार्य सफल होगा, ऐसा मेरा विश्वास है।

मेरा आज के प्रश्न के बारे में वक्तव्य अंग्रेजी में आपके सामने पेश हो चुका है। इससे आपको मालूम होगा कि यह प्रश्न सारे भारतवर्ष की शारीरिक और आर्थिक उन्नति के लिये कितने महत्व का है। आज अपने देश में पूरे दाम देते हुए भी शुद्ध दूध-घी इत्यादि मिलना कठिन हो गया है और मिलावट के द्वारा धोखेबाजी चल गई है। इसका मूल कारण यही है कि अपने देश में शुद्ध दूध-घी की उत्पत्ति कम है और मांग अधिक है। उत्पत्ति कम होने का कारण दूध-घी देने वाले पशुओं की संख्या कम और नस्ल खराब होना है। संख्या कम होने के कई कारणों में देश के अच्छे दूध देने वाले पशुओं का नाश मुख्य कारण है। यदि दूध देने वाले पशुओं की हत्या बन्द की जाय और उनकी नस्ल उत्तरोत्तर अधिक दूध देने वाली होने लगे तब देश की शुद्ध दूध-घी की आवश्यकता पूरी हो सकती है। और फिर मिलावट स्वयं ही रुक जायगी। आज देश की यह हालत है कि दूध-घी जैसी पोषक खुराक न मिलने से जनता का स्वास्थ्य बिगड़ता जा रहा है। देश को जिस समय आत्मरक्षा के लिये स्वस्थ नवयुवकों की आवश्यकता है उस समय दूध-घी आदि पोषक खुराक की अपूर्णता से जनता निर्बल हो रही है। इस बात को सरकार और जनता को सोचना चाहिये और इसका इलाज करना चाहिये।

देश में वनस्पति घी और स्कीम मिल्क पाउडर इत्यादि चीजों की मिलावट से शुद्ध दूध-घी का मिलना मुश्किल हो रहा है। इतना ही नहीं, गांवों में किसानों और पशुओं की दयनीय दशा होती जा रही है। शुद्ध घी के व्यापार के कम होने के कारण गांव वालों को लस्सी तक, जो उनकी दैनिक खुराक थी, मिलना कठिन हो गया है। यदि ऐसी परिस्थिति रही तो जनता की शारीरिक और आर्थिक स्थिति बहुत खराब हो जायगी और कृषि को बहुत नुकसान होगा। वनस्पति घी इत्यादि के उद्योग करने वाले सज्जन भी दूध-घी के इस प्रकार के अप्रमाणिक व्यापार को नहीं चाहते। शुद्ध वनस्पति घी बनाने वालों को चाहिये कि वह इस सम्मेलन के उद्देश्य की पूर्ति के लिये सम्मेलन का पूरा साथ दें। वनस्पति घी समझकर ही लोग लेवें, इसमें बाधा डालने का सम्मेलन का उद्देश्य नहीं है, लेकिन शुद्ध घी में वनस्पति घी इत्यादि की मिलावट को रोकना प्रत्येक भारतवासी का कर्त्तव्य है।

पंजाब सरकार ने इस विषय में जो वनस्पति घी में रंग डालने का कानून बनाया है वह अभिनन्दनीय है। इसी ढंग पर जिस-जिस प्रान्त में वनस्पति घी बनता हो वहां बिना कानून भी वहां की वनस्पति घी की मिलों के मालिक वनस्पति घी को इस प्रकार बना दें जिससे साधारण जनता शुद्ध घी और वनस्पति घी को पहिचान सके और जिससे वनस्पति घी का शुद्ध घी में मिलना असम्भव हो जावे, तब ही उनके लिये वह शोभा का स्थान होगा।

हमारे स्वास्थ्य का नाश

ऋषि-मुनियों का भारत आज घी-दूध के लिये तरस रहा है और उसके एवज में मक्खन निकला हुआ दूध तथा वनस्पति घी खाने को बाध्य हो रहा है। यह सब कलयुग का चमत्कार ही

समझना चाहिये, अन्यथा जिस भारत में घी-दूध की नदियां बहती थीं उसी भारत में यह अनहोनी क्योंकर होती ?

जिस वस्तु से स्वास्थ्य का इतना गहरा सम्पर्क है, जब वही शुद्ध नहीं मिल पाती, तब स्वास्थ्य के लिए नित नई योजनाएँ बनाना और देश का करोड़ों रुपया व्यय करना बेकार है। वृक्ष की जड़ को ही जब दीमक खाए जा रही हो तब फूल-पत्तियों की रक्षा के लिए उपाय सोचना कुछ बुद्धिमत्ता नहीं।

हम अपने बच्चों को दूध समझ कर पिला रहे हैं, मगर मक्खन निकला हुआ। घी समझ कर हम वनस्पति तेल खा रहे हैं। गोया दही के बदले कपास खाई जा रही है।

क्या विशेषज्ञों और डाक्टरों ने यह निर्णय दे दिया है कि वनस्पति तेल और मक्खन निकला हुआ दूध असल जैसे ही लाभदायक हैं, यदि ऐसा है तो गवर्नमैंट को यह घोषणा कर देनी चाहिए ताकि जनता इतनी सस्ती चीज बहुमूल्य देकर न खरीदे और बेचारे गरीब व्यर्थ की परेशानी में न पड़ें और यदि यह पदार्थ उतने उपयोगी नहीं हैं तो असल और नकल में पहचान हो सके, सरकार को ऐसा प्रबन्ध कर देना चाहिए।

अफीम-गांजा-चरस शराब पर सरकार की ओर से प्रतिबन्ध है, लायसेन्स है जिसे समूची जनता कभी उपयोग में नहीं लाना चाहती। पर जो समूची जनता के गले में जाने अनजाने उतारे जा रहे हैं ऐसे अहितकर पदार्थों पर कोई लायसेन्स या प्रतिबन्ध नहीं। उन्हें दिन दहाड़े असली में मिलाकर या उसका रूप देकर हमारे गले में उतारा जा रहा है। और हमारी सरकार का ध्यान इस ओर तनिक भी नहीं है।

वनस्पति घी और मक्खन निकले हुए दूध के प्रचार से शुद्ध बेचने वाले मिलावट करने को बाध्य हो गए हैं। जब मार्केट में खरीदार को दुकानदार पर विश्वास न रहा तब दुकानदार असली वस्तु बेचकर कम्पटीशन में कैसे खड़ा रह सकता है। इसका परिणाम यह हो रहा है कि मार्केट में शुद्ध बेचने वाले को खरीदार नहीं मिलते और खरीदार को असली माल नहीं मिलता। इन नकली पदार्थों ने ग्राहक को अविश्वासी और दुकानदार को बेईमान बना दिया है।

हम तो कहते हैं कि वनस्पति तेल और मक्खन निकला हुआ दूध बेचना सर्वथा बन्द कर दिया जाय पर दुर्भाग्य से ऐसा न हो सके तो इनमें भिन्नता अवश्य कर दी जाय। जो इन्हें उपयोग में लाना चाहें वे इन्हें उपयोग में लाएँ। पर जो असली खरीदना चाहें उन्हें पूरी कीमत देने पर भी यह वस्तुएँ न भेड़ दी जाएं इसका समुचित प्रबन्ध होना चाहिये।

* * * *

लोगों में जितना भाव उपासना का है, उतना आचरण-शुद्धि का नहीं। पर आचरण शुद्धि के बिना उपासना का महत्व कितना होगा ?

कुशल व्यवसायी

तिलक बीमा कम्पनी की अपूर्व सफलता

लाला तनसुखराय जैन एक प्रसिद्ध समाजसेवी और देशभक्त कार्यकर्ता ही न थे, बल्कि कुशल व्यवसायी भी थे। यूरोप में वैज्ञानिक ढंग से व्यवसाय का भी संचालन किया गया। नए-नए व्यापार के साधनों को अपनाया गया। फलस्वरूप व्यवसाय का क्षेत्र अधिक व्यापक हुआ और समृद्धि का विशेष सूत्रपात हुआ। आधुनिक व्यापारों में बीमा व्यवसाय भी ऐसा ही एक महत्वपूर्ण व्यवसाय है। सहयोग और वृद्धावस्था में एकमात्र सहारा देने के लिए यह एक उत्तम सूझ है। भारतवर्ष में जब इसका प्रारंभ हुआ तब इतनी विशेष रुचि जनता में नहीं थी परन्तु अब प्रत्येक शिक्षित व्यक्ति इसके महत्व को समझता है। और अपना बीमा कराना आवश्यक समझता है।

इस व्यवसाय में आने वाले व्यक्ति में अनेक गुणों की ऐसी आवश्यकता है जो अपने प्रभाव, वाणी और धैर्य के बल पर व्यक्ति का मन मोह ले और बरबस उसे अपनी ओर आकर्षित करने के लिए बाध्य कर दे। ला० तनसुखराय जी कर्मठ थे। वाणी के धनी थे। और अनवरत कार्य में तब तक लगे रहते थे जब तक सफलता न मिल जाए। वे स्वाभिमानी व्यक्ति थे। परापेक्षी और दूसरों का सहारा लेने वाले नहीं थे। स्वावलम्बी, साहसी और कर्तव्यनिष्ठ थे। उन्होंने राष्ट्रीय भावना से ओत-प्रोत होकर स्वनाम धन्य महामनीषी लोकमान्य बालगंगाधर तिलक की पुण्य स्मृति में 'तिलक बीमा कम्पनी' की स्थापना की। उन्होंने संस्था का कार्य इस प्रकार बुद्धिमानी, विवेकशीलता और सहयोग से प्रारम्भ किया कि थोड़े ही समय में संस्था की आशातीत उन्नति हुई। इससे मूलधन बढ़ गया। उसकी प्रतिष्ठा चौगुनी हो गयी। सभी प्रमुख व्यवसायी पुरुषों का ध्यान इसकी ओर आकर्षित हो गया। इस संस्था को उन्नत बनाने का श्रेय लालाजी को और उनके कर्तव्यपरायण सहयोगियों को ही है। संस्था की एक वर्ष की प्रगति का दिग्दर्शन करना आवश्यक है जिससे विदित होता है कि लालाजी कितने सूझ-बूझ और कर्मवीर, साहसी पुरुष थे।

तिलक बीमा कम्पनी के लिये लोकमत क्या कहता है

तिलक बीमा कम्पनी भारत की प्रसिद्ध प्रगतिशील राष्ट्रीय कम्पनी है। उसकी प्रथम वार्षिक रिपोर्ट हमें समालोचनार्थ प्राप्त हुई है। उसके देखने से प्रकट होता है कि उक्त कंपनी १० लाख के मूलधन से स्थापित हुई है। ३० जून सन् ३८ को इसका प्रथम वर्ष बड़ी सफलतापूर्वक पूर्ण हुआ है।

यह कम्पनी एक उच्च आदर्श और लोकहित के सन्देश को लेकर कार्य-क्षेत्र में उतरी है, उसका मूल उद्देश्य भारत की आर्थिक स्थिति को वैज्ञानिक ढंग से उन्नत करना तथा भारत की बढ़ती हुई बेकारी को दूर करना है।

[हमें लिखते हुए हर्ष होता है कि हमारे जैन समाज के उत्साही कार्यकर्ता लाला तनसुखरायजी जैन ने गत वर्ष १० लाख के मूलधन से तिलक बीमा कम्पनी लिमिटेड की स्थापना की थी और वह प्रगतिशील कम्पनी आशातीत उन्नति करती हुई देश के और समाज के लिए अत्यन्त उपयोगी बन रही है। हमारी अभिलाषा है, जैन समाज के प्रत्येक व्यक्ति का इसको सहयोग प्राप्त हो ताकि और भी इसी तरह की उद्योगशील कम्पनियां खुलकर समाज की बेकारी दूर करने में समर्थ हो सकें। यहां हम कुछ कम्पनी के सम्बन्ध में अन्य सहयोगियों की सम्मति देते हैं जिससे प्रगट होगा कि अपनी यह कम्पनी कितनी तेजी से उन्नति करती हुई जनता की विश्वासभाजन बन गई है।

—सम्पादक जैनमित्र]

"भारत की प्रसिद्ध प्रगतिशील राष्ट्रीय तिलक बीमा कम्पनी की प्रथम वार्षिक रिपोर्ट हमें समालोचनार्थ प्राप्त हुई है। यह कम्पनी भारत-विभूति लोकमान्य तिलक की पवित्र स्मृति में १० लाख के मूलधन से स्थापित हुई है। ३० जून सन् ३८ को इसका प्रथम वर्ष सफलताओं को लेकर पूर्ण हुआ है। यों तो भारत में और भी देशी-विदेशीय बीमा कम्पनियां कार्य कर रही हैं, किन्तु तिलक बीमा कम्पनी कुछ उच्च आदर्श और लोकहित के कार्य को लेकर इस क्षेत्र में उतरी है। उसका मूल उद्देश्य भारत की आर्थिक स्थिति को वैज्ञानिक ढंग से उन्नत करना तथा भारत की बढ़ती हुई बेकारी को दूर करना है।"

—नवभारत (नागपुर)

"तिलक बीमा कम्पनी अपने प्रथम वर्ष में ही पचासों पुरानी कम्पनियों को पीछे छोड़ कर पूरी कामयाबी के साथ आगे आयी है। प्रारम्भ से ही कम्पनी को भारत के प्रतिष्ठित धन-कुबेरों, व्यापारियों और बीमा-विशेषज्ञों का सहयोग प्राप्त रहा है। यही कारण है कि उक्त कम्पनी इस एक वर्ष में ४०२४०० के शेअर्स बेच चुकी है। कहा जाता है कि वह बहुत शीघ्र शेअर्स की बिक्री बन्द कर देगी।"

—सचित्र दरबार (देहली)

"यह भारत की एक उदीयमान राष्ट्रीय बीमा कम्पनी है। इसने अपने पहले ही वर्ष में ११ लाख ४३ हजार का बिजनिस प्राप्त करके आश्चर्यजनक उन्नति की है। इतने अल्प समय में इतनी सफलता प्राप्त करने का सारा श्रेय हमारे एक जैन बन्धु को है, इसका हमें गर्व है। देहली के बाबू तनसुखरायजी जैन जो इसके मैनेजिंग डायरेक्टर हैं, बड़े ही परिश्रमी और उत्साही हैं। आप इस कम्पनी को भारत की एक आदर्श बीमा कम्पनी बनाने की चेष्टा कर रहे हैं। आप को सफलता प्राप्त हो यही भावना है।"

—वीर सन्देश (आगरा)

"तिलक बीमा कम्पनी ने निहायत कम अखराजात पर यह सब काम किया है। कम्पनी के डायरेक्टरों में बेहतरीन कारोबारी असहाब शामिल हैं। हमें उम्मीद है कि कम्पनी

बहुत जल्द तरक्की करेगी।"

—मिलाप उर्दू (लाहौर)

"......यह लाला तनसुखराय जैन मैनेजिंग डायरेक्टर कम्पनी की मजकूर कोशिशों और काबलियत का नतीजा है कि कम्पनी को पहले ही साल में ४० हजार रु० प्रीमियम की आमदनी हुई है।

—वीर इण्डिया उर्दू (देहली)

"......कम्पनी के हिस्से हिन्दुस्तान भर में हर तबके के लोगों में फरोख्त हुए हैं, जिससे इनकी हरदिलअजीजी और सरगर्मी का इजहार होता है।"

—तेज उर्दू (देहली)

"............यह बात काबिले फख्र है कि कम्पनी को ११ लाख ४३ हजार रुपये का बिजनिस मौसूल हुआ है। मैनेजिंग एजेंट्स ने अपना तमाम कमीशन (जिसके वह मुहायदे की रूह से हकदार थे) कम्पनी को छोड़ दिया है।"

—प्रताप उर्दू (लाहौर)

"वह वक्त दूर नहीं जबकि स्वर्गीय भगवान तिलक के आशीर्वाद से कम्पनी हिन्दुस्तान की बेहतरीन इन्शोरेन्स कम्पनियों में शुमार होगी।"

—वतन उर्दू (देहली)

वीर सेवा मंदिर

साहित्य अनुसंधान की एक आदर्श संस्था

वीर सेवा मन्दिर समाज की एक जीवित संस्था है। इसके द्वारा साहित्य निर्माण अनुसंधान और प्राचीन साहित्य को नवीन ढंग से सम्पादन करना इस सम्बन्ध में उल्लेखनीय कार्य हुआ है। इसी संस्था की ओर से वीर शासन दिवस मनाना प्रारम्भ हुआ। १३ जौलाई १९३८ को वीर शासन जयन्ती उत्सव पर जो लालाजी ने भाषण दिया वह उत्साह और जोश से परिपूर्ण है। आपने जिन कार्यों की ओर समाज का ध्यान आकर्षित किया आज भी वे कार्य उतने ही महत्वपूर्ण हैं जितने पहले थे।

आत्मीय बन्धुओ और बहनो!

मैं सिपाही हूँ और सिपाही ही बना रहना चाहता हूँ। मैं बोलना बहुत कम जानता हूँ, फिर भी मुझे बोलना पड़ रहा है, मानों बन्दूक से ग्रामोफोन का काम लिया जा रहा है। मेरी इच्छा है कि जब आपने मुझे इस पद पर प्रतिष्ठित किया है, तब अपना सेवक समझकर मुझसे कुछ सेवा भी लीजिये। मैं यह जानता हूँ कि मेरे पास पैसा और विद्वत्ता नहीं है, मगर साहस,

उत्साह, आत्म-विश्वास और कार्य-शक्ति की मेरे पास कमी नहीं है। जो सेवा आप मेरे सुपुर्द करेंगे उसे बजा लाने में मैं अपना गौरव समझूंगा।

जिस रोज वीर-प्रभु ने संतप्त संसार में उपदेशामृत की वर्षा की थी। आज उसी मुबारिक दिन पर इकट्ठे होकर हमें विचार-परामर्श करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ है, संसार के कल्याण के लिये वीर-प्रभु ने जो दिव्य उपदेश दिया था, उसका प्रसार साहित्य, उपदेशों और रात्रि-पाठशालाओं द्वारा किया जा सकता है।

१—साहित्य देश और समाज के पीठ की रीढ़ की हड्डी है। जिस समाज का साहित्य जितना अधिक विकसित, अनुपम और विशाल होगा, वह समाज भी उतना ही उन्नत होगा। हमारे पूर्व आचार्यों और विद्वानों ने साहित्य-निर्माण में काफी सफलता प्राप्त की है। हमारे भण्डारों में मोतियों से तोले जाने योग्य ग्रंथ भरे पड़े हैं। हमें अब इस नये युग में नवीन ढंग से अपने साहित्य को प्रकाश में लाने की आवश्यकता है। प्रत्येक भाषा में आधुनिक लेखन और प्रकाशन कला से परिपूर्ण साधारण से लेकर उच्च-कोटि के विद्वानों तक उनकी बुद्धि और विषय के अनुसार हमारा साहित्य पहुँचना चाहिये। अर्थात् जो पत्र-पत्रिकाओं को चाव से पढ़ते हैं उनके लिये हमें साहित्यिक-पत्र प्रकाशित करने चाहिये। और जो साधारण पढ़े-लिखे हैं उनके लिये छोटे-छोटे सरल भाषा में ट्रेक्ट छपाने चाहिये। और जो अध्ययनशील विद्वान् हैं, उनके योग्य खोज और मननपूर्वक लिखे हुए ग्रंथों का प्रबन्ध करना चाहिये।

यद्यपि इसके लिये हमारे समाज की कई महान् आत्मायें और संस्थायें प्रयत्नशील हैं किन्तु उचित प्रोत्साहन, सहयोग और सामूहिक शक्ति के अभाव के कारण जैसा चाहिये वैसा कार्य नहीं हो रहा है। वीर-सेवा-मन्दिर का भी इसीलिये जन्म हुआ है, और हर्ष है कि समाज के प्रसिद्ध विद्वान् पं० जुगलकिशोरजी ने इसके लिये अपना तन, मन, धन सब कुछ समर्पित कर दिया है। यदि समाज इस संस्था को अपना सहयोग पूर्णरूपेण प्रदान करे, तो यह साहित्य-निर्माण की बेजोड़ संस्था बन सकती है।

२—जैन धर्म के प्रसार के लिये साहित्य के अलावा ऐसे विद्वानों की भी आवश्यकता है, जो भिन्न-भिन्न धर्मों का तुलनात्मक अध्ययन किये हुए हों और जो राज्य सभाओं और सार्वजनिक जल्सों में जैनधर्म के प्रति जनता में श्रद्धा एवं आदर बढ़ा सकें और जैन धर्म पर किये गये आक्षेपों का उत्तर दे सकें। साथ ही जैनधर्म के प्रति फैलाये गये भ्रमों को दूर कर सकें। ऐसे विद्वान् हमारे वर्तमान विद्यालयों से नहीं मिल सकते। इसके लिये हमें पृथक् प्रबन्ध करना होगा और मैं देख रहा हूँ कि वीर-सेवा-मन्दिर इस ओर प्रयत्नशील है।

३—जैनेतरों में जैनधर्म के प्रति श्रद्धा उत्पन्न कराने का तीसरा तरीका यह है कि गांव-गांव में रात्रि-पाठशालायें खोली जाएँ और उनमें इस प्रकार के शिक्षक रखे जायें, जिनके हृदय जैनधर्म के प्रचार के लिये बेचैन हों।

मैंने आपके सामने कोई नवीन बात नहीं कही है। जैनधर्म के प्रचार के लिये ऐसे कितने ही कार्य हमारे पूर्वजों ने किये हैं और वर्तमान में कर रहे हैं। असंगठित और अव्यवस्थित ढंग

के कारण हम उचित सफलता प्राप्त नहीं कर सके हैं। यदि सामूहिक शक्ति के बल पर व्यवस्थित रूप से उक्त कार्य करें तो निश्चय ही जैनधर्म का दिन दुगना रात चौगुना प्रचार हो सकता है।

यह जमाना व्याख्यानों का नहीं है कुछ कर गुजरने का है, इसलिये मैं चन्द शब्दों में अपने मनोभाव आपके सामने रख कर बैठ रहा हूँ। अब आप यह निर्णय कीजिये कि जैनधर्म की उन्नति के लिये कौन-कौन सी बातें आवश्यक हैं। केवल निर्णय ही न कीजिये बल्कि उसे अमली जामा पहनाने की भी योजना बनाइये और उसमें जो सेवा आप मेरे योग्य समझें मुझे दीजिये और जो कार्य आप कर सकें उसकी जिम्मेदारी आप भी सहर्ष लीजिये, मेरा यही आप से अनुरोध है।

लालाजी का परोपकारी कार्य उद्योगशाला

ब्र० सीतलप्रसादजी

ता० ८ को देहली में आकर तिलक इंश्योरेन्स कम्पनी नई देहली में लाला तनसुखरायजी के पास ठहरे। लाला जौहरीमलजी व पन्नालालजी मिले। दोनों बड़े मिलनसार सज्जन हैं। लाला तनसुखरायजी की तरफ से भोजन व निवासस्थान पाते हुए १० छात्र उद्योग-धन्धा सीखते हैं, उनके नामादि इस प्रकार हैं—

१—करतूरचन्द परवार—दमोह (२०) हिन्दी मिडिल पास—कॉमर्शियल प्रेस में कम्पोजिग कार्य सीखते हैं।

२—लक्ष्मीचन्द परवार—बीना (२०) विशारद प० खं०—उद्योगशाला में टेलरिंग कार्य सीखते हैं।

३—स्वरूपचन्द जैन परवार—खुरई (१८) प्रवेशिका तृ०—टेलरिंग।
४—फूलचन्द कठनेरा—सिरोज (१८) हिन्दी इंग्लिश छठी—टेलरिंग।
५—फूलचन्द ए० परवार—लागौन (१६) शास्त्री प्र० खं०—टेलरिंग।
६—छोटेलाल गोलापूर्व—दमोह (२०) विशारद द्वि०—टेलरिंग।
७—कामताप्रसाद परवार—दमोह (२२) शास्त्री प्र० खं०—टेलरिंग।
८—बाबूराव जैन परवार—मुंगावली (१६) मैट्रिक—टाइपराइटिंग शोर्ट राइटिंग।
९—गुट्टूलाल परवार भोपाल (१७) हिन्दी पांचवीं—घड़ीसाजी।
१०—उदयचन्द परवार—खिमलासा (२०) विशारद तृ०, आयुर्वेदाध्ययन।

इन छात्रों को एकत्र कर रात्रि को धर्मोपदेश दिया व यह सूचना दी कि इन सब छात्रों को नियम से किसी धर्मशास्त्र में वार्षिक परीक्षा देनी चाहिए व आठवें दिन सभा करके भाषण देना सीखना चाहिए। लालाजी का यह परोपकार सराहनीय है। बा० अयोध्याप्रसादजी गोयलीय ने प्रेरणा की कि वे साप्ताहिक सभा व धार्मिक परीक्षा का नियम करावें। परिषद का दफ्तर देखा। अभी तक करीब ५००० सभासद हुए हैं तो भी फीस की रकम ३५०) के करीब आई है! उद्योगशाला का कार्य प्रशंसनीय है।

राजस्थानी भाइयों की अपूर्व सेवा

सम्पादक विश्वमित्र

आप जैन समाज तथा वैश्य परस्पर सहायक सभा के सुविख्यात नेता हैं। कलकत्ता तथा रंगून आदि से मारवाड़ तथा राजपूताना की ओर जाने वाले यात्रियों की सेवा में बहुत प्रयत्नशील हैं। इस बारे में आप रेलवे के उच्च अधिकारियों से भी मिल चुके हैं जिसके फलस्वरूप यात्रियों के लिए बहुत सी सुविधाएं प्राप्त हो गई हैं। रेलवे के स्थानीय अधिकारी श्री मदनलालजी, स्टेशन मास्टर, श्री गौरीरामजी गार्ड, तथा श्री मंगलसैन जी, टी. ऐन. ऐल. रिवाड़ी ने, जो सहायता तथा सेवाएँ प्रदान की हैं, वे प्रशंसनीय हैं। बीकानेर राज्य ने भी यात्रियों की सुविधार्थ अपने यहां से श्री विरधीचन्दजी नाजिम, श्री शिवकृष्णजी पेशकार, श्री जगन्नाथ जी गिरदावर, तथा श्री सूरजमल जी सैक्रेटरी सरदारशहर को यहाँ भेजा हुआ है, जिनके सहयोग से यात्रियों को बड़ा लाभ हो रहा है। लाला तनसुखराय जैन, डाक्टर हरस्वरूप जी, मा० लक्ष्मीनारायणजी, श्री महावीरप्रसादजी जैन, आई. ए. आदि उत्साही कार्य-कर्त्ताओं के साथ तथा तिलक बीमा कम्पनी के स्टाफ के साथ प्रतिदिन स्टेशन पर अपना बहुत सा समय देकर यात्रियों की सब प्रकार की सुविधाओं का पूरा-पूरा ध्यान रख रहे हैं।

कलकत्ता व रंगून आदि से जो लोग युद्ध के भय से आ रहे हैं, उनमें से अधिकतर लोग राजपूताना तथा मारवाड़ की ओर जा रहे हैं, इसी कारण बीकानेर राज्य अपने यहां आने वाले यात्रियों की सुविधाओं के लिए बहुत प्रयत्नशील है। ता० २७ दिसम्बर की शाम को बीकानेर के प्रधान मंत्री राजा मानधातासिंह जी स्वयं देहली स्टेशन पर पधारे और वहां पर यात्रियों की सेवा में तत्पर लाला तनसुखराय जैन, सेठ बेनीप्रसाद जी, मास्टर लक्ष्मीनारायण, डाक्टर हरस्वरूप आदि उत्साही कार्यकर्त्ताओं से भेंट की और बड़ी देर तक समस्त प्रबन्ध का निरीक्षण तथा वार्तालाप करते रहे। यहां के कार्य की बहुत प्रशंसा की। उन्होंने यह भी पूर्ण विश्वास दिलाया कि बीकानेर राज्य समस्त यात्रियों की सुविधाओं का पूरा ध्यान रख रहा है। इन यात्रियों के किसी भी सामान पर कोई नवीन या अधिक चुंगी नहीं लगाई गई है। जिन ग्रामों में वे लोग ठहर रहे हैं, वहाँ पर रक्षार्थ सैनिकों का विशेष प्रबन्ध कर दिया गया है, ताकि लूट-मार आदि की संभावना न रहे।

प्रधान मंत्री महोदय ने यह भी बताया कि आगे का दौरा समाप्त करके वह २ जनवरी को फिर देहली पधारेंगे। यदि बीच में यात्रियों की किसी ऐसी कठिनाइयों का पता चले, जिनको राज्य दूर सके तो वह उस समय उन्हें बता दी जांय। उन्हें दूर करने का पूरा प्रयत्न करेंगे।

× × × ×

श्रद्धा और तर्क, जीवन के दो पहलू हैं। जीवन में दोनों की अपेक्षा है। व्यावहारिक जीवन में भी न केवल श्रद्धा काम देती है और न केवल तर्क। दोनों का समन्वित रूप ही जीवन को समुन्नत बनाने में सहायक होता है। अतः तर्क के साथ श्रद्धा की भूमिका होनी चाहिए और श्रद्धा भी तर्क की कसौटी पर कसी होनी चाहिए।

अग्रसेन जयन्ती महोत्सव

रायजादा गूजरमलजी मोदी

लालाजी की सेवा की प्रवृत्ति जैन समाज तक ही सीमित नहीं रही, उन्होंने विभिन्न क्षेत्रों में प्रवेश करके अपनी आत्मिक भावना को अधिक उज्ज्वल बनाया। १९४१ में देहली में महाराजा अग्रसैन जयन्ती का सफल आयोजन करके एक ऐसा श्लाघनीय कार्य किया जिसकी याद सदैव बनी रहेगी। देहली के वैश्य भाई जयंती के अवसर पर जलूस निकालने में हिचकिचाते थे। परंतु आपने साहस और आत्म-विश्वास से काम लेकर जलूस की आयोजना की जिसके फलस्वरूप ऐसा जुलूस निकला जो देहली के वैश्य भाइयों के इतिहास में अद्वितीय मिसाल रहेगी। आपने अग्रसैन जयन्ती में पास हुए प्रस्तावों को कार्य-रूप में परिणत किया और अगरोहे में खुदाई कर जो सामग्री प्राप्त की वह अग्रवाल जाति के इतिहास के लिए अत्यन्त महत्वपूर्ण है।

दीवान हाल में श्री महाराज अग्रसेन का जयन्ती समारोह उत्तर भारत के प्रसिद्ध मिल-मालिक रायजादा सेठ गूजरमल जी मोदी (बेगमाबाद) के सभापतित्व में अग्रवाल वैश्य समाज के जातीय उत्सव के रूप में मनाया गया। सभा की कार्यवाही सभापतिजी के स्वागत तथा मंगलगान से प्रारम्भ हुई। हाल खचाखच भरा हुआ था। देवियाँ भी एक अच्छी संख्या में उपस्थित थीं।

प्रायः आधा दर्जन देहली की वैश्य संस्थाओं द्वारा सभापतिजी को मानपत्र दिए गए, जिनका उत्तर देते हुए सभापतिजी ने अग्रवाल जाति की वर्तमान अवस्था का दिग्दर्शन कराते हुए एक सुन्दर भाषण दिया। पं० रामचन्द्रजी देहलवी ने सार्वभौमिक उद्देश्यों और अग्रवाल जाति से उनके सम्बन्ध की चर्चा करते हुए बहुत ही सुन्दर और महत्वपूर्ण भाषण दिया।

अग्रवाल-कुल-प्रवर्तक महाराज अग्रसेनजी के जीवन के इतिहास की आवश्यकता को बतलाते हुए श्री तनसुखरायजी जैन ने कहा कि अगरोहा श्री अग्रसेनजी महाराज के विशाल राज्य की राजधानी थी। प्रत्येक प्राणी उनके राज्य में सुखी था। अगरोहा उस समय स्वर्गस्थान समझा जाता था। उस समय आपस में इतना प्रेम था कि कोई भाई अपने आपको गरीब नहीं समझता था। हरियाना प्रांत में दूध की नदियाँ बहती थीं। किसी समाज या देश का इतिहास उसकी पीठ की रीढ़ की हड्डी है। जिस समाज का साहित्य अधिक विकसित और विशाल होगा, वह समाज उतना ही उन्नत होगा। किन्तु अग्रवाल-कुल-प्रवर्तक महाराज अग्रसेनजी के जीवन का इस समय तक कोई पूर्ण इतिहास नहीं बन सका है। इसका मुख्य कारण यह है कि अगरोहे के खण्डहरों में जो सामग्री भरी पड़ी है, उसकी अभी तक छानबीन नहीं हुई है। जिस जाति के शूरवीरों का इतिहास प्रकाश में नहीं आता, उस जाति के नवयुवक शूरवीर नहीं हो सकते। जो लोग यह कहते हैं कि अग्रवाल बनिये हैं, कायर हैं, इनका तो पेशा सिर्फ दुकानदारी है, वह बहादुर नहीं हो सकते; उनको बताने के लिए आवश्यक है कि श्री अग्रसेनजी महाराज की एक संपूर्ण जीवनी प्रकाशित हो, ताकि उस जीवनी के पढ़ने से हमारे नौजवानों के खून में जोश आए और

दिल में इच्छा हो कि हम भी शूरवीर बनें। श्री अग्रसेनजी महाराज की जीवनी प्रकाश में लाने के लिए सबसे पहले हमें अगरोहे की खुदाई का कार्य अपने हाथों में लेना चाहिए। वहां की खुदाई से हमें उनकी जीवनी के लिए बहुत कुछ मसाला मिल सकता है। इसके लिए उत्साही कार्यकर्त्ताओं की जरूरत है, जो इस कार्य को पूरा करने की प्रतिज्ञा लें। जब इतिहास पूर्ण हो जावे तब उसके सस्ते संस्करण छपवाये जावें, जिससे प्रत्येक भाई उनके जीवन का हाल पढ़ सके। जो अग्रवाल जाति में विद्वान हैं, उनसे मेरी प्रार्थना है कि वे इस कार्य को सफल बनावें। दानी महानुभावों को चाहिए कि वह इस कार्य के लिए दिल खोलकर दान दें। मुझे आशा है कि बहुत शीघ्र ही कार्य प्रारंभ हो जाएगा और प्रत्येक अग्रवाल भाई इसमें सहयोग देगा।

उत्सव की शान में चार चाँद लगाने वाले श्री जगन्नाथजी गुप्त के व्यायाम के खेलों को और विशेषकर छाती पर पत्थर तुड़वाने को उपस्थित लोगों ने बहुत सराहा।

सभा में चार महत्वपूर्ण प्रस्ताव सर्वसम्मति से पास हुए, जिनका तात्पर्य निम्न है :—

१—देहली नगर में एक विशाल वैश्य भवन की स्थापना हो, जिसमें वैश्य बालकों को औद्योगिक शिक्षा देने, शारीरिक उन्नति करने तथा वैश्य भाइयों के ठहरने का उत्तम प्रबन्ध होगा। इसके अतिरिक्त इस भवन के निर्माण का मुख्य उद्देश्य अग्रवाल जाति की आवाज को अपने प्लेटफार्म द्वारा फैलाना होगा।

२—अगरोहा का, जो अग्रवाल जाति का कीर्तिनगर था, पुनर्निर्माण करना। वहाँ महाराज अग्रसेन का एक स्मारक बनवाना तथा अग्रवाल बस्ती को बसाना है।

३—भारत सरकार से यह प्रार्थना की गई कि वह महाराज अग्रसेन के जन्म दिवस की प्रमाणित छुट्टी घोषित करे।

४—भारत सरकार से यह भी प्रार्थना की गई है कि वह वैश्य समाज के युवकों को फौज व पुलिस आदि में उचित स्थान दे।

सभा में भवन निर्माण के लिए जो अपील की गई, उसका बड़ा सुन्दर प्रभाव पड़ा तथा एक अच्छी राशि में रुपया देने व भवन के कमरे आदि बनवाने के वायदे हुए। सभा रात्रि के ११ बजे समाप्त हुई।

रायजादा सेठ गूजरमलजी मोदी को देहली के प्रमुख वैश्य नागरिकों की ओर से एक प्रीतिभोज भी दिया गया, जिसने नगर के गण मान्य व्यक्ति उपस्थित थे। सभा में लाला विष्न-स्वरूप कोल मर्चेण्ट, पं० मक्खनलाल जैन, लाला आनन्दप्रिय, बैरिस्टर श्रीरामजी आदि के भाषण हुए।

★ ★ ★

युवको ! तुम पुनः धधक उठो, जो तुम्हारे उन्नति मार्ग में निरोधक होगा वही जलेगा, कारण कि तुम मन्द कोयले की भाँति हो और समय पर खूब भभक सकते हो।

बच्चो ! तुम अब विलासिता का त्याग करके कुर्बानी करना सीखो और अपना सर्वस्व समाज के उत्थान में लगा दो। तुम्हारे दस बेटे हों, वे फलें-फूलें और समाज के काम आवें।

सभापति का भाषण

जातीय संगठन के लिए अपील

रायजादा श्री गूजरमलजी मोदी ने सभापति पद के भाषण देते हुए कहा—अग्रवाल जाति के इतिहास पर अभी तक बहुत कम साहित्य लिखा गया है और जिन सज्जनों ने इस संबंध में अनुसंधान किया भी है, खेद है उन लोगों को भी हमारी ओर से कोई सहायता नहीं दी गई। अखिल भारतीय मारवाड़ी अग्रवाल जातीय कोष बम्बई ने अग्रवाल जाति के संबंध में संक्षिप्त रूप में कुछ पुस्तकें प्रकाशित की हैं। प्रत्येक जाति के लिए यह आवश्यक है कि यदि वह जीवित रहना चाहती है तो अपने पूर्वजों के कार्यों को सुने-सुनावे, जिससे उनकी आगामी सन्तान में जोश पैदा हो और आपस में जातीय सम्बन्ध अधिक दृढ़ हों, क्योंकि हर जाति को दृढ़ बनाने के लिए यह आवश्यक है कि वह अपनी जाति में एक लहर पैदा करे कि वह सब एक ही कुल की संतान हैं और एक ही रक्त से उनकी उत्पत्ति है। इसी उद्देश्य को ध्यान में रखते हुए हम सब लोग यहाँ इकट्ठे हुए हैं, ताकि हमें फिर याद आ जाय कि हम सब एक ही कुल की सन्तान हैं और हम सब लोगों की उन्नति का रहस्य आपस में प्रेम रखने पर निर्भर है।

जातीय संगठन

समय के परिवर्तन से हमारा यह परिवार सैकड़ों मत-मतान्तरों में विभाजित हो गया है और आज आपस में उन भेदों से कोई अपने आपको सनातनी, समाजी और कोई जैनी कहता है। विचार कुछ हों, लेकिन यह बात तो मानी हुई है कि हम सब एक ही रक्त से सम्बन्धित हैं। इस कुल के सुपुत्र देश के प्रत्येक कोने-कोने में आकर आबाद हुए, फिर इनमें इतनी भूल बढ़ी कि एक सूबे के रहने वाले भाई दूसरे सूबे के रहने वाले भाई से अपने को अलग समझने लगे और आज यह दशा है कि मारवाड़ में बसने वाले अग्रवाल भाई अपने आपको मारवाड़ी और पंजाब में बसने वाले भाई अपने आपको पंजाबी कहने लगे।

श्री अग्रसेन जी महाराज के चरण कमलों में श्रद्धा के फूल

स्वागताध्यक्ष श्री तनसुखराय जैन

आज परमपितामह श्रद्धेय महाराजाधिराज श्री अग्रसैन जी महाराज का जयन्ती दिवस है। उस महापुरुष के पराक्रम और प्रताप से अग्रवाल जाति की धाक सारे देश पर जमी हुई थी। अगरोहा श्री अग्रसैन जी महाराज के विशाल राज्य की राजधानी थी। उनके राज्य में प्रत्येक प्राणीमात्र सुखी था। अगरोहा उन दिनों स्वर्ग समझा जाता था। प्रत्येक अग्रवाल उच्च आदर्श रखता था। उनके आचार-विचार बहुत शुद्ध थे। उन पर निम्न श्लोक चरितार्थ होता था :—

महाजनो येन गतः सः पन्थाः

अर्थात् महाजन जिस मार्ग से जाते हैं वही मार्ग ठीक है। उन्हें सब अपना पथप्रदर्शक समझते थे। पशुपालन, कृषि, लेन-देन और व्यापार—यह चार उनके धन्धे थे। पशुपालन और कृषि इन दोनों धन्धों की तो बागडोर इन अग्रवालों के ही हाथ में थी। उन दिनों चान्दी और सोने की बजाय पशुधन सबसे उत्तम माना जाता था। एक-एक महाजन के पास ५०-५० हजार, ६०-६० हजार गायें-भैंसे आदि दूध देने वाले पशु होते थे। वह लाखों बीघे ज़मीन के स्वामी होते थे। विशेषतया हमारा हरियाना प्रांत तो दूध और घी के लिये देश भर में विख्यात था। इस प्रान्त में दूध की नदियां बहती थीं।

उस समय में आपस में इतना प्रेम था कि कोई भाई अपने आपको गरीब नहीं समझता था। इतना भ्रातृभाव था कि यदि कोई भाई नुकसान में तथा किसी आपत्ति में आ जाता था और वह अगरोहे में आ गया है तो प्रत्येक अग्रवाल उसको एक ईंट और एक रुपया देकर अपने समान बना लेते थे। आपस में बहुत सहानुभूति थी। देवियों का बड़ा मान था और यदि कोई भाई किसी के द्वार पर अपनी लड़की का रिश्ता लेकर चला गया है तो लड़के वाला भाई उसको अपना गौरव समझता था और सौभाग्य समझता था कि लक्ष्मी आ गई और पल्ला पसार कर कन्या का रिश्ता स्वीकार लेता था।

इस समय हमारी जाति की दशा बड़ी शोचनीय है। अग्रवालों के सामने अब जीवन-मरण का प्रश्न उपस्थित हो गया है। हमारे भाइयों का पशुपालन और कृषि से ध्यान जाता रहा। लेन-देन और वाणिज्य भी एक प्रकार से सरकार के नए कानूनों के कारण नष्ट हो गया है। अब तो हमें संगठित होकर अपनी इस शोचनीय दशा पर विचार करना ही होगा कि हम किस प्रकार जीवित रह सकते हैं ?

अग्रवाल समाज में शिक्षा की बहुत ही कमी है। बीसवीं शताब्दी शिक्षा और सभ्यता का युग कहलाता है लेकिन हमारे अग्रवाल समाज में अब भी शिक्षा का बहुत कम प्रचार है। आश्चर्य की बात है कि देश में अब शिक्षा प्रदान करने वाली जितनी संस्थाएं हैं वे अधिकतर हमारे ही जाति भाइयों के रुपयों से चलती हैं तो भी हम लोगों के बालकों और नवयुवकों की भारी संख्या शिक्षणालयों से पूरा लाभ नहीं उठाती। प्रत्येक देश और जाति की उन्नति शिक्षा पर ही निर्भर है। हमारी शिक्षा का आदर्श यही होना चाहिये कि हमारे नवयुवकों का जीवन सादा और उनके विचार उच्च हों। अपने देश, अपने धर्म और अपनी जाति के लिए उनको अपने कर्त्तव्य का ज्ञान हो। शिक्षा के अभाव के कारण हमारे घरों तथा हमारी जाति में तरह-तरह की कुरीतियां फैली हुई हैं जो दिन पर दिन हमारे पतन का कारण बन रही हैं।

आज हमारी जाति के नवयुवकों के सामने रोटी और कपड़े का सवाल है। दूसरी जातियां हमारी जाति को धनाढ्य समझते हुए हम पर ईर्ष्या करती हैं। किन्तु हमारे नवयुवकों के अन्दर बेरोज़गारी निरन्तर बढ़ती जा रही है। बहुत से अग्रवाल परिवार जिनके रात-दिन सदाव्रत चलते थे, जो सैंकड़ों ग़रीबों को गर्मी सर्दी से बचने के लिये कपड़ा दिया करते थे उन

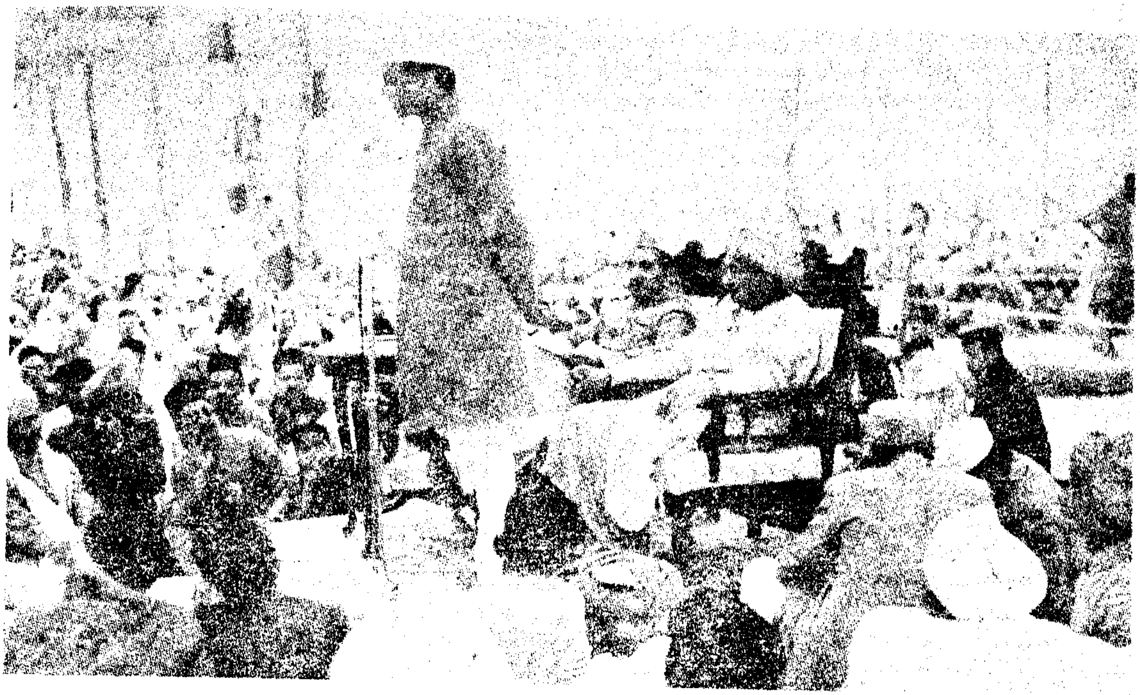
परिवारों के नवयुवक नौकरी की तलाश में दर-दर भटकते फिरते हैं। ऐसे भी कई उदाहरण मिलते हैं कि हमारी जाति के नवयुवक पेट की ज्वाला के वशीभूत होकर विधर्मी तक बन गए। क्या ऐसी अवस्था को देखकर आज के पुण्य दिवस पर हमारा कोई कर्त्तव्य नहीं है ? भारतवर्ष के व्यापार और कारखाने आदि का बहुत बड़ा भाग हमारे अग्रवालों के हाथ में है। यदि यह धनी वर्ग थोड़ा सा भाग देकर अपनी जाति के बच्चों को अपना लें तो कोई कारण समझ में नहीं आता कि हमारे नवयुवक भी पारसी जाति के युवकों से किसी तरह भी कम रहें। हमें पारसी जाति से इसका सबक लेना चाहिये। पारसियों ने अपनी जाति को इतना संगठित कर लिया है और वह अपने नवयुवकों की ओर इतना ध्यान देते हैं कि प्रत्येक पारसी की औसत मासिक आय १०० रु० बताई जाती है और उनमें कोई भी नवयुवक बेरोजगार नजर नहीं आता है।

जिला हिसार की तहसील फतेहाबाद एक ग्राम के रूप में है और इसी स्थान पर उन्होंने अपना शेष जीवन व्यतीत किया। इसी स्थान से हम लोगों का विकास आरम्भ हुआ। महाराज अग्रसैन की १८ रानियां थीं। उनका पहला विवाह मगध नरेश महाराज कुमुद की पुत्री माधवी से हुआ, दूसरा विवाह चम्पावती के राजा धनपाल की कन्या त्रनपाला से हुआ, तीसरा विवाह परमार के राजा सुन्दरसेन की कन्या सुन्दरावती से हुआ तथा शेष रानियां महाराज कोलापुर की सुपुत्रियां थीं। इन १८ महारानियों से १८ पुत्र उत्पन्न हुए, जिनके अलग-अलग गुरु थे। इन राजकुमारों की जो सन्तान हुई उनके गोत्र उन्हीं राजकुमारों के गुरुओं के नाम से प्रचलित हुए। यह सब कुछ बतलाने से मेरा उद्देश्य यह है कि हम शेष सब बातों को ध्यान में न लाते हुए कि हमें किस धर्म में विश्वास है तथा किस जगह के रहने वाले हैं, केवल यह ध्यान में रखें कि हम तमाम अग्रवाल एक ही परिवार के हैं और आपस में एक-दूसरे को भाई-भाई समझें।

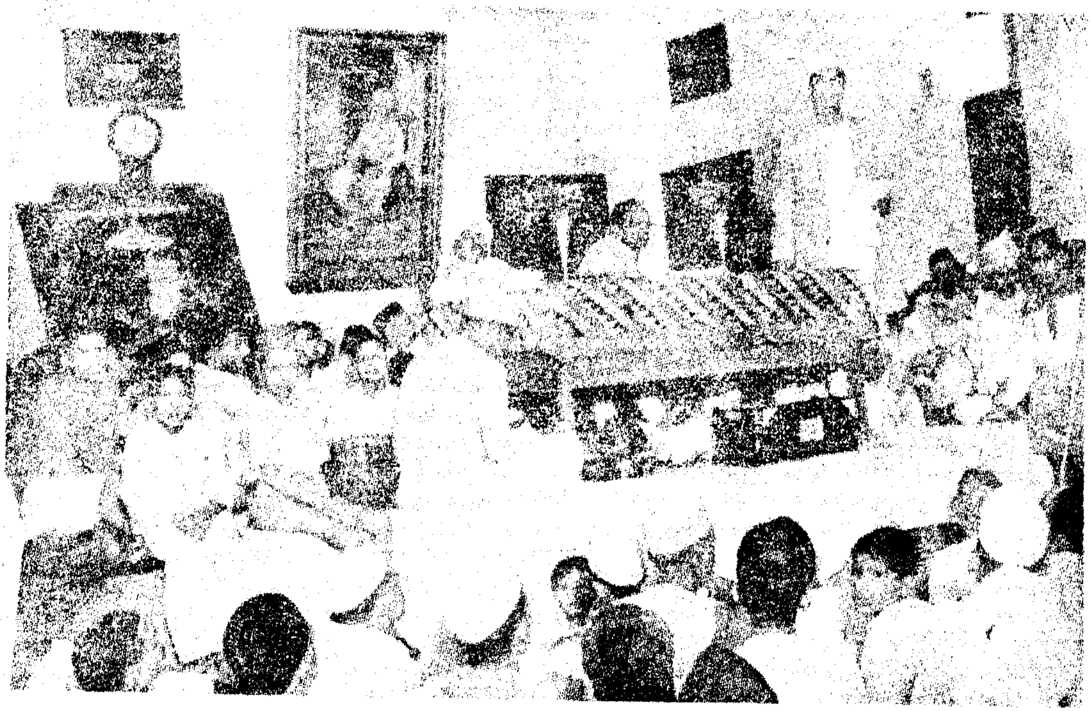
वैश्य भवन

मुझे यह बड़े खेद के साथ कहना पड़ता है कि देहली जैसे स्थान में जो कि सब जातियों की कार्यवाहियों का केन्द्र है, हमारा कोई स्थायी प्रबन्ध नहीं; जहां हम आपस में इकट्ठे होकर प्रेम-भाव बढ़ा सकें और हमारे बच्चे व्यायाम कर सकें तथा आपस में संगठित हो सकें, जिससे जाति में इतनी शक्ति उत्पन्न हो जावे कि संसार की कोई भी जाति हमें दबा न सके। क्या ही अच्छा हो कि आप लोग इस प्रकार का कोई भवन निर्माण कर सकें, जिसमें व्यायाम, दंगल, लाठी और गतका आदि सिखलाने का प्रबन्ध हो जाए। यदि देहली वाले भाई इस प्रकार का कोई शुभसंकल्प करेंगे तो मैं विश्वास दिलाता हूँ कि बाहर रहने वाले भाई भी इस शुभ कार्य में अवश्य हाथ बढ़ावेंगे।

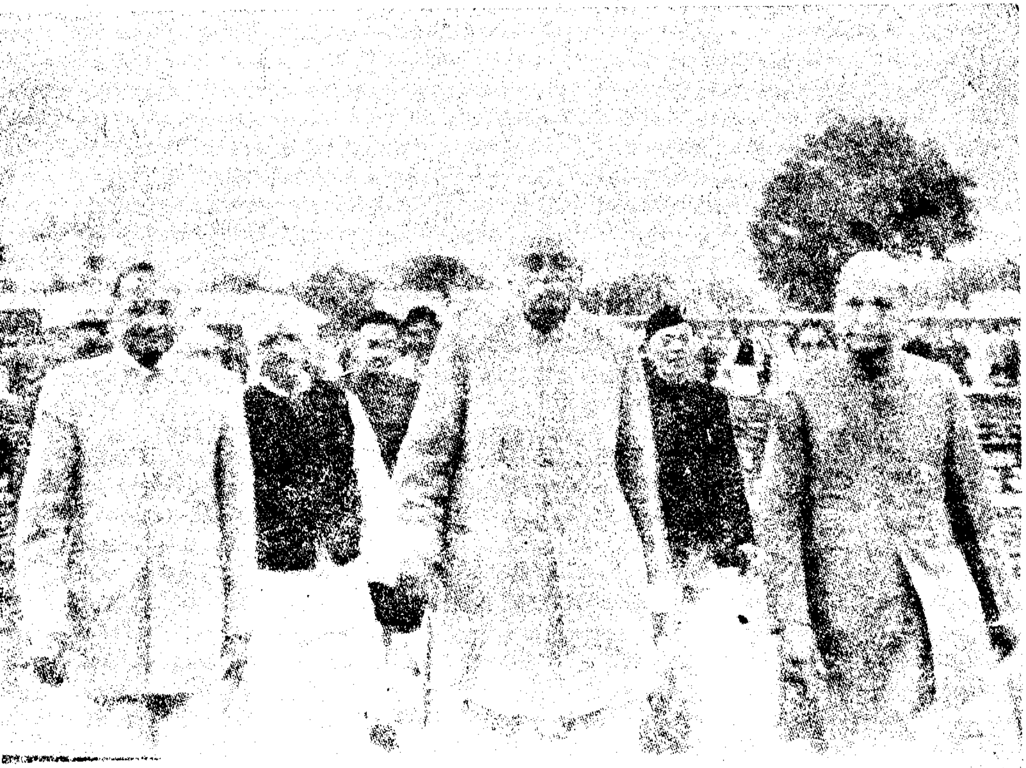
आजकल वैसे तो बेकारी चारों ओर ही फैल रही है; परन्तु वैश्य जाति विशेषकर इसका शिकार हो रही है; क्योंकि वैश्य जाति के बच्चों में दुर्भाग्य से यह सन्देह उत्पन्न कर दिया गया है कि वे कोई कार्य, जिसमें शारीरिक बल की आवश्यकता हो, नहीं कर सकते। यही कारण है कि हमारे बच्चे अभी तक उद्योग-धन्धों, मेकेनिकल लाइन तथा फौज व पुलिस में कोई भाग नहीं ले रहे हैं। मेरे विचार में वे कभी भी इतने कमजोर नहीं हैं, जैसा कि ख्याल किया जाता



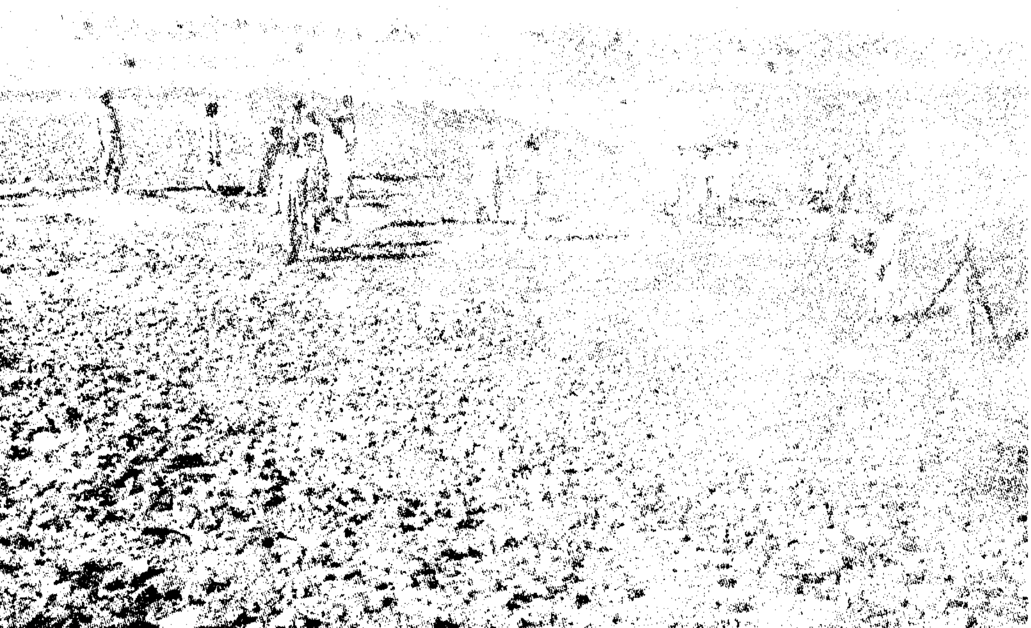
दानवीर राय सेठ श्री हुकमचंदजी सा० इन्दौर की अध्यक्षता में भाषण देते हुए



श्री अग्रसैन जयन्ती के अवसर पर स्वागत भाषण करते हुए



लालाजी के घनिष्ठमित्र श्री कुंवरसेनजी के सम्मान के अवसर पर
माननीय श्री गोविन्दवल्लभ पंत गृहमंत्री भारत सरकार



है। यदि वे इन सब कार्यों में भाग लेना प्रारम्भ कर दें, तो मुझे पूरा विश्वास है कि वे सब अन्य जातियों से बाजी ले जा सकते हैं।

आजकल जो जाति उन्नति करना चाहती है, उसके लिए आवश्यक है कि वह शक्तिशाली प्रेस की भी स्थापना करे। हमारा न कोई प्लेटफार्म है और न ही प्रेस ही है। जिन-जिन व्यक्तियों ने प्रेस चलाने का उद्योग भी किया और जातीय उन्नति के लिये प्रचार करना चाहा, उन्हें असफलता ही मिली। आज यदि हमारे किसी जातीय भाई का कोई 'पत्र' प्रकाशित होता है, तो वह इसलिये जीवित नहीं रहता कि उन्हें जाति की ओर से कोई विशेष सहायता नहीं मिलती है। इसलिए हमें आज से यह प्रतिज्ञा कर लेनी चाहिये कि हम अपने जातीय भाइयों के प्रेसों की पूरी-पूरी सहायता करेंगे ताकि हमारे जातीय कष्ट प्रेसों द्वारा दूर करायें जा सकें तथा जाति के छोटे से छोटे कष्ट को प्रत्येक व्यक्ति के कानों तक पहुँचाया जा सके। मुझे यह बतलाने की कोई आवश्यकता नहीं कि हमारे जिन जातीय भाइयों के हाथ में कोई भी कार्य है, उनकी सदैव यह इच्छा है कि वे जाति के नवयुवकों की हर सम्भव सहायता कर सकें। परन्तु इसमें सबसे बड़ी कठिनाई यह है कि ऐसी कोई संस्था नहीं कि जिसको वास्तव में सहायता की आवश्यकता हो और जो सहायता दे सकते हैं, उनका मिलाप करा सकें। मुझे यह जानकर बड़ा हर्ष है कि 'वैश्य सहायक सभा' देहली ने इस कार्य को करने का भार ले रखा है और वह जाति के नवयुवकों को रोजगार दिलाने की हर प्रकार से सहायता कर रही है। यही नहीं वरन् इन्होंने जाति के नवयुवकों को भिन्न-भिन्न प्रकार के उद्योग-धन्धे सिखलाने का कार्य भी आरम्भ किया हुआ है। मेरा विचार है कि यदि आप सभा की सहायता करेंगे तो यह सभा आपके बच्चों को बहुत कुछ लाभप्रद सिद्ध होगी।

एक आदर्श उपयोगी संस्था

भील आश्रम

राजेन्द्रप्रसाद जैन,
इन्दौर

[लालाजी की सामाजिक कार्यों में विशेष रुचि थी। जैन समाज के कार्यों में ही उन्हें उत्साह न था वरन् सेवा का कार्य करने का जब भी उन्हें अवसर मिला वे तत्काल उस कार्य में प्रवृत्त हुए। गंगानगर आदर्श भील उद्योग आश्रम का उद्घाटन उनके हाथों से हुआ और उन्होंने इस आश्रम में विशेष रुचि प्रदर्शित की। इस संस्था का कुछ परिचय दिया जा रहा है।]

भारत के मुख्य विभाग मालवा, राजपूताना तथा गुजरात प्रांत के घने बनों में आधुनिक शहरों से दूर, विंध्याचल, अरवली व सतपुड़ा आदि पर्वतश्रेणियों के मध्य में करोड़ों की संख्या में बसने वाली भील जाति की दयनीय दशा की ओर यदि दृष्टिपात किया जाय, तो कोई भी ऐसा सहृदय व्यक्ति न होगा जो आँसू न बहाये। उक्त जाति भारतवर्ष की सबसे प्राचीन जाति है। यह मानने में तो किसी को विरोध नहीं हो सकता। राजनीति, शिक्षा शिल्प, विद्या तथा व्यापार में, इतिहास में उक्त जाति का स्थान क्या रहा होगा, यह तो नहीं कहा जा सकता,

परन्तु, वीरता, धीरता, रणकुशलता, देशप्रेम तथा बात के पक्के होने का प्रमाण आज भी इतिहास के पन्ने-पन्ने से मिल रहा है। कितनी ही बार हमारे राजाओं तथा राणाओं की रक्षा इसी कौम के होनहारों ने अपने प्राण देकर भी की थी। कितनी ही बार स्वदेश-रक्षा के निमित्त इन्हीं बहादुरों की तलवारें यवनों से लड़ी थीं, कितनी ही शत्रुओं की आग बरसाने वाली तोपों का मुकाबला इन्हीं रणबांकुरे सिपाहियों के तीरों, भालों और सनसनाते हुए बाणों ने किया था तथा कितनी ही बार इन्हीं भील सरदारों ने देश के लिए अपने होनहार बच्चों को अर्पण कर दिया था। परन्तु कितने दुःख तथा शर्म की बात है कि हिन्दू धर्म के लिए प्राण देने वाली कौम के अनुयायी ही हिन्दू धर्म के मुख्य तीर्थ गौशाला के संहारक बने। गाय को मार कर अपने पेट की ज्वाला को शान्त करें!! परन्तु इसमें उनका क्या दोष? वे आज अशिक्षित हैं तब भी उन्हें सन्तोष है। उनके पास पहनने को कपड़ा नहीं, तो भी उन्हें परवाह नहीं। भगवान् ने उन्हें दुःख सहने की, गर्मी और सर्दी की तकलीफें बर्दाश्त करने की शक्ति दी है। आप उन्हें गुलाम बनाइये, मनचाहा काम उनसे लीजिये, सब कुछ बर्दाश्त करेंगे। वहां उन्हें अन्न न मिले न सही। घास-फूस-जंगली कन्द-मूल पर गुजारा करेंगे। परन्तु जब वह भी न मिले तो क्या करें? मजबूर होकर उन्हें सब कुछ करना पड़ता है। खेती आदि के काम के लिए उनके पास गायें व बैल होते हैं, वे उन्हीं को मार कर उनके मांस से अपना उदर पोषण करते हैं। और इसके सिवाय चारा भी क्या? जब उनके जानवरों को भी घास मिलना तक कठिन हो जाता है, तब मजबूरन उन्हें ऐसा करना होता है।

आज उन्हें यदि उचित रूप से शिक्षा दी जाए, गोमाता की महत्ता को उन्हें बताया जाए, हिंसा तथा चोरी की बुराइयों को उनके सामने रक्खा जाए, धर्म, पुरुषार्थ, उद्योग-धंधा, कृषि, व्यापार, परोपकार, सेवा तथा गोभक्ति की शिक्षा पुस्तकीय तथा व्यावहारिक रूप से देकर विश्वप्रेम का पाठ पढ़ाया जाए, तो कोई ऐसी शक्ति नहीं जो उन्हें सुन्दर नागरिक बनने से रोक सके। आज भील जाति चोरी, हिंसा, डकैती आदि बुराइयों के कारण विश्व में बदनाम हो रही है। यदि यही बुराइयाँ उनसे दूर कर दी जायें तो वह दिन दूर नहीं जब वह फिर अपने प्राचीन गौरव की याद कर देश के लिए हर तरह की कुरबानी करने के लिए तैयार रहेंगे। देश के लिए जियेंगे और देश के लिए मरेंगे।

इन्हीं विचारों को लेकर आदर्श भील उद्योग आश्रम गंगानगर का जन्म नीमखेड़ा स्टेट के चीफ ठाकुर गंगासिंहजी द्वारा हुआ था। वैसे इस संस्था की उम्र अभी केवल ४॥ मास की है। परन्तु इस थोड़े से समय में ही वह अपने कार्य में सफल हुई है। उस सफलता को देखकर कहा जा सकता है कि उपरोक्त संस्था को जनता का यदि कुछ भी सहयोग प्राप्त हुआ तो वह भारत की एक आदर्श संस्था प्रमाणित हो सकेगी।

गत २२ मार्च को संस्था का उद्घाटन श्रीमान लाला तनसुखरायजी जैना मैनेजिंग डायरेक्टर तिलक बीमा कम्पनी लिमिटेड न्यू देहली के कर कमलों द्वारा हुआ। और तब से आज तक जो कार्य संस्था ने किया उसका विवरण दिया जाता है।

उद्घाटन से इस समय तक लगभग एक सौ विद्यार्थी (भील बालक) आश्रम में प्रविष्ट हो चुके हैं और इस समय कितने ही माता-पिता अपने बच्चों को आश्रम में प्रविष्ट कराने के इच्छुक हैं। माता-पिताओं का बच्चों को आश्रम में दाखिल कराने को इच्छुक होना इस बात का द्योतक है कि उनके हृदय में शिक्षा प्राप्त करने की कितनी उत्कण्ठा है। दूसरी बात यह भी है कि वे लोग अपने घर में बच्चों को भर पेट भोजन नहीं दे सकते।

शिक्षा—प्रविष्ट होते समय जो बालक, असभ्य, हिंसक तथा निरुद्यमी थे, वही बालक आज विनम्र, विनयशील, अहिंसक तथा सभ्यता के पुतले बने हैं। जिन्हें बोलने तक की तमीज नहीं थी, वही बालक आज मधुर कण्ठ से सुबह शाम भगवान की स्तुति करते तथा कठिन से कठिन हिन्दी व संस्कृत के शब्दों का उच्चारण करते हैं।

कृषि-विभाग के लिए भूमि – गंगासिंहजी द्वारा आश्रम को पांच सौ बीघा जमीन भेंट स्वरूप प्रदान की गई थी। उसी के कुछ भाग में खेती की जायगी और बालकों को कृषि की शिक्षा सुन्दर तरीके से देने के साथ-साथ उससे आश्रम की आर्थिक कठिनाई भी बहुत कुछ हल हो सकेगी।

गोशाला विभाग—आश्रम के ही अन्तर्गत एक गोशाला विभाग भी रक्खा गया है; जिसमें भील बालकों को गो-भक्ति की शिक्षा देने के साथ-साथ सुन्दर सुडौल बैल भी तैयार किये जाएँगे।

१. **उद्योगशील विभाग** में इस समय पेपर इन्डस्ट्री का कार्य बड़ी सफलतापूर्वक चल रहा है। भील बालकों द्वारा पेपर, ब्लाटिंग पेपर, राईटिंग पेपर तथा लिफाफे तैयार किये गये हैं, जो कि शीघ्र ही बाजार में आ रहे हैं।

२. बांस की चिकें, चटाइयां आदि बनाने का कार्य भी प्रारम्भ हो गया है।

३. रूई के सुन्दर खिलौने बनाने के लिए एक मद्रासी सज्जन आ गये हैं अतः यह कार्य शीघ्र ही बालकों को सिखाना प्रारम्भ कर दिया जायगा।

कुछ कार्य और भी है जो कि इनमें पूर्ण सफलता मिलने पर प्रबन्धकों द्वारा प्रारम्भ किए जावेंगे।

इस समय संस्था स्टेट की न रह कर पूर्ण रूप से सार्वजनिक बन गई है। सदस्यों को आजीवन, सहायक, संरक्षक तथा शुभचिन्तक आदि श्रेणियों में बांटा गया है। १००१), १०१) तथा ५१) रु० देने वाले सज्जन क्रमशः संरक्षक, सहायक तथा शुभचिन्तक कहलाएँगे। अतः आशा है कि जनता अधिक से अधिक संख्या में उक्त संस्था के सदस्य बनकर एक आवश्यक तथा उपयोगी संस्था को अपनाते हुए, धर्म तथा देशोपकार के काम में भाग लेगी।

❦ ❦ ❦ ❦

विश्व-शान्ति और व्यक्ति की शान्ति, दो वस्तुएँ नहीं हैं। अशान्ति का मूल कारण अनियन्त्रित लालसा है। लालसा से संग्रह, संग्रह से शोषण की प्रवृत्ति उत्पन्न होती है।

आबू टैक्स विरोधी आन्दोलन

श्री विजय कुमारजैन

भारत की अत्यन्त कलापूर्ण और संसार की सर्वश्रेष्ठ स्थापत्य-कला की सुन्दर मूर्तिमान कृतियों में में आबू के विशाल मनोज्ञ नयनाभिराम दर्शनीय मनोज्ञ मन्दिर हैं। इन अद्वितीय मन्दिरों का निर्माण वीरकेशरी वस्तुपाल और तेजपाल जैसे समर-धुरन्धर मन्त्रिप्रवरों ने कराया। सिरोही राज्य में यह मन्दिर स्थित हैं। वहाँ के राजा ने इन मन्दिरों के दर्शनार्थ श्रद्धालु यात्रियों पर टैक्स लगा दिया। यह बड़े कलंक की बात थी जिसे कोई भी स्वाभिमानी मनुष्य सहन नहीं कर सकता था। आबू का आन्दोलन कैसे शुरू हुआ और उसमें सफलता कैसे प्राप्त हुई—इस सम्बन्ध में लालाजी ने लिखा है कि मार्च सन् १९४१ की बात है कि मैं गुरुदेव श्री पूज्य शान्तिविजय महाराज के दर्शनार्थ आबू गया। वहाँ पहुँचने पर जब राज्य की तरफ से मुंडका टैक्स माँगा गया तो मेरे आश्चर्य का ठिकाना न रहा कि एक हिन्दू रियासत के मन्दिरों में पूजा करने और देवदर्शन करने पर टैक्स कैसा ? जबकि यह टैक्स मन्दिर की भलाई अथवा यात्रियों को सुविधा पहुँचाने में खर्च न होकर राज्य के कोष में जाता है। उस समय तो मैंने टैक्स देकर दर्शन किए लेकिन मेरे आत्म-सम्मान को इससे भारी ठेस पहुँची। दिल्ली आने पर मैंने इस टैक्स के विरोध में आन्दोलन शुरू किया। चूँकि यह टैक्स हिन्दू मात्र को खल रहा था। मेरी अपील पर चारों तरफ से सहयोग का हाथ बढ़ाया गया। जनवरी १९४२ में ब्यावर में एक महती जैन सभा बुलाई गई और उसमें इस टैक्स का विरोध करने के लिए आन्दोलन शुरू करने का निश्चय किया गया। जगह-जगह सभाएँ हुईं। और आन्दोलन जोरों के साथ चल पड़ा। सिरोही राज्य ने इस आन्दोलन को दबाने के लिए राज्य में रहने वाले जैनियों पर तरह-तरह की सख्तियाँ कीं। परन्तु इससे आन्दोलन को बल ही मिला। जून सन् ४२ में एक शिष्ट-मन्डल सिरोही के दीवान से भी मिला परन्तु कोई सन्तोषजनक फल न हुआ। आन्दोलन बराबर चालू रहा लेकिन १९४२ का अगस्त आन्दोलन शुरू होने पर हमारे बहुत से कार्यकर्ता इस इस तरफ झुक गये और बहुतों को जेल जाना पड़ा। उस समय इस आबू मन्दिर आन्दोलन को स्थगित करना ही उचित समझा गया क्योंकि हमको पूर्ण विश्वास था कि देश को आजादी मिलने पर ये छोटे-मोटे टैक्स तो क्या हमारी सब समस्याएँ हल हो जाएँगी।

सौभाग्य से देश की आजादी का सुनहरी दिन आया। हमारी यह मांग आबू मन्दिर मुंडका टैक्स हटाने की मांग भी परिवर्तित समय में शीघ्र मान ली गई और महारानी साहिबा सिरोही ने उस मुंडका टैक्स को सर्वथा हटाने के लिए घोषणा करदी। इस आन्दोलन की सफलता में समस्त समाचारपत्रों, प्रमुख नेताओं विभिन्न स्थानों की पंचायतों और अनेक उदीयमान कार्यकर्ताओं का प्रमुख हाथ है जिन्होंने इस आन्दोलन को अपनाकर हमारे कार्य में पूर्ण सहयोग दिया। समस्त जनता का विशेष आभार है कि जिसने तन-मन-धन से सहायता कर आन्दोलन को सफल बनाया।

इस आन्दोलन का विस्तृत विवरण इस प्रकार है :—

आबू परिचय

राजपूताने की स्वर्ण-भूमि के अंचल में आबू पर्वत अपनी ऐतिहासिकता, धार्मिकता एवं अपने नैसर्गिक सौन्दर्य के कारण गौरवपूर्ण स्थान रखता है। मध्यभारत की भूमि पर इसके शिखर सर्वोच्च माने जाते हैं। आबू का सर्वोच्च शिखर ५६५० फुट ऊँचा है। कौन ऐसा मानव यात्री है जो आबू के अंचल में पहुँच कर इसकी हरियाली लताकुन्जों, सरोवर, ऊँचे-नीचे मार्गों और लता-पुष्पों से सुगन्धित वातावरण पर मुग्ध होकर कुछ समय के लिए अपने को भूल न जाता हो ! आबू यदि ऋषि-महात्माओं के लिए एकांत भूमि है तो विलासप्रिय लोगों के प्रकृतिदत्त मनोरम क्रीड़ास्थली। दोनों के ही सामने यहां प्रकृति का भव्य एवं विराट रूप उपस्थित होता है।

धर्मप्रेमी हिन्दुओं के लिए आबू पर्वत शताब्दियों से पूर्व से ही ऋषियों के तपोवन के रूप में पुण्य-भूमि रहा है। यहाँ पर हिन्दू धर्म के महान ऋषियों ने अपनी योग साधनाएँ पूर्ण की हैं। आबू पर्वत की व्युत्पत्ति के साथ हिन्दू धर्म का घनिष्ठ सम्बन्ध रहा है। जब हम धार्मिक ग्रन्थों और पुराणों के पन्ने पलटते हैं तो स्थान-स्थान पर अर्बुद गिरि (आज का आबू) का उल्लेख मिलता है। आबू की उत्पत्ति के सम्बन्ध में पौराणिक उल्लेख इस प्रकार है :—

प्राचीन काल में ऋषि वशिष्ठजी यहाँ अन्य ऋषियों के साथ आश्रम बनाकर तपस्या करते थे। एक बार वशिष्ठजी की कामधेनु गौ वहां उत्तंक ऋषि के खोदे हुए गड्ढे में गिर गई जिसमें कामधेनु के लिए निकलना असम्भव था। वशिष्ठजी उसे निकालने के प्रयत्न में थे। लेकिन कामधेनु तो स्वयं कामधेनु थी उसने अपने दूध से उस गड्ढे को भर दिया और स्वयं तैर कर बाहर निकल आई। फिर भी इस दुर्घटना से वशिष्ठजी को अत्यन्त दुःख हुआ और उन्होंने उस गड्ढे को सदा के लिए भर देने के लिए पर्वतराज हिमाचल से प्रार्थना की। हिमाचल ने वशिष्ठजी की प्रार्थना पर अपने पुत्र नन्दिवर्धन को आज्ञा दी। वशिष्ठजी नन्दिवर्धन को अर्बुद नामक सर्प के द्वारा ले आये और उस गड्ढे में स्थापित कर दिया जिसमें कामधेनु गिर गई थी। अर्बुद सर्प भी नन्दिवर्धन के नीचे रह गया। इसलिए इस पर्वत का नाम अर्बुद और नन्दिवर्धन दोनों एक साथ-साथ प्रचलित हुए। अर्बुद का अपभ्रंश नाम आबू आज भी प्रचलित है। यह भी कहानी बहुत प्राचीन चली आ रही है कि आबू के नीचे रहने वाला अर्बुद सर्प छः-छः मास में जब करवट बदलता है तो आबू पर भूकम्प होता है। आजकल भी भूकम्प आबू पर बहुधा होता रहता है। और लोग इसका कारण इसी पुरानी कहानी के आधार पर बतलाते हैं।

नन्दिवर्धन की प्रतिष्ठा के पश्चात् तो उस तपोवन भूमि का धार्मिक महत्व दिन-प्रतिदिन बढ़ता ही गया। आबू पर्वत धार्मिक दृष्टि से भारत की प्रमुख पुण्य भूमियों में रहा है। और उस काल में प्रमुख तपस्वियों महात्माओं और सम्राटों को आबू के एकान्त प्राकृतिक सौन्दर्य और निर्जनता में अपूर्व आत्म-सुख और शान्ति मिली है।

गुरु दत्तात्रेय भगवान ने आबू के सर्वोच्च शिखर गुरु शृंग को अपने पावन चरणों से पवित्र किया। गुरु शिखर नाम और गुफा में शिला पर अंकित चिह्न आज भी गुरु दत्तात्रय की स्मृतिस्वरूप आबू पर विद्यमान है। प्रतापी पाण्डवों के भी बनवासकाल में कुछ समय रहने का पता हमें आबू पर्वत पर मिलता है। पाण्डव गुफाएँ और भीम गुफाएं आज भी उनके नाम से प्रसिद्ध हैं। राजा नल की गुफा अचानक उस विदर्भ सम्राट की याद दिलाती है जिसने जुए में राजपाट हार कर सुकुमारी दमयन्ती समेत बन-बन भटकना पड़ा जिसे चक्रवर्ती सम्राट हरिश्चन्द्र अपनी रानी शैव्या और पुत्र रोहिताश्व के साथ नंगे पांव भटकते हुए आबू की शान्तिदायिनी उपत्यकाओं में शरण लेने से नहीं चूके। हरिश्चन्द्र गुफा आज भी उनके नाम से आबू पर्वत पर विख्यात है।

नन्दिवर्धन की स्थापना के बाद तो आबू का सौन्दर्य और भी बढ़ गया। प्राचीनकाल में कितने ही तपस्वियों ने यहां अपनी तप-साधनाएं सफल कीं। यहां के एकान्त प्राकृतिक सौन्दर्य में उन्हें अपूर्व आत्मसुख और शान्ति मिलती थी। आज आबू पर जो पुण्य स्मृति-चिह्न पाये जाते हैं उनमें गुरु शिखर पर हमें गुरु दत्तात्रय का आश्रम मिलता है जहाँ उनके चरण चिह्न आज भी विद्यमान हैं। प्रतापी पाण्डवों ने भी आबू पर्वत पर निवास किया, उनकी रमणीय गुफाएं आज भी आबू में देखने योग्य हैं।

राजा नल की गुफामें जुए में राजपाट हारे हुए उस विदर्भ सम्राट की याद दिलाती है जिसे रानी दमयन्ती समेत बन-बन ठोकरें खानी पड़ीं।

उस आपद्‌काल में आबू के अंचल में उन्होंने अपनी कुछ दुर्भाग्य भरी रातें बिताईं। ब्राह्मण को अपना राजपाट देकर दक्षिणा के चक्कर में भटकते हुए राजा हरिश्चन्द्र भी दुर्दिनों में आबू की उपत्यका में शरण लेने से न चूके।

पौराणिक काल को छोड़कर जब हम ऐतिहासिक काल में आते हैं तो आबू का इतिहास हमें राजपूत नरेशों की वीरता और उनके पराक्रम से रंजित दिखाई देता है। शहाबुद्दीन गोरी ने यहीं आबू की घाटियों में शिकस्त खाई थी। कितनी ही ऐतिहासिक लड़ाइयाँ आबू के अंचल में लड़ी गई थीं। उनकी स्मृतियों के अनेकों चिह्न हमें आबू में दिखाई देते हैं। राजपूताने और मारवाड़ के समस्त क्षत्रिय राजाओं के लिए आबू आकर्षण का केन्द्र रहा है। इसमें कोई सन्देह नहीं कि जहां ऋषियों और तपस्वियों ने आबू की गिरि-कन्दराओं में अपनी योग-साधनाएं सफल कीं, वहां इन वीर क्षत्रिय नरेशों के लिए आबू ग्रीष्मकाल में अनोखा शान्ति-निवास रहा है।

तुम पथिक बनकर पथ पर चलो, लेकिन पथ पर कब्जा मत करो! पथ पर चलो पर पंथ के नाम पर बड़ी-बड़ी अट्टालिकाएं और महल खड़े मत करो।

ऐतिहासिक काल में आबू

इसमें कोई सन्देह नहीं कि जहाँ आबू के एकान्त गिरि-कन्दराओं में तपस्वी ईश्वर-चिन्तन में लीन रहते होंगे, वहाँ इन क्षत्रिय नरेशों की सुन्दरी राजमहिषियाँ आबू के सरोवरों में लहरों के साथ जल-क्रीड़ा करती रही होंगी, उनके नूपुरों की झंकार और बसन्त के गीतों से, आबू के बनपथ और लताकुंज संगीतमय हो उठते होंगे। उनके केशों और अंगों से उठती हुई सुगन्ध से आबू का बसन्त पवन गन्धमय रहता होगा। महारावल समरसिंह, महाराव लुंभा, महाराजा तेजसिंह, राणा लाखा और कुंभा सरीखे प्रतापी नरेशों की वीर पत्नियाँ यहाँ अहर्निश विहार करती थीं। उस समय आबू पर्वत स्वर्गभूमि था और नरेश इसी में इन्द्र के नन्दनवन की कल्पना करते थे।

लेकिन उस समय इस नन्दनवन तक पहुँचना कितना दुर्गम और साहस का काम था, उसकी कल्पना आज हम नहीं कर सकते। आबू के पर्वत-शिखरों को दूर से देख लेना आसान था, लेकिन उन तक पहुँचकर वहाँ के नैसर्गिक सौन्दर्य का आनन्द प्राप्त करना दुर्लभ था। तभी तो ऐतिहासिक चिन्हों की खोज में भटकने वाले प्रसिद्ध ऐतिहासवेत्ता कर्नल टाड ने जब आबू की कठिन चढ़ाइयों और दुर्गमताओं को पार कर आबू की प्रथम झलक पाई, तो लिखा है :—

"It was nearly noon, when I cleared the path of Sitla Mata, and as the bluff head of mount Abu opend upon me, my heart beat with joy, as with the sage of Syracaus I exclaimed, "Eureka" अर्थात् "मध्याह्न के लगभग जब मैं शीतला माता के घाट से चला, और जब आबू के उच्च शिखर मेरे नेत्रों के सामने दृष्टिगोचर हुए, तो मेरा हृदय प्रसन्नता से नाच उठा और सिराक्युस ऋषि के शब्दों में मैंने हर्षातिरेक से दुहराया 'यूरेका' (जिसे खोजता था, उसे पा लिया)।"

ऐसे थे आबू के दुर्गम पथ और उनकी बीहड़ता, जिन्हें पार कर किसी की खुशी का वारापार न रहता था। लेकिन उस व्यक्ति की कहानी आबू के इतिहास से सम्बन्धित एक अमर प्रेम-कथा है, जिसे कर्नल टाड से पहले शायद प्रथम बार आबू पर चढ़ने-उतरने के लिए १२ मार्ग बनाए। सम्भव है उसी के बनाए हुए मार्ग से चढ़कर कर्नल टाड आबू की उच्चसम भूमि पर पहुँचे होंगे। वह व्यक्ति रसियाबालम के नाम से विख्यात तांत्रिक था और आबू की राजकन्या से प्रेम करता था। उसने चाहा कि राजकन्या के माता-पिता उसके साथ अपनी पुत्री का विवाह कर दें। लेकिन राजा और रानी किसी प्रकार भी राजकन्या का विवाह रसियाबालम के साथ नहीं करना चाहते थे। रसियाबालम की निरन्तर प्रेरणाओं और प्रार्थनाओं से आखिर राजा इस शर्त पर राजकन्या का विवाह करने के लिए तैयार हो गए कि वह सूर्यास्त के पश्चात्, प्रातः मुर्गा बोलने से पूर्व ही, एक रात में आबू पर चढ़ने-उतरने के लिए बारह मार्ग बना दे। राजा यह कार्य रसियाबालम की शक्ति से बाहर समझते थे लेकिन रसियाबालम ने राजा की शर्त स्वीकार

करली और सूर्यास्त के पश्चात् अपनी मन्त्र-शक्ति के बल से आबू पर्वत पर मार्ग-निर्माण का कार्य आरम्भ कर दिया। लेकिन रानी इस शर्त पर भी अपनी कन्या का विवाह रसियाबालम के साथ करने को तैयार न थी, और वे जानती थीं। रसियाबालम समय की अवधि के भीतर अवश्य काम पूरा कर देगा, तब उन्हें लाचार होकर अपनी कन्या का विवाह उसके साथ करना होगा। उधर रसियाबालम ध्यानमग्न होकर अपनी सारी मन्त्र-शक्ति से आबू पर मार्ग-निर्माण का कार्य कर रहा था, यहाँ रानी ने उसे कर्त्तव्य-च्युत करने का निश्चय किया। ज्योंही रात्रि का तीसरा पहर समाप्त हुआ और मुर्गे के बोलने का समय निकट आया कि रानी ने अवधि समाप्त होने से पूर्व ही मुर्गा बोलने की आवाज लगा दी। रसियाबालम का कार्य पूर्ण ही होने को था कि मुर्गे की ध्वनि सुनकर एकदम निराशा का धक्का खाकर काम छोड़ बैठा, और इस प्रकार रानी के छल से अपनी शर्त पूर्ण करने में असफल हो गया। जब रसियाबालम को इस बात का पता चला कि उसके साथ रानी द्वारा छल किया गया है, तो उसने अपने श्राप से रानी और राजकन्या, दोनों को पत्थर का बना दिया और स्वयं विष खाकर वहीं मर गया। रसियाबालम की जो मूर्ति आबू में स्थापित है, वह एक हाथ में विष का प्याला लिए आज भी खड़ी दिखाई देती है। उसी के बगल में राजकन्या की पाषाण मूर्ति है। रानी की मूर्ति तोड़ डाली गई है और उसके स्थान पर पत्थरों का ढेर देखने को मिलता है।

यह है आबू के मार्गों की और उनके निर्माणकर्त्ता की दुखान्त प्रेम-कथा। आज भी आबू पर चढ़ने के लिए बारह मार्ग बतलाए जाते हैं, कुछ पर आवागमन होता है, कुछ लुप्तप्राय हो गये हैं। आबू किसी समय ऐसा ही प्रेमोन्मादक स्थान रहा है। आपको आबू पर्वत की भूमि के कण-कण में ऐतिहासिक और धार्मिक रोमांचकारी कहानियाँ भरी मिलेंगी।

आबू के कलासर्जक

लेकिन आबू जहाँ ऐतिहासिक काल के राजा-महाराजाओं के लिए नन्दनवन और क्रीड़ास्थली रहा है, वहाँ उन्होंने आबू में अपनी धार्मिक भावनाओं को साकार रूप देने के लिए अलौकिक शिल्प और कला की सृष्टि भी की है। उन्होंने अपने काल की वैभवशाली शिल्प-कला के अमरचिन्हों के रूप में मन्दिरों का निर्माण कराकर आबू के आकर्षण में चार चाँद लगा दिए हैं। इस प्रकार आबू की यह कलापूर्णता सोने में सुगन्ध की उपमा को सार्थक करती है। उन पराक्रमी नरेशों की महत्वकांक्षाओं और धार्मिक भावनाओं के प्रतीक, हमें आबू-पर्वत पर मन्दिरों, देवालयों, मूर्तियों, महलों और ध्वंसावशेषों में, शिला-लेखों और ताम्रपात्रों के रूप में जहाँ-तहाँ बिखरे मिलते हैं। हिन्दुओं और जैनों की सम्मिलित कला, धर्म और संस्कृति का यहाँ हमें एक साथ दर्शन होता है। जहाँ जैन महामन्त्री विमलशाह और वस्तुपाल, तेजपाल ने संगमर्मर, शिल्प-कला और धातुकला के उत्कृष्ट उदाहरणों के रूप में विश्वविख्यात जैनमन्दिर निर्माण कराये, वहाँ हिन्दू सम्राटों में मेवाड़, उदयपुर के राणाओं, चन्द्रावती चौहान के वंशजों और सिरोही के तत्कालीन शासकों ने भी समय-समय पर ऐतिहासिक कला-दर्शक हिन्दू मन्दिर बनवाये। आबू पर्वत पर इन हिन्दू मन्दिरों, देवालयों और धार्मिक तीर्थस्थानों की संख्या सौ के लगभग है, जो जैनियों के स्थानों से तो कई गुणी अधिक है। इन हिन्दू-मन्दिरों की निर्माणकला पर भी हमें

जैनियों के मन्दिरों की शिल्पकला और धातुकला की छाप लगी दिखाई देती है। इस दृष्टि से आबू के हिन्दू-मन्दिरों में जैसी धातु और पाषाण की विशाल मूर्तियां हैं, वैसी भारत के शायद ही और किन्हीं मन्दिरों में पाई जाती हों।

प्रमुख हिन्दू मन्दिर

अचलेश्वर महादेवजी का मन्दिर आबू का सबसे प्राचीन मन्दिर माना जाता है क्योंकि आबू पर्वत के अधिष्ठाता देव, अचलेश्वर महादेवजी ही हैं। आबू के परमार शासक इन्हें अपना कुलदेवता मानते थे। बाद में जब चौहानों का राज्य आबू पर हुआ तो वे भी इन्हें अपना कुल-देव मानने लगे। इस मन्दिर में शिवलिंग नहीं, वरन् शिवजी के चरण का अंगूठा ही पूजा जाता है। मन्दिरों में जो जिलहरी है, उसमें शिवजी के चरण का अंगूठा ही स्थापित है। सामने दीवार में पार्वतीजी और पार्श्व में ऋषियों और राजाओं की मूर्तियां हैं। इसके गूढ़-मण्डप से अलग एक शिवलिंग पट है, जिसमें १०८ शिवलिंग बनाये गए हैं। इस मन्दिर का कई राजाओं ने अपने-अपने समय में जीर्णोद्धार कराया और मूर्तियाँ भी स्थापित कीं। इसके जीर्णोद्धार का सबसे प्राचीन उल्लेख संवत १३४३ में मिलता है। उस समय मेवाड़ के महारावल समरसिंह ने मन्दिर का जीर्णोद्धार करवाकर इस पर सोने का ध्वजदंड चढ़ाया और उनके शिलालेख में तपस्वियों के लिए भोजन और निवास की व्यवस्था कराने का भी उल्लेख मिलता है। मन्दिर के सामने नंदी-भगवान की एक विशालकाय पीतल की मूर्ति है, जिसकी पीठ पर खुदे हुए लेख के अनुसार वह सं० १४६४ की बनी हुई मालूम होती है। मन्दिर की देहरी के बाहर धातु का एक त्रिशूल है, जिसे राणा लाखा, ठाकुर मांडण और कुंवर भादा ने सम्मिलित रूप से बनवाकर स्थापित कराया था। शंकरजी का इतना विशाल त्रिशूल भारत के और किसी शिवालय में देखने को नहीं मिलता।

अचलेश्वर महादेवजी के मन्दिर के अहाते में और भी अनेक छोटे-छोटे हिन्दू मन्दिर हैं। इसी मन्दिर की बगल में पवित्र मन्दाकिनी-कुंड है, जो ९०० फुट लम्बा और २४० फुट चौड़ा है। इतने विशाल कुंड भारत में विरले ही देखने को मिलते हैं। कुण्ड के समीप ही परमार राजा धारावर्ष की शक्ति के चिन्ह धनुष और पत्थर के तीन भैंसे स्थापित हैं, जिन्हें वह एक ही बाण से बेध सकता था। मंदाकिनी-कुण्ड के समीप ही सारणेश्वर महादेव के भी दर्शन होते हैं। इस मन्दिर में महाराव मानसिंह की पाँचों रानियों सहित मूर्तियां स्थापित हैं, जिनमें वे शिवजी की आराधना करते हुए दिखाये गए हैं। कहा जाता है ये पांचों रानियां मृत्यु के पश्चात् राजा मानसिंह के साथ सती हुई थीं। मन्दिर के आसपास ही भर्तृहरि-गुफा, रेवती-कुण्ड और भृगु-आश्रम दर्शनीय स्थान हैं।

गुरुशिखर

ओरिया से वायव्य कोण में गुरुशिखर आबू का सर्वोच्च श्रृंग है, जिसकी ऊँचाई समुद्र की सतह से ५६५० फुट है। परिश्रम की चढ़ाई के पश्चात् उस शिखर पर गुरु दत्तात्रेय के चरण

एक शिला के ऊपर अंकित मिलते हैं, जिनका स्पर्श आज भी धर्मप्राण हिन्दुओं में कल्याणदायक माना जाता है। इसी स्थान पर एक बृहदाकार घण्टा लटकता है जिसका रव मीलों तक आबू की पर्वतश्रेणियों में गूंजता है।

रसियाबालम कुमारी कन्या

यह प्रसिद्ध ऐतिहासिक मन्दिर जैन मन्दिरों के पार्श्व में है। इसमें श्रीमाता, गणपति, महादेव और शेषशायी विष्णु भगवान के भी मन्दिर हैं।

अम्बिकादेवी का मन्दिर

अम्बिकादेवी का मन्दिर अति प्राचीन गुफा में है। कुछ यात्रीगण इन्हें अधरदेवी भी कहते हैं क्योंकि इस मन्दिर तक ४५० सीढ़ियाँ चढ़ने के बाद पहुँचना होता है। पार्श्व में महादेवजी का भी मन्दिर है।

इसी प्रकार आबू पर्वत पर पापकटेश्वर महादेव, नखीतालाब, रघुनाथजी का मन्दिर, दुलेश्वरजी का मन्दिर, ज्वालादेवी, भद्रकाली, हृषिकेश आदि देवी-देवताओं के कितने ही देवी-मन्दिर, देवालय तथा देवगुफाएँ हैं। इसके अलावा तीर्थ-सरोवर, रामझरोखा, ऋषियों और तपस्वियों के आश्रम तथा गुफायें प्राकृतिक सौन्दर्य और धार्मिक दृष्टि से दर्शनीय हैं। सारांश यह कि आबू पर्वत की भूमि का चप्पा-चप्पा देवताओं और ऋषियों की महिमा एवं धार्मिक वैभव से भरा पड़ा है। इसलिए हरएक धर्मप्रेमी हिन्दू आबू तीर्थ में अपने को पाकर कृतार्थ समझता है।

जैन मन्दिरों में धार्मिक कला-शिल्प

कलादर्शन की दृष्टि से तो जैन मन्दिर अपनी उत्कृष्टता के लिए विश्वविख्यात है ही, जिनके अतिसूक्ष्म और कलापूर्ण शिल्प को देखकर विदेशी निर्माण-कला विशारद भी आश्चर्य-चकित रह जाते हैं, जिसकी संगमर्मर की कला की तुलना पर केवल ताजमहल ही आ सकता है। लेकिन कुछ बातों में विशेषज्ञों ने इसे ताजमहल से भी बढ़कर बतलाया है। फिर इनकी धातुकला तो अद्वितीय है। इन मन्दिरों में केवल जैन संस्कृति और जैन धर्म का ही चित्रण नहीं है, वरन् एक ऐतिहासिक युग की वेष-भूषा, रीति-रिवाज और अजन्ता तथा एल्लोरा की गुफाओं के समान भावविन्यास और नाट्यकला का सांगोपांग चित्रण भी कलाशिल्प और पच्चीकारी में देखने को मिलता है। मन्दिरों के विभिन्न चित्रलेखों में हिन्दू दर्शकों को हिन्दू-धर्म और संस्कृति की झलक भी देखने को मिलेगी, जिन्हें कि उन कुशल कलाशिल्पियों ने चित्रित किया है। श्रीकृष्ण भगवान के चरित्र और नरसिंह अवतार की कथायें इन मन्दिरों में बड़ी सुन्दरता के साथ अंकित की गई हैं। जिनकी कलापूर्णता देख बरबस मुग्ध होकर रह जाना पड़ता है। कला और अध्ययन की दृष्टि से तो इन मन्दिरों की कला का अध्ययन महीनों में भी पूर्ण नहीं हो सकता। जैन महामन्त्री विमलशाह और वस्तुपाल तेजपाल, आबू सरीखे पर्वत-शिखर पर अपनी धार्मिक महत्वकांक्षा, पराक्रम और वैभव के प्रतिरूप में १९ करोड़ की धनराशि लगाकर इन अमर-चिन्हों का निर्माण कर गए हैं और हिन्दू-धर्म के प्रति उनको कैसी रुचि थी उसका भी परिचय वे देने से नहीं चूके। ऐसा है आबू तीर्थ, हिन्दू-धर्म और संस्कृति का पुण्य प्रतीक।

आबू का आधुनिक रूप

आबू पर्वत पर बीसवीं शताब्दी में निर्माण की दृष्टि से जो परिवर्तन हुए हैं, उनसे आबू के वर्तमान स्वरूप में आधुनिकता की एक नई छाप-सी लगी दिखाई देती है, और उसका महत्व भी अब कहीं अधिक बढ़ गया है। ब्रिटिश सरकार के आगमन और राजपूताना स्टेट की ऐजेन्सी की स्थापना से आबू राजपूताना और मध्यभारत की ग्रीष्मकालीन राजधानी बन गया है। इसी लिए आबू पर्वत पर जहां मन्दिर और देवालय हैं, वहाँ आधुनिक ढंग के महाराजा जयपुर, जोधपुर, अलवर, सिरोही, बीकानेर, लिमड़ी, भरतपुर, धौलपुर, सीकर, जैसलमेर, खेत्री आदि के ग्रीष्मकालीन महल (Summer Palaces), और ऐजेन्ट टू दी गवर्नर-जनरल, रेजीडेन्सी, आदि की भव्य इमारतें भी हैं। क्रीड़ा, नौकाविहार और भ्रमण के आधुनिक साधन भी यहाँ प्रस्तुत हैं। जहां मन्दिरों के घण्टों और घड़यालों की ध्वनि सुनाई देती है, वहाँ किसी क्लब से पियानो, वायलिन और यूरोपियन संगीत की भी ध्वनि आप सुन सकते हैं। ग्रीष्म-ऋतु में तापमान अस्सी और नब्बे डिग्री के बीच रहने के कारण, गर्मियां बिताने के लिए तीर्थ-यात्रियों के अलावा बहुत-से सैलानी और मनोरंजनप्रिय लोग भी यहाँ आते हैं। आज आबू तक पहुँचना उतना दुर्गम नहीं रहा है, बल्कि वहाँ तक पहुँचने के लिए ब्रिटिश सरकार द्वारा जैन जनता की २० हजार रुपये की सहायता से सन् १९२३ से पक्की मोटर की सड़क बन गई है। इसलिए आजकल आबू दर्शन के लिए जाने वाले यात्री आबू के मार्ग की उस बीहड़ता और भयानकता की कल्पना भी नहीं कर सकते, जिसका कि सामना आज से सौ वर्ष पूर्व यात्रियों को करना पड़ता था।

आबू का एक कलंकित पहलू

लेकिन आबू की यात्रा का एक कलंकित पहलू भी है जोकि आज आबू के दर्शनों के हेतु जाने वाली तीर्थ-यात्री जनता के लिए अभिशाप बन जाता है और इसके स्रष्टा हैं आबू के शासक सिरोही राज्य के अधिकारी जो आबू के देव-मन्दिरों के दर्शनों के लिए यात्रियों से टैक्स वसूल कर इस धार्मिक तीर्थ को एक प्रकार से व्यापार और धार्मिक जनता के शोषण का साधन बनाए हुए हैं। आबू जाने वाले प्रत्येक यात्री को १ रु० २३ पैसे टैक्स सिरोही राज्य को देना पड़ता है, तब कहीं वह अपने इन धर्म-मन्दिरों की सीमा को छू सकता है और इस कर का सारा बोझ उस हिन्दू और जैन सद्गृहस्थ जनता पर पड़ता है, जोकि धार्मिक श्रद्धाभाव से प्रेरित होकर तीर्थ यात्रा के हेतु यहाँ आती है।

इस टैक्स की विशेषता यह है कि आज यह बिना किसी आधार पर ही सिरोही राज्य द्वारा यात्रियों से वसूल किया जाता है। इस टैक्स की कहानी भी विचित्र है। आबू में जैन मन्दिरों के शिलालेखों को देखने से पता चलता है कि यहाँ के मन्दिरों की कलापूर्णता और सुन्दरता देखकर आज से पांच-छै सौ वर्ष पूर्व ही आबू के शासकों को सम्भावना दिखाई दी थी कि कोई भी शासक इन मन्दिरों के दर्शन पर कर लगाकर अनुचित लाभ उठा सकता है, अथवा किसी ने उस समय इसी प्रकार अनुचित लाभ उठाने का प्रयत्न किया होगा। इसीलिये आबू के मन्दिरों पर किसी भी प्रकार का कर लेने का निषेध करते हुए ३ शिलालेख जैन मन्दिर

विमलवसही में पाये जाते हैं। ये तीनों लेख चौहान नरेश महाराव लुंभाजी के हैं जिनमें एक सं० १३७२ का और दो सं० १३७३ के हैं। इन तीनों शिलालेखों में महाराव लुंभाजी ने आबू के यात्रियों और पूजार्थियों से किसी प्रकार का कर वसूल करने का निषेध किया है, तथा अपने उत्तराधिकारियों के नाम भी वसीयत के रूप में आज्ञा दी है कि वे भी भविष्य में इन मन्दिरों के पूजार्थियों और यात्रियों से किसी प्रकार का कर वसूल न करें। इसी प्रकार का एक दूसरा शिलालेख जैन मन्दिर में पित्तलहर में सं० १३५० का विमलदेव के नाम का मिलता है, वह भी उपरोक्त आशय का है। महाराणा कुम्भा द्वारा जारी की गई आज्ञा भी १५०६ के शिलालेख में मिलती है, उन्होंने भी इन मन्दिरों पर करों की माफी दी है। सं० १४९७ का राउत राजधर का भी एक शिलालेख इसी सम्बन्ध में पाया जाता है। इस प्रकार न्याय और धर्म की दृष्टि से आबू के मन्दिरों पर किसी प्रकार का लगान का अधिकार न तो सरकार को ही है और न ही सिरोही राज्य के शासकों को ही, यदि वे अपने पूर्वजों की आज्ञाओं और इच्छाओं का कोई मूल्य समझते हैं? इन फरमानों के बाद संवत १९३३ तक सिरोही के शासकों द्वारा आबू के मन्दिर और यात्रियों पर किसी भी प्रकार के कर का पता नहीं चलता। संवत १९३३ में ही पहली बार आबू यात्रियों पर राहजनी के भय से आबू मार्ग पर चौकियों का प्रबन्ध किया गया, जहाँ से कि यात्रियों की रक्षा के हेतु राज्य के सिपाही यात्री-दलों के साथ-साथ आया-जाया करते थे। प्रत्येक चौकी पर यात्रियों से चौकियों का टैक्स लिया जाता था, जो सब मिलाकर आठ आने था। लेकिन यही टैक्स पांच साल बाद संवत १९३८ में बढ़ा कर १ रु० २ आने ९ पाई कर दिया गया। इस प्रकार इन चौकियों के नाम पर सिरोही राज्य द्वारा आबू के यात्रियों से यह धार्मिक कर लिया जाने लगा। लेकिन तब इस कर का उतना अन्यायपूर्ण रूप नहीं था, जितना कि वह आज है। उन दिनों यदि यात्रियों को मार्ग में चोर और डाकुओं के कारण किसी प्रकार आर्थिक क्षति उठानी पड़ती थी, तो कहा जाता है कि उस समय राज्य उसका वाजिब मुआवज़ा भी देता था। यह टैक्स उस समय केवल रिशिकिशनजी से देलवाड़ा-अचलगढ़ के मार्ग पर ही लिया जाता था और यह क्रम सन् १९१७ तक उसी प्रकार जारी रहा।

सन् १९१८ में जब आबू की कुछ भूमि ब्रिटिश सरकार द्वारा सिरोही राज्य से लीज पर ले ली गयी, और वहाँ ब्रिटिश सरकार के सैनिक तथा अधिकारी गण आने जाने लगे और मार्ग की देखरेख भी जब ब्रिटिश सरकार ने अपने हाथ में ले ली, तो सिरोही राज्य के रिशिकिशनगढ़ से अचलगढ़-देलवाड़ा के मार्ग पर से अपनी चौकियाँ हटा लेनी पड़ीं। इन चौकियों के हट जाने से अब सिरोही के शासकों के सामने यह प्रश्न खड़ा हुआ कि यह टैक्स वसूली आखिर अब किस प्रकार जारी रखी जाए। इसके लिए राज्य ने ता० २-६-१९१८ ई० को नया फरमान निकालकर इस कर को, अब अलग चौकियों द्वारा वसूल किये जाने का साधन न रहने के कारण बढ़ाकर एक मुश्त १ रु० ३ आने ९ पाई प्रति यात्री के हिसाब से रक्षा-कर के रूप में लगा दिया। साथ ही साथ यह सोचकर कि अंग्रेज, सरकारी अफसर और कर्मचारी इस टैक्स पर बखेड़ा न उठावें, इसलिए सिरोही स्टेट ने इस कर से समस्त यूरोपियनों, एंग्लो इंडियनों, राजपूताने के राजा-महाराजाओं तथा उनके राजकुमारों को मुक्त कर दिया। ऐसे साधु-संन्यासियों और ब्राह्मणों

पर यह कर अनिवार्य न रहा जिनके पास बिल्कुल पैसा ही न हो और जो शपथ लेकर कह सकें कि हमारे पास पैसा नहीं है। सिरोही राज्य की प्रजा से भी यह कर आंशिक रूप से लिया जाने लगा।

उपरोक्त संशोधनों के पश्चात् इस टैक्स का स्वरूप यह हो गया कि वह अब विशेष रूप से दर्शनार्थी और सद्गृहस्थ हिन्दू और जैन यात्रियों के ही ऊपर विशेष भार के साथ लागू हो गया क्योंकि आमोद-प्रमोद के लिए जाने वाले कर से राजा-महाराजाओं, यूरोपियनों, ऐंग्लो इंडियनों और अधिकारियों को तो राज्य ने पहले ही मुक्त कर दिया था। फ़कीर, साधु और संन्यासियों से राज्य को आमदनी भी क्या हो सकती थी, इसलिए उनके साथ रियायत कर दी गई। अब फल यह है कि रक्षा-कर के नाम से यह कर विशेष रूप से देवालयों और मन्दिरों के हिन्दू और जैन यात्रियों के लिए लागू होकर आबू के मन्दिरों के व्यापार का एक कलंकित उदाहरण बन गया है। १९२३ में ब्रिटिश सरकार ने आबू के लिए एक पक्की सडक खराड़ी से आबू कैम्प तक बनवाई, जिसके निर्माण के लिए जैन जनता ने बीस हजार रुपए की सहायता दी। इस नवीन पक्के मार्ग के खुल जाने से आबू के लिए आवागमन की सुविधाएँ अत्यधिक बढ़ गई और फलस्वरूप रिशिकिशनगढ़ से अचलगढ़ देलवाड़ा का मार्ग आवागमन की दृष्टि से प्रायः बन्द-सा हो गया। ब्रिटिश सरकार ने सड़क बनवाते समय वचन दिया था कि इस मार्ग के प्रबन्ध और मरम्मत के हेतु जनता से किसी प्रकार का कर न लिया जाएगा और वह स्वयं ही इसका प्रबन्ध करेगी। लेकिन सिरोही राज्य को तो यात्रियों से टैक्स वसूल करना था। इसलिए (मुंडका) की वसूली के लिए उसने अपनी चौकियाँ कायम कर दीं।

जहाँ इस नये मार्ग के निर्माण से यात्रियों के लिए आबू का मार्ग सुगम और निरापद हो गया, और सिरोही राज्य से भी सारे प्रबन्ध और रक्षा की जिम्मेदारियाँ समाप्त हो गईं, वहाँ यह अधार्मिक कर फिर भी यात्रियों के ऊपर लदा रहा। लेकिन सिरोही राज्य द्वारा दर्शनार्थी यात्रियों का शोषण इसी रक्षा कर तक ही सीमित नहीं रहा, वरन् इस नई सड़क के बन जाने से ज्यों-ज्यों यात्रियों की संख्या में वृद्धि हुई, लोगों में मार्ग सुगम हो जाने से आबू तीर्थ की दर्शन-लालसा बढ़ी, त्यों-त्यों यह शोषण का स्रोत और भी लाभदायक होता गया। लेकिन यह टैक्स विडम्बनाएं तब और बढ़ गयीं जब नई पक्की सड़क का लाभ उठा कर सिरोही राज्य ने मार्ग पर मोटरों, लारियों, ताँगों, रिक्शाओं और बैलगाड़ियों आदि के चलाने के लिए ठेकेदारी की प्रथा कायम कर दी और ठेकेदारों ने मोटी-मोटी रक़मों पर ठेके देकर अपनी ओर से सवारियों के दुगने और चौगुने किराये बाँधकर पैसा ऐंठना शुरू कर दिया। राह टैक्स, कस्टमस् ड्यूटियाँ, नाकेदारी आदि टैक्सों का भी बाजार गर्म हो गया और अब भी आबू की धार्मिक महानता को अधिक से अधिक शोषण का साधन बनाने की सिरोही के शासकों की मनोवृत्ति बढ़ती ही चली जाती है।

आज इन टैक्सों और ठेकेदारी की प्रथा के कारण तीर्थयात्रियों के लिए आबू की यात्रा जितनी सुगम हुई, उतनी ही परेशानी और विडम्बनापूर्ण भी हो गई है। अपने ही मन्दिरों और तीर्थों के दर्शनों के मार्ग में राज्य की ओर से इस प्रकार के टैक्स और विडम्बनाएं देखकर यात्री

के हृदय की धार्मिक भावनाओं को स्थान-स्थान पर जब अपमानपूर्ण ठेस लगती है, तो वह व्याकुल हो उठता और सोचने लगता है, कि उसके धर्म में क्या इतनी भी ताकत नहीं कि वह अपने मन्दिरों के दर्शन स्वतंत्रतापूर्वक कर सके ? फिर इन टैक्सों का भार उन गरीब गृहस्थों पर तो और भी बुरी तरह पड़ता है, जो कौड़ी-कौड़ी जोड़कर आबू पर्वत की तीर्थयात्रा और दर्शनों के हेतु आते हैं।

आबू के समान तीर्थयात्रियों और देव-दर्शन पर कर के उदाहरण भारत में शायद ही कहीं देखने को मिलें। हिन्दुओं के बड़े-बड़े तीर्थ और धार्मिक स्थान रियासतों में हैं, जहां कि करोड़ों की सम्पत्ति है और लाखों यात्री प्रतिवर्ष दर्शनार्थ आते हैं, लेकिन ऐसी धांधलेबाजी और करों के उदाहरण कहीं देखने को नहीं मिलते। हैदराबाद निजाम सरीखी मुस्लिम रियासत में भी हिन्दू-संस्कृति के अमर चिन्ह अजंता और एल्लोरा की कलापूर्ण गुफायें हैं, जिन्हें लाखों यात्री और कलाप्रेमी देखने जाते हैं। लेकिन इस मुस्लिम रियासत में भी इस प्रकार अनुचित ढंग के कर इन स्थानों पर नहीं हैं, जोकि एक बड़ी आय का साधन बनाए जा सकते हैं। इसके विपरीत यह रियासत प्रतिवर्ष इनकी रक्षा और प्रबन्ध-कार्य में हजारों रुपया खर्च करती है। अभी हाल ही में अजंता गुफा के चित्रों के रंग उखड़ चले थे, जिन्हें फिर से इस रियासत ने लाखों रुपया खर्च कर इटली आदि से कारीगर बुलवाकर रंग करवाया है। यह भी नहीं कहा जा सकता कि वहां जैन तीर्थ नहीं है। रियासत में जैनियों का कुन्तलगिरि सरीखा प्रसिद्ध तीर्थ भी विद्यमान है जिसकी यात्रा के लिए भारतवर्ष से लाखों जैन यात्री प्रति वर्ष आते हैं। रियासत ने जैन यात्रियों की सुविधार्थ मोटर का पक्का मार्ग भी कुन्तलगिरि तक बनाया है और अभी हाल ही में इस जैन-तीर्थ में पानी के अभाव को दूर करने के लिए हजारों रुपया खर्च कर विशाल तालाब और ट्यूबवेल्स का प्रबन्ध किया गया है। लेकिन दूसरी ओर आबू सरीखे प्रसिद्ध हिन्दू और जैन तीर्थ के प्रति सिरोही सरीखी हिन्दू रियासत का यह रवैया है।

धार्मिक अधिकारों का प्रश्न

यह संघर्ष का युग है और चहुँमुखी क्रान्ति के थपेड़े प्रत्येक समाज को आन्दोलित कर रहे हैं। आज की जनता हर दिशा में क्रान्ति, परिवर्तन और स्वतन्त्रता चाहती है। जन स्वतंत्रता के साथ-साथ हरएक मनुष्य आज अपनी धार्मिक स्वतंत्रता भी चाहता है और आबू सरीखा टैक्स किसी भी धर्म के लिए अपमान का कारण हो सकता है। यह परिवर्तन का युग है। दुनिया आज एक बड़े टेढ़े मोड़ से गुजर रही है। इस संघर्षकाल में हरएक अपने धर्म और अधिकारों की रक्षा में सतत् रूप से प्रयत्नशील है, क्योंकि आज समस्त धार्मिक और नागरिक अधिकारों के लिए एक खतरा-सा हो गया है। धर्म की कच्ची दीवारें आज भूकम्प के से वेग से ढह रही हैं। चिर पुरातन रूढ़ियों और संस्कारों का अन्त हो रहा है। इस परिवर्तन के युग में जो भी जाति अपने धर्म तथा अधिकारों की रक्षा कर सकेगी, उन्हीं के अधिकारों का आने वाले युग में मान होगा। आज जो अनुचित टैक्स और बन्धन चाहे वे हमारे धर्म पर हों या हमारे सामाजिक अथवा व्यक्तिगति अधिकारों पर, यदि हम आज उन्हें न तोड़ सके, तो वे आगे चलकर या तो हमारे

अस्तित्व को ही समाप्त कर देंगे, अथवा वे इतने कठोर और भयानक हो सकते हैं कि हम चिरकाल तक उनसे मुक्ति न पा सकें।

आबू-तीर्थ के सम्बन्ध में आज जैन-समाज चैतन्य हुआ है। उसने इन करों के विरुद्ध आन्दोलन उठाया है और जैनियों के इस आन्दोलन और विरोध के पीछे केवल जैन-मन्दिरों का ही नहीं, वरन् हिन्दुओं और जैनियों के संयुक्त तीर्थ का हित निहित है। आबू पर्वत पर हिन्दुओं के धार्मिक स्थान और देवालय, जैनियों के मन्दिरों से कहीं अधिक ही हैं और वे अपनी ममता के कारण हिन्दू धर्म में एक विशिष्ट स्थान रखते हैं। आबू-तीर्थ के टैक्सों के साथ जहां कुछ लाख जैनियों का सम्बन्ध है, वहां भारत की एक सबसे बड़ी शक्तिशाली और बहुसंख्यक जाति के करोड़ों हिन्दुओं का भी निकट सम्बन्ध है। आबू मन्दिरों के करों के विरोध में उठाये गये आन्दोलन के प्रवर्तकों ने हिन्दू-संस्थाओं और उनके नेताओं की ओर सहयोग के लिए हाथ बढ़ाया है। वे इसे हिन्दुओं और जैनियों का संगठित मोर्चा बनाना चाहते हैं, ठीक उसी प्रकार, जिस प्रकार कि आबू हिन्दू और और जैनों का संयुक्त तीर्थस्थान है।

श्री आबू तीर्थ टैक्स विरोधी कांफ्रेंस

यहाँ तारीख २४-२५-२६ को श्री आबू मन्दिर टैक्स विरोधी कान्फ्रेन्स कर्मवीर लाला तनसुखरायजी जैन देहली वालों की अध्यक्षता में करने का निश्चय किया गया है! उक्त कांफ्रेन्स को कैसे सफल बनाया जाय इस सम्बन्ध में विचार करने के लिए नागरिकों की एक मीटिंग ता० २८ को श्री महावीर प्रेस में बुलाई गई। दिगम्बर, श्वेताम्बर तथा स्थानकवासी तीनों सम्प्रदायों के करीब २८-३० आदमी इकट्ठे हुए। सर्वानुमति से निम्न कार्रवाई हुई :—

ता० २४-२५-२६ जनवरी को उक्त कान्फ्रेन्स का अधिवेशन बुलाया जाय!

निम्न पदाधिकारियों का चुनाव हुआ :—

अध्यक्ष	कर्मवीर लाला तनसुखरायजी
स्वागताध्यक्ष	रा. ब. सेठ चम्पालालजी साहब के सुपुत्र श्रीमान बा० तोतालालजी सा. रानीवाले
उपाध्यक्ष	श्रीमान सेठ शंकरलालजी सा० मुणोत
,,	,, उदयचन्दजी सा. कांस्टिया
स्वागत मंत्री	,, पन्नालालजी सा. जैन बी. ए., एल-एल. बी. वकील
,,	,, मोतीलालजी सा० हालाखण्डी
उपमंत्री	,, जँवरीलालजी कांस्टिया
,,	,, चम्पालालजी जैन

संयोजक	,,	चिमनसिंह जी लोढ़ा
कोषाध्यक्ष	,,	मूलचन्दजी सा० मुणोत
स्वागताध्यक्ष	,,	मानमलजी गोदा
,,	,,	शोभाचन्दजी भारिल्ल
,,	,,	पुखराजजी खजान्ची
,,	,,	जतनमलजी भंडारी
,,	,,	इन्दरचन्दजी गंगवाल
,,	,,	मुलुकराजजी जैन बी. ए., एल-एल. बी.
,,	,,	शान्तिलालजी सेठ

आदि ३५ सज्जनों की स्वागत समिति बनाई गई !

उपस्थित सभी सज्जनों ने पूर्ण उत्साह से सेवा देने का वचन फरमाया !

स्वागत समिति ने अपना कार्य प्रारम्भ कर दिया है !

ता० १-१-४२ को स्वागत समिति की दूसरी मीटिंग होगी जिसमें सब कमेटियों का चुनाव होगा।

श्री सेठ शंकरलालजी मुणौत, मोतीलालजी हालाखण्डी, जबरीलालजी कांस्टिया आदि का उत्साह स्तुत्य है ?

बहुत शीघ्र पंडाल तथा प्रचार कार्य प्रारम्भ होने वाला है ?

इन्हीं तारीखों में श्री ओसवाल जैन होस्टल के छात्रों के लिए फ्री उपयोगार्थ बनाये हुए श्री धसूलालजी स्मारक भवन का उद्घाटन धूमधाम से होगा। साथ ही प्रवेशोत्सव, अखण्ड जैन कान्फ्रेन्स तथा कवि-सम्मेलन एवं व्याख्यान प्रतियोगिता आदि अनेक आयोजन किये जायेंगे।

श्रीमती लेखवती जैन, पं० जुगलकिशोरजी मुख्त्यार, पं० दरबारीलालजी महात्मा, भगवानदीनजी, बा० जैनेन्द्र कुमारजी, श्री धर्मचन्दजी सुराणा बी. ए., एल-एल. बी. वकील सिरोही, श्री ताराचन्दजी दोषी आदि जैन सज्जनों के पधारने की सम्भावना है।

सम्भवतः इस अवसर पर वीरपुत्र आनन्दसागर जी महाराज भी पधार जावेंगे।

प्रत्येक श्री संघ को चाहिए कि इस अवसर पर अपने यहाँ के प्रतिनिधियों को इस पुण्य कार्य में भाग लेने अवश्य भेजें। यह टैक्स नहीं हमारे लिए भारी कलंक है। इससे मुक्त होने का प्रयत्न करना प्रत्येक जैन का धर्म है।

संयोजक—चिमनसिंह लोढ़ा

"यह युग संगठन का युग है। इस जगत में वही समाज जीवित रह सकता है जो संगठित, बलवान और शक्तिशाली होगा। आज हम इस जगह जिस उत्तम कार्य के लिये एकत्रित हुए हैं, वह चीज उन महापुरुषों की बनवाई हुई है जिन्होंने आबू पर्वत के आस-पास की दिलवाड़ा की भूमि पर करोड़ों रुपये का सोना और चांदी बिछाकर अपनी तलवार के बल पर जगत विख्यात



जागृति के अग्रदूत
स्वनामधन्य सेठ माणिकचंद जी जवहेरी बम्बई



शाकाहारी कान्फ्रेन्स के अवसर पर

लाला तनसुखराय जी



आबू टैक्स विरोधी आन्दोलन के अध्यक्ष रूप में



बिरला मंदिर में

मन्दिर बनवाये थे। हमारा धर्म और कर्त्तव्य है कि हम उनके बनाये हुए स्मारकों को कायम रखने के लिए हर प्रकार का त्याग करें। यह हमारे लिए सुवर्ण अवसर है। यदि हम संगठित होकर कुछ कर गये तो जैन-जाति का गौरव बढ़ेगा। यदि हमने कुछ नहीं किया तो आने वाली संतानें हमें धिक्कारेंगी, कहेंगी कि हमारे पूर्वजों से अपने मन्दिरों की भी रक्षा न हो सकी।" इन शब्दों के साथ अखिल भारतीय आबू टैक्स विरोधी सम्मेलन के सभापति लाला तनसुखराय जैन ने अपना प्रभावशाली भाषण समाप्त किया।

टैक्स का विरोध करते हुए आपने कहा—आबू के जैन मन्दिरों के विषय में समाचार-पत्रों में काफी प्रकाश डाला जा चुका है। आज तो यही निर्णय करना है कि क्या हम इसी तरह से इन मन्दिरों पर प्रतिदिन नए-नए टैक्स देते रहें और एक दिन ऐसा आए कि टैक्स तथा बन्धन इस कदर बढ़ जावें कि साधारण भाइयों को इन मन्दिरों में पूजन-प्रक्षाल तो क्या दर्शन करना भी दुर्लभ हो जाये?"

उपाय—सत्याग्रह आखिरी सीढ़ी

इन अनुचित टैक्सों को कैसे दूर कराया जाय, इसके विषय में मैं अपने विचार समाचार-पत्रों में पहले प्रकट कर चुका हूँ। मेरे पास बहुत से पत्र आये जिनमें मेरे भाइयों ने सत्याग्रह करने की सम्मति दी है। इस विषय में मेरी सम्मति यह है कि सबसे प्रथम आवश्यक है कि तमाम सम्प्रदायों के जैनों की एक शक्तिशाली समिति बनाई जाय जो इस काम को अपने हाथ से ले। इसके द्वारा स्थान-स्थान पर स्थानीय समितियां बनाई जायें ताकि काम सुचारु रूप से प्रारम्भ किया जाय। इसके पश्चात् समाज के धनी-मानी महानुभावों का एक डेपुटेशन राज्य के अधिकारियों से मिले और उनसे प्रार्थना करे कि वह अनुचित टैक्सों को कम करे। यदि डेपुटेशन को सफलता न हो तो फिर सारे देश में इसका आन्दोलन किया जाए और एक दिन नियत करके विरोधी सभायें की जायें। उस दिन प्रस्ताव पास किये जायें और उनकी प्रति रियासत तथा सरकार के पास भेजी जायें। यदि इससे भी कुछ सफलता न हो तो फिर अन्तिम योजना सत्याग्रह की रह जाती है जिसके लिये मेरे मित्रों ने भी हैदराबाद के आर्य सत्याग्रह का उदाहरण देकर, हमें भी उसका अनुकरण करने के लिये लिखा है। परन्तु हमें इसमें जल्दी नहीं करनी चाहिये। हैदराबाद तथा भागलपुर के मोर्चों का जिक्र एवं उनकी सफलता के साधनों पर प्रकाश डालते हुए, अन्त में आपने संगठन की शक्ति पर बल दिया।

सम्मेलन की कार्यवाही

आबू मुंडका विरोधी यह सम्मेलन गत २३ जनवरी सन् १९४२ को बड़े उत्साह से ब्यावर में हो गया। श्री तनसुखराय जैन (देहली) सभापति थे। वहाँ आपका शानदार जुलूस निकला। रात को व दूसरे दिन कार्यवाही हुई। इस सम्मेलन में श्रीमती लेखावती जैन भूतपूर्व एम० एल० ए० (पंजाब), श्री अजितप्रसाद जैन, सेठ हीरालाल जी काला, ला० हेमचन्द्र जी जैन, डाक्टर नन्दलाल आदि जैन नेताओं के भाषण हुए। निम्न चार प्रस्ताव पास किये गये।

स्थायी विरोध समिति का निर्णय

यह सम्मेलन आबू (देलवाड़ा) के विश्वविख्यात जैन मन्दिरों के यात्रियों एवं दर्शनार्थियों पर लगे हुए मुंडका टैक्स को हटाने के कार्य के हेतु एक स्टैंडिंग कमेटी की योजना करता है। इसके सदस्यों की संख्या ५१ सदस्यों तक होगी और इसके सभापति श्री तनसुखराय जी जैन रहेंगे। इसके दो मन्त्री रहेंगे जिनमें एक प्रधान मन्त्री व दूसरे कार्यालय मन्त्री होंगे। इसका आफिस सभापति व कमेटी को इस विषय में पूर्ण अधिकार व स्वतन्त्रता देती है।

स्वीकृत प्रस्ताव

इस जरिये को हटाइये

आबू मुंडका विरोधी यह सम्मेलन महसूस करता है कि आबू (देलवाड़ा) पर स्थित विश्व विख्यात जैन मन्दिरों के यात्रियों एवं दर्शनार्थियों से मुँडका के रूप में जो कर लिया जाता है वह कलंकित है और उसकी उपयोगिता भी नहीं है क्योंकि इस मुँडका का जो रूप कुछ वर्षों पहले चौकी व बोलावे का था, वह अब नहीं रहा है। इसको सिर्फ जजिया ही कहा जा सकता है। क्योंकि सिरोही राज्य ने इसको अपनी आय का एक जरिया बना लिया है, जो किसी भी दृष्टि से उचित नहीं माना जा सकता है। यह विशेष रूप से जैनों की धार्मिक स्वतन्त्रता का घातक है यद्यपि यह हर कौम, हर जाति व हर विचार के लोगों से लिया जाता है। इसलिये यह कान्फ्रेंस सिरोही नरेश से सानुरोध निवेदन करती है कि इस अपमानजनक एवं धर्मघातक टैक्स को हटावें।

मुनिमण्डल से नेतृत्व का अनुरोध

यह सम्मेलन अनुभव करता है कि जैन समाज में मुनि-मण्डल का एक विशिष्ट स्थान और अद्वितीय प्रभाव है। इसलिये यह सम्मेलन उनसे सविनय प्रार्थना करता है कि वे आबू मन्दिर टैक्स हटाने में सक्रिय भाग लेकर इसे सफल बनाने में सहयोग दें।

अध्यक्ष का ओजस्वी भाषण

ब्यावर २३ जनवरी। आज रात को दिल्ली अहमदाबाद ऐक्सप्रेस से आबू मन्दिर टैक्स विरोधी सम्मेलन के सभापति लाला तनसुखराय जी जैन यहाँ पहुंच गये। ११ बजे की ठिठुरती सरदी में भी सम्मेलन के अधिकारियों और जैन भाइयों ने आपका स्वागत किया। आपके साथ श्रीमती लेखवती जैन, लाला हेमचन्द्र जैन चेयरमैन मर्कण्टाइल एसोसिएशन देहली, ला० रत्नलाल जैन मंत्री जैन प्रेम सभा, डा० नन्दकिशोर आफिस सेक्रेटरी अ० भा० जैन परिषद् आदि भी आये हैं।

इन अनुचित टैक्सों को कैसे दूर कराया जाय ? मेरे पास बहुत से पत्र आये हैं जिनमें मेरे भाइयों ने सत्याग्रह करने की सम्मति दी है। मैं जबानी जमा खर्च पर विश्वास नहीं करता मैं तो कार्य को कार्यरूप में परिणित करना चाहता हूँ। किसी बड़े काम करने के लिये सबसे

पहले साहस, उत्साह और संगठन की आवश्यकता है। मैं तो समाज और देश का सिपाही हूँ तथा आप महानुभावों की आज्ञा से आया हूँ। आप निर्णय करके बताइये मुझसे क्या सेवा चाहते हैं। टैक्सों के हटवाने के लिये क्या करना है ?

इस विषय में मेरी सम्मति यह है कि तमाम सम्प्रदायों के जैनों की एक शक्तिशाली समिति बनाई जाय जो इस काम को अपने हाथ में ले। इसके द्वारा स्थान-स्थान पर स्थानीय समितियां बनाई जाय, ताकि काम सुचारू रूप से किया जाय। बिना संगठन के कोई काम सफल नहीं हो सकता। इकके पश्चात् समाज के धनी मानी महानुभावों का एक डेपुटेशन राज्य के अधिकारियों से मिले और उनसे प्रार्थना करे कि वह अनुचित टैक्सों को कम करें

जगह-जगह स्वागत

ता० २३ जनवरी सन् ४२ को श्री लाला तनसुखरायजी जैन प्रातःकाल अहमदाबाद एक्सप्रेस से अपने मित्र तथा प्रतिनिधि श्रीमती लेखवती जैन, एक्स. एम. एल. ए. श्री० हेमचन्द्र जी जैन चेयरमेन मर्कन्टाइल एसोशियेशन देहली, श्री अजीतप्रसाद जी जैन सुपुत्र लाला महावीर प्रसादजी ठेकेदार देहली, श्री लाला रत्नलाल जी जैन मंत्री जैन मित्रमंडल, श्री आदीश्वरप्रसाद जी जैन एम. ए., डा० नंदकिशोर जी, पं० रामलाल जी आदि के साथ रवाना हुए। देहली पर आपकी बिदाई बड़े जोर-शोर के साथ हुई मानो कोई वीर किसी युद्ध में लड़ाई के लिए जा रहा हो। आपको फूलहारों के साथ विदा किया गया।

जयपुर पहुँचते ही यहां के तमाम जैन भाइयों ने आपका शानदार स्वागत किया और सबने यह कांफ्रेन्स अच्छी तरह सफल हो इसकी खूब चर्चा की। यहां से गाड़ी किशनगढ़ पहुँची। यहां पर भी पहिले ही से आपके स्वागत की अच्छी तैयारी कर रक्खी थी। गाड़ी पहुँचते ही सारा प्लेटफार्म जयनारों से गूंज उठा। फूलों के हार, चाय आदि के साथ आपका स्वागत किया गया। फोटो भी लिये गये। किशनगढ़ से गाड़ी अजमेर पहुँची। यहां पर भी फूलहारों से आपका स्वागत किया गया। रात को करीब १२ बजे आप ब्यावर पहुँचे। इस कड़क सर्दी में इस कान्फ्रेन्स के संयोजक श्री० चिमनसिंह जी लोढ़ा, श्री० मोतीलालजी हालाखण्डी आदि स्वागत कारिणी के सदस्य व दूसरे जैन भाइयों ने आपका बहुत बढ़िया स्वागत किया। प्रातःकाल १० बजे लालाजी का शानदार जुलूस स्टेशन से निकाला गया। जुलूस ब्यावर के मुख्य मुख्य बाजारों में होता हुआ मेवाड़ी दरवाजे के पास सेठ कुन्दनमलजी लालचन्दजी की बगीची में समाप्त हुआ। रास्ते में पचासों जगह पान-सुपारी-फूल आदि से आपका स्वागत किया गया व फोटो आदि का भी प्रबन्ध किया गया।

रात्रि को ठीक ७॥ बजे पंडाल में आबू मन्दिर टैक्स विरोधी कांफ्रेन्स का अधिवेशन प्रारम्भ हुआ। प्रथम मंगलाचरण के बाद स्वागताध्यक्ष श्रीमान् सेठ तोतालालजी सा० रानीवाले

का व्याख्यान हुआ। पश्चात इस सभा के सभापति कर्मवीर लाला तनसुखरायजी का सारगर्भित व्याख्यान हुआ। इसके बाद अखण्ड जैन परिषद् के स्वागताध्यक्ष श्री० सेठ हीरालाल जी काला का भाषण हुआ और फिर इस परिषद् के सभापति उत्साही श्रीमान् हेमचन्द्रजी जैन चेयरमेन मर्केन्टाइल एसोसियेशन देहली का व्याख्यान हुआ। डा० नन्दकिशोर सा० ने जैन समाज के अलग-अलग फिरकाबंदी व जैन समाज की दुर्दशा के ऊपर बड़ा ही सारगर्भित भाषण दिया। अन्त में पं० रामलालजी का जोशीला व्याख्यान होकर आज की कार्यवाही समाप्त हुई।

प्रात:काल ठीक ६ बजे सभापतिजी के स्थान सब्जेक्ट कमेटी की मिटिंग हुई जिसमें चार प्रस्ताव पेश हुए और उनके ऊपर चर्चा की गई। दोपहर को पंडाल में खुला अधिवेशन हुआ।

प्रारम्भ में मंगलाचरण के बाद बाहर के आए हुए करीब १५० संदेश सुनाये गए। इन संदेशों को देखते हुए कहा जा सकता है कि जनता की सहानुभूति अधिक से अधिक दिखाई देती है। इसमें जैन व जैनेतर बड़े-बड़े धनीमानी व विद्वानों के संदेश हैं। प्रस्तावकों ने प्रस्ताव पेश किये और उनके ऊपर जोशिले व्याख्यानों के द्वारा उनका अच्छा विवेचन किया इसी प्रकार समर्थक व अनुमोदकों ने भी खूब जोरदार भाषणों के द्वारा विवेचन किया। तमाम प्रस्ताव सर्वानुमत से पास हुए। प्रस्ताव अन्यत्र प्रकाशित किए गए हैं। इसमें श्रीमती लेखवती जैन, पुखराज जी सिंधी, डॉ० नन्दलालजी, धर्मचन्दजी सुराणा, राजमलजी लोढ़ा संपादक जैन ध्वज अजमेर, पं० रामकुमार जी, पं० रामलाल जी, चिमनसिंह जी लोढा, देवीचन्दजी जैन, मुकुट बिहारीलाल जी भार्गव आदि के बहुत ही मनोहर व्याख्यान हुए।'

ब्यावर का भाषण

जो स्यादवाद् मंयक के प्रतिभा मई छबि धाम है।
जो रिद्ध सिद्ध प्रकाशदायक वंदनीय ललाम है।।

नित प्रात तिनके स्मरण से होता अपूर्व ललाम है।
उन महावीर जिनेश को श्रद्धा समेत प्रणाम है।।

आदरणीय बन्धुओ तथा माताओं और बहनो !

इस समय जैन जाति की दशा अति शोचनीय है। हमारे पास सब कुछ होते हुए भी हम अपने देश में अपना व्यक्तित्व कायम नहीं रख सकते। युद्ध भारत के द्वार पर आ गया है। संसार की स्थिति डाँवांडोल है, इस समय प्रत्येक कार्य को बहुत सोच-समझकर करने की अत्यंत आवश्यकता है। आज हम इस बात पर विचार करने के लिए एकत्रित हुए हैं कि हम जाति के आन, गान तथा अपने पूर्वजों के बनाए हुए धर्मस्थानों और स्मारकों को कैसे सुरक्षित रख सकते हैं।

उन वीरों की संतान जिन्होंने भारत-भूमि पर राज्य किया है और सिकन्दर जैसे वीर राजा को जो यूनान से योरोप को फतह करता हुआ ईरान पर विजय पाकर भारत को पराजित करना चाहता था, भारत से खदेड़ भगाया था। क्या आज वह जाति इस कदर नपुंसक हो गई है कि वह अपने पूर्वजों के बनाये हुए धर्मस्थान, देवालय तथा स्मारकों की भी रक्षा नहीं कर सकती। यदि यही दशा रही तो एक दिन आयेगा कि हमारे अपने-अपने नगर और ग्राम के मन्दिरों तथा धर्मस्थानों का भी यही हाल होगा। कोई भी शक्तिवान अनुचित रूप से हमारे मन्दिरों और धर्म-स्थानों पर कब्जा कर लेगा और कहेगा कि इतना टैक्स या पैसा दोगे तो फिर दर्शनों की आज्ञा मिलेगी। इस समय हमारे सामने आबू रोड पर दिलवाड़ा के जैन मन्दिरों का उदाहरण उपस्थित है।

आबू के जैन मन्दिरों के विषय में समाचारपत्रों में काफी प्रकाश डाला जा चुका है। आज तो यही निर्णय करना है कि क्या हम इसी तरह से इन मन्दिरों पर प्रतिदिन नए-नए टैक्स देते रहें और एक दिन ऐसा आए कि टैक्स तथा बन्धन इस कदर बढ़ जावें कि साधारण भाइयों को इन मन्दिरों में पूजन-प्रक्षाल तो क्या दर्शन करना भी दुर्लभ हो जाय। मेरा अपना यह अनुमान है कि आबू रोड पर जो इस प्रकार टैक्स बढ़ा है सब हमारे असंगठन, लापरवाही और दब्बू नीति के कारण बढ़ा है। यदि अब भी इस ओर ध्यान न दिया गया तो भय है कि हम कहीं इससे भी बिल्कुल हाथ न धो बैठें जैसा कि इन मन्दिरों के साथ जो गांव लगे हुए थे उनका इन मन्दिरों के साथ आज कुछ भी संबंध नहीं दीख पड़ता।

इन अनुचित टैक्सों को कैसे दूर कराया जाय, इसके विषय में मैं अपने विचार समाचार पत्रों में पहले प्रकट कर चुका हूँ। मेरे पास बहुत से पत्र आए हैं जिनमें मेरे भाइयों ने सत्याग्रह करने की सम्मति दी है। मैं जबानी जमा-खर्च पर विश्वास नहीं करने वाला, मैं तो कार्य को कार्य रूप में परिणत करना चाहता हूँ और मेरा पूर्ण विश्वास है कि संसार में कोई बात असम्भव नहीं है। परन्तु किसी बड़े काम करने के लिए सबसे पहले साहस, उत्साह और संगठन की आवश्यकता है। मैं तो समाज और देश का एक सिपाही हूँ। आप महानुभावों की आज्ञा से आया हूँ। आप निर्णय करके बताइए मुझसे क्या सेवा चाहते हैं। टैक्सों को हटवाने के लिए क्या करना है।

इस विषय में मेरी सम्मति यह है कि सबसे प्रथम आवश्यक है कि तमाम सम्प्रदायों के जैनों की एक शक्तिशाली समिति बनाई जाय जो इस काम को अपने हाथ में ले। इसके द्वारा स्थान-स्थान पर स्थानीय समितियां बनाई जायँ ताकि काम सुचारु रूप से प्रारम्भ किया जाय। बिना संगठन के कोई काम सफल नहीं हो सकता। इसके पश्चात् समाज के धनी-मानी महानुभाव का एक डेपुटेशन राज्य के अधिकारियों से मिले और उनसे प्रार्थना करे कि वह अनुचित टैक्सों को कम करें। यदि डेपुटेशन को सफलता न हो तो फिर सारे देश में इसका आन्दोलन किया जाए और एक दिन नियत करके विरोधी सभाएं की जायं। उस दिन प्रस्ताव पास किए जायँ और उनकी प्रति रियासत तथा सरकार के उच्च अधिकारियों के पास भेजी जायं।

यदि इससे भी कुछ सफलता न हो तो फिर अन्तिम योजना सत्याग्रह की रह जाती है

जिसके लिये मेरे बहुत से मित्रों ने भी हैदराबाद के आर्य सत्याग्रह का उदाहरण देकर, हमें भी उसका अनुकरण करने के लिए लिखा है। परन्तु हमें इसमें जल्दी नहीं करनी चाहिए। सत्याग्रह कोई साधारण सा काम नहीं है। आर्यसमाज ने हैदराबाद के सत्याग्रह को किस प्रकार परिश्रम करके सफल बनाया था आप सबके सामने है। हजारों वीरों ने अपने आपको प्रसन्नता के साथ सत्याग्रह कार्य के लिए पेश किया, आर्यसमाजी भाइयों ने लाखों रुपया दान देकर आन्दोलन में जान डाली, सर्वप्रथम आर्य समाज के सर्वमान्य नेता श्री नारायण स्वामी जी महाराज धर्म की रक्षार्थ हैदराबाद के सत्याग्रह में गए। गुरुकुल और कालेजों के विद्यार्थी सब कुछ छोड़कर सत्याग्रह में सम्मिलित हुए। इन सबसे अधिक सफलता की कुन्जी यह थी कि आर्यसमाज के चोटी के नेता और धनिक वर्ग स्वयं सत्याग्रह का नेतृत्व करके जेल जा रहे थे। इन उच्च कोटि के महानुभावों के जेल जाने का प्रभाव रियासत तथा जनता पर पड़ा। जनता ने दिल खोलकर जन और धन से सहयोग दिया। अंत में रियासत को हार माननी पड़ी।

हिंदू महासभा का भागलपुर का मोर्चा तो कल की ही बात है हिंदू महासभा के प्रधान वीर सावरकरजी से लेकर सारे हिन्दू नेता अपने अधिकारों की रक्षार्थ भागलपुर में जा डटे, जिनमें ब्रिटिश सरकार के कृपापात्र सर और राजा भी सम्मिलित हैं, अपने अधिकारों के प्रश्न जीवन-मरण की समस्या समझकर वहां गिरफ्तार हो गए। हिन्दू नेताओं के इस त्याग ने सारे भारत की संस्थाओं की सहानुभूति प्राप्त कर ली और बिहार गवर्नर के इस कार्य की सारे भारत में निन्दा हुई। क्या जैन समाज के पास यह सब तय्यारी है? मैं तो यह समझता हूँ कि धर्म स्थान तथा देवालय की रक्षा करना उतना पुण्य का कार्य है जितना कि अपनी तरफ से चैतालय या देवालय बनवाना। जैन समाज धर्मक्रिया पालन करने में बहुत ही प्रतिष्ठित है। हमारी जाति का साधुवर्ग यदि इस ओर थोड़ा-सा ध्यान दे देगा तो मुझे आशा है कि इस कार्य की सफलता में कोई देर न लगेगी। जैन समाज ने आज तक कोई ऐसा मोर्चा नहीं लिया है। हम आज महाराज सिरोही से अपने जन्मदिन धार्मिक अधिकार मांगते हैं, यदि जैन समाज का साधुवर्ग, धनी तथा सरकार के कृपा पात्र भी अपने धार्मिक अधिकारों की रक्षार्थ एक प्लेटफार्म पर एकत्रित होकर धर्म पर सब कुछ न्योछावर करने को तैयार हों तो सत्याग्रह का नाम लेना चाहिए।

जैन समाज इस समय तक दब्बू नीति से काम लेती रही है, मुझे मालूम है कि कई बार जैन समाज ने सरकार तथा रियासतों में अपने अधिकार मनवाने के लिए धन के बल से काम लिया है और मुंह मांगा रुपया लुटाया है। उसका ही यह कारण है कि हरएक के मुंह में पानी आ जाता है और वह समझता है जैन समाज एक तीर्थभक्त समाज है। इसलिए जिनके भी राज्य या सीमा में कोई जैन तीर्थ या धर्मस्थान होता है वह उसको कमाई का साधन बनाना चाहता है और जितना धन जैन समाज से लूटा जाता है लूटता है। भला इनसे कोई पूछे कि इसमें इनका क्या लगा है। हमारे पूर्वजों ने अपने धन और बल से मन्दिरों को बनवाया था फिर यह किस कारण हमें तंग करते हैं। हमने माना कि जैन समाज में बड़े-बड़े धनाढ्य हैं और वह झगड़े में न पड़कर अपने रुपये के बल से काम निकालना ज्यादा अच्छा समझते हैं परंतु इससे बहुत बड़ी हानि

हुई है। जैन समाज अपने अधिकारों को भूल गया, स्वाभिमान जाता रहा, शक्ति क्षीण हो गई, रगों में से वीरता का रक्त लुप्त हो गया। जिसके वीरों से संसार कंपकंपाता था, जिस जाति के वीरों ने जैन धर्म की ध्वजा संसार भर में फैहराई थी आज वह जाति नपुंसक और कायर कहलाए और उसके धर्म को घृणा की दृष्टि से देखा जाय, कितने खेद की बात है।

किसी समय में जैन वीर और महात्मा के नाम से पुकारे जाते थे आज उनको बनिया और बक्काल में नाम से पुकारते हैं। वास्तव में जैन धर्म वीरों का धर्म था। राजपूतों और क्षत्रियों ने इसे अपनाया था। जितने भी हमारे तीर्थंकर हुए हैं लगभग सभी राजपूत या क्षत्रिय वंश से ही उत्पन्न हुए हैं। पहले समय में जैनों का केवल एक धंधा व्यापार ही नहीं था, जैनियों में सेनापति, राजा-महाराजा, चक्रवर्ती राजा और कोषाध्यक्ष हो चुके हैं। श्री भामाशाह जैसे धन-कुबेर और चन्द्रगुप्त मौर्य जैसे वीरों का नाम आज तक संसार में विख्यात है और गौरव के साथ लिया जाता है। यह जैन समाज के नर रत्न थे।

यह युग संगठन का युग है। इस युग में वही समाज जीवित रह सकता है जो संगठित, बलवान और शक्तिशाली होगा। आज हम इस जगह जिस उत्तम कार्य के लिए एकत्रित हुए हैं, वह चीज उन महापुरुषों की बनवाई हुई है जिन्होंने आबू पर्वत के आस-पास की दिलवाड़ा की भूमि पर करोड़ों रुपए का सोना और चांदी बिछाकर अपनी तलवार के बल पर जगत विख्यात मंदिर बनवाये थे। हमारा धर्म और कर्तव्य है कि हम उनके बनाए हुए स्मारक को कायम रखने के लिए हर प्रकार का त्याग करें। यह हमारे लिए सुवर्ण अवसर है। यदि हम संगठित होकर कुछ कर गए तो जैन जाति का गौरव बढ़ेगा यदि हमने कुछ नहीं किया तो आने वाली संतानें हमें धिक्कारेंगी, कहेंगे कि हमारे पूर्वजों से अपने मंदिरों की भी रक्षा न हो सकी। इस कान्फ्रेंस में प्रण करो कि तन, मन, धन से इस कार्य को पूरा करेंगे। मुझे पूर्ण आशा है कि हमें अवश्य सफलता मिलेगी।

अन्त में आप महानुभावों का मैं अत्यन्त आभार मानता हूँ कि आप सबने मुझे यह मान दिया जिसके कारण आपके दर्शनों का लाभ हुआ। हम सबका यहां एकत्र होना तभी सफल होगा जबकि हम इस अवसर पर तमाम साम्प्रदायिक भेदभावों को दूर करके एक शक्तिशाली समिति का निर्माण करें जो सारे देश में संगठन के कार्य को अपने हाथ में ले। इस समिति के बनने से तमाम कार्य पूर्ण हो जायेंगे। मैं आशा करता हूँ कि आप अवश्य मेरी इस प्रार्थना पर ध्यान देंगे और इस कार्य को सफल बनाने में प्रयत्नशील होंगे।

दुर्भाग्य जैन समाज तेरा क्या दशा यह हो गई।
कुछ भी नहीं अवशेष, गुण-गरिमा सभी तो खो गई।।
क्या पूर्वजों का रक्त अब तेरी नसों में है कहीं ?
सब लुप्त होता देख गौरव जोश जो खाता नहीं।।
पूर्वज हमारे कौन थे, वे कृत्य क्या-क्या कर गये।
किन-किन उपायों से कठिन भवसिंधु को भी तर गए।।

धार्मिक शिल्पकला

भारत में कलाशिल्प की दृष्टि से जिन स्थानों को प्रधानता दी जाती है आबू की शिल्पकला को उनमें महत्त्वपूर्ण स्थान प्राप्त है। कई विशेषताओं के कारण तो आबू की कला को सर्वोत्तम भी कहा जा सकता है। प्रसिद्ध इतिहासवेत्ता कर्नल टाड के मतानुसार यदि ताजमहल की शिल्पकला के मुकाबिले कला यदि कहीं पाई जाती है, तो वह आबू में। कई दृष्टियों से तो आबू के जैन मन्दिरों की शिल्पकला ताजमहल की कला से भी आगे बढ़ गई है।

आबू को कलात्मक रूप देने में वहां प्राकृतिक सौन्दर्य का बहुत बड़ा हाथ है, जहां नरेशों ने, वहां के प्राकृतिक सौन्दर्य के प्रति आकर्षित होकर उसे अपना ग्रीष्म निवास और क्रीड़ास्थली बनाया, वहां वे अपनी धार्मिक भावनाओं के स्मृति स्वरूप ऐसी कलापूर्ण कृतियों के निर्माण का लोभ भी संवरण न कर सके। उन्होंने शिल्पकला के अमर चिन्हों का निर्माण कराकर आबू के तीर्थ के आकर्षण में चार चांद लगा दिये हैं। इस प्रकार आबू का यह कलासौन्दर्य सोने में सुगन्ध की उपमा का काम कर रहा है। इन पराक्रमी नरेशों की धार्मिक भावनाओं के चिन्ह हमें आबू पर्वत पर स्थित सुन्दर मन्दिरों, मूर्तियों, महलों, जलाशयों और ताम्रपत्रों तथा शिला लेखों में जहां तहां बिखरे मिलते हैं, और इनमें हमें जैन तथा हिन्दू धर्म की मिलीजुली कला, धर्म और संस्कृति का अपूर्व एकीकरण दिखाई देता है। अनेकों शैव्य और वैष्णव मन्दिरों में हमें जैन मन्दिरों की शिल्पकला और धातुकला की छाप दिखाई देती है। क्या मूर्तिकला और क्या निर्माणकला की विशालता और भव्यता की दृष्टि से यहां के हिन्दू मन्दिरों की मूर्तियां सारे भारत के मन्दिरों से अपना एक विशेष महत्त्व रखती हैं। इन मन्दिरों और मूर्तियों के निर्माता मेवाड़ और उदयपुर के राणा, चक्रवर्ती चौहान के वंशज तथा बाद में सिरोही तत्कालीन शासक हैं।

लेकिन अपनी जिस श्रेष्ठ शिल्पकला के लिए आबू तीर्थ भारत में ही नहीं वरन् सारे संसार में प्रसिद्ध है, वह शिल्पकला वहां के उन जैन मन्दिरों में पाई जाती है जिन्हें कि जैन महामन्त्री विमलशाह और वस्तुपाल, तेजपाल ने आबू सरीखे पर्वत शिखर पर अपनी धार्मिक महत्त्वाकांक्षा, पराक्रम और वैभव के प्रतिरूप में करोड़ों रुपये की धनराशि व्यय कर बनवाया यह जैन मंदिर विमलवसहि, लूणवसहि, पित्तलहर और खरतरवसहि नाम से प्रसिद्ध है। वह मंदिर संवत् ११०८ और संवत् १३५० के बीच में बने हैं। इनके निर्माण में दो सौ वर्ष से ऊपर का समय व्यतीत हुआ, इतने लम्बे वर्षों का अकथ परिश्रम इन जैन महामंत्रियों की निर्माण कला की ओर अत्यन्त गंभीर और धैर्यपूर्ण लगन का उत्कृष्ट उदाहरण है। जहां ताजमहल सरीखी श्रेष्ठ कृति मुगल सम्राट के बीस वर्ष के परिश्रम का परिणाम है, वहां इन मन्दिरों के निर्माण में इतने-इतने अधिक समय का लग जाना इसलिए ठीक मालूम होता है, जब हम इन मन्दिरों की विशालता और उन मूर्तियों तथा खम्भों को देखते हैं जो एक ही पाषाण के हैं और अभंग हैं। तब यह बात कल्पना से परे की ही दिखाई देती है कि इस पांच हजार फुट की ऊँचाई पर इतनी बड़ी-बड़ी शिलायें और निर्माण की इतनी सामग्री किस परिश्रम के साथ यहां तक चढ़ाकर लाई गई होगी।

और उस समय आबू पर्वत के मार्ग जब कहीं अधिक बीहड़ और अगम्य थे। आज जो दर्शक पक्की सड़क के द्वारा इन मन्दिरों के कला-दर्शन हेतु जाते हैं, वे उस दुर्गमता की कल्पना नहीं कर सकते। इसलिए ताजमहल के साथ तुलनात्मक दृष्टि से विचार करते समय हमें इस परिश्रम और अगम्यता का भी ध्यान रखना होगा। दूसरी दृष्टि से ताजमहल जहां मुगल सम्राट के पत्नी-प्रेम की स्मृति का प्रतीक है, और एक सम्राट के शक्ति, धन और प्रभाव से निर्मित वस्तु वहां आबू के यह जैन मंदिर उन जैन मंत्रियों की पवित्र धार्मिक महत्वाकांक्षा और उनके एक सीमित बल-वैभव के प्रतीक हैं। इसीलिए जहां-जहां ताजमहल के निर्माण में शाहजहां की शासन-सत्ता ने काम किया, वहां इन मन्दिरों के निर्माण में हजारों शिल्पियों और मजदूरों की पवित्र धार्मिक भावना ने काम किया है, जिसके वश वे वर्षों तक अथक भाव से आबू पर कलासर्जना करते रहे। उनके सामने पूंजी का वह लोभ न था, जो ताजमहल के निर्माता कलाशिल्पियों के सामने। यहां पर उन कलाशिल्पियों ने जी खोल कर अपनी कलासर्जना की प्यास बुझाई और वे उसे चरम सीमा तक पहुँचा देने में सफल हुए हैं। उनके अतिसूक्ष्म और विराट कलाचित्र को देखकर विदेशी निर्माणकला विशारद भी दंग रह जाते हैं। संगमरमर की कला का निखार यहां ही देखने में आता है। अध्ययन की दृष्टि से देखने पर हमें इन जैन मन्दिरों में जैन धर्म की संस्कृति का इतिहास एक प्रकार से बड़े आकर्षक ढंग से सचित्र और सजीवता के साथ लिखा हुआ दिखाई देता है। हम जैनधर्म सम्बन्धी भावनाओं और आचार-विचारों और उसके विकास की बारीक बातों को आज के मन्दिरों की कला में स्पष्ट रूप से अंकित देख सकते हैं। यही नहीं वरन् एक ऐतिहासिक युग की वेषभूषा, रीति-रिवाज और लोकरुचि की सांगोपांग झलक इन मन्दिरों में दिखाई देती है। अजन्ता और एल्लोरा की गुफाओं के समान हम नाट्य, नृत्य और संगीत तथा भावविन्यास का विशद चित्रण पाते हैं, जो अध्ययन की दृष्टि से एक विश्वविद्यालय का काम दे सकता है। मूर्तिकला और धातुकला का भी चरम विकास इन मंदिरों में देखने को मिलता है। मंदिरों में भिन्न-भिन्न तीर्थंकरों और मुनियों की जो मूर्तियां हैं वे आकार-प्रकार में काफी विशाल हैं। एक-एक मूर्ति कई-कई मन वजनी है, ऐसे वजन की विशाल मूर्तियां भारत के बहुत ही कम मन्दिरों में पाई जा सकती हैं।

इन मंदिरों में जैन धर्म और संस्कृति के अध्ययन की दृष्टि से जहां आप अक्षय भण्डार भरा पाएँगे, वहां आपको जैन और हिन्दू धर्म की मिलीजुली संस्कृति की भी झलक विभिन्न चित्रालेखों में देखने को मिलेगी। इससे पता चलता है उस काल के निर्माता किस प्रकार अपने समकालीन हिन्दू धर्म और संस्कृति से प्रभावित थे और किस प्रकार समवर्गों की भावना का एकीकरण था। इन मंदिरों के बीच में श्रीकृष्ण भगवान के चरित्र की कथाएँ, नरसिंह अवतार की कथा और महाभारत काल की कथाएँ बड़ी सुन्दरता के साथ अंकित पाते हैं जिनकी पूर्णता पर दर्शक बरबस मुग्ध हो जाते हैं।

× × × ×

मेरी दृष्टि में वह धर्म ही नहीं जो अपने जीवन को सुधारने के लिए इस जीवन को संक्लिष्ट बनाये बिगाड़े। वस्तुतः धर्म की कसौटी अगला जीवन नहीं, यही जीवन है।

सामयिक आवश्यक अपील

व्यवस्थित ढंग से अ० भा० आबू मन्दिर टैक्स विरोधी आन्दोलन को सफलतापूर्वक चलते हुऐ आज लगभग चार माह व्यतीत हो गये। पर कमेटी के कार्यकर्ताओं ने आजतक कभी भी समाज के समक्ष धन प्राप्ति के लिये अपील नहीं की और न भविष्य में ऐसा विचार ही है कि सार्वजनिक अपील की जाय क्योंकि कमेटी के कार्यकर्ता इस बात को अच्छी तरह जानते व समझते हैं कि ऐसा करने से हमारी सारी शक्ति इस ओर लग जाएगी जिससे समय का व्यर्थ दुरुपयोग होगा। लेकिन यह सभी भाई महसूस करते हैं कि यह कार्य महान् है और अर्थाभाव के कारण उसे हरगिज सफलता न मिल सकेगी। इसी बात को ध्यान में रखते हुए मारवाड़ के जिन-जिन स्थानों में मैं डेपुटेशन के साथ गया वहाँ के भाइयों ने बिना अपील किए ही मुझे थैलियाँ भेंट की और आश्वासन दिया कि आवश्यकता पड़ने पर हम और भी अधिक आर्थिक सहायता आपको देंगे। इसके अतिरिक्त और भी कई जगह के दानियों एवं इस आन्दोलन से प्रेम रखने वाले महानुभावों की ओर से हमें बिना अपील किए रुपयों की प्राप्ति हुई है। इसलिए यह निःसंकोच कहा जा सकता है कि समाज आबू आन्दोलन की सार्थकता को समझने लग गया है। अस्तु धनिक वर्ग स्वयं इस ओर ध्यान देकर आबू आन्दोलन को सफल बनायेंगे ही परन्तु इस समय जिस जरूरत को अधिक महसूस कर रहे हैं वह जरूरत है उत्साही युवकों के सहयोग की जो एक बार धर्म और समाज की मान-मर्यादा की रक्षा हेतु तथा इस जंग को जीतने के लिये अपने सर्वस्व की बाजी लगावे। समाज के उत्साही युवकों के अलावा हम अपने समाज के विद्वानों, विद्यार्थियों और वकीलों से भी जोरदार अपील करेंगे कि ग्रीष्मावकाश में सभी भाई अपने-अपने इलाके में आबू आन्दोलन के प्रचार का अगर बीड़ा उठा लें तो एक बारगी जो कार्य वेतनभोगी प्रचारकों से होना असम्भव है उसे आप लोग सम्भव करके दिखा सकते हैं।

हैदराबाद सत्याग्रह के समय आर्य समाज के छोटे-छोटे बच्चों से लेकर बड़े-बूढ़ों तक ने अपने को उस आन्दोलन में अर्पण कर दिया था उनके सामने सिर्फ एक ही लक्ष्य था और वह था आर्य धर्म और उसकी संस्कृति की रक्षा। कई आर्य भाइयों ने तो हैदराबाद की बलिवेदी पर अपने अमूल्य जीवन को अर्पण कर दिया था उस समय उनकी सारी शक्ति उसी ओर लगी हुई थी। ऐशो-आराम को उस वक्त उन्होंने ताक में रख दिया था और हैदराबाद की ओर चल पड़े थे और उन्होंने अपने त्याग तथा बलिदानी भावों से एक बार संसार को दिखा दिया था कि आर्यों में अभी अपने पूर्वजों का रक्तांश मौजूद है। फिर क्या बात है कि हमारे ही पूर्वजों के बनवाये विशाल एवं दर्शनीय मन्दिर तथा उनमें विराजमान सांगोपांग सौम्य मूर्तियों के दर्शनों पर सिरोही की स्वेच्छाचारी सरकार मनमाना टैक्स हर यात्री पर चाहे वह दिगम्बर, श्वेताम्बर हो या कि हिन्दू हो वसूल कर उसे ऐश-परस्ती में खर्च करे। उसे क्या अधिकार है कि जैनों के स्वत्वों को अपहरण कर अपनी मनमानी चलाये और टैक्स बढ़ाती रहे।

जिस दिन से आबू आन्दोलन का श्रीगणेश हुआ और जैसे-जैसे यह आन्दोलन अधिक उग्र और व्यापक होकर जैन समाज की सीमा को लाँघ कर सर्वव्यापी बना तब से हमें कुचलने

के लिए सिरोही स्टेट के निरंकुश अधिकारियों ने जैन जनता पर अधिकाधिक अत्याचार करने की घृणित नीति को अख्त्यार कर लिया है और वे बराबर वार पर वार करते ही चले जा रहे हैं।

जैन समाज के बच्चे-बच्चे को यह जान कर महान् दुःख होगा कि आबू आन्दोलन के कुचलने के हेतु अभी अभी जावाल के जैन मंदिर में स्थित श्री नेमीनाथ की सांगोपांग भव्य एवं सुन्दर मूर्ति के टुकड़े टुकड़े राज्य के अधिकारियों ने अपने सहयोगियों से करवा डाले और मंदिरजी के सामने एक भैंसा कटवाकर उसके रक्त से मंदिर की दीवारें सुर्ख करदीं। क्या इस प्रकार के अपमानजनक अत्याचार को जैन समाज सहन कर लेगा और चुपचाप मूर्तियों का अपमान होते देखता रहेगा ?

आये दिन जैन समाज की उदासीनता से तो यही पता चलता है कि वे कुछ कर सकने में अपने को सर्वथा असमर्थ पाते हैं। हम अहिंसक जरूर हैं पर क्या हमें इस प्रकार के निरन्तर होने वाले अत्याचारों के निराकरण के लिये खून का घूंट पी कर चुपचाप बैठे रहना चाहिए ? वह तो अपने स्वत्वों की रक्षा के हेतु करने की इजाजत देती है फिर क्या कारण है कि हमारे दिलों में स्वत्व प्राप्ति के हेतु किसी प्रकार भी उथल-पुथल नहीं मचती।

जैन समाज को यह जान कर अतीव आश्चर्य होगा कि आबू आंदोलन का साथ अ० भा० हिन्दू महासभा, अ० भा० हिन्दू धर्म सेवा संघ कलकत्ता, भारत सेवाश्रम कलकत्ता, बंगाल प्रांतीय आर्य प्रतिनिधि सभा, संन्यास आश्रम गया, कन्या गुरुकुल भैंसावल, कन्या गुरुकुल खानपुर, शुद्धि सभा आगरा, श्रद्धानन्द दलितोद्धार सभा देहली, आर्यसमाज हैदराबाद, दयानन्द साल्वेशन मिशन होशियारपुर, आर्य प्रतिनिधि सभा अजमेर, हिंदू सभा अजमेर, हिंदू सभा भोपाल, वनिता विश्राम आश्रम देहली, हिंदू सभा चांदखाली (बंगाल), सी० पी० हिंदू सभा, यू० पी० हिंदू सभा, आर्योपदेशक सभा लाहौर, श्री श्रद्धानन्द अनाथाश्रम अजमेर, गुरुद्वारा शिरोमणि सभा अमृतसर, राजस्थान प्रा० हिंदू सभा अजमेर, आर्य प्रतिनिधि सभा करांची, बिहार हिंदू सभा पटना, प्रताप सभा उदयपुर, अ० भा० शुद्धि सभा देहली आदि कई जैनेतर सभाएँ भारत में अपनी मान-मर्यादा के हेतु तथा स्वत्व संरक्षण के लिए प्रचार कर रही हैं और उपरोक्त सभी संस्थाओं का सहयोग हमें प्राप्त है। पर अफसोस है कि सोती हुई जैन कौम के कानों में जूँ तक नहीं रेंगती। समाचार-पत्रों में कितनी ही मर्तबा लिखा गया कि जगह जगह आबू मंदिर टैक्स विरोधी शाखायें सभायें स्थापित कर ब्यावर में पासशुदा प्रस्ताव का समर्थन करके सिरोही स्टेट भेज दें पर दो ढाई सौ स्थानों के अतिरिक्त अन्य स्थानों से प्रस्ताव पास कराकर नहीं भेजे गये। जैन समाज की इस उदासीनता को देखकर दुख होता है कि क्या दरअसल में इस संघर्ष के जमाने में दुविधा के पर्दे से जैन समाज का अस्तित्व नष्ट हो जायगा। इस सम्बन्ध में डेपुटेशन बनाकर जगह-जगह दौरा किया। इस सम्बन्ध में लगातार आंदोलन चलता रहा। डेपुटेशन कई बार दीवान साहब से मिला परन्तु मंदिरों के दर्शनों से प्राप्त हुई आय का लोभ वे भी न रोक सके। किन्तु जनता की प्रबल मांग और जैन समाज के जागृत हो जाने के कारण वे सब अधिकारी यह भी अनुभव करने लगे कि यह टैक्स लेकर हम जनता के साथ अन्याय कर रहे हैं। १९४२ में देश

की आजादी के लिए किए गए 'भारत छोड़ो' ऐतिहासिक आंदोलन के कारण कार्यकर्ताओं का ध्यान देश की स्वतंत्रता की ओर लग गया और आंदोलन बन्द करना पड़ा।

ज्योंही देश स्वतंत्र हुआ महारानी साहिबा सिरोही ने जनता की न्यायपूर्ण मांग को स्वीकार कर लिया और जैन समाज के मस्तक के ऊपर लगे हुए कलंक को धो डाला गया।

इस आंदोलन की सफलता में उन सभी पत्रों, सामाजिक संस्थाओं, हिन्दू और आर्य समाज के प्रमुख विद्वानों, नेताओं और जैन समाज से सभी सम्प्रदायों के प्रमुख महानुभावों का हार्दिक सहयोग रहा जिनके प्रताप और सहयोग के कारण सफलता प्राप्त हुई। सफलता में मुख्य श्रेय समाज के त्याग को है, समाज ने तन-मन-धन से इस आंदोलन में पूर्ण सहयोग प्रदान किया। फलस्वरूप सफलता का मुकुट समाज के मस्तक पर सुशोभित हुआ। किसी कवि ने उचित ही कहा है–वीर और शक्तिशाली पुरुषों को होने वाले अन्याय के विरोध में पूर्ण शक्तिशाली आवाज़ उठानी चाहिए। और तब तक शांति से नहीं बैठना चाहिए जब तक सफलता पैर को चूमने के लिए अग्रसर न हो उठे। वही सम्यक्‌दृष्टि जीव है जो धन की शक्ति, तलवार की शक्ति और विचार शक्ति के रहते हुए अन्याय को न तो सहन करता है और न दूसरों पर अन्याय करता है।

यही जैन धर्म की शिक्षा है जिसका उत्तम पुरुष पालन करते हैं। इस आंदोलन से समाज के युवकों को शिक्षा लेनी चाहिए और अन्याय के विरोध में आवाज़ उठानी चाहिये। सफलता उनका स्वागत करेगी।

आबूटैक्स विरोधी आन्दोलन के अवसर पर ब्यावर में अध्यक्षपद पर सुशोभित होते हुए।



स्याद्वाद महाविद्यालय, भदैनीघाट और उसका जीर्णोद्धार

पूज्य न्यायाचार्य श्री १०५ गणेशप्रसादजी वर्णी

श्रद्धेय पूज्य वर्णीजी अध्यात्मज्ञान के भंडार थे। विद्वानों के अनन्य प्रेमी और धार्मिक शिक्षा के प्रचार में आपकी अपूर्व रुचि थी। उन्होंने अपने जीवन में १०० से अधिक शिक्षण संस्थाएँ स्थापित कराईं। उनका सभी वर्ग के स्त्री-पुरुषों पर अद्भुत प्रभाव पड़ता था। स्याद्वाद महाविद्यालय तो उनके लिए पुत्र के समान था जिसका संरक्षण जीवन पर्यन्त करते रहे। जब गंगाजी की प्रबलधारा विद्यालय के भवन को भस्मसात करने लगी और उस पर बने हुए भ० पार्श्वनाथ के जिन-मन्दिर तथा विद्यालय के सुन्दर भवन को खतरा हो गया तो उनसे देखा न गया और इसके लिए उन्होंने अथक परिश्रम किया। जब उन्हें लाला तनसुखरायजी का पता चला कि उनके मित्र चीफ इंजीनियर पद पर सुशोभित हैं तो उन्होंने इस सम्बन्ध में कई महत्त्वपूर्ण पत्र लालाजी को लिखे जिनमें विद्यालय की रक्षा का भाव स्पष्ट है। लालाजी ने और इंजीनियर साहब ने इस सम्बन्ध में जो उल्लेखनीय प्रयत्न किया वह उनकी स्वर्णाक्षरों में लिखने योग्य प्रशंसनीय सेवा है। इसका सारा श्रेय वर्णीजी को है जिनकी भक्ति से प्रेरित होकर भदैनीघाट का पुनर्निर्माण हुआ।

वर्णीजी के अभाव से देश का एक दैदीप्यमान लोकप्रिय मार्गदर्शक आध्यात्मिक रत्न खोगया जिसकी पूर्ति होना कठिन है।

आए हुए पत्रों में से वर्णीजी का एक पत्र अविकल दे रहे हैं।

कल्याण पात्र हो - पत्र आया आप का परिश्रम जो घाट के विषय में अत्यन्त श्लाघ्य है यदि इंजीनियर साहब के से यू. पी. वाले होते घाट इसी वर्ष बन जाता - परन्तु सो तो नहीं प्राप्य हो जावे फिर तो बन ही जावेगा। हम तो आप को शुभाशीर्वाद देते हैं जो आपने प्रमुलपूर्वक काम किया - कलकत्ता से अभी उत्तर नहीं आया - आप निरन्तर प्रसन्न रहें [illegible] कहीं जावे अपने को समर्पित रहना चाहिए

आ. शु. चि.

गणेश वर्णी

वैशाख सुदि [illegible]
सं. २००५

आदर्श सामूहिक विवाह

श्री गोकुलप्रसाद जैन, दिल्ली

आदर्श विवाह योजना की समाज में बड़ी आवश्यकता है। यह प्रथा नामधारी सिक्खों और दूसरे सम्प्रदायों में बहुत समय से प्रचलित है। परन्तु जैन समाज में इस आदर्श प्रथा को लाने का श्रेय बैरिस्टर जमुनाप्रसादजी को है। द्रोणगिरि पंचकल्याण के अवसर पर मैं गया था वहां १६ विवाह योग्य वर-बधू बने।

जब उनके विवाह का आयोजन किया गया तो प्रतिक्रिया विचारधारा वाले व्यक्तियों ने इसका खुलकर विरोध किया। वे नहीं चाहते थे कि यह कार्य मेले में सम्पन्न हो। परन्तु बैरिस्टर साहब इस कार्य के लिए तत्पर थे। जैन मिशन के कार्यकर्त्ताओं ने इस कार्य में पूर्ण सहयोग प्रदान किया और मेले के बाहर जंगल की मनोरम भूमि में १६ विवाह सानन्द सम्पन्न हुए। लाखों स्त्री-पुरुष बिना आमन्त्रण दिये वहाँ पहुँच गये। उनकी शोभा-यात्रा बड़ी सुन्दर ढंग से चढ़ी। मेले में आये हुए स्त्री-पुरुषों ने इस कार्य में पूर्ण सहयोग प्रदान किया। धीरे-धीरे यह प्रथा समस्त मध्य भारत में फैल गई। देहली में भी परिषद के तत्वावधान में चार विवाह सामूहिक रूप से सम्पन्न हुए। केन्द्रीय लोकसभा के अध्यक्ष श्री आयंगर साहब ने सभी को सुन्दर आशीर्वाद दिया और इस प्रथा को प्रोत्साहन देने के लिए जनता से अपील की। ला० तनसुखरायजी को भी इस कार्य में विशेष रुचि थी। उन्होंने इस आन्दोलन को प्रोत्साहन देने में बड़ी सहायता प्रदान की। इस आन्दोलन का संक्षिप्त परिचय इस प्रकार है।

समाज में आदर्श विवाहों की प्रथा को योजनाबद्ध रूप से चलाने का सम्पूर्ण श्रेय जैन समाज के मान्य नेता स्व० बैरिस्टर जमनाप्रसादजी को रहा है। आप ही इसके प्रवर्तक थे और आपने ही जीवन पर्यन्त इसे सफल नेतृत्व प्रदान किया। मध्य प्रदेश में आपकी छत्रछाया में इस प्रकार के हजारों विवाह सम्पन्न हुए हैं।

प्रचलित विवाह रूप की इसी बुराइयों ने हमारे मान्य नेता श्री जमनाप्रसादजी को सामूहिक आदर्श विवाह पद्धति चलाने के लिए प्रेरित किया था। वैवाहिक कार्यों के सुधार का सर्वप्रथम प्रयास तो बैरिस्टर चम्पतरायजी ने किया था जिसमें उन्होंने अनेक प्रचलित रूढ़ियों को तोड़ा था। समाज में और भी स्थान-स्थान पर ऐसे विवाह होते आये हैं जिसमें समाज ने दहेज और फिजूलखर्ची के जुए को उतार फेंका था। परिवर्तित परिस्थिति और सामाजिक जागरण ने हमें बहुत कुछ सिखा दिया है। व्यवस्थित रूप से सामूहिक आदर्श विवाह योजना को समाज में प्रचलित करने का सारा श्रेय समाज और परिषद के स्वर्गीय नेता सन्मार्ग प्रवर्त्तक बैरिस्टर जमनाप्रसादजी कलरैया (नागपुर) को है। उन्होंने परिषद के जबलपुर अधिवेशन के अवसर पर सर्वप्रथम इस योजना को कार्यान्वित किया था। घोर विरोध का सामना करते हुए भी जिस महान कार्य का उन्होंने बीड़ा उठाया था, उसमें वे लगे रहे और इसे पूर्ण सफल बनाया।



दिल्ली में सामूहिक विवाह का एक दृश्य। माननीय आयंगर सा. की अध्यक्षता में पं० शीलचन्दजी शास्त्री गृहस्थाचार्य का कार्य करते हुए

इस योजना को सफल बनाने और इसे कार्य-रूप में परिणत करने का बहुत कुछ श्रेय स्व० बैरिस्टर साहब के अनन्य सहयोगी सेठ शोभालालजी सागरवालों को है जिन्होंने इस योजना का सफल नेतृत्व करके इसे सफलतर और सफलतम बनाया। इन्हीं महानुभावों के सततप्रयासों से आज बुन्देलखण्ड और मध्यप्रदेश में हजारों आदर्श विवाह हो चुके हैं।

बैरिस्टर साहब ने अपने जीवन में स्थान-स्थान पर हजारों आदर्श विवाहों का आयोजन कराया। आदर्श विवाह हमारे लिए इसलिए आवश्यक है कि हम विवाहों के अवसर पर होने वाले अपव्यय, बाह्याडम्बर और अनावश्यक रूढ़ियों और रीति-रिवाजों से चल सकें। समाज में धनी-निर्धन, ग्रामीण, नागरिक आदि सभी गृहस्थों को समान स्तर पर लाया जा सके तथा अनेकानेक वर्तमान कुरीतियों से मुक्ति प्राप्त की जा सके। इस योजना के मूल में एक ही प्रेरणा गतिशील है कि आर्थिक विपन्नता के कारण आज जो व्यक्ति अविवाहित रह जाते हैं या कि जिनके विवाह सम्बन्ध अनेक कठिनाइयों के बाद विलम्ब से होते हैं, उन्हें राहत मिल

सके। इसे जितना कम से कम खर्चीला बनाया जा सके, उतनी ही अधिक इसकी उपादेयता बढ़ेगी। सबके लिए अनुकरणीय यह इसलिए है कि जो व्यक्ति चाहे व्यक्तिगत रूप से अधिक व्यय भी कर सकते हों वे यदि आगे आकर इस प्रकार के आदर्श स्थापित करेंगे जिससे कि अनुकरण-प्रिय निरीह निर्धन जनता उन पर चल सके तो समाज इस हीनावस्था से निकल सकेगी।

स्व० बैरिस्टर साहब और उनके सहयोगियों के चिर प्रयत्नशील रहने कारण आज समाज में इस योजना का बड़ा स्वागत हुआ और सामूहिक रूप से सम्पन्न होने वाले इन आदर्श विवाहों का व्यापक प्रचार हुआ। समाज ने इन विवाहों की आवश्यकता, सुरुचिपूर्णता और सुविधात्मकता को हृदयंगम किया और इस पर अपनी मान्यता की छाप भी लगा दी।

बैरिस्टर साहब ने प्रायः सभी प्रमुख धार्मिक और सामाजिक उत्सवों पर, मेलों आदि में सामूहिक आदर्श विवाहों की योजना कराई। अन्य विशेष अवसरों पर भी इस प्रकार के आयोजन कराये जिनमें एक ही साथ एक ही मण्डप में, एक ही समय एक ही व्यवस्था के अन्तर्गत अनेक वर-वधुओं का शास्त्रोक्त विधि-विधान सहित पाणिग्रहण संस्कार हुआ।

बैरिस्टर साहब इस प्रकार के प्रगतिशीलता के कार्यों में सदा आगे रहे हैं। परिषद ने १९५६ में अपने देवगढ़ अधिवेशन के अवसर पर सामूहिक आदर्श विवाह योजना के बारे में पूर्ण विचार-विमर्श के पश्चात् एक प्रस्ताव पास किया था और इसे कार्यान्वित करने के लिए जो समिति बनाई गई थी उनके कार्यों का सम्पूर्ण भार उसके मन्त्री श्री जमनाप्रसादजी को ही सौंपा गया था। यों तो इस योजना का व्यापक प्रचार हुआ है किन्तु इस कार्य में बड़ी सावधानी के साथ अग्रसर होने की आवश्यकता है। प्रायः समाज-सुधार के नाम पर ढोंगी, बेईमान, ठग और धूर्त अपनी दुकानें कायम कर लेते हैं। उनसे बचने की आवश्यकता है ताकि वे इस योजना के मूल उद्देश्यों और वास्तविकता को ही नष्ट न कर दें। बैरिस्टर साहब के जीवनव्यापी सतत्-प्रयत्नों और अथक परिश्रम से समाज ने आदर्श विवाहों की मौलिक महत्ता को तो स्वीकार किया ही, साथ ही इस योजना को सफल बनाकर इसकी व्यावहारिकता और उपादेयता को भी सिद्ध कर दिया।

आज हमारा मान्य नेता तो हमारे बीच नहीं है जो हमारा मार्ग-दर्शन कर हमें रास्ता दिखाता चले। किन्तु उनके द्वारा प्रशस्त मार्ग और स्थापित मिशन हमारे सन्मुख है जिस पर हमें चलना है और समाज को चलाना है। स्व० बैरिस्टर साहब की यही सच्ची स्मृति होगी और यही वास्तविक श्रद्धांजलि।

जो सब कुछ जानकर भी अपने-आपको नहीं जानता, वह अविद्वान है। विद्वान् वही है, जो दूसरों को जानने से पूर्व अपने-आपको भली भाँति जान ले।

विश्व का शाकाहार आन्दोलन

श्री सम्मतिकुमार जैन

> सत्तर वर्ष से भी अधिक समय से मैं शाकाहारी हूं। शाकाहार के लाभ के विषय में कुछ कहना नहीं चाहता। इसके परिणाम से जनता सुपरिचित है।
>
> —जार्ज बर्नार्ड शा

सन् १९१७ में लन्दन के शाकाहारी समाज के सत्रहवें वार्षिकोत्सव के अवसर पर जार्ज बर्नार्डशा ने अपने सन्देश में कहा था—

मुझे अपनी आस्था का श्रेय मिल सका या नही इस सम्बन्ध में आप अपनी धारणा स्वयं निश्चित कीजिएगा। मैं इसे आस्था कहता हूं—क्योंकि आज हम भौतिकवादी दृष्टि से शिक्षित इस युग में शरीरविज्ञान पर आधारित जो युक्तियाँ प्रस्तुत करते हैं उनमें मेरा तनिक भी समादर नहीं। प्रामाणिक मनोविज्ञान के विकसित होने पर हम अधिशरीर क्रियाविज्ञान तक पहुंच सकेंगे और तब हम स्वजाति भक्षण के प्रति नैसर्गिक विद्रोह की विश्वासजनक ढंग से व्याख्या कर सकेंगे।

यदि बचपन में मुझे अकेला छोड़ दिया जाता तो मैंने अपने जीवन में कभी भी मांस भक्षण न किया होता।

मेरे जैसा आध्यात्मिक प्रवृत्ति का व्यक्ति शव भक्षण नहीं करता।

यह बात सर्वथा स्पष्ट है कि मनुष्य शाकाहार से दीर्घायु प्राप्त कर सकता है।

लन्दन के सुप्रसिद्ध नाट्यकार बर्नार्ड शा जीवन भर शाकाहारी रहे। उन्होंने अपने जीवन में कभी भी मांस, मछली, अन्डे को स्वीकार नहीं किया। एक बार वे किसी भोज में आमन्त्रित थे। उनके भोजन में शाकाहार का ही प्रबंध किया गया था। किसी व्यक्ति ने उनके सामने मांसाहार का भोजन परोसना चाहा तो उन्होंने तत्काल मना कर दिया और कहा मैं अपने शरीर को कब्रस्तान नहीं बनाना चाहता हूं। प्रकृति ने अन्न, फल, मेवा, दूध आदि सर्वोत्तम पदार्थ उत्पन्न किए हैं, मैं इन्हें छोड़कर मांसाहार कदापि नहीं कर सकता। दीर्घायु, निरोग शरीर, शांत स्वभाव, कर्तव्यशील प्रकृति, हंसमुख वदन और सात्विक विचार जो मेरे अन्दर आये हैं उसका प्रमुख कारण शाकाहार है। मैं शाकाहार को ही जीवन के लिए आवश्यक समझताहूं। विश्ववन्द्य महात्मा गाँधीजी ने अपने जीवन में कभी भी मांसाहार नहीं किया। उन्होंने अपनी माताजी के समक्ष जैन साधु बेचर स्वामी से तीन प्रतिज्ञायें लीं। माँस, मदिरा और पर-स्त्री सेवन का त्याग। इन प्रतिज्ञाओं के कारण उनका जीवन अहिंसा संस्कृति से ओतप्रोत हो गया। वे जब बैरिस्टरी के शिक्षण के लिए विलायत गए तो शाकाहारी आन्दोलन में उन्होंने विशेष रुचि दिखाई। विदेशों के वयोवृद्ध शाकाहारी विद्वानों के बीच में नवयुवक गाँधीजी अध्यक्षता करते थे और उनका शाकाहार के कारण विशेष सम्मान था। उस समय लन्दन में कई शाकाहारी संस्थाओं की नींव रखी गई। शाकाहार

आन्दोलन प्रारम्भ हुआ। एक बार गांधीजी के बड़े पुत्र बीमार हुए। डाक्टरों ने उन्हें अन्डे का शोरवा देने का प्रस्ताव किया। गांधीजी ने कहा मैं कदापि अपने पुत्र को अंडे का शोरबा नहीं दूंगा। उनसे किसी ने कहा गाय का दूध उसके बच्चे का आहार है उन्होंने तत्काल दूध का त्याग कर दिया। जब उनका स्वास्थ्य बिगड़ने लगा तो उनसे कहा गया कि आप बकरी का दूध प्रयोग में लाइए। उन्होंने बकरी के दूध को स्वीकार कर लिया। गांधीजी अहिंसा के अवतार थे। उन्होंने अहिंसा प्रचार के कार्य में अनुपम कार्य किये। सात्विक आहार-विहार पर वे अधिक जोर देते थे। भारतवर्ष की संस्कृति और सभ्यता धर्मप्रधान रही है। धर्म में अहिंसा को महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त है। इसलिए कहा है :

धम्मो मंगल मुक्किट्ठं, अहिंसा संयमी तपो,
देवापि तस्स णम स्यंति, जस्य धम्मे सयामणे।

धर्म लोक में उत्कृष्ट मंगल है। और वह अहिंसा संयम और तप है। देवता भी उसको प्रणाम करते हैं जिसके हृदय में अहिंसा का वास है।

भारतवर्ष में धर्म की बड़ी प्रधान थी। सभी मनुष्यों का आहार-विहार सात्विक था। जब से विदेशियों का भारत में आना हुआ यहां मांसाहार बढ़ गया। सात सौ वर्ष मुसलमानों के रहने से और दो सौ वर्ष अंग्रेजों के रहने से भारतीयता का रूप-रंग बदल गया। पाश्चात्य संस्कृति का इतना अत्यधिक असर हुआ कि आज भारत सरकार मांसाहार के लिए बड़ा प्रयत्न कर रही है। करोड़ों रुपयों की लागत से नए-नए कसाईखाने स्थापित कर रही है।

मुर्गी पालन को प्रोत्साहन देकर अनेक स्थानों पर विशाल केन्द्र स्थापित किए जा रहे हैं। भारत से करोड़ों रुपये के प्रतिवर्ष चमड़े और पशुओं के शरीर के विभिन्न अंग विदेशों में भेजे जा रहे हैं। ऐसी परिस्थिति में कोई भी विवेकी भारत सरकार को अहिंसा संस्कृति पर विश्वास करने वाला नहीं मान सकता। आवश्यकता है, देश में पशुधन की वृद्धि की जाय और सघन खेती को प्रोत्साहन दिया जाय तभी अन्न की समस्या सुलझ सकती है।

शाकाहार स्वास्थ्य के लिए अत्यंत लाभदायक है। यह देखकर विदेशी विद्वानों, डाक्टरों और दूसरे विचारकों ने अनुभव किया कि मांसाहार तामस और अनेक रोगों को उत्पन्न करने वाला है। क्यों न जीवन में शाकाहार को प्रोत्साहन दिया जाय। उन्होंने इसका अनुभव किया और स्वयं शाकाहारी रहने का दृढ़ संकल्प किया। उन्होंने इस सम्बन्ध में शाकाहारी सोसायटियां स्थापित की और इस प्रकार का साहित्य निर्माण किया जिसके पढ़ने से स्पष्ट प्रकट होता है, शाकाहार जीवन को शक्ति, बल और कर्तव्य की ओर प्रेरित करता है। प्रकार पाश्चात्य देशों में अनेक Vegetarian Society कायम हुई। फलस्वरूप शाकाहार का प्रचार किया। संसार के कोने-कोने में ऐसी सोसाइटियाँ हैं जो अपने उद्देश्य की पूर्ति के लिए प्रचार के विविध साधनों द्वारा प्रचार करती हैं। ऐसी सोसायटियों में लन्दन और मैनचेस्टर की प्रसिद्ध सोसायटियां हैं जो बहुत प्राचीन हैं। विविध रीति से शाकाहार का विश्व में प्रचार करती हैं। प्राणी-रक्षा के सम्बन्ध में प्रयत्न करती हैं।

प्रति वर्ष ४ अक्टूबर को प्राणीरक्षक दिवस के नाम से इसे मनाते हैं। यह १९२८ में प्रारम्भ हुआ। सन्त फांसिस जो जीवों के प्रति बड़ा प्रेम करते थे उन्होंने यह दिवस प्राणीरक्षक दिवस के नाम से मनाना प्रारम्भ कराया। उनका विचार था हमें पशु, के प्रति शुभ भावनाएं रखनी चाहिए। उनकी रक्षा के लिए सतत प्रयन्नशील रहना चाहिए।

न्यूजीलैंड में इस दिन को विशेष उत्साह से मनाते हैं और संसार के सभी लोग इस प्राणी रक्षक दिवस को मनाकर जीवधारियों के प्रति करुणा का भाव प्रकट करते हैं। वे इसे एक सप्ताह तक मनाते हैं। और यह विश्व में प्राणीरक्षक सप्ताह के रूप में बड़े उत्साह से मनाया जाता है। इसलिए व्याख्यानों, रेडियो, वार्तालाप, म्यूजिक लालटेन, प्रेस, पत्र और दूसरे साधनों द्वारा शिक्षा विभाग के सहयोग से मनाते हैं।

इस सप्ताह के मनाने का प्रयोजन देश के नौनिहाल बालकों के हृदय में जीवों के प्रति करुणा और दया का भाव जानवरों के प्रति पैदा करना है ताकि वे उदार, दयावान और जीव-रक्षक बनें। न्यूजीलैंड में एक सोसायटी है जिसका नाम

World Weak For Animals Campaign N. 17 Bellvedere Street Epsom है।

विश्व शाकाहारी सम्मेलन का १७वां अधिवेशन भारत की राजधानी देहली में हुआ। उसके संयोजक ला० तनसुखराय थे। विश्व के विविध भागों से ३५० के करीब आए हुए प्रतिनिधियों ने इस अधिवेशन में भाग लिया। शाकाहार आन्दोलन ब्रिटेन और पश्चिमी देशों में बड़ी तेजी के साथ फैल रहा है। क्योंकि लन्दन और दूसरे शहरों में इस आन्दोलन को आधुनिक ढंग और वैज्ञानिक रीति से संचालन किया जा रहा है। मैंचेस्टर लन्दन की वैजिटेरियन सोसायटी इस सम्बन्ध में उल्लेखनीय कार्य कर रही है। विश्व अन्तर्राष्ट्रीय शाकाहारी सम्मेलन का प्रारम्भ १९१० में शुरू हो गया था। इस संस्था से विश्व की समस्त शाकाहारी सोसायटियों का सम्बन्ध है। और यह परस्पर सहयोग और एकता के आधार पर चलाई जा रही है। इसके संगठन से इस संस्था की शक्ति बढ़ी है।

World Vegetarian Congress का १८वां अधिवेशन २७ अगस्त से ४ सितम्बर १९६५ तक लन्दन में होने का निश्चय हुआ है। जिस स्थान पर अधिवेशन होगा वह लन्दन का प्रमुख केन्द्र है। और उसका ऐतिहासिक महत्व है। यह स्थान Swanwick है। शाकाहारी सम्मेलन की कार्य-कारिणी परिषद् में हालैन्ड, हेग और चैकोस्लेविया प्रमुख रुचि रखने वाले सदस्य हैं। प्रत्येक प्रतिनिधि की फीस ३) स्टर्लिंग है। इस अधिवेशन को वहां कराने का सारा श्रेय ब्रिटेन शाकाहारी आन्दोलन (British Vegetarian Youth Movement) को है जिसके प्रयत्न से यह अधिवेशन वहां किया जा रहा है।

पिछला जो १७वां अधिवेशन दिल्ली में हुआ उस सम्बन्ध में देश के विविध भागों से गण्य-मान्य राज्याधिकारियों, नेताओं, विद्वानों, सामाजिक कार्यकर्ताओं के पत्र-संदेश प्राप्त हुए जिनमें इस आन्दोलन की प्रशंसा की गई थीं। और प्रोत्साहन देते हुए लिखा था। इसी प्रकार विदेशों

की शाकाहारी सोसायटियों ने अत्यन्त सुन्दर शब्दों में प्रेरणादायक स्फूर्तिवंत शब्द लिखे जिन्हें पढ़ने पर प्रतीत होता है कि यदि शक्तिशाली और व्यवस्थित ढंग से शाकाहारी आन्दोलन चलाया जाय तो निःसंदेह सफलता प्राप्त हो सकती है।

प्रिय बन्धु,

आपका कृपापत्र प्राप्त हुआ। धन्यवाद!

आपने अपने जीवन में जो अनेक जन-कल्याण के कार्य किये उनमें शाकाहार की महत्ता प्रचारित करने का आपका यह संकल्प सर्वश्रेष्ठ है। इस पुनीत लोकोपकारी शुभ कार्य में मेरा पूर्ण सहयोग आपको निरन्तर उपलब्ध होता रहेगा।

भारत संसार का अनेक क्षेत्रों में गुरू माना जाता रहा है। आज हमें अपने उस गौरव को पुनः प्राप्त करने के लिए सांसारिक कल्याण के ऐसे शुभ कार्यों में अधिकाधिक योग प्रदान करना ही चाहिए जिससे आधुनिक मनुष्य का मस्तिष्क सन्तुलित होकर अध्यात्मवाद की ओर अग्रसर हो सके।

निरामिष आहार के प्रचार, वृद्धि और शिक्षण के अतिरिक्त राजधानी में सम्मानित विदेशी अतिथियों के लिए किसी ऐसे विश्रामग्रह की भी योजना बनानी होगी जहाँ वे विशुद्ध भारतीय संस्कृति के अनुरूप शाकाहार का आनन्द ले सकें।

आप मुझे अपने समाज के संरक्षण सदस्यों में सहर्ष सम्मिलित कर सकते हैं।

आपका शुभचिन्तक,
रामनाथ कालिया

भारतवर्ष में कई सोसायटियां इस सम्बन्ध में प्रशंसनीय कार्य कर रही हैं। उनमें The Bombay Humanitarian League मुख्य है जिसकी स्थापना बम्बई में श्रीमान माननीय दयालंकार श्री लालूभाई जव्हेरी ने की थी जिसका प्रधान कार्यालय १४६, जौंहरी बाजार बम्बई नं० २ में है। आजकल जिसके प्रमुख संचालक श्रीमान् सेठ जयन्तीलालजी मानकर साहब हैं।

इसी प्रकार दूसरी सोसायटी-भारत वेजिटेरियन सोसायटी, ११६ सुन्दरनगर, नई दिल्ली में है जिसके सेक्रेटरी श्री अमृतलालजी जिन्दल हैं। इसी प्रकार बम्बई, सौराष्ट्र और आंध्र प्रदेश में कई पिंजरापोल सोसायटियां हैं जो पशुरक्षा का महत्वपूर्ण कार्य करती हैं। रीवां, सतना, मध्यप्रदेश से शाकाहारी त्रैमासिक पत्र का प्रकाशन होता है जिसके सम्पादक श्री पन्नालालजी हैं जो शाकाहार के सम्बन्ध में उल्लेखनीय कार्य कर रहे हैं।

आवश्यक हो कि शाकाहार पशुरक्षा, गोरक्षा, जीवदया सम्बन्धी आन्दोलन विभिन्न प्रांतों में उत्साही कार्यकर्ताओं द्वारा मिलकर संगठित होकर चलाया जाय ताकि वैज्ञानिक ढंग से इसका संचालन हो और सही रूप से पूर्ण सफलता मिल सके। जैन समाज के उदीयमान युवक श्री प्रेमचन्दजी जैना वाच कम्पनी ने दि० जैन लाल मंदिरजी पर अहिंसा प्रचार समिति स्थापित की है। जिसने प्रशंसनीय कार्य किया है तथा जो उत्तम काम कर रही है।

लाला तनसुखरायजी ने भी भारत वेजिटेरियन सोसायटी नामक संस्था खोली थी। और उसीके माध्यम से यह अधिवेशन करवाया और विदेशी शाकाहार से रुचि रखने वाले अतिथियों को आमंत्रित किया। इसमें कोई संदेह नहीं लालाजी की इस कार्य में विशेष रुचि थी। उन्होंने प्रयत्न भी किया। परंतु पूर्ण सहयोग का अभाव और योग्य हाथों में न सौंपने के कारण इस संस्था का कार्यक्षेत्र केवल कागजों में ही रह गया। और उनके स्वर्गवास के पश्चात् समाप्त हो गई। आवश्यकता है जैन समाज के उत्साही कर्मशील संपन्न युवक इस कार्य को अपने हाथों में लें और पूर्ण रुचि के साथ इसका संचालन करें तो मानव जाति का अकथनीय उपकार हो। इस समय विश्व में एक बड़ा संघर्ष चल रहा है। मांसाहार, मछली, अन्डों का उत्पादन इतनी द्रुतगति से बढ़ रहा है जिसकी कल्पना भी नहीं की जा सकती। किसी समय पशुओं का वध धर्म के नाम पर होता था, अब उदर पूर्ति के नाम पर होता है। परन्तु आज विटामिन शक्तिवर्धक तत्वों के नाम पर होता है। जैनों में जो विशुद्ध शाकाहारी हैं कतिपय नवयुवकों के मस्तिष्क में भी यह दूषित विचारधारा बिना बुलाए तेजी से आ रही है। कुछ अंडे भी इस प्रकार के होते हैं जिनमें जीव पैदा होने का संभावना नहीं होती। तो उस सम्बन्ध में तर्क किया जाता है उनके खाने में क्या दोष है? इसी प्रकार का प्रश्न मुझसे माननीय प्रधान मंत्री जी के एक उच्चपदासीन सेक्रेटरी ने उस समय किया जब मैं अमेरीकन राष्ट्रपति श्री आइजन हौवर को भारत पधारने पर Key of Knowledge भेंट करने के लिए गया था। मैंने उत्तर दिया श्रीमान जी! हम आपकी विचारधारा को स्वीकार नहीं कर सकते। कुछ स्त्रियां भी ऐसी होती हैं जिनके सन्तान नहीं होती। तो क्या हम उन्हें निर्जीव कहें। जब मैंने यह उत्तर दिया तो वे मेरी ओर देखने लगे और कहा निःसंदेह शाकाहारी भोजन सर्वश्रेष्ठ है। मैं इसकी प्रशंसा करता हूँ। मुझे भी शाकाहार के सम्बन्ध में कुछ उत्तम साहित्य दीजिए। फिर उन्हें कुछ साहित्य भेंट दिया गया।

कहने का सारांश है कि शाकाहार के प्रचार की बड़ी आवश्यकता है। प्रचार की तीव्रता के कारण निन्दनीक घृणास्पद मांसाहार की वृद्धि हो रही है जिसका सामना करना युवकों को चुनौती दे रहा है कि वे उस चुनौती को स्वीकार करें और विरोध में शक्तिशाली आन्दोलन उठावें।

विदेशों में जहाँ मांसाहार की बड़ी प्रचुरता है रेगिस्तान में नखलिस्तान की तरह कुछ विशिष्ट शक्तिशाली पुरुषों और महिलाओं द्वारा यह आन्दोलन चलाया जा रहा है। वे इस सम्बन्ध में निर्भीकता से कार्य करते हैं। और आधुनिक प्रचार के साधनों को अपनाकर शाकाहार का प्रचार तेजी से कर रहे हैं। आपको यह जानकर अत्यंत प्रसन्नता होगी कि विदेशों में बीस हजार स्त्री-पुरुष शाकाहारी आन्दोलन के सदस्य हैं जो शाकाहार पर निर्भर हैं। उन्होंने इस सम्बन्ध में घोषणाएं की हैं कि शाकाहारी निरोग और स्वस्थ रहता है। उसमें ऐसे संक्रामक रोगों का समावेश नहीं हो पाता, जिन रोगों से ग्रसित वह पशु होता है जिसका मांसाहार काम में लिया जाता है। अनेक बीमारियां मांसाहार के त्याग के साथ उनकी समाप्त हो गई।

मांसाहार मनुष्य की खुराक नहीं है। शाकाहार, अन्न, फल, दूध आदि ही मनुष्य की सच्ची खुराक है। इस सम्बन्ध में उत्तम साहित्य भी प्रकाशित किया गया है जिसकी सूची, संस्थाओं के नाम उनके संचालक और इस सम्बन्ध में आवश्यक बातों का परिचय क्रमशः देने का

विचार है। अब कुछ उल्लेखनीय विदेशी संस्थाओं का परिचय जानकारी के लिये देते हैं जिससे हमारे देश के भाइयों में इस सम्बन्ध में उत्साह प्रकट हो और इस महत्वपूर्ण कार्य में अपनी रुचि प्रकट करें।

डबलिन में The Dublin Vegetarian Society है, जिसकी स्थापना डा० जौहरी देहली निवासी ने की है, जो वहीं जाकर बस गए हैं। यह संस्था अमरीका, कनाडा, थाईलैंड, अर्जेन्टायना, साउथ अफ्रीका, आस्ट्रेलिया, जापान और ब्रिटिश द्वीपों में उत्तम कार्य कर रही है। Evening Mail, Evening Herald और दूसरे पत्रों में शाकाहार का विज्ञापन देकर जनता की रुचि बढ़ा रही है।

यह संस्था विविध उपायों से शाकाहार को प्रोत्साहन देती है जिनमें शाकाहारी भोजन बनाने की विधि मुख्य है। Mr. Florence, Gourlay इसके सेक्रेटरी हैं जो शाकाहारी भोजन का Natural Pure Diet कहते हैं एवं उत्साह से जिसका प्रचार करते हैं। इस संस्था ने २६,६०,५६३ से अधिक व्यक्तियों के सम्पर्क में आकर शाकाहार का महत्व समझाया है।

इसी प्रकार The American Humane Association है इस संस्था की स्थापना १८७७ में हुई इसका उद्देश्य पशुओं पर क्रूरता न होने देना, बच्चों के कल्याणकारी कार्य करना, पशुरक्षा का कार्य करना, शाकाहार का प्रचार करना इसका उद्देश्य है। इसका प्रधान कार्यालय 896 Pennsylvania, Street, Denver 3. Cold. U.S.A.

यह पत्रों, व्याख्यानों, डिबेट, भोजन बनाने की विधि, प्रेसों, कान्फ्रेंसों और दूसरे साधनों द्वारा शाकाहार का प्रचार करती है। २१ वर्ष का कोई भी व्यक्ति इसका सदस्य बन सकता है। मेम्बर बनने के लिए प्रतिज्ञा-पत्र भरना होता है जिसमें जीवन भर शाकाहारी रहने का संकल्प करना पड़ता है। व्यवस्थित सोसायटी है, उत्तम नियम है, दूध का भोजन मांस नहीं है। क्योंकि गाय, भैंस, बकरी आदि पशुओं से प्राप्त होता है। उनको हानि बिना पहुंचाए मिलता है। जबकि मांस उनके विनाश से प्राप्त होता है। दूध जल्दी पचने वाला पूर्ण विटामिन युक्त शुद्ध भोजन है। उसमें मांस आहार का संकल्प भी नहीं है। इसलिए गृहण करने योग्य है। इसे उन नियमों में शामिल नहीं करना चाहिए जिन्हें कतिपय विदेशियों ने शामिल किया है।

इसके अतिरिक्त : London Vegetarian Society के अध्यक्ष हैं, मि० Bertrand P. Allinson M. R. A. S.,

और आनरेरी सेक्रेटरी Ronaldlightower हैं। जिन्होंने सारा जीवन इस काम में लगा दिया। यह एक डाक्टर हैं। इनके पुत्र भी इस काम में पूरी सहायता प्रदान करते हैं। इसी प्रकार :—

Dr. D. R. Allinson Advocate हैं, जिन्होंने पशु रक्षा और पशुओं के प्रति होने वाली निर्दयता को दूर करने का संकल्प किया है। आपका पता 81 Lambs Conduit Street London W. C. I. है।

इसी प्रकार आस्ट्रेलिया के प्रोफेसर Jahanes Ude ने अपने यहां प्रशंसनीय कार्य किया है। शाकाहार, अहिंसा प्रचार के सम्बन्ध में आपका कार्य शानदार रहा है। इनके इस कार्य में कई कठिनाइयां आयीं परन्तु इन्होंने इसकी कुछ भी परवाह नहीं की।

डा० Hugovio इसके अध्यक्ष हैं। श्री Evelin Guzada सेक्रेटरी हैं। Mr. Wiluram जो पत्र और प्रदर्शनी द्वारा शाकाहार का प्रचार करते हैं।

Osterric Chister vegeteriarbund Wiem I. Rethawsplate 4.

Halbstook B इसका प्रधान कार्यालय है।

विदेशों में अहिंसा की अभिरुचि

जनता में निरामिष भोजन की प्रवृत्ति बढ़ाने के आदर्श कार्य को "भारत वेजीटेरियन सोसायटी दिल्ली" बहुत समय से कर रही है। इस सोसायटी के संयोजक लाला तनसुखराय जैन ने एक पत्र लंदन की फ्रेंड्स वैजीटैरियन सोसायटी को बम्बई में होने वाली वर्ल्ड वैजीटेरियन कांग्रेस में अपने प्रतिनिधि भेजने का निमन्त्रण भेजा था। उसके उत्तर में उपर्युक्त संस्था के मंत्री टी० लेन के पत्र का कुछ भाग देते हैं, जिससे उनको प्रतिभास हो जाएगा कि विदेशों में भी जीवों की हिंसा न करने की कितनी अभिरुचि है, "जैनियों और बौद्धमतानुयायियों में जो जीवों के हिंसा न करने की परम्परा चली आ रही है उसका हम हृदय से आदर करते हैं। हमें आशा है कि वर्ल्ड वैजीटेरियन कांग्रेस को पूरी सफलता मिलेगी। निरामिष आहार की प्रवृत्ति तथा अहिंसा आन्दोलन विश्वभर में फैलना चाहिए, इससे प्राणियों में पारस्परिक सहयोग और सहायता की भावना फैलेगी। विश्व के मानवों तथा पशुओं के वध को रोकने के लिए पश्चिमीय देश पूर्वीय देशों के नेतृत्व की ओर निहार रहे हैं। विश्व में युद्ध न फैले, इसके लिए भारत बहुत काम कर रहा है। हमें आशा है कि आप अहिंसा और निरामिष भोजन की पद्धति को संसार के बहुभाग में बढ़ाने की प्रवृत्ति को जारी रक्खेंगे।"

विदेशों में शाकाहार के सम्बन्ध में जो साहित्य प्रकट हुआ है उसकी सूची प्रकाशित कर रहे हैं। आशा है आप उससे लाभ उठावेंगे, और शाकाहार का प्रचार करेंगे।

आचार्यश्री विहार करते हुए जा रहे थे, मार्ग में एक विशाल आम्र-वृक्ष आ गया। सन्तों ने उनका ध्यान उधर आकृष्ट करते हुए कहा—यह वृक्ष बहुत बड़ा है।

आचार्यश्री ने भी उसे देखा और गम्भीरता से कहने लगे—एक मूल में ही कितनी शाखाएँ-प्रशाखाएँ निकल जाती हैं। धर्म-सम्प्रदाय भी इसी प्रकार एक मूल में से निकली हुई शाखाएँ होती हैं। परन्तु इनकी यह विशेषता है कि इनमें परस्पर कोई झगड़ा नहीं है, जबकि सम्प्रदायों में नाना प्रकार के झगड़े चलते रहते हैं। शाखाएँ वृक्ष की शोभा हैं। उसी प्रकार सम्प्रदायों को भी धर्म-वृक्ष की शोभा बनना चाहिए।

LONDON VEGETARIAN SOCIETY

List of Books

Health Giving Dishes Dr M. Bircher-Benner	10/6
Complete Vegetraian Recipe Book Ivan Baker	9/6
Diet Reform Cook Book Vivien Quick	7/6
Standard Vegetarian Cookery Ivan Baker	5/-
Good Cakes, Bread & Biscuits Ambrose Heath	4/6
100 Ways of Cooking Without Meat Lettice Pither	4/-
Meatless Dishes C. Herman Senn	3/6
Dishes Without Meat Ambrose Heath	3/6
Egg Dishes Mary Ball	3/6
Food for Health J. & J. E. Thompson	2/6
Vegetarian Recipes Ivan Baker	2/-
63 Meatless Meals Bridget Amies	2/-
Cakes, Scones, Biscuits & Fancies Bridget Amies	2/-
Menusper Festive Occasions Bridget Amies	1/-
75 Vegetarian Savouries Ivan Baker	1/-
Vegetarianism for Beginners Maud Baines	1/-
1ь0 Meatless Recipes	9d.
Hotel Menus & Recipes for Seven Days Ivan Baker	6d.
Vegetarian Recipes Without Dairy Produce Margaret Rawls	6d.
Of Cottage & Cream Cheses Florence Daniel	6d.
Salads for All Seasons London Health Centre	6d.
Meatless Meals for The Times	4d.

Free Leaflets

Savoury Egg Dishes Avis Lever
Spring Menus & Meals Avis Lever
Quickly Made Savouries Beatrice James

DIET

Health, Diet & Commonsense C. Scott	10/6

Food Values At a Glance V. G. Plimmer	8/6
Sensible Food For All Edgar Saxon	7/6
Eat Nature's Food and Live Long Dr. J. Oldfield	7/6
Dear Housewives Doris Grant	7/6
Your Daily Bread Doris Grant	6/6
Your Diet in Health & Disease H. Benjamin	6/6
How to Eat for Health Stanley Lief	5/-
Health in the Home Essays	5/-
Simple and Attractive Food Reform Edgar Saxon	3/6
Fruit Dishes & Raw Vegetables Dr. M. Bircher Benner	3/6
Honest Bread B. T. Fraser & C. L. Thomson	3/6
Fruit and Vegetable Juices Bridget Amies	3/-
Commonsense Vegetarianism H. Benjamin	3/-
Vital Vegetables Leslie Powell	2/6
What to Eat for Health (Various)	2/6
Food Values Chart Bridget Amies	3/-
Crude Black Molasses Cyril Scott	2/-
Culinary & Medicinal Herbs H.M.S.O.	2/-
Raw Food in Health & Disease Dr. R. Bircher	1/-
A Simple Guide to Healthy Food London Health Centre	1/-
Bread : The Whole-Wheat Way to Health do	1/- & 6d.
The Biological Value of Proteins H. H. Jones	3d.
Vitamins and Vegetarianism Dr. F. Wokes	6d.
Rational Diet A. E. Druitt	2d.

Free Leaflet

How to Be a Vegetarian

Health and Disease, Naturopathy, etc.

Everybody's Guide to Nature Cure H. Benjamin	17/6
Natural Therapy Dr. E. K. Ledermann	15/-
Herbal Remedies Mary Thorne Quelch	10/6
Magic, Myth and Medicine Harry Clements	7/6
A Apple A Day H. M. Irwin	7/6
Better Sight Without Glasses H. Benjamin	6/-

Attacking and Arresting Arthritis F. A. Robinson	6/-
Health in the Home Essays	5/-
The Heart J. C. Thomson	4/6
Cause and Cure of Disease R. Park Yunnie	4/6
Health From British Wild Herbs	4/-
Home Cures for Common Ailments Dugald Simple	3/6
Nature Cure Treatment of Gastric-Duodenal Ulcerations Russell Sneddon	2/6
Attack Your Rheumatism Russell Sneddon	2/6
Home Treatment of Asthma Russell Sneddon	2/6
The Water Cure at Home Kenneth Trueman	2/6
Crude Black Molasses Cyril Scott	2/-
The Bach Remedies Repertory F. J. Wheeler	1/6
Hydrotherapy A. C. Barthels	1/6
Digestive Troubles G. Dewar	1/6
Appendicitis J. C. Thomson	1/6
Constipation Dr. Josiah Oldfield	1/6
Constipation Edgar Saxon	1/-
Nature Cure in A Nutshell Tom W. Moule	1/-
Diabetes : Its Cause and Treatment Dr. A. Gold	6d.
The Raw Food Treatment of Cancer & Other Diseases Dr. K. Nolfi	6d.
Diet As A Factor in Cancer Causation Dr. M. Beddow Bayly	6d.
Diet and High Blood Pressure Dr. B. P. Allinson	6d.
The Conquest of Rheumatism Dr. B. P. Allinson	3d.
The Cause and Cure of Catarrh Dr. B. P. Allinson	3d.
Diet in Relation to Health and Disease Dr. M. Beddow Bayly	3d.

Free Leaflet

The Problen of Pernicious Anaemia
Dr. M. Beddow Bayly.

Maternity and Children's Diet

Having A Baby Easily Margaret Brady	9/6
Children's Health and Happiness Margaret Brady	8/6

Your Child and Diet Dr. C. V. Pink & H. F. Rathbone 6/-
Aids to a Vegan Diet for Children Kathleen Mayo 1/-
Vegetarianism in the Nursery Dr. C. V. Pink 6d.
Good Food for Growing Children London Health Centre 6d.
Diet in Pregnancy Dr. C. V. Pink 3d.

Free Pamphlet

Mother, Child and Diet Dr. C. V. Pink

THE LAND

Gardening Without Digging A. Guest 2/-
Food and Famine H. H. Jones 1/-
The Manuring of Soils On No-Animal Lines H. Valentine Davis 6d.
A Vegetarian Looks at the World Peter Freeman 6d.
Can Britain Feed Herself on Home-Produced Foods H. H. Jones 3d.

GENERAL

Food for the Golden Age Frank Wilson 21/-
The Recovery of Culture Dr. H. B. Stevens 21/-
The Golden Feast Roy Walker 18/-
Sait and his Circle S. Winsten 16/-
Design for Happiness John O'Connell 12/6
Recollections and Essays Leo Tolstoy 6/-
These We Have Not Loved Rev. V. A. Holmes-Gore 3/6
Commonsense Vegetarianism Harry Benjamin 3/-
The Truth About Vaccination & Immunization L. Loat. 3/-
On Behalf of the Creatures J. Todd Ferrier 2/-
Systems of Feeding Alfred H. Haffenden 1/6
On the Vegetable System of Diet P. B. Shelley 1/6
A Vindication of Natural Diet P. B. Shelley 1/-
Bread and Peace Roy Walker 1/-
Ethics of Diet Howard Williams 1/-

Vegetarian Handbook (a Handboom of facilities for Vegetarians including lists of Guest Houses, Health, Food Stores, etc.)	1/-
Vegan Trade List 1954. (a list of Commercial products of non-animal origin)	1/-
Song of Supper Dr. D. A. Scholes	9d.
Vegetarianism and Medicine, Science, Poetry, Sport, Literature, Economics, Temperance and Religious Thought (a book of quotations)	6d.
Was The Master A Vegetarian Rev. V. A. Holmes-Gore	3d.
The Bible and Vegetarianism Geoffrey L. Rudd	3d.
The Advantages of Vegetarian Diet Gen. Bramwell Booth	2d.

Free Leaflets

Why Not Be A Vegetarian ?
Vegetarians and Vaccination Dr. Douglas Latto
Vegetarianism and the Growing Boy W. A. Sibly
Vegetarian Diet for Dogs and Cats J. de Bairacli Levy
My Botanic Book (a booklet for children)

Periodicals

Vegetarian News	London Vegetarian Society (quarterly)	1/-
	Annual sub. i. e. postage	5/-
The Vegetarian	The Vegetarian Society, Manchester (bi-monthly)	1/-
World Forum	Geoffrey L. Rudd, Ltd. (quarterly)	1/6
The Vegan	The Vegan Society (quarterly)	1/-
The Farmer	F. Fewman Turner (quarterly)	1/6

Postage

To all orders please add postage as follows :

For	books	up to	2/- in price	3d.
,,	,,	from	2/1d. to 5/-	4d.
,,	,,	,,	5/1d. to 7/6d.	6d.
,,	,,	,,	7/7d. to 10/-	2d.
,,	,,	,,	10/1d. to 15/-	8d.

जैन कोआपरेटिव बैंक लिमिटेड नई दिल्ली

रायसाहब ला० जोतिप्रसादजी जैन

आज से लगभग २५ वर्ष पूर्व जब इस बैंक की स्थापना हुई उस समय जनता की आर्थिक हालत बहुत कमजोर थी। देश में चीजों के भाव एक दम गिर गये थे और इस डिफ्लेशन ने समाज के सभी वर्गों को भारी कठिनाई में डाल दिया था। क्या किसान, क्या मजदूर, क्या व्यापारी और क्या कर्मचारी—सभी आर्थिक संकट में थे। आस-पास के गाँवों में लोग रोजगार और नौकरी की खोज में दिल्ली आ रहे थे। उस समय हमारे भाइयों को व्यापार के लिए धन की आवश्यकता थी। लोगों को कम ब्याज पर रुपया मिलना बहुत ही कठिन काम था। इन कठिन परिस्थितियों में इस बैंक की स्थापना करने का श्रेय स्वर्गीय लाला तनसुखरायजी को है।

दिनांक २० सितम्बर, १९३९ को जैन भाइयों की एक साधारण सभा में स्वर्गीय लाला तनसुखरायजी की योजना को स्वीकार किया गया और जैन को-ओपरेटिव बैंक लि० नई दिल्ली के नाम से इस सहकारी संस्था की स्थापना हुई। यह खुशी की बात है कि लालाजी ने जिस पौध को लगाया था वह अब सुन्दर वृक्ष बन चुका है जिससे हम सभी लाभ उठा रहे हैं। अतः हम अपने संस्थापक प्रधान को उनके इस महान सेवा-कार्य के लिए अपनी श्रद्धांजलि अर्पित करते हैं।

पहले दिन इस बैंक के २१ सदस्य बने जिनके हिस्सों की पूंजी ५५६ रुपये थी। सहकारी विभाग की ओर से बैंक का रजिस्ट्रेशन १६-२-१९४० को स्वीकृत हुआ और लगभग दो साल की कोशिशों के बाद भी इसकी सदस्य संख्या ३९ तक ही पहुँची। इसके आठ वर्ष के पश्चात् भी बैंक की सदस्य संख्या १०१ से आगे न बढ़ सकी।

इस आन्दोलन तथा संस्था के प्रति जैन समाज में एक नया विश्वास पैदा होने के कारण फिक्सड डिपोजिट की रकम में अपूर्व वृद्धि हुई जब कि ३० जून, १९५९ तक फिक्सड डिपोजिट की जो रकम केवल २॥ हजार रुपये तक थी, वह बढ़ते-बढ़ते अब एक लाख २० हजार रुपये तक पहुँच चुकी है।

बैंक इस समय यद्यपि शहर के बीच में है किन्तु दिल्ली की आबादियाँ दूर-दूर तक फैली होने के कारण सदस्यों को आने-जाने की बड़ी कठिनाई होती है। इसके अतिरिक्त ऐसे प्रश्न भी होते हैं जिन्हें स्थानीय व्यक्ति भली प्रकार हल कर सकते हैं। इसलिए हम इस सुझाव पर भी विचार कर रहे हैं कि नगर के विभिन्न क्षेत्रों में बैंक की शाखाएँ और क्षेत्रीय समितियाँ बनाई जाएँ जिनसे निकट सम्पर्क बना रहे और आने-जाने की वर्तमान असुविधा भी दूर हो जाय।

इस बैंक द्वारा जनता का विशेष लाभ हो रहा है। मैं इसके संस्थापक के प्रति अत्यन्त अनुगृहीत हूँ।

आध्यात्म और विज्ञान

श्री तनसुखराय जैन, दिल्ली

आध्यात्म प्रवाह

इस बीसवीं शताब्दी के महान क्रान्तिकारी युग में मानव समाज सुख-शान्ति-समृद्धि और आनन्द के स्थान पर विनाश, भय, स्वार्थ और ईर्ष्या के भयानक जलते हुए बारूद के विनाशकारी अग्निरूप पर्वत पर बैठा है। न मालूम किस समय अग्नि की जलती हुई चिनगारी उस बारूद के ढेर पर लग जाए और विनाश रूपी राक्षस का मुँह खुल जाए।

समस्त मानव जाति की सांस्कृतिक धरोहर जो युगों से बड़े संभाल और बलिदानों के बाद अब तक सुरक्षित रह सकी है वह किसी भी समय थोड़े से कुरुचिमय प्रयत्न से विनाश के अग्निकुण्ड में समाप्त हो सकती है।

आज के विज्ञान ने मानव-जाति के हाथों में विनाश की ऐसी शक्ति भस्मासुर के समान दे रक्खी है जो उसका विनाश करके शान्त हो सकती है। ऐसी भयानक परिस्थिति में मनुष्य को विवेक और आध्यात्मिक शक्ति के बल पर ही अपनी रक्षा करनी चाहिए। विज्ञान की मानव जाति को बड़ी आवश्यकता है। उसी प्रकार आध्यात्मिक शक्ति की। दोनों के मेल से मनुष्य सच्ची सुख-समृद्धि को प्राप्त कर सकता है। आध्यात्मिक शक्ति का उद्देश्य मनुष्य में सद् प्रवृत्तियों को जगाना है, आध्यात्मिक गुणों का विकास करना है, उत्साह, आत्मविश्वास धैर्य, कर्तव्य-परायणता चरित्र-निर्माण और लोकसेवा की भावना उत्पन्न करना है। अन्याय के विरोध में शक्तिशाली मनोबल की आवश्यकता है। आत्मविश्वास जगाना है और मस्तिष्क में इस प्रकार के भाव जगाना है कि जो कुछ शक्ति हमें प्राप्त हुई है उसका सदुपयोग हो, दुरुपयोग न हो। सदुपयोग से विनाश से बच सकते हैं, सुख-समृद्धि की ओर बढ़ सकते हैं। एक-दूसरे के कार्यों में सहायक हो सकते हैं। बिना आधारक के विज्ञान अपने आविष्कृत अस्त्र-शस्त्रों से समस्त मानव जाति को ध्वंस करने के लिए समर्थ है। ज्योंही मस्तिष्क में थोड़ी-सी प्रतिहिंसा की भावना उत्पन्न हुई त्योंही मानव महास्वार्थी बनकर विध्वंस करने के लिए तत्पर हो गया। इसलिए आवश्यक है कि वैज्ञानिक आविष्कारों का उपयोग सही ढंग से हो। विध्वंसकारी अस्त्र-शस्त्रों पर नियंत्रण हो। विज्ञान का वास्तविक लाभ उठाया जाए। उसका उद्देश्य जनहित हो। यह कार्य अध्यात्म शक्ति के बल पर ही होगा। इसलिए विज्ञान और अध्यात्म का मेल हो। यह बात आचार्य विनोबा भावे जैसे मुनि भी पुकार-पुकार कर कह रहे हैं। और विश्वविद्यालय अनुदान आयोग के अध्यक्ष माननीय कोठारीजी से वैज्ञानिक अपने लेखों और भाषणों के द्वारा जन-साधारण को समझा रहे हैं। सामाजिक बुराइयों का अन्त अध्यात्म शक्ति से होगा। विकास और उत्थान का मार्ग विज्ञान से ही होगा। इसलिए लाला तनसुखरायजी ने एक आध्या- त्मिक समाज कायम करने की रूपरेखा बनाई और उसका प्रचार किया परन्तु योग्य प्रचारकों और कार्यकर्त्ताओं के अभाव में इस समाज की स्थापना से जन-साधारण को लाभ नहीं होगा। उनके विचार पठनीय और मननीय हैं।

यदि सच्चे अर्थों में आध्यात्मिक जागरण हो और अध्यात्म शक्ति द्वारा मानव के सद्भाव और विवेक को एक सूत्र में पिरो दिया जाए तो हम निश्चय ही वर्तमान समाज से कहीं अधिक श्रेष्ठ और उत्तम समाज की स्थापना कर सकते हैं।

भौतिक विज्ञान के असीम उत्कर्ष और यान्त्रिक एवं औद्योगिक सुधारों के प्रचण्ड बिस्तार के बल पर पाश्चात्य संस्कृति हमें इस विनाश काल में भी यही भुलावा दे रही है कि मानव जाति पूर्ण समृद्धि के युग में खड़ी है। इसमें संदेह नहीं है कि यान्त्रिक संस्कृति ने जिन शक्तियों को जन्म दिया है वे दोनों तरह की हैं। उत्कर्ष करने वाली और विध्वंसक। यह संस्कृति जलती हुई मशाल अथवा धधकती अग्नि के समान है—मशाल मार्ग भी दर्शाती है और घरों में आग भी लगाती है — सब तो यह है मशाल अथवा अग्नि का उपयोग करने वाले मानव पर यह दोनों कार्य निर्भर हैं। वैज्ञानिक संस्कृतिक का भी यही हाल है। मनुष्य की नैतिक बुद्धि तथा ज्ञान के नष्ट और भ्रष्ट होने से ही समूचे विश्व के समूल नष्ट होने की आशंका पैदा हुई है। मानव की आत्मा में दोष-पूर्ण प्रवृत्तियों की वजह से आज मानव-मानव के सम्बन्ध बिगड़े हुए हैं—क्या सामाजिक सम्बन्ध, क्या दैनिक जीवन के सम्बन्ध, क्या राष्ट्रों के बीच के सम्बन्ध— सभी दोषपूर्ण बने हैं। यह नितान्त आवश्यक है कि मानव अपनी आत्मा को शुद्ध करके और अपने में परिवर्तन करके सामाजिक, दैनिक तथा राष्ट्रीय सम्बन्धों में भी सुधार करे, क्योंकि विश्व के सब प्रकार के सम्बन्धों का जन्म आत्मा से ही होता है—व्यक्ति ही उनका कारण है। कुछ व्यक्ति ही दल, वर्ग-संगठन, या पक्ष-संगठन करके राजनैतिक सत्ता हस्तगत करते हैं, समाज पर नियंत्रण रखते हैं और सत्ता के लिए स्पर्द्धा की राजनीति को जन्म देते हुए वास्तविक जन-कल्याण के मार्ग में बाधा डालते हैं—अतएव आध्यात्मिक शक्तियों का आह्वान करने वाली सत्प्रवृत्तियाँ ही भविष्य के प्रलयकारी संघर्ष से मनुष्य को मुक्त करा सकती हैं।

इसी अध्यात्म धारा को प्रवाहित करने के लिए अध्यात्म समाज की स्थापना हुई है। इस मंच से आध्यात्मिक विचारों का प्रचार करने में हम सबके सहयोग की अपेक्षा करते हैं।

अध्यात्म समाज

(१) उसकी सद्भाव और विवेक की उच्चतम भावना का विकास किया जाए, तो कोई कारण नहीं है हम वर्तमान समाज की अपेक्षा एक अच्छे और उच्च समाज की रचना न कर सकें।

(२) यदि सच्चे अर्थों में राष्ट्रीय जागरण तो मनुष्य में अध्यात्म भाव जगाकर।

मैं एक हूँ, शुद्ध हूँ। ज्ञानदर्शन वाला हूँ। परमाणुमात्र भी मेरा नहीं है। मैं सप्त प्रकार के भय से निर्मुक्त हूँ। सम्यग्दृष्टि जीव निर्भय और निशंक होता है। शुद्ध आत्मज्ञान का अभिलाषी पुरुष बड़ा आत्म-विश्वासी, सरल-हृदय, कर्त्तव्य-परायण और अपने पर का कल्याण करने वाला होता है। उसे भौतिक ऐश्वर्य मोह में नहीं डाल सकते। सोने-चांदी के टुकड़े उसे रंचमात्र में प्रलोभन नहीं दे सकते। उसके सामने शुद्ध आत्मतत्व की प्राप्ति का लक्ष्य होता है।

परिकल्पना

१. चिन्तन और आस्था का युग।
२. आध्यात्मिक भावना से ओत-प्रोत निष्ठावान मानव।
३. करुणा, त्याग तथा कर्त्तव्यपरायणता की भावना से युक्त मानव।

४. सेवा और परस्पर सहयोग का भाव।

५. विकृति की भावनाओं के स्थान पर सुकृति के भावों की विजय।

नव-निर्माण के चार पथ

१. दैनिक जीवन में अपने-अपने अहंकार की संतुष्टि के लिए स्वार्थ के संघर्ष का अन्त।

२. सात्विक प्रवृत्तियों के प्रस्फुरण के लिए सहयोगमूलक अर्थ-व्यवस्था की स्थापना।

३. सत्ता के स्थान पर सेवा का मार्ग।

४. शुद्ध और सात्विक जीवन और विचारों द्वारा परस्पर सहयोग तथा सेवाभाव का जागरण।

आध्यात्मिक शक्ति के सहारे क्या हो सकता है ?

१. आध्यात्मिक मान्यताओं की शक्ति समाज की भौतिक प्रवृत्तियों पर अधिकार पाकर मानव समाज को सुखी और समृद्ध बना सकती है।

२. अनेक परिवर्त्तनों के बावजूद आध्यात्मिक भावनाएँ युगों तक अपनी प्रभुता कायम रख कर मनुष्य को विवेकशील और निष्ठावान बना सकती हैं।

३. सादा जीवन और नैतिकता मनुष्य को समस्त क्षुद्र स्वार्थों से ऊपर उठाकर राष्ट्र और समाज के लिए अधिक से अधिक उपयोगी बना सकता है।

४. करुणा, सहिष्णुता तथा समस्त जीवों पर दयाभाव मनुष्य को देश और समाज के लिए रचनात्मक कार्यों की ओर प्रवृत्त कर सकता है।

५. कर्त्तव्यपरायण, निष्ठावान, विवेकशील और आध्यात्मिक भावनाओं से युक्त मानव से ही अहिंसात्मक और सहयोगी समाज की स्थापना हो सकती है।

क्या नहीं हो सकता ?

१. परम्परा के सम्पूर्ण विनाश से नवनिर्माण नहीं हो सकता।

२. क्षुद्र अहं और स्वार्थों के संघर्ष में सुखी और समृद्ध समाज की स्थापना नहीं हो सकती।

३. भौतिकवाद मनुष्य को रचनात्मक कार्य की ओर प्रवृत्त नहीं कर सकता।

४. विज्ञान की दी हुई क्रूरता मनुष्य को परस्पर सेवा तथा सहयोग के मार्ग पर नहीं ले जा सकती।

५. करुणा और सहिष्णुता के अभाव में एक सुखी और समृद्ध समाज की स्थापना नहीं हो सकती।

क्या हो सकता है ?

१. आध्यात्मिक अथवा वैचारिक स्थिर मूल्यों की शक्ति समाज की भौतिक प्रवृत्तियों पर अधिकार पाकर मानव समाज को सुखी और समृद्ध बना सकती है।

२. अनेक परिवर्तनों के बावजूद आध्यात्मिक मान्यताएँ युगों तक अपनी प्रभुता कायम रख कर मनुष्य को विवेकशील और निष्ठावान बना सकती हैं।

शिक्षा प्रेय और श्रेय का मार्ग है

उसकी वास्तविक उपलब्धि विनय, श्रम और साधना से प्राप्त होती है। प्राचीन भारत में आचार्य शिष्यों के लिए दीक्षांत के समय अमूल्य लाभकारी उपदेश देते थे। 'तैत्तिरीयोपनिषद' के अनुशासन में इसी श्रेयबुद्धि निषेधविहीन विधायक के संकल्प का उदात्त स्वर है। इस उपदेश के पढ़ने से छात्रों में पूज्यबुद्धि और शिवसंकल्प जागे, राष्ट्र, मानवता उनके पुरुषार्थ से लाभान्वित हो और वे स्वयं जीवन की सर्वोच्च सार्थकता उपार्जित करें।

दीक्षांत के समय शिष्यों को आचार्य का उपदेश

सत्यं वद : धर्मं चर। स्वाध्यायान्मा प्रमदः।
सत्यान्न प्रमदितव्यम्। धर्मान्न प्रमदितव्यम्।
कुशलान्न प्रमदितव्यम्। भूत्यै न प्रमदितव्यम्।
स्वाध्याय-प्रवचनाभ्यां न प्रमदितव्यम्।
मातृदेवो भव। पितृदेवो भव। आचार्यदेवो भव।
अतिथि देवो भव। राष्ट्रदेवो भव।
यान्यनवद्यानि कर्माणि तानि सेवितव्यानि।
नो इतराणि। यान्यस्माकं सुचरितानि।
तानि त्वयोपास्यानि। नो इतराणि।
श्रद्धया देयम्। अश्रद्धया देयम्। श्रिया देयम्।
ह्रिया देयम्। भिया देयम्। संविदा देयम्। अथ।
यदि ते कर्म विचिकित्सा वा वृत्तविचिकित्सा।
वा स्यात्। ये तत्र ब्राह्मणाः संमर्शिनः।
युक्ता आयुक्ताः। अलूक्षा धर्मकामाः स्युः।
यथा ते तत्र वर्तेरन् तथा तत्र वर्तेथाः।
एष आदेशः। एष उपदेशः। एषा
वेदोपनिषत्। एतदनुशासनम्।
एवमुपासितव्यम्। एवमुचैतदुपास्यम्।
भोः स्नातकाः एवम् एतत् मनसि।
दृढे निधाय युष्माभिः सदा सच्छीले।
समुदाचारे च वर्तितव्यम्।

सत्य बोलो। धर्म का आचरण करो। स्वाध्याय में प्रमाद मत करो। सत्य की उपेक्षा मत करो। धर्म की उपेक्षा मत करो। कल्याण और कुशलता की उपेक्षा मत करो। समृद्धि की

उपेक्षा मत करो। ज्ञान को ग्रहण करने और अन्यों को ज्ञान का दान करने में प्रमाद मत करो।

माता को देवता समझो। पिता को देवता समझो। आचार्य को देवता समझो। अतिथि को देवता समझो। राष्ट्र को देवता समझो।

जो अच्छे कर्म हैं उन्हीं का सेवन करो, अन्यों का नहीं। हमारे जो आचरण तुम्हें अनिद्य लगते हों उन्हीं का अनुकरण करो, अन्यों का नहीं।

श्रद्धापूर्वक दान दो। अश्रद्धा से दान मत दो। सम्पत्ति के अनुसार दान दो। शालीनता और लज्जापूर्वक दान दो। भय से दान दो। सहानुभूति से दान दो।

और यदि तुम्हें कभी कर्म के सम्बन्ध में सन्देह हो, या आचरण के सम्बन्ध में सन्देह हो, तो जो विचारशील, न्यायपरायण, योग्य, निष्ठावान, सहृदय, धर्मप्रेमी ब्राह्मण हों, विशिष्ट प्रसंग में वे जैसा आचरण करें उस प्रसंग में तुम भी वैसा ही आचरण करो।

यही आदेश है। यही उपदेश है। यही वेद और उपनिषद है। यही सीख है।

इस प्रकार साधना करो। इसी प्रकार साधना करो। ओ स्नातको, इसे अपने मन में दृढ़तापूर्वक धारणा करो और सदैव सदाचार और सद्व्यवहार का आचरण करो।

राणाप्रताप और भामाशाह

स्व० फलचन्द पुष्पेन्दु

भारतभूमि में त्याग और निःस्वार्थ भावना से कार्य करने को विशेष महत्व दिया है इसलिए हमारे देश में दानवीर और लोकसेवी पुरुषों का विशेष सम्मान किया जाता है।

महाराणा प्रताप और देशभक्त भामाशाह का युवकों के हृदय में विशेष मान है क्योंकि दोनों ने मातृभूमि के रक्षा के लिए अगणित कठिनाइयाँ उठायीं। उनका आदर्श सदैव भारतीयों को मार्गदर्शन करता रहेगा। उदीयमान युवक पुष्पेन्दु की यह कविता अत्यंत रोचक और नव-युवकों के लिए मार्गदर्शक है। खेद है कि यह कला असमय में ही कुम्हला गई। उनकी कविता उनकी स्मृति सदैव याद दिलाती रहेगी।

कहता हूँ कहानी कि एक देशभक्त की,
राणा प्रतापसिंह व अकबर के वक्त की।
जिसने रखी थी लाज भारतीय रक्त की,
जिसने अशक्त-सी स्वतंत्रता सशक्त की॥

वीरों में वीर भामाशाह दानवीर था,
राणा प्रतापसिंह का बूढ़ा वजीर था॥

ताजिदगी जिसने न मनाई थी दिवाली,
दुश्मन से खेलता रहा जो खून की होली।
ऐसे प्रतापसिंह की दुखपूर्ण जिन्दगी,
झौंकी गई थी आग में या मौत में पगी॥

पर मातृभूमि के लिए, मेवाड़ के लिए,
बर्बाद था आरावली पहाड़ के लिए ।।

राणा प्रताप के तो मुट्ठी भर जवान थे,
दुश्मन तथा गद्दार जमीं आसमान थे ।
दुर्भाग्य से सेना की रसद भी समाप्त थी,
चहुँ ओर निराशा-ही-निराशा व्याप्त थी ।।

लगता था मातृभूमि पर हो जायगा कब्जा,
सबने कहा प्रताप जा दुश्मन को सर झुका ।।

संकट के समय जैन ऐन वक्त पै आया,
आकर प्रतापसिंह को निज शीश झुकाया ।
सोना व रजत-रत्न का वह ढेर लगाया,
जिससे प्रताप ने कि शत्रु मार भगाया ।।

वीरों में वीर भामाशाह दानवीर था,
राणा प्रतापसिंह का बूढ़ा वजीर था ।।

तादादे-जायदाद का सुनियेगा हाल तक,
पलती कुमुक उसी से ठीक बारह साल तक ।
होती रसद पच्चीस हजार फौज के लिए,
जाटों व गूजरों हितार्थ—मौज के लिए ।।

वीरों में वीर भामाशाह दानवीर था,
राणा प्रतापसिंह का बूढ़ा वजीर था ।।

दुहरा रहा इतिहास आज हू-ब-हू गाथा,
झुक-झुक रहा राष्ट्रीयता के वास्ते माथा ।
सीमा का हर जवान अब राणा प्रताप है,
बेटा हरएक हिन्द का दुश्मन का बाप है ।।

देंगे लहू हिमालया पहाड़ के लिए,
उजड़ें स्वयं कि चीन के उजाड़ के लिए ।।

अंगार भी बरसाएंगे, बरसाएंगे सोना,
पत्थर पै पटक दें चलो चीनी का खिलौना ।
बारूद बने ओढ़नी बारूद बिछौना,
सोकर जगा है देश का प्रत्येक ही कोना ।।

सोना बरस रहा है गरीबोअमीर से,
निश्चित बचेगा राष्ट्र सिर्फ दानवीर से ।।

★ ★ ★ ★

भारतीय एकत्व की भावना

व्योहार राजेन्द्र सिंह
सेठियाकुंज, जबलपुर

भारतीय एकत्व की भावना का आधार एक ब्रह्म की भावना है जोकि सब जगत में व्याप्त है। इसी के अंश रूप सारे जगत् के प्राणी हैं। वह सारा जगत् उसी एक ब्रह्म का विस्तृत रूप है। भिन्न-भिन्न देव उसी एक तत्व के विभिन्न रूप हैं। ऋग्वेद में इस भावना के समर्थन में अनेक मंत्र मिलते हैं :—

एक एवाग्नि बहुधा समिद्ध एक सूर्यो विश्वं अनु प्रभूवः।
एकैवोषाःसर्वम् इदं विभात्येकंवा इदं वि बभूव सर्वम् ।।
(८।५।८।२)

इसी का समर्थन हमें उपनिषदों में भी मिलता है जिनमें कहा गया है कि एक ही देव अनेक वर्ण होकर बहुत शक्तियों के योग से अनेक रूप हो जाता है :—

एको वर्णो बहुधा शक्ति योगात् ।
वर्णानिनेकान्त् निहितार्थों दधाति ।।

आगे चलकर इतिहास और पुराणों ने इसी भावना को लेकर शिव, विष्णु आदि देवताओं की एकता का प्रतिपादन किया तथा प्राणी मात्र की एकता की स्थापना की। कर्मों के विभाग के आधार पर वर्णों का विभाजन हुआ किन्तु उनकी एकता पर ही समाज आधारित रहा। महाभारत में एक स्थान पर कहा गया है कि सभी वर्ण ब्रह्म से उत्पन्न होने के कारण ब्राह्मण ही हैं।

सर्वे वर्णब्राह्मणा ब्रह्मजाश्च ।

भागवत धर्म के उदय होने पर भी उसी को और आगे बढ़ाया गया। ईश्वर के एक नाम के आधार पर उसके सभी उपासकों और जातियों की एकता का प्रतिपादन किया :—

किरातहूपान्धपुलिन्द बुल्कसा आभीरुकंथा यवनाः खसादयः ।
चेत्वे च पापा मदुपाश्रयाश्रयाः शुध्यन्ति तस्मै ः भविषणेक्तिमः ।

पुराणों में समग्र देश की एकता की भावना भी विकसित हुई। वैसे तो उसका मूल्य हमें ऋग्वेद के पृथ्वी सूक्त में मिलता है जिसमें कहा गया है कि यह भूमि हमारी माता है और हम उसके पुत्र हैं :—

माता भूमिः पुत्रो अहं प्रथिव्याः ।

किन्तु भारत देश का स्पष्ट नाम पुराणों में ही मिलता है। विष्णुपुराण में इस देश की प्रशंसा करते हुए कहा गया है कि हे भारत भूमि तुम धन्य हो—इस प्रकार देवता भी गीत गाते हैं :—

गायन्ति देवा किल गीतकानि धन्याऽस्तुते भारत भूमिभागे।

इसी प्रकार महाभारत में भी भारत भूमि का उल्लेख आया है। उत्तर में हिमालय और पूर्व-पश्चिम में समुद्रों से घिरी हुई भारत भूमि की कल्पना बहुत पहले से एकता की भावना की पुष्टि करती आ रही है। पुराणों में जिन सम्राटों का वर्णन है वे हिमालय से लेकर सिन्धु तट तक दिग्विजय करके समस्त भारत पर अपना राज्य स्थापित करते थे। कालिदास ने भी ऐसे सम्राटों का वर्णन किया है जोकि समुद्र तक पृथ्वी पर राज्य करते थे :—

आ समुद्र क्षितीसतां रघूणाम्: रघुवंश:।

वैसे वेदों में भी राजसूय यज्ञ के अवसर पर यही कामना की जाती है कि हम हिमालय से लेकर समुद्र पर्यन्त पृथ्वी के एकछत्र सम्राट् हैं। इस प्रकार समग्र देश की एक ही भावना की परम्परा बहुत प्राचीन काल से हमारे धर्म की अंगभूत होकर चली आती है। हम भारत की किसी भी नदी में स्नान करें किन्तु भारत की सभी प्रमुख नदियों का नाम स्मरण कर उन सबका जल उसमें सम्मिलित किया जाता है और एक मन्त्र पढ़ा जाता है :—

गंगे च यमुने चैव गोदावरि सरस्वती।

नर्मदेसिंधु कावेरी चले स्मिन् सन्निधिम कुरु॥

इसी प्रकार देश के सप्त पर्वतों और सप्त महापुरियों का स्मरण किया जाता है— अयोध्या, मथुरा, माया, काशी, काञ्ची, अवन्तिका। यह प्रथा भी हमारी राष्ट्रीय एकता को सिद्ध करती है कि राज्याभिषेक के समय भारत की सभी पवित्र नदियों का जल मंगाकर उससे राजा का अभिषेक किया जाता था। महाभारत और रामायण में उल्लेख है कि रामचन्द्रजी के तथा युधिष्ठिर के अभिषेक के लिये सभी पवित्र नदियों का जल मंगाया गया था। उस समय समस्त भारत के राजाओं को निमंत्रित किया गया था—

प्राच्येदीच्या: प्रतीच्याश्च दाक्षिणत्माश्च भूमिपा:।

त्मेंच्छाश्चायश्चिये चान्ये वन शैल निवासिन:।

(रामायण, अयोध्या० ३-२५)

इसका उल्लेख रामचरितमानस में भी आया है कि जब चित्रकूट में रामचन्द्रजी ने राज्य स्वीकार नहीं किया तब भरतजी ने पूछा कि उस जल का क्या किया जावे—

देव देव अभिषेक हित गुरु अनुसासनु पाइ।

आनेउं सब तीरथ सलिलु तेहि कहं काह रजाइ॥

गुरु की आज्ञा से वह जल कूप में रखा गया--

भरत कूप अब कहिहहिं लोगा। अति पावन तीरथ जल जोगा॥

मध्यकाल में भारत की एकता खंडित हो कर वह विभिन्न राज्यों में विभक्त हो गया। उस समय आपसी मतभेद के कारण हमारे देश की एकता छिन्न-भिन्न हो गयी। उस समय भी एकता के उपासक हमारे कवियों ने अपने देश की एकता का बोध कराके उसे फिर से स्थापित

किया। वीरगाथा-काल में भी पृथ्वीराज को उल्लास दिखाने वाले महाकवि चन्दरबरदाई, मध्यकाल में गोस्वामी तुलसीदास तथा अन्त में महाकवि भूषण की देश की एकता की भावना सबसे अधिक मुखरित हुई है। चन्दरबरदाई ने अनेक स्थानों पर "पृथ्वीराज रासो" में हिन्दुस्तान का उल्लेख कर उसकी एकता जागृत की है।

गो० तुलसीदासजी ने रामचरितमानस में जन्मभूमि की महिमा का वर्णन किया है :—

जन्म भूमि मम पुरी सुहावनि। उत्तर दिशि सरयू बह पावनि ।।
अति प्रिय मोहिं यहां के वासी। मम धामदा पुरी सुखरासी ।।

"विनयपत्रिका" और "कवितावली" में तो स्पष्ट रूप से उन्होंने भारत भूमि में जन्म होने का अभिमान प्रगट किया है—

यह भारत खंड पुनीत सुरसरि थल भलो संगति भली।
तेरी कुमति काचर कल्प बल्ली चहति है विष कल फली ।।
(विनय पत्रिका)

भक्ति भारत भूमि भले कुलजन्म समाज शरीर भलो लहिके। आदि
(कवितावली)

इसी प्रकार भूषण ने हिन्दू धर्म और हिन्दुस्तान का उल्लेख कर शिवाजी को उत्साह दिलाया था। संत कवियों को देश की एकता का बोध तो उतना नहीं था जितना कि उसमें निवास करने वाले जातियों और धर्मों की एकता का बोध था। कबीरदास और नानक आदि कवियों ने धर्मों की एकता के लिए बहुत बड़ा काम किया। गुरु नानक ने एक स्थान पर कहा है—

हिन्दू तुरुक कहां ते आए किनि एह राम चलाई।
दिल महि सोच विचार कवादे भिसक दोजख किति पाई ।।

दादूदयाल ने एकता का प्रतिपादन करते हुए कहा है—

दूनो भाई नैन हैं दूनो भाई कान। दूनो भाई बैन हैं हिन्दू मुसलमान ।।

कबीरदास ने तो एक ईश्वर की एकता के आधार पर सब वर्णों और जातियों की एकता स्थापित की —

एक देव एक मल मूतर एक चाप एक गूदा।
एक ज्योति ते सब जग उपजा को बाह्मन को सूदा ।।

अंग्रेजी राज्य की स्थापना से हमारे देश की पराधीनता पूर्ण हुई किन्तु देश एक राज-छत्र के अन्तर्गत आया। विदेशी राज्य के साथ विदेशी राष्ट्रीयता भी हमारे देश में आई और उससे प्रेरित होकर हमारे नेताओं ने विदेशी राज्य के विरुद्ध आन्दोलन प्रारम्भ किये। इनके साथ ही अपने देश की दुर्दशा पर कवियों का ध्यान आकर्षित हुआ। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने सबसे पहले भारत की दुर्दशा पर आसूं बहाये —

आवहु सब मिलकर रोबहु भारत भाई।
हा हा भारत दुर्दशा न देखी जाई ॥
(भारत दुर्दशा)

इस समय के अन्य कवियों ने भी राष्ट्रीय एकता की ज्योति जगाई। सर्वश्री बालमुकुन्द गुप्त तथा प्रतापनारायण मिश्र ने भी इस ज्योति के जागरण में योगदान दिया। बाद में उसी परम्परा को श्री मैथिलीशरण गुप्त, अयोध्यासिंह उपाध्याय, रामनरेश त्रिपाठी तथा श्रीधर पाठक ने देशात्म बोध की कविताएँ लिखकर देश का ध्यान उसकी एकता और अखंडता के प्रति आकर्षित किया—

नीलाम्बर परिधान हरित पट यह सुन्दर है।
सूर्य चन्द्र युग मुकुट मेखला रत्नाकर है।
नदियाँ प्रेम प्रवाह फूल तारे मंडन हैं।
बंदी जन खग वृन्द शेषफन सिंहासन है।
करते अभिषेक पयोद हैं बलिहारी इस देश की।
हे मातृभूमि तू सत्य ही सगुण मूर्ति सर्वेश की ॥

त्रिशूलजी की कविताओं ने भी राष्ट्रीयता की लहर बहा दी :—

सुरसरि सलिलसुधा से सिंचित मलय समीर संजारिन।
सुषमा सब सुरपुर की सजिल करते सुर गुणगान।
जयति भारत जय हिन्दुस्तान ॥
पुण्य पुंज पावन पृथ्वी पर धीर बीरवर धर्म्म धुरन्धर।
सत्य अहिंसा दया सरोवर मुक्ति मुक्ति की खान।
जयति भारत जय हिन्दुस्तान ॥

वर्तमान युग में राष्ट्रीयता की भावना सबसे पहले बंगाल में उदित हुई क्योंकि वहीं विदेशी राज्य का सबसे अधिक प्रभाव पड़ा था। श्री बंकिमचन्द्र के "आनन्द मठ" उपन्यास में ही हमारे राष्ट्रीय गीत वन्देमातरम् का उद्‌घोष हुआ था। उसमें उन्होंने कहा था :—

द्वित्रिंश कोटि कंठ कल कल निनाद कराले।

ज्यों-ज्यों राष्ट्रीयता की भावना बढ़ी इसका रूप हो गया :—

त्रिंश कोटि कंठ कल कल निनाद कराले।

श्री द्विजेन्द्रलाल राय ने अपने नाटकों में राष्ट्रीयता से भरे गीतों को पिरोया। उन्होंने एक गीत में गाया है :—

वंग आभार जननि आभार धात्री आभार देश।

आगे चल कर वह गीत इस रूप में बदल गया :—

भारत आभार जननि आभार धात्री आभार देश।

उनके गीतों में सम्पूर्ण भारत की एकता की भावना मुखरित हुई :—

जे दिन सुनील जलधि होई ते उठिले जननी भारतवर्ष।
उठिल विश्वेसे कि कलरव से कि मा भक्ति से कि मा हर्ष।

श्री रवीन्द्रनाथ ठाकुर की कविताओं में राष्ट्रीय एकता की भावना और अधिक स्पष्ट और गहन हो उठी है :—

मातृ मन्दिर पुण्य अंगन कर महोज्ज्वल आज है।
जय नरोत्तम पुरुष सत्य जय तपरूपी राज है।

उन्होंने उसी गीत में समग्र भारतवासियों को आह्वान किया :—

ऐश दुर्जय शक्ति सम्पद मुक्त बंध समाज है।
ऐश ज्ञानी ऐश कर्मी नाश भारत लाज है ॥

आगे चलकर भारत के वीर धर्म को भी जाग्रत किया :—

ऐश तेजः सूर्य उज्ज्वल कीर्ति अन्तर माझ है।
वीर धर्म पुण्य कर्म विश्व हृदये राज है ॥

एक दूसरे गीत में उन्होंने भारत की भेरी सारे संसार में बजाने का आह्वान किया है :—

देश देश नन्दित करि मन्द्रित तव भेरी।
आसिल सब वीर वृन्द आसन तब घेरी ॥

भारत की सब जातियों और प्रान्तों की एकता की भावना हमारे राष्ट्र-गीतों में "जनमन" में जितनी प्रबल है उतनी कहीं नहीं।

जुग जुग तब आह्वान प्रचरित सुन उदार तब वाणी।
हिन्दू बौद्ध सिक्ख जैन पारसिक मुसलमान क्रिस्टानो ॥
पूरब पश्चिम आसे। तव सिंहासन पासे।

उन्होंने 'मानव तीर्थ' नामक कविता में माता के अभिषेक के लिए सभी देशवासियों को एकत्व होने का आह्वान किया गया है :—

आओ ब्राह्मण श्रुतिकर निजमान गहो सभी का हाथ।
आओ पार्तत हटाओ सबही तब अपमान अश्राद्य ॥

मम अभिषेके करो तुम त्वारा,
मंगल घट यह धरा है भरा।

सकल स्पर्श से पुनीत करके तीर्थ सुनीरे,
भारत मानव सागर तट के निर्मल तीरे-तीरे।

हे मम चित्त पुण्य सुतीर्थ में जागो धीरे धीरे।
भारत मानव सागर तट के निर्मल तीरे तीरे॥
अहो आर्य जन हे अनार्य गण हिन्दू हे मुसलमान।
आओ आओ हे अंग्रेजों भाओ हे क्रिस्तान॥

इस प्रकार भारत की राष्ट्रीय एकता की वाणी युग-युग से मुखरित होती चली आ रही है, आज भी मुखारित हो रही है और युगान्त तक मुखरित होती रहेगी।

❀ ❀ ❀

मेवाड़ोद्धारक भामाशाह

श्री अयोध्याप्रसादजी गोयलीय
डालमियानगर, बिहार

"स्वाधीनता की लीलास्थली वीरप्रसवा मेवाड़-भूमि के इतिहास में भामाशाह का नाम स्वर्णाक्षरों में अंकित है। जब वीरकेशरी राणा प्रताप निराश होकर सिन्ध की ओर जाने लगे तो भामाशाह ने अगणित सम्पत्ति राणा के चरणों में लाकर अर्पित कर देश-भक्ति का अनुपम उदाहरण प्रस्तुत किया। भामाशाह के इस अपूर्व त्याग के कारण मेवाड़ भूमि का उद्धार हुआ इसलिए आज भी भामाशाह मेवाड़ोद्धारक के नाम से प्रसिद्ध है। लेखनी के धनी श्री अयोध्या-प्रसादजी गोयलीय ने बहुत ही सुन्दर ढंग से भामाशाह का चरित्र प्रस्तुत किया है। भामाशाह का त्यागपूर्ण आदर्श देश के संकट के समय में हम सबके लिए अनुकरणीय है।"

स्वाधीनता की लीलास्थली वीर-प्रसवा मेवाड़-भूमि के इतिहास में भामाशाह का नाम स्वर्णाक्षरों में अंकित है। हल्दीघाटी का युद्ध कैसा भयानक हुआ, यह पाठकों ने मेवाड़ के इतिहास में पढ़ा होगा। इसी युद्ध में राणा प्रताप की ओर से वीर भामाशाह और उसका भाई ताराचन्द भी लड़ा था। २१ हजार राजपूतों ने असंख्य यवन-सेना के साथ युद्ध करके स्वतंत्रता की वेदी पर अपने प्राणों की आहुति दे दी, किन्तु दुर्भाग्य कि वे मेवाड़ को यवनों द्वारा पददलित होने से न बचा सके। समस्त मेवाड़ पर यवनों का आतंक छा गया। युद्ध-परित्याग करने पर राणाप्रताप मेवाड़ का पुनरुद्धार करने की प्रबल आकांक्षा को लिए हुए वीरान जंगलों में भटकते फिरते थे। उनके ऐशो-आराम में पलने योग्य बच्चे भोजन के लिए उनके चारों तरफ रोते रहते थे। उनके रहने के लिए कोई सुरक्षित स्थान न था। अत्याचारी मुगलों के आक्रमणों के कारण बना बनाया भोजन राणाजी को पांच बार छोड़ना पड़ा था। इतने पर भी आन पर मर मिटने वाले समर-केसरी प्रताप विचलित नहीं हुए। वह अपने पुत्रों और सम्बन्धियों को प्रसन्नतापूर्वक रणक्षेत्र में अपने साथ रहते हुए देखकर यही कहा करते थे कि राजपूतों का जन्म ही इसीलिए होता है। परन्तु उस पर्वत-जैसे स्थिर मनुष्य को भी आपत्तियों के तीव्र थपेड़ों ने विचलित कर दिया। एक समय जंगली अन्न के आटे की रोटियाँ बनाई गईं, और प्रत्येक के भाग में एक-एक रोटी—आधी उस समय के लिए और आधी दूसरे समय के लिए—आई। राणा प्रताप राजनैतिक पेचीदा उलझनों को

सुलझाने में व्यस्त थे, मातृभूमि की परतंत्रता के दुख से दुखी होकर गर्म निश्वास छोड़ रहे थे कि इतने में लड़की के हृदयभेदी चीत्कार ने उन्हें चौंका दिया। बात यह हुई कि एक जंगली बिल्ली लड़की की रखखी हुई रोटी उठा ले गई जिससे मारे भूख के वह चिल्लाने लगी। ऐसी-ऐसी अनेक आपत्तियों से घिरे हुए, शत्रु के प्रवाह को रोकने में असमर्थ होने के कारण, वीर चूड़ामणि प्रताप मेवाड़ छोड़ने को जब उद्यत हुए तब भामाशाह राणाजी के स्वदेश निर्वासन के विचार को सुनकर रो उठा।

हल्दीघाटी के युद्ध के बाद भामाशाह कुम्भलमेर की प्रजा को लेकर मालवे में रामपुर की ओर चला गया था, वहां भामाशाह और उसके भाई ताराचन्द ने मालवे पर चढ़ाई करके २५ लाख रुपये तथा २० हजार अशर्फियाँ दण्डस्वरूप वसूल कीं। इस संकट-अवस्था में उस वीर ने देशभक्ति तथा स्वामिभक्ति से प्रेरित होकर, कर्नल जैम्स टाड के कथनानुसार, राणा प्रताप को जो धन भेट किया था वह इतना था कि २५ हजार सैनिकों का १२ वर्ष तक निर्वाह हो सकता था। भामाशाह के इस अपूर्व त्याग के सम्बन्ध में भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्रजी ने लिखा है :—

जा धन के हित नारि तजै पति, पूत तजै पितु शीलहि सोई।
भाई सों भाई लगै रिपु से पुनि, मित्रता मित्र तजै दुख जोई।
ता धन को बनियाँ है गिन्यो न, दियो दुख देश के आरत होई।
स्वारथ आर्य तुम्हारी ई है, तुमरे सम और न या जग कोई।।

देशभक्त भामाशाह का यह कैसा अपूर्व स्वार्थत्याग है। जिस धन के लिए औरंगजेब ने अपने पिता को कैद कर लिया, अपने भाई को निर्दयतापूर्वक मरवा डाला, जिस धन के लिए बनवीर ने अपने भतीजे—मेवाड़ के उत्तराधिकारी बालक उदयसिंह—को मरवा डालने के अनेक प्रयत्न किये, जिस धन के लिए मारवाड़ के कई राजाओं ने अपने पिता और भाइयों का संहार किया, जिस धन के लिए लोगों ने मान बेचा, धर्म बेचा, कुल-गौरव बेचा साथ ही देश की स्वतंत्रता बेची, वही धन भामाशाह ने देशोद्धार के लिए प्रताप को अर्पण कर दिया। भामाशाह का यह अनोखा त्याग धन-लोलुप मनुष्यों की बलात् आँखें खोलकर उन्हें देश-भक्ति का पाठ पढ़ाता है।

भामाशाह का जन्म कावडया संज्ञक ओसवाल जैन कुल में हुआ था। इनके पिता का नाम भारमल था। महाराणा सांगा ने भारमल को वि० स० १६१० ई० स० १५५३ में अलवर से बुलाकर रणथम्भौर का क़िलेदार नियत किया था। पीछे से जब हाड़ा सूरजमल बूंदवाला वहां का किलेदार नियत हुआ, उस समय भी बहुत-सा काम भारमल के ही हाथ में था। वह महाराणा उदयसिंह के प्रधान पद पर प्रतिष्ठित था। भारमल के स्वर्गवास होने पर राणा प्रताप ने भामाशाह को अपना मंत्री नियत किया था। हल्दीघाटी के युद्ध के बाद जब भामाशाह मालवे की ओर चला गया था तब उसकी अनुपस्थिति में रामा सहाणी महाराणा के प्रधान का कार्य करने लगा था। भामाशाह के आने पर रामा ने प्रधान का कार्य-भार लेकर पुनः भामाशाह को सौंप दिया। उसी समय किसी कवि का कहा गया प्राचीन पद्य इस प्रकार है :—

भामो परधानो करे, रामो कीधो रद्द।

भामाशाह के दिए हुए रुपयों का सहारा पाकर राणा प्रताप ने फिर बिखरी हुई शक्ति को बटोर कर रण-भेरी बजादी जिसे सुनते ही शत्रुओं के हृदय दहल गए, कायरों के प्राण-पखेरू उड़ गए, अकबर के होश-हवास जाते रहे। राणाजी और वीर भामाशाह अस्त्र-शस्त्र से सुसज्जित होकर जगह-जगह आक्रमण करते हुए यवनों द्वारा विजित मेवाड़ को पुनः अपने अधिकार में करने लगे। पं० झाबरमल्लजी शर्मा सम्पादक दैनिक 'हिन्दू संसार' ने लिखा है :—

"इन धावों में भी भामाशाह की वीरता के हाथ देखने का महाराणा को खूब अवसर मिला और उससे बड़े प्रसन्न हुए। महाराणा ने भामाशाह के भाई ताराचन्द को मालवे भेज दिया था, उसे शहबाजखां ने जा घेरा। ताराचन्द उसके साथ वीरता से लड़ाई करता हुआ बसी के पास पहुँचा और वहां घायल होने के कारण बेहोश होकर गिर पड़ा। बसी का राव साईंदास नेवड़ा घायल ताराचन्द को उठाकर अपने किले में ले गया और वहां उसकी अच्छी परिचर्या की। इसी प्रकार महाराणा अपने प्रबल पराक्रान्त वीरों की सहायता से बराबर आक्रमण करते रहे और संवत् १६४३ तक उनका चित्तौड़ और माण्डलगढ़ को छोड़कर समस्त मेवाड़ पर फिर से अधिकार हो गया। इस विजय में महाराणा की साहस प्रधान वीरता के साथ भामाशाह की उदार सहायता और राजपूत सैनिकों का आत्म-बलिदान ही मुख्य कारण था। आज भामाशाह नहीं हैं किन्तु उनकी उदारता का बखान सर्वत्र बड़े गौरव के साथ किया जाता है।"

प्रायः साढ़े तीन सौ वर्ष होने को आये,—भामाशाह के वंशज आज भी भामाशाह के नाम पर सम्मान पा रहे हैं। मेवाड़ की राजधानी उदयपुर में भामाशाह के वंशज को पंचायत और अन्य विशेष उपलक्षों में सर्वप्रथम गौरव दिया जाता है। समय के उलट-फेर अथवा कालचक्र की महिमा से भामाशाह के वंशज आज मेवाड़ के दीवान-पद पर नहीं हैं और न धन का बल ही उनके पास रह गया है। इसलिये धन की पूजा के इस दुर्घट समय में उनकी प्रधानता, धन-शक्ति–सम्पन्न उनकी जाति-बिरादरी के अन्य लोगों को अखरती है। किन्तु उनके पुण्यश्लोक पूर्वज भामाशाह के नाम का गौरव ही ढाल बनकर उनकी रक्षा कर रहा है। भामाशाह के वंशजों की परम्परागत प्रतिष्ठा की रक्षा के लिए संवत् १९१२ में तत्सामयिक उदयपुराधीश महाराणा सरूपसिंह को एक आज्ञापत्र निकालना पड़ा था जिसकी नकल ज्यों की त्यों इस प्रकार है :—

'श्री रामोजयति

श्री गणेशजीप्रसादात् श्रीएकलिंगजी प्रसादात्

भाले का निशान (सही)

स्वस्तिश्री उदयपुर सुभसुथाने महाराजाधिराज महाराणाजी श्रो सरूपसिंघ जी आदेशात् कावडया जैचन्द कुनणे वीरचन्दकस्य अप्रं थारा बडा वासा भामो कावड्यो ई राजम्हे सामध्रकासु काम चाकरी करी जी की मरजाद ठूठसूइया है म्हाजनां की जातम्हे बावनी स्था चौका को जीमण वा सीग पूजा होवे जीम्हे यह लथ पहेली तलक थारे होती हो सो अगला नगर सेठ बेणीदास करसो कर्यो अर बेदर्याफत तलक थारे नहीं करबा दीदो अबारू थांरी सालसी दीखी सो नगे करी अर न्यात म्हे हक्सर मालम हुई सो अब तलाक माफक दसतुर के ये थारो कराड्या जाजो आगांसु थारा हुकुम करदीयूयो है सो पेली तलक थारे होवेगा। प्रवानगी म्हेता सेरसीघ संवत् १९१२ जेठसुद १५ बुधो।'

इनका अभिप्राय यही है कि—"भामाशाह के मुख्य वंशधर की यह प्रतिष्ठा चली आती रही, कि जब महाजनों में समस्त जाति-समुदाय का भोजन आदि होता, तब सबसे प्रथम उसके तिलक किया जाता था, परन्तु पीछे से महाजनों ने उसके वंश वालों के तिलक करना बन्द कर दिया, तब महाराणा स्वरूपसिंह ने उसके कुल की अच्छी सेवा का स्मरण कर इस विषय की जाँच कराई और आज्ञा दी कि—महाजनों की जाति में बावनी (सारी जाति का भोजन) तथा चौके का भोजन व सिंहपूजा में पहिले के अनुसार तिलक भामाशाह के मुख्य वंशधर के ही किया जाय। इस विषय का एक परवाना वि० स० १९१२ ज्येष्ठ सुदी १५ को जयचन्द कुनणा वीरचन्द कावड़िया के नाम कर दिया, तब से भामाशाह के मुख्य वंशधर के तिलक होने लगा।"

"फिर महाजनों ने महाराणा की उक्त आज्ञा का पालन न किया, जिससे वर्तमान महाराणा साहब के समय वि० स० १९५२ कार्तिक सुदी १२ को मुकदमा होकर उसके तिलक किए जाने की आज्ञा दी गई।"

वीर भामाशाह ! तुम धन्य हो !! आज प्रायः साढ़े तीन सौ वर्ष से तुम इस संसार में नहीं हो परन्तु वहां के बच्चे-बच्चे की जबान पर तुम्हारे पवित्र नाम की छाप लगी हुई है। जिस देश के लिए तुमने इतना बड़ा आत्म-त्याग किया था, वह मेवाड़ पुनः अपनी स्वाधीनता प्रायः खो बैठा है। परन्तु फिर भी वहां तुम्हारा गुणगान होता रहता है। तुमने अपनी अक्षयकीर्ति से स्वयं को ही नहीं किन्तु समस्त जैन-जाति का सर्वथा मस्तक ऊँचा कर दिया है। निःसन्देह वह दिन धनिक समाज के धन-कुबेरों में भामाशाह जैसे सद्भावों का उदय होगा।

जिस नर-रत्न का ऊपर उल्लेख किया गया है, उसके चरित्र, दान आदि के सम्बन्ध में ऐतिहासिकों की चिरकाल से यही धारणा रही है किन्तु हाल में रायबहादुर महामहोपाध्याय पं० गौरीशंकर हीराचन्द जी ओझा ने अपने उदयपुर राज्य के इतिहास में "महाराणा प्रताप की सम्पत्ति" शीर्षक के नीचे महाराणा के निराश होकर मेवाड़ छोड़ने और भामाशाह के रुपये दे देने पर फिर लड़ाई के लिए तैयारी करने की प्रसिद्ध घटना को असत्य ठहराया है।

इस विषय में आपकी युक्ति का सार 'त्याग-भूमि' के शब्दों में इस प्रकार है :—

"महाराणा कुम्भा और सांगा आदि द्वारा उपार्जित अतुल सम्पत्ति अभी तक मौजूद थी, बादशाह अकबर इसे अभी तक न ले पाया था। यदि यह सम्पत्ति न होती तो जहाँगीर से सन्धि होने के बाद महाराणा अमरसिंह उसे इतने अमूल्य रत्न कैसे देता ? आगे आनेवाले महाराणा जगतसिंह तथा राजसिंह आदि महादान किस तरह देते हैं और राजसमुद्रादि अनेक वृहत्-व्यय-साध्य कार्य किस तरह सम्पन्न होते ? इसलिए उस समय भामाशाह ने अपनी तरफ से न देकर भिन्न-भिन्न सुरक्षित राज-कोषों से रुपया लाकर दिया।

इस पर त्याग-भूमि के विद्वान् समालोचक श्री हंसजी ने लिखा है :—

"निस्सन्देह इस युक्ति का उत्तर देना कठिन है, परन्तु मेवाड़ के राजा महाराणा प्रताप को भी अपने खजानों का ज्ञान न हो, यह मानने को स्वभावतः किसी का दिल तैयार न होगा। ऐसा मान लेना महाराणा प्रताप की शासन-कुशलता और साधारण नीतिमत्ता से इन्कार करना है। दूसरा सवाल यह है कि यदि भामाशाह ने अपनी उपार्जित सम्पत्ति न देकर केवल राजकोषों

की ही सम्पत्ति दी होती तो उसका और उसके वंश का इतना सम्मान, जिसका उल्लेख श्री ओझा जी ने पृ० ७८८ पर किया है, हमें बहुत संभव नहीं दीखता। एक खजांची का यह तो साधारण सा कर्त्तव्य है कि वह आवश्यकता पड़ने पर कोष से रुपया लाकर दे। केवल इतने मात्र से उसके वंशधरों की यह प्रतिष्ठा (महाजन जाति-भोज के अवसर पर पहले उसको तिलक किया जाए) प्रारम्भ हो जाय, यह कुछ बहुत अधिक युक्तिसंगत मालूम नहीं होता।"

इस आलोचना में ओझाजी की युक्ति के विरुद्ध जो कल्पना की गई है वह बहुत कुछ ठीक जान पड़ती है। इसके सिवाय, मैं इतना और भी कहना चाहता हूँ कि यदि श्री ओझाजी का यह लिखना ठीक भी मान लिया जाय कि "महाराणा कुम्भा और साँगा आदि द्वारा उपार्जित अतुल सम्पत्ति प्रताप के समय तक सुरक्षित थी—वह खर्च नहीं हुई थी, तो वह संपत्ति चित्तौड़ थी, यह उदयपुर के कुछ गुप्त खजानों में ही सुरक्षित रही होगी। भले ही अकबर को उन खजानों का पता न चल सका हो, परन्तु इन दोनों स्थानों पर अकबर का अधिकार तो पूरा हो गया था और ये स्थान अकबर की फौज से बराबर घिरे रहते थे, तब युद्ध के समय इन गुप्त खजानों से अतुल संपत्ति का बाहर निकाला जाना कैसे संभव हो सकता था। और इसलिए हल्दीघाटी के युद्ध के बाद जब प्रताप के पास पैसा नहीं रहा तब भामाशाह ने देश-हित के लिए अपने पास से—खुद के उपार्जन किये हुए द्रव्य से—भारी सहायता देकर प्रताप का यह अर्थ-कष्ट दूर किया है; यही ठीक जँचता है। रही अमरसिंह और जगतसिंह द्वारा होने वाले खर्चों की बात, वे सब तो चित्तौड़ तथा उदयपुर के पुनः हस्तगत करने के बाद ही हुए हैं और उनका उक्त गुप्त खजानों की सम्पत्ति से होना संभव है, तब उनके आधार पर भामाशाह की उस सामयिक विपुल सहायता तथा भारी स्वार्थ-त्याग पर कैसे आपत्ति की जा सकती है? अतः इस विषय में ओझाजी का कथन कुछ अधिक युक्ति-युक्त प्रतीत नहीं होता। और यही ठीक है कि भामाशाह के इस अपूर्व त्याग की बदौलत ही उस समय मेवाड़ का उद्धार हुआ जिन व्रतों के पालन करने पर बापू विशेष जोर देते थे। और इसीलिए आज भी भामाशाह मेवाड़ोद्धारक के नाम से प्रसिद्ध हैं।

एकादश-व्रत

जिन व्रतों के पालन पर बापू विशेष जोर देते थे

अहिंसा सत्य अस्तेय ब्रह्मचर्य असंग्रह।
शरीरश्रम अस्वाद सर्वत्र भयवर्जन ॥
सर्वधर्मी समानत्व स्वदेशी स्पर्शभावना।
हीं एकादश सेवावी नम्रत्वे व्रतनिश्चये ॥

बापू के प्रिय भजन

: १ :

वैष्णव जन तो तेने कहिये जे पीड़ पराई जाणे रे;
परदुःखे उपकार करे तोये, मन अभिमान न आणे रे।

सकल लोकमां सहुने वन्दे, निन्दा न करे केनी रे;
वाच काच मन निश्चल राखे, धन-धन जननी तेनी रे।
समदृष्टि ने तृष्णा त्यागी, परस्त्री जेने मात रे;
जिह्वा थकी असत्य न बोले, परधन नव झाले हाथ रे।
मोह माया व्यापे नहिं जेने, दृढ़ वैराग्य जेना मनमां रे;
रामनामशुं ताली लागी, सकल तीरथ तेना तनमां रे।
वणलोभी ने कपटरहित छे, काम क्रोध निवार्या रे;
भणे नरसैंयो तेनूं दरसन करतां कुल एकतेर तार्या रे।

: २ :

हरि तुम हरो जन की भीर।
द्रौपदी की लाज राखी, तुम बढ़ायो चीर।
भक्त कारण रूप नरहरि धर्‌यो आप शरीर।
हरिनकश्यप मार लीन्हों धर्‌यो नाहिन धीर।
बूड़ते गजराज राख्यो, कियो बाहर नीर।
दास मीरां लाल गिरधर, दुःख जहां तहां पीर।।

: ३ :

यदि तोर डाक सुने केउ ना आसे तबे एकला चलो रे,
एकला चलो, एकला चलो, एकला चलो रे!
यदि केउ कथा ना काय, ओरे, ओरे ओ अभागा,
यदि सबाई थाके मुख फिराये, सबाई करे भय—
तबे परान खुले
ओ, तुई मुख फूटे तोर मनेर कथा एकला बोलो रे
यदि सवाई फिरे जाय, ओरे, ओरे, ओ अभागा,
यदि गहन पथे जाबार काले केउ फिरे ना जाय—
तव पथेर कांटा
जो, तुई रक्त माखा चरन तले एकला दलो रे।
यदि आलो न धरे ओरे, ओरे, ओ अभागा,
यदि झातु बादले आंधार राते दुआर देय धरे—
तबे वज्रानले
आपन बुकेर पांजर ज्वालिये निये एकल चलो रे!

—रवीन्द्रनाथ ठाकुर

: ४ :

राम-सदन

काम क्रोध मद मान न मोहा। लोभ न छोभ न राग न द्रोहा।।
जिन्हके कपट दंभ नहिं माया। तिन्हके हृदय बसहु रघुराया।।

सबके प्रिय सबके हितकारी । दुख-सुख सरिस प्रशंसा गारी ॥
कहहु सत्य प्रिय बचन बिचारी । जागत सोवत सरन तुम्हारी ॥
तुम्हहिं छाड़ि गति दूसरि नाहीं । राम बसहु तिनके मन माहीं ॥
जननी सम जानहिं पर नारी । धन पराय विषतें विष भारी ॥
जे हरषहिं पर सम्पति देखी । दुखित होहिं परविपति बिसेखी ॥
जिन्हहिं राम तुम प्रान पियारे । तिन्हके मन सुभ सदन तुम्हारे ॥
स्वामि सखा पितु मातु गुरु, जिन्हके सब तुम तात ।
मन-मन्दिर तिन्हके बसहु, सीय सहित दोउ भ्रात ॥

एकादश-व्रत

१. **सत्य**—सत्य ही परमेश्वर है । सत्य-आग्रह, सत्य-विचार, सत्य-वाणी और सत्य-कर्म ये सब उसके अंग हैं । जहाँ सत्य है, वहाँ शुद्ध ज्ञान है । जहाँ शुद्ध ज्ञान है, वहाँ आनन्द ही हो सकता है ।

२. **अहिंसा**—सत्य ही परमेश्वर है । उसके साक्षात्कार का एक ही मार्ग, एक ही साधन, अहिंसा है । बगैर अहिंसा के सत्य की खोज असम्भव है ।

३. **ब्रह्मचर्य**—ब्रह्मचर्य का अर्थ है, ब्रह्म की—सत्य की—खोज में चर्या, अर्थात् उससे सम्बन्ध रखने वाला आचार । इस मूल अर्थ में से सर्वेन्द्रिय-संयम का विशेष अर्थ निकलता है । केवल जननेन्द्रिय-संयम के अधूरे अर्थ को तो हमें भूल जाना चाहिए ।

४. **अस्वाद**—मनुष्य जब तक जीभ के रसों को न जीते तबतक ब्रह्मचर्य का पालन अति कठिन है । भोजन केवल शरीर-पोषण के लिए हो, स्वाद या भोग के लिए न हो ।

५. **अस्तेय (चोरी न करना)**—दूसरे की चीज को उसकी इजाजत के बिना लेना तो चोरी है ही, लेकिन मनुष्य अपनी कम से कम जरूरत के अलावा जो कुछ लेता या संग्रह करता है, वह भी चोरी ही है ।

६. **अपरिग्रह**—सच्चे सुधार की निशानी परिग्रह-वृद्धि नहीं बल्कि विचार और इच्छापूर्वक परिग्रह कम करना उसकी निशानी है । ज्यों-ज्यों परिग्रह कम होता है, सुख और सच्चा सन्तोष बढ़ता है, सेवा-शक्ति बढ़ती है ।

७. **अभय**—जो सत्यपरायण रहना चाहे, वह न तो जात-बिरादरी से डरे, न सरकार से डरे, न चोर से डरे, न बीमारी या मौत से डरे, न किसी के बुरा मानने से डरे ।

८. **अस्पृश्यता-निवारण**—छुआछूत हिन्दू-धर्म का अंग नहीं है; इतना ही नहीं, बल्कि उसमें घुसी हुई सड़न है, वहम है, पाप है और उसका निवारण करना प्रत्येक हिन्दू का धर्म है, कर्तव्य है ।

९. **शरीरश्रम**—जिनका शरीर काम कर सकता है, उन स्त्री-पुरुषों को अपना रोजमर्रा का सभी काम, जो खुद कर लेने लायक हो, खुद ही कर लेना चाहिए और बिना कारण दूसरों से सेवा न लेनी चाहिए ।

जो खुद मेहनत न करें, उन्हें खाने का हक ही क्या है ?

१०. **सर्वधर्म-समभाव**— जितनी इज्जत हम अपने धर्म की करते हैं, उतनी ही इज्जत हमें दूसरों के धर्म की भी करनी चाहिए। जहाँ यह वृत्ति है, वहाँ एक-दूसरे के धर्म का विरोध हो ही नहीं सकता, न परधर्मी को अपने धर्म में लाने की कोशिश ही हो सकती है, बल्कि हमेशा प्रार्थना यही की जानी चाहिए कि सब धर्मों में पाये जाने वाले दोष दूर हों।

११. **स्वदेशी**—अपने आस-पास रहने वालों की सेवा में ओत-प्रोत हो जाना स्वदेशी-धर्म है। जो निकट वालों की सेवा छोड़कर दूर वालों की सेवा करने को दौड़ता है, वह स्वदेशी को भंग करता है।

: ५ :

रचनात्मक-कार्यक्रम

(गांधीजी के शब्दों में)

रचनात्मक कार्यक्रम को सत्य और अहिंसात्मक साधनों द्वारा पूर्ण स्वराज्य की रचना कहा जा सकता है।..... उसके एक-एक अंग पर विचार करें।

१. **कौमी एकता**—एकता का मतलब सिर्फ राजनैतिक एकता नहीं है...सच्चे मानी तो हैं वह दिली दोस्ती जो तोड़े न टूटे। इस तरह की एकता पैदा करने के लिए सबसे पहली जरूरत इस बात की है कि कांग्रेसजन, वे किसी भी धर्म के मानने वाले हों, अपने को हिन्दू, मुसलमान, ईसाई, पारसी, यहूदी, सभी कौमों का नुमाइंदा समझें।

२. **अस्पृश्यता-निवारण**—हरिजनों के मामले में तो हरेक हिन्दू को यह समझना चाहिए कि हरिजनों का काम उसका अपना काम है।

३. **मद्य-निशेध**—अफीम, शराब, वगैरा चीजों के व्यसन में फँसे हुए अपने करोड़ों भाई-बहनों के भविष्य को सरकार की मेहरबानी या मरजी पर झूलता नहीं छोड़ सकते।...इन व्यसनों के पंजे में फँसे हुए लोगों को छुड़ाने के उपाय निकालने होंगे।

४. **खादी**—खादी का मतलब है देश के सभी लोगों की आर्थिक स्वतन्त्रता और समानता का आरम्भ। खादी में जो चीजें समाई हुई हैं, उन सब के साथ खादी को अपनाना चाहिए। खादी का एक मतलब यह है कि हम में से हरेक को सम्पूर्ण स्वदेशी की भावना बढ़ानी और टिकानी चाहिए।

५. **दूसरे ग्रामोद्योग**—हाथ से पीसना, हाथ से कूटना और पछोरना, साबुन बनाना, कागज बनाना, दियासलाई बनाना, चमड़ा कमाना, तेल पेरना और इस तरह के दूसरे सामाजिक जीवन के लिए जरूरी और महत्व के धन्धों के बिना गांवों की आर्थिक रचना सम्पूर्ण नहीं हो सकती।

६. **गांवों की सफाई**—देश में जगह-जगह सुहावने और मनभावने छोटे-छोटे गांवों के बदले हमें घूरे-जैसे गांव देखने को मिलते हैं।... हमारा फर्ज हो जाता है कि गांवों को सब तरह से सफाई के नमूने बनावें।

७. **बुनियादी तालीम**—बुनियादी तालीम हिन्दुस्तान के तमाम बच्चों को, वे गांवों के रहने वाले हों या शहरों के, हिन्दुस्तान के सभी श्रेष्ठ तत्वों के साथ जोड़ देती है। यह तालीम बालक के मन और शरीर दोनों का विकास करती है।

८. **प्रौढ़-शिक्षा**—बड़ी उम्र के अपने देशवासियों को जबानी यानी सीधी बातचीत द्वारा सच्ची राजनैतिक शिक्षा दी जाय।

९. **स्त्रियाँ**—स्त्री को अपना मित्र या साथी मानने के बदले पुरुष ने अपने को उसका स्वामी माना है। कांग्रेस वालों का यह खास कर्त्तव्य है कि वे हिन्दुस्तान की स्त्रियों को इस गिरी हुई हालत से हाथ पकड़कर ऊपर उठावें।

१०. **आरोग्य के नियमों की शिक्षा**—हमारे देश की दूसरे देशों से बढ़ी-चढ़ी मृत्यु-संख्या का ज्यादातर कारण निश्चय ही वह गरीबी है, जो देशवासियों के शरीरों को कुरेदकर खा रही है; लेकिन अगर उनको तन्दुरुस्ती के नियमों की ठीक-ठीक तालीम दी जाय तो उसमें बहुत कमी की जा सकती है।

जब बीमार पड़ें तब अच्छे होने के लिए अपने साधनों की मर्यादा के अनुसार प्राकृतिक चिकित्सा करें।

११. **प्रान्तीय भाषाएँ** हिन्दुस्तान की महान् भाषाओं की अवगणना की वजह से हिन्दुस्तान को जो बेहद नुकसान हुआ है, उसका कोई अन्दाजा हम नहीं कर सकते।······जब तक जन-साधारण को अपनी बोली में लड़ाई के हर पहलू व कदम को अच्छी तरह से नहीं समझाया जाता तब तक उनसे यह उम्मीद कैसे की जा सकती है कि वे उसमें हाथ बँटावें ?

१२. **राष्ट्रभाषा**—समूचे हिन्दुस्तान के साथ व्यवहार करने के लिए हमको भारतीय भाषाओं में से एक ऐसी भाषा की जरूरत है, जिसे आज ज्यादा-से-ज्यादा तादाद में लोग जानते और समझते हों और बाकी के लोग जिसे झट सीख सकें, और वह भाषा हिन्दी (हिन्दुस्तानी) ही हो सकती है।

१३. **आर्थिक समानता**—आर्थिक समानता के लिए काम करने का मतलब है पूंजी और मजदूरों के बीच के झगड़ों को हमेशा के लिए मिटा देना। अगर धनवान लोग अपने धन को और उसके कारण मिलने वाली सत्ता को खुद राजी-खुशी से छोड़कर और सबके कल्याण के लिए सबों के मिलकर बरतने को तैयार न होंगे तो यह तय समझिये कि हमारे मुल्क में हिंसक और खूंखार क्रान्ति हुए बिना नहीं रहेगी।

१४. **किसान**—स्वराज्य की इमारत एक जबरदस्त चीज है, जिसे बनाने में अस्सी करोड़ हाथों का काम है। इन बनाने वालों में किसानों की तादाद सबसे बड़ी है। सच तो यह है कि स्वराज्य की इमारत बनाने वालों में ज्यादातर (करीब ८० फी-सदी) वे ही लोग हैं, इसलिए असल में किसान ही कांग्रेस है, ऐसी हालत पैदा होना चाहिए।

१५. **मजदूर**—अहमदाबाद के मजदूर-संघ का नमूना समूचे हिन्दुस्तान के लिए अनुकरणीय है, क्योंकि वह शुद्ध अहिंसा की बुनियाद पर खड़ा है।··· मेरा बस चले तो मैं

हिन्दुस्तान की सब मजदूर-संस्थाओं का संचालन अहमदाबाद के मजदूर-संघ की नीति पर करें।

१६. **आदिवासी**—आदिवासियों की सेवा भी रचनात्मक कार्यक्रम का एक अंग है।··· समूचे हिन्दुस्तान में आदिवासियों की आबादी दो करोड़ है।······उनके लिए कई सेवक काम कर रहे हैं। फिर भी अभी उनकी संख्या काफी नहीं है।

१७. **कुष्ठ-रोगी**—यह एक बदनाम शब्द है। फिर भी हम में जो सबसे श्रेष्ठ या बड़े-चढ़े हैं, उन्हीं की तरह कुष्ठ-रोगी भी हमारे समाज के अंग हैं।। पर हकीकत यह है कि जिन कुष्ठ-रोगियों की सार-सँभाल की ज्यादा जरूरत है, उन्हीं की हमारे यहाँ जान-बूझकर उपेक्षा की जाती है।

१८. **विद्यार्थी**—विद्यार्थी भविष्य की आशा है।····· इन्हीं नौजवान स्त्रियों और पुरुषों में से तो राष्ट्र के भावी नेता तैयार होने वाले हैं। विद्यार्थियों को दलबन्दी वाली राजनीति में कभी शामिल नहीं होना चाहिए। उन्हें राजनैतिक हड़तालें नहीं करनी चाहिए। सब विद्यार्थियों को सेवा की खातिर शास्त्रीय तरीके से कातना चाहिए। अपने पहने-ओढ़ने के लिए वे हमेशा खादी का इस्तेमाल करें।

१९. **गोसेवा**—गोरक्षा मुझे बहुत प्रिय है। मुझसे कोई पूछे कि हिन्दू-धर्म का बड़े-से-बड़ा बाह्य स्वरूप क्या है, तो मैं गोरक्षा बताऊँगा। मुझे वर्षों से दीख रहा है कि हम इस धर्म को भूल गये हैं। दुनिया में ऐसा कोई देश मैंने कहीं नहीं देखा जहां गाय के वंश की हिन्दुस्तान जैसी लावारिस हालत हो।

× × × ×

रायचंद भाई के कुछ संस्मरण

महात्मा गांधी

["राष्ट्रपिता गांधीजी ने सत्य और अहिंसा का मंगलमय संदेश विश्व के लिए देकर नवयुग का सूत्रपात किया। वे युगप्रवर्तक थे। मानवजाति का उन्होंने अपरिमित उपकार किया। उनके जीवन पर किन-किन महापुरुषों की छाप है, यह जानना भी आवश्यक है। उन्होंने श्री मद्रायचंद भाई के संस्मरण लिखते समय यह बात स्वीकार की है कि मेरे ऊपर तीन पुरुषों ने गहरी छाप डाली है। टालस्टाय, रस्किन और रायचंद भाई। टालस्टाय ने अपनी पुस्तकों द्वारा और उनके साथ थोड़े पत्र-व्यवहार से; रस्किन ने अपनी एक ही पुस्तक 'अन्टु दिस लास्ट' जिसका गुजराती अनुवाद मैंने 'सर्वोदय' रक्खा है। और रायचंद भाई ने अपने गाढ़ परिचय से मेरी शंकाओं का समाधान किया, इससे मुझे शांति मिली। हिन्दू धर्म में मुझे जो चाहिए वह मिल सकता है ऐसा मन को विश्वास हुआ। इससे मेरा उनके प्रति कितना अधिक मान होना चाहिए इसका पाठक लोग कुछ अनुमान कर सकते हैं।" रायचंद भाई के संस्मरण उन्होंने स्वयं लिखे हैं। जिसे पढ़कर आप भली प्रकार जान सकेंगे कि गांधीजी के मन में अहिंसा की विशेष प्रीति कैसे बढ़ी? इसलिए पूरा लेख यहाँ अविकल दिया जा रहा है।]

मैं जिनके पवित्र संस्मरण लिखना आरम्भ करता हूं, उन स्वर्गीय श्रीमद् रायचन्द की आज जन्म-तिथि है। कार्तिक पूर्णिमा (संवत् १६२४) को उनका जन्म हुआ था। मैं कुछ यहां श्रीमद् रायचंद का जीवनचरित्र नहीं लिख रहा हूं। यह कार्य मेरी शक्ति के बाहर है। मेरे पास सामग्री भी नहीं। उनका यदि मुझे जीवनचरित्र लिखना हो तो मुझे चाहिए कि मैं उनकी जन्म-भूमि ववाणी आबंदर में कुछ समय बिताऊं, उनके रहने का मकान देखूं, उनके खेलने-कूदने के स्थान देखूं, उनके बाल-मित्रों से मिलूं, उनकी पाठशाला में जाऊं, उनके मित्रों, अनुयायियों और सगे-संबंधियों से मिलूं, और उनसे जानने योग्य बातें जानकर ही फिर कहीं लिखना आरम्भ करूं। परन्तु इनमें से मुझे किसी भी बात का परिचय नहीं।

इतना ही नहीं, मुझे लिखने की अपनी शक्ति और योग्यता के विषयों में भी शंका है। मुझे याद है मैंने कई बार ये विचार प्रकट किए हैं कि अवकाश मिलने पर उनके संस्मरण लिखूंगा। एक शिष्य ने जिनके लिए मुझे बहुत मान है, ये विचार सुने और मुख्यरूप से यहां उन्हीं के सन्तोष के लिए यह लिखा है। श्रीमद् रायचन्द को मैं 'रायचन्द भाई' अथवा 'कवि' कहकर प्रेम और मानपूर्वक सम्बोधन करता था। उनके संस्मरण लिखकर उनका रहस्य मुमुक्षुओं के समक्ष रखना मुझे अच्छा लगता है। इस समय तो मेरा प्रयास केवल मित्र के संतोष के लिए है। उनके संस्मरणों पर न्याय देने के लिए मुझे जैनमार्गों का अच्छा परिचय होना चाहिए, मैं स्वीकार करता हूं कि वह मुझे नहीं है। इसलिए मैं अपना दृष्टि-बिन्दु अत्यंत संकुचित रखूंगा। उनके जिन संस्मरणों की मेरे ऊपर छाप पड़ी है, उनके नोट्स और उनसे जो मुझे शिक्षा मिली है, इस समय उसे ही लिखकर मैं संतोष मानूंगा। मुझे आशा है कि उनसे जो लाभ मुझे मिला है वह या वैसा ही लाभ उन संस्मरणों के पाठक मुमुक्षुओं को भी मिलेगा।

'मुमुक्ष' शब्द का मैंने यहां जानबूझकर प्रयोग किया है। सब प्रकार के पाठकों के लिए यह पर्याप्त नहीं।

मेरे ऊपर तीन पुरुषों ने गहरी छाप डाली है—टालस्टाय, रस्किन और रायचंद भाई। टालस्टाय ने अपनी पुस्तकों द्वारा और उनके साथ थोड़े पत्रव्यवहार से; रस्किन ने अपनी एक ही पुस्तक 'अन्टु दिस लास्ट' से जिसका गुजराती अनुवाद मैंने 'सर्वोदय' रक्खा है; और रायचन्द भाई ने अपने साथ गाढ़ परिचय से। जब मुझे हिन्दू धर्म में शंका पैदा हुई उस समय उसके निवारण करने में मदद करने वाले रायचन्द भाई थे। सन् १८९३ में दक्षिण अफ्रीका में मैं कुछ क्रिश्चियन सज्जनों के विशेष सम्पर्क में आया। उनका जीवन स्वच्छ था। वे चुस्त धर्मात्मा थे। अन्य धर्मियों को क्रिश्चियन होने के लिए समझाना उनका मुख्य व्यवसाय था। यद्यपि मेरा और उनका सम्बन्ध व्यावहारिक कार्य को लेकर ही हुआ था तो भी उन्होंने मेरी आत्मा के कल्याण के लिए चिन्ता करना शुरू कर दिया। उस समय मैं अपना एक ही कर्त्तव्य समझ सका कि जब तक मैं हिन्दू धर्म के रहस्य को पूरी तौर से न जान लूं और उससे मेरी आत्मा को असंतोष न हो जाए, तब तक मुझे अपना कुलधर्म कभी न छोड़ना चाहिए। इसलिए मैंने हिन्दू धर्म और अन्य धर्मों की पुस्तकें पढ़ना शुरू कर दीं। क्रिश्चियन और मुसलमानी पुस्तकें पढ़ीं। विलायत के अंग्रेज मित्रों के साथ पत्रव्यवहार किया। उनके समक्ष अपनी शंकायें रखीं तथा हिन्दुस्तान में जिनके

ऊपर मुझे कुछ भी श्रद्धा थी, उनके पत्रव्यवहार किया। उनमें रायचंद भाई मुख्य थे। उनके साथ तो मेरा अच्छा सम्बन्ध हो चुका था। उनके प्रति मान भी था, इसलिए उनसे जो मिल सके उसे लेने का मैंने विचार किया। उसका फल यह हुआ कि मुझे शांति मिली। हिन्दू धर्म में मुझे जो चाहिए वह मिल सकता है, ऐसा मन को विश्वास हुआ। मेरी इस स्थिति के जवाबदार रायचन्द भाई हुए, इससे मेरा उनके प्रति कितना अधिक मान होना चाहिए, इसका पाठक लोग कुछ अनुमान कर सकते हैं।

इतना होने पर भी मैंने उन्हें धर्मगुरु नहीं माना। धर्मगुरु की तो मैं खोज किया ही करता हूं, और अबतक मुझे सबके विषय में यही जवाब मिला है कि 'ये नहीं।' ऐसा सम्पूर्ण गुरू प्राप्त करने के लिए तो अधिकार चाहिए, वह मैं कहाँ से लाऊं?

प्रथम भेंट

रायचन्द भाई के साथ मेरी भेंट जौलाई सन् १८९१ में उस दिन हुई जब मैं विलायत से बम्बई वापस आया। इन दिनों समुद्र में तूफान आया करता है, इस कारण जहाज रात को देरी से पहुँचा। मैं डाक्टर—बैरिस्टर—और अब रंगून के प्रख्यात झवेरी प्राणजीवनदास मेहता के घर उतरा था। रायचन्द भाई उनके बड़े भाई के जमाई होते थे। डाक्टर साहब ने ही परिचय कराया। उनके दूसरे बड़े भाई झवेरी रेवाशंकर जगजीवनदास की पहिचान भी उसी दिन हुई। डाक्टर साहब ने रायचन्द भाई को 'कवि' कहकर परिचय कराया और कहा—'कवि होते हुए भी आप हमारे साथ व्यापार में हैं, आप ज्ञानी और शतावधानी हैं।' किसी ने सूचना दी कि मैं उन्हें कुछ शब्द सुनाऊं, और वे शब्द चाहे किसी भी भाषा के हों, जिस क्रम से मैं बोलूंगा उसी क्रम से वे दुहरा जावेंगे। मुझे यह सुनकर आश्चर्य हुआ। मैं तो उस समय जवान और विलायत से लौटा था; मुझे भाषाज्ञान का भी अभिमान था। मुझे विलायत की हवा भी कुछ कम न लगी थी। उन दिनों विलायत से आया मानों आकाश से उतरा। मैंने अपना समस्त ज्ञान उलट दिया, और अलग-अलग भाषाओं के शब्द पहले मैंने लिख लिए—क्योंकि मुझे वह क्रम कहाँ याद रहने वाला था? और बाद में उन शब्दों को मैं बांच गया। उसी क्रम से रायचन्द भाई ने धीरे से एक के बाद एक शब्द कह सुनाए। मैं राजी हुआ, चकित हुआ और कवि की स्मरण-शक्ति के विषय में मेरा उच्च विचार हुआ। विलायत की हवा कम पड़ने के लिए यह सुन्दर अनुभव हुआ कहा जा सकता है।

कवि को अंग्रेजी का ज्ञान बिल्कुल न था। उस समय उनकी उमर पच्चीस से अधिक न थी। गुजराती पाठशाला में भी उन्होंने थोड़ा ही अभ्यास किया था। फिर भी इतनी शक्ति, इतना ज्ञान और आस-पास से इतना उनका मान। इससे मैं मोहित हुआ। स्मरणशक्ति पाठशाला में नहीं बिकती, और ज्ञान भी पाठशाला के बाहर, यदि इच्छा हो जिज्ञासा हो—तो मिलता है, तथा मान पाने के लिए विलायत अथवा कहीं भी नहीं जाना पड़ता; परन्तु गुण को मान चाहिए तो मिलता है—यह पदार्थ-पाठ मुझे बम्बई उतरते ही मिला।

कवि के साथ यह परिचय बहुत आगे बढ़ा। स्मरण-शक्ति बहुत लोगों की तीव्र होती है, इसमें आश्चर्य की कुछ बात नहीं। शास्त्र-ज्ञान भी बहुतों में पाया जाता है। परन्तु यदि वे

लोग संस्कारी न हों तो उनके पास फूटी कौड़ी भी नहीं मिलती। जहां संस्कार अच्छे होते हैं, वहीं स्मरण-शक्ति और शास्त्रज्ञान का सम्बन्ध शोभित होता है, और जगत को शोभित करता है कवि संस्कारी ज्ञानी थे।

वैराग्य

अपूर्व अवसर एवो क्यारे आवेशे, क्यारे थईशुं बाह्यान्तर निर्ग्रंथ जो,
सर्व संबंधनुं बंधन तीक्ष्ण छेदीने, विचरशुं कब महत्पुरुष ने पंथ जो ?
सर्वभावथी औदासीन्य वृत्तिकरी, मात्र देहे ते संयमहेतु होय जो,
अन्य कारणे अन्य कशुं कल्पे नहि, देहे पण किंचित् मूर्छा नवजोय जो ।।

—अपूर्व

रायचन्द भाई की १८ वर्ष की उमर के निकले हुए अपूर्व उद्‌गारों की ये पहली दो कड़ियां हैं। जो वैराग्य इन कड़ियों में छलक रहा है, वह मैंने उनके दो वर्ष के गाढ़ परिचय से प्रत्येक क्षण में उनमें देखा है। उनके लेखों की एक असाधारणता यह है कि उन्होंने स्वयं जो अनुभव किया वही लिखा है। उसमें कहीं भी कृत्रिमता नहीं। दूसरे के ऊपर छाप डालने के लिए उन्होंने एक लाइन भी लिखी हो यह मैंने नहीं देखा। उनके पास हमेशा कोई-न-कोई धर्मपुस्तक और एक कोरी कापी पड़ी ही रहती थी। इस कापी में वे अपने मन में जो विचार आते उन्हें लिख लेते थे। ये विचार कभी गद्य में और कभी पद्य में होते थे · इसी तरह 'अपूर्व अवसर' आदि पद भी लिखा हुआ होना चाहिए।

खाते, बैठते, सोते और प्रत्येक क्रिया करते हुए उनमें वैराग्य तो होता ही था। किसी समय उन्हें इस जगत के किसी भी वैभव पर मोह हुआ हो यह मैंने नहीं देखा।

उनका रहन-सहन मैं आदरपूर्वक परन्तु सूक्ष्मता से देखता था। भोजन में जो मिले वे उसीसे संतुष्ट रहते थे। उनकी पोशाक सादी थी। कुर्ता, अंगरखा, खेस, सिलक का दुपट्टा और और धोती यही उनकी पोशाक थी तथा ये भी कुछ बहुत साफ या इस्तरी किए हुए रहते हों, यह मुझे याद नहीं। जमीन पर बैठना और कुर्सी पर बैठना उन्हें दोनों ही समान थे। सामान्य रीति से अपनी दुकान में वे गद्दी पर बैठते थे।

उनकी चाल धीमी थी, और देखनेवाला समझ सकता था कि चलते हुए भी वे अपने विचार में मग्न हैं। आंख में उनकी चमत्कार था। वे अत्यन्त तेजस्वी थे। विह्वलता जरा भी न थी। आँख में एकाग्रता चित्रित थी। चेहरा गोलाकार, होंठ पतले, नाक न नोकदार और न चपटी, शरीर दुर्बल, कद मध्यम, वर्ण श्याम, और देखने में वे शान्तिमूर्ति थे। उनके कंठ में इतना अधिक माधुर्य था कि उन्हें सुनने वाले थकते न थे, उनका चेहरा हंसमुख और प्रफुल्लित था। उसके ऊपर अंतरानंद की छाया थी। भाषा उनकी इतनी परिपूर्ण थी कि उन्हें अपने विचार प्रगट करते समय कभी कोई शब्द ढूंढ़ना पड़ा हो, यह मुझे याद नहीं। पत्र लिखने बैठते तो शायद ही शब्द बदलते हुए मैंने उन्हें देखा होगा। फिर भी पढ़ने वाले को यह मालूम न होता था कि कहीं विचार अपूर्ण है अथवा वाक्य-रचना त्रुटित है, अथवा शब्दों के चुनाव में कमी है।

यह वर्णन संयमी के विषय में संभव है। बाह्याडम्बर से मनुष्य वीतरागी नहीं हो सकता। वीतरागता आत्मा की प्रसादी है। यह अनेक जन्मों के प्रयत्न से मिल सकती है, ऐसा हर मनुष्य अनुभव कर सकता है। रागों को निकालने का प्रयत्न करने वाला जानता है कि राग-रहित होना कितना कठिन है। यह राग-रहित दशा कवि की स्वाभाविक थी, ऐसी मेरे ऊपर छाप पड़ी थी।

मोक्ष की प्रथम पीढ़ी वीतरागता है। जब तक जगत की एक भी वस्तु में मन रमा है तब तक मोक्ष की बात कैसे अच्छी लग सकती है। अथवा अच्छी लगती भी तो केवल कानों को ही—ठीक वैसे ही जैसे कि हमें अर्थ के समझे बिना किसी संगीत का केवल स्वर ही अच्छा लगता है। ऐसी केवल कर्ण-प्रिय क्रीड़ा में से मोक्ष का अनुसरण करने वाले आचरण के आने में बहुत समय बीत जाता है। आंतर वैराग्य के बिना मोक्ष की लगन नहीं होती। ऐसे वैराग्य की लगन कवि में थी।

व्यापारी जीवन

●"वणिक तेहनु नाम जेंह जूठुं नव बोले, वणिक तेहनुं नाम, तोल ओछुं नव तोले।
वणिक तेहनुं नाम बापे बोल्युं ते पाले, वणिक तेहनुं नाम व्याज सहित धनवाले।
विवेक तोल ए वणिकनुं सुलतान तोल ए शाव छे, बेपार चुके जो वाणीओ,
दुःख दावानल थाह छे।"

—सामलभट्ट

सामान्य मान्यता ऐसी है कि व्यवहार अथवा व्यापार और परमार्थ अथवा धर्म ये दोनों अलग-अलग विरोधी वस्तुएं हैं। व्यापार में धर्म को घुसेड़ना पागलपन है। ऐसा करने से दोनों बिगड़ जाते हैं। यह मान्यता यदि मिथ्या न हो तो अपने भाग्य में केवल निराशा ही लिखी है; क्योंकि ऐसी एक भी वस्तु नहीं, ऐसा एक भी व्यवहार नहीं जिससे हम धर्म को अलग रख सकें।

धार्मिक मनुष्य का धर्म उसके प्रत्येक कार्य में झलकना ही चाहिये, यह रायचन्द भाई ने अपने जीवन में बताया था। धर्म कुछ एकादशी के दिन ही, पर्यूषण में ही, ईद के दिन ही, या रविवार के दिन ही पालना चाहिए; अथवा उसका पालन मंदिरों में, देरासरों में, और मस्जिदों में ही होता है और दूकान या दरबार में नहीं होता, ऐसा कोई नियम नहीं। इतना ही नहीं, परन्तु यह कहना धर्म को न समझने के बराबर है, यह रायचन्द भाई कहते, मानते और अपने आचार में बताते थे।

●बनिया उसे कहते हैं जो कभी झूठ नहीं बोलता; बनिया उसे कहते हैं जो कम नहीं तौलता। बनिया उसका नाम है जो अपने पिता का वचन निभाता है; बनिया उसका नाम है जो ब्याज सहिय मूलधन चुकाता है। बनिये की तौल विवेक है, साहू सुलतान की तौल का होता है। यदि बनिया अपने बनिज को चूक जाय तो संसार की विपत्ति बढ़ जाय।

—अनुवादक

उनका व्यापार हीरे-जवाहरात का था। वे श्री रेवाशंकर जगजीवन झवेरी के साझी थे। साथ में वे कपड़े की दूकान भी चलाते थे। अपने व्यवहार में सम्पूर्ण प्रकार से वे प्रमाणिकता बताते थे, ऐसी उन्होंने मेरे ऊपर छाप डाली थी। वे जब सौदा करते तो मैं कभी अनायास ही उपस्थित रहता। उनकी बात स्पष्ट और एक ही होती थी। 'चालाकी' सरीखी कोई वस्तु उनमें मैं न देखता था। दूसरे की चालाकी वे तुरन्त ताड़ जाते थे, वह उन्हें असह्य मालूम होती थी। ऐसे समय उनकी भ्रकुटि भी चढ़ जाती और आँखों में लाली आ जाती, यह मैं देखता था।

धर्मकुशल लोग व्यापार-कुशल नहीं होते, इस वहम को रायचन्द भाई ने मिथ्या सिद्ध करके बताया था। अपने व्यापार में वे पूरी सावधानी और होशियारी बताते थे। हीरे-जवाहरात की परीक्षा वे बहुत बारीकी से कर सकते थे। यद्यपि अंग्रेजी का ज्ञान उन्हें न था फिर भी पेरिस वगैरह के अपने आड़तियों की चिट्ठियों और तारों के मर्म को वे फौरन समझ जाते थे और उनको कला समझने में उन्हें देर न लगती। उनके जो तर्क होते थे, वे अधिकांश सच्चे ही निकलते थे।

इतनी सावधानी और होशियारी होने पर भी वे व्यापार की उद्विग्नता अथवा चिन्ता न रखते थे। दुकान में बैठे हुए भी जब अपना काम समाप्त हो जाता, तो उनके पास पड़ी हुई धार्मिक पुस्तक अथवा कापी, जिसमें वे अपने उद्गार लिखते थे, खुल जाती थी। मेरे जैसे जिज्ञासु तो उनके पास रोज आते ही रहते थे और उनके साथ धर्म-चर्चा करने में हिचकते न थे। 'व्यापार के समय में व्यापार और धर्म के समय में धर्म, अर्थात् एक समय में एक ही काम होना चाहिए, इस सामान्य लोगों के सुन्दर नियम का कवि पालन न किरते थे। वे शतावधानी होकर इसका पालन न करें तो यह हो सकता है, परन्तु यदि और लोग इसका उल्लंघन करने लगें तो जैसे दो घोड़ों पर सवारी करने वाला गिरता है, वैसे ही वे भी अवश्य गिरते। सम्पूर्ण धार्मिक और वीत-रागी पुरुष भी जिस क्रिया को जिस समय करता हो, उसमें ही लीन हो जाय, यह योग्य है; इतना ही नहीं परन्तु उसे यही शोभा देता है। यह उसके योग की निशानी है। इसमें धर्म है। व्यापार अथवा इसी तरह की जो कोई अन्य क्रिया करना हो तो उसमें भी पूर्ण एकाग्रता होनी ही चाहिए। अन्तरंग में आत्मचिन्तन तो मुमुक्षु में उसके श्वास की तरह सतत चलना ही चाहिए। उससे वह एक क्षण भर भी वंचित नहीं रहता। परन्तु इस तरह आत्म-चिन्तन करते हुए भी जो कुछ वह बाह्य कार्य करता हो वह उसमें तन्मय रहता है।

मैं यह नहीं कहना चाहता कि कवि ऐसा न करते थे। ऊपर मैं कह चुका हूं कि अपने व्यापार में वे पूरी सावधानी रखते थे। ऐसा होने पर भी मेरे ऊपर ऐसी छाप जरूर पड़ी है कि कवि ने अपने शरीर से आवश्यकता से अधिक काम लिया है। यह योग की अपूर्णता तो नहीं हो सकती? यद्यपि कर्तव्य करते हुए शरीर तक भी समर्पण कर देना यह नीति है, परन्तु शक्ति से अधिक बोझ उठाकर उसे कर्तव्य समझना यह राग है। ऐसा अत्यंत सूक्ष्म राग कवि में था, यह मुझे अनुभव हुआ।

बहुत बार परमार्थ दृष्टि से मनुष्य शक्ति से अधिक काम लेता है और बाद में उसे पूरा करने में उसे कष्ट सहना पड़ता है। इसे हम गुण समझते हैं और इसकी प्रशंसा करते हैं।

परन्तु परमार्थ धर्म-दृष्टि से देखने से इस तरह किए हुए काम में सूक्ष्म मूर्छा का होना बहुत सम्भव है।

यदि हम इस जगत में केवल निमित्त मात्र ही हैं, यदि यह शरीर हमें भाड़े मिला है, और उस मार्ग से हमें तुरन्त मोक्ष-साधन करना चाहिये, यही परम कर्त्तव्य है, तो इस मार्ग में जो विघ्न आते हों उनका त्याग अवश्य ही करना चाहिए, यही पारमार्थिक दृष्टि है, दूसरी नहीं।

जो दलीलें मैंने ऊपर दी हैं, उन्हें ही किसी दूसरे प्रकार से रायचन्द भाई अपनी चमत्कारिक भाषा में मुझे सुना गये थे। ऐसा होने पर भी उन्होंने कैसी-कैसी व्याधियां उठाई कि जिसके फलस्वरूप उन्हें सख्त बीमारी भोगनी पड़ी।

रायचन्द भाई को भी परोपकार के कारण मोह ने क्षण भर के लिए घेर लिया था, यदि मेरी यह मान्यता ठीक हो तो 'प्रकृति पाति भूतानि निग्रह: किं करिष्यति' यह श्लोकार्ध यहां ठीक बैठता है, और इसका अर्थ भी इतना ही है। कोई इच्छापूर्वक बर्ताव करने के लिए उपर्युक्त कृष्ण-वचन का उपयोग करते हैं, परन्तु वह तो सर्वथा दुरुपयोग है। रायचन्द भाई की प्रकृति उन्हें बलात्कार गहरे पानी में ले गई। ऐसे कार्य को दोषरूप से भी लगभग सम्पूर्ण आत्माओं में ही माना जा सकता है। हम सामान्य मनुष्य तो परोपकारी कार्य के पीछे अवश्य पागल बन जाते हैं, तभी उसे कदाचित पूरा कर पाते हैं। इस विषय को इतना ही लिखकर समाप्त करते हैं।

यह भी मान्यता देखी जाती है कि धार्मिक मनुष्य इतने भोले होते हैं कि उन्हें सब कोई ठग सकता है। उन्हें दुनिया की बातों की कुछ भी खबर नहीं पड़ती। यदि यह बात ठीक हो तो कृष्णचन्द और रामचन्द दोनों अवतारों को केवल संसारी मनुष्यों में ही गिनना चाहिए। कवि कहते थे कि जिसे शुद्धज्ञान है उसका ठगा जाना असम्भव होना चाहिए। मनुष्य धार्मिक अर्थात् नीतिमान होने पर भी कदाचित ज्ञानी न हो परन्तु मोक्ष के लिए नीति और अनुभव ज्ञान का सुसंगम होना चाहिए। जिसे अनुभव ज्ञान हो गया है, उसके पास पाखंड निभ ही नहीं सकता। अहिंसा के सांनिध्य में हिंसा बंद हो जाती है। जहां सरलता प्रकाशित होती है वहाँ छलरूपी अंधकार नष्ट हो जाता है। ज्ञानवान और धर्मवान यदि कपटी को देखे तो उसे फौरन पहिचान लेता है, और उसका हृदय दया से आर्द्र हो जाता है। जिसने आत्म को प्रत्यक्ष देख लिया, वह दूसरे को पहिचाने बिना कैसे रह सकता है ? कवि के सम्बन्ध में यह नियम हमेशा ठीक पड़ता था, यह मैं नहीं कह सकता। कोई-कोई धर्म के नाम पर उन्हें ठग भी लेते थे। ऐसे उदाहरण नियम की अपूर्णता सिद्ध नहीं करते, परन्तु ये शुद्धज्ञान की ही दुर्बलता सिद्ध करते हैं।

इस तरह के अपवाद होते हुए भी व्यवहारकुशलता और धर्म-परायणता का सुन्दर मेल जितना मैंने कवि में देखा है, उतना किसी दूसरे में देखने में नहीं आया।

धर्म

रायचन्द भाई के धर्म का विचार करने से पहले यह जानना आवश्यक है कि धर्म का उन्होंने क्या स्वरूप समझाया था।

धर्म का अर्थ मत-मतान्तर नहीं। धर्म को अर्थशास्त्रों के नाम से कही जाने वाली

पुस्तकों को पढ़ जाना, कंठस्थ कर लेना, अथवा उनमें जो कुछ कहा है, उसे मानना भी नहीं है।

धर्म आत्मा का गुण है और वह मनुष्य जाति में दृश्य अथवा अदृश्य रूप से मौजूद है। धर्म से हम मनुष्य जीवन का कर्त्तव्य समझ सकते हैं। धर्म द्वारा हम दूसरे जीवों के साथ अपना सच्चा सम्बन्ध पहचान सकते हैं। यह स्पष्ट है कि जब तक हम अपने को न पहचान लें, तब तक यह सब कभी भी नहीं हो सकता। इसलिए धर्म वह साधन है, जिसके द्वारा हम अपने आपको स्वयं पहिचान सकते हैं।

यह साधन हमें जहां कहीं मिले, वहीं से प्राप्त करना चाहिए। फिर भले ही वह भारत वर्ष में मिले, चाहे यूरोप से आए या अरबस्तान से आए। इन साधनों का सामान्य स्वरूप समस्त धर्मशास्त्रों में एक ही सा है। इस बात को वह कह सकता है जिसने भिन्न-भिन्न शास्त्रों का अभ्यास किया है। ऐसा कोई भी शास्त्र नहीं कहता कि असत्य बोलना चाहिये अथवा असत्य आचरण करना चाहिए। हिंसा करना किसी भी शास्त्र में नहीं बताया। समस्त शास्त्रों का दोहन करते हुए शंकराचार्य ने कहा है—'ब्रह्म सत्यं जगन्मिथ्या'। उसी बात को कुरानशरीफ़ में दूसरी तरह कहा है कि ईश्वर एक ही है और वही है, उसके बिना और दूसरा कुछ नहीं। बाइबिल में कहा है, कि मैं और मेरा पिता एक ही है। ये सब एक ही वस्तु के रूपांतर हैं। परन्तु इस एक ही सत्य के स्पष्ट करने में अपूर्ण मनुष्यों ने अपने भिन्न-भिन्न दृष्टि-विन्दुओं को काम में लाकर हमारे लिए मोहजाल रच दिया है, उसमें से हमें बाहर निकलना है। हम अपूर्ण हैं और अपने से कम अपूर्ण की मदद लेकर आगे बढ़ते हैं और अन्त में न जाने अमुक हद तक जाकर ऐसा मान लेते हैं कि आगे रास्ता ही नहीं है, परन्तु वास्तव में ऐसी बात नहीं है। अमुक हद के बाद शास्त्र मदद नहीं करते, परन्तु अनुभव करता है। इसलिए रायचन्द भाई ने कहा है :—

ए पद श्री सर्वज्ञे दीठुं ध्यानमां, कही शक्या नहीं ते पद श्रीभगवंत जो
एह परमपदप्राप्तिनुं कर्युं ध्यान में, गजावगर पणहाल मनोरथ रूपजो।

इसलिए अन्त में तो आत्मा को मोक्ष देने वाली आत्मा ही है।

इस शुद्ध सत्य का निरूपण रायचन्द भाई ने अनेक प्रकारों से अपने लेखों में किया है। रायचन्द भाई ने बहुत-सी धर्मपुस्तकों का अच्छा अभ्यास किया था। उन्हें संस्कृत और मागधी भाषा के समझने में जरा भी मुश्किल न पड़ती थी। उन्होंने वेदान्त का अभ्यास किया था, इसी प्रकार भागवत और गीताजीका भी उन्होंने अभ्यास किया था। जैन पुस्तकें तो जितनी भी उनके हाथ में आती, वे बांच जाते थे। उनके बांचने और ग्रहण करने की शक्ति अगाध थी। पुस्तक का एक बार का बांचन उन पुस्तकों के रहस्य जानने के लिए उन्हें काफी था। कुरान, जंदअवेस्ता आदि पुस्तकें भी वे अनुवाद के जरिये पढ़ गए थे।

वे मुझसे कहते थे कि उनका पक्षपात जैनधर्म की ओर था। उनकी मान्यता थी कि जिनमगा में आत्मज्ञान की पराकाष्ठा है, मुझे उनका यह विचार बता देना आवश्यक है। इस विषय में अपना मत देने के लिए मैं अपने को बिल्कुल अनधिकारी समझता हूं।

परन्तु रायचन्द भाई का दूसरे धर्मों के प्रति अनादर न था, बल्कि वेदान्त के प्रति

पक्षपात भी था। वेदांती को तो कवि वेदांती ही मालूम पड़ते थे। मेरे साथ चर्चा करते समय मुझे उन्होंने कभी भी यह नहीं कहा कि मुझे मोक्ष प्राप्ति के लिए किसी खास धर्म का अवलंबन लेना चाहिए। मुझे अपना ही आचार-विचार पालने के लिए उन्होंने कहा। मुझे कौन सी पुस्तकें बांचनी चाहिये, यह प्रश्न उठने पर, उन्होंने मेरी वृत्ति और मेरे बचपन के संस्कार देखकर मुझे गीताजी बाँचने के लिए उत्तेजित किया, और दूसरी पुस्तकों में पंचीकरण, मणिरत्नमाला, योग-वासिष्ठ का वैराग्य प्रकरण, काव्यदोहन पहला, और अपनी मोक्षमाला बांचने के लिए कहा।

रायचन्द भाई बहुत बार कहा करते थे कि भिन्न-भिन्न धर्म तो एक तरह के बाड़े हैं और उनमें मनुष्य घिर जाता है। जिसने मोक्ष प्राप्ति ही पुरुषार्थ मान लिया है, उसे अपने माथे पर किसी भी धर्म का तिलक लगाने की आवश्यकता नहीं।

०सूतर आवे त्यम तु रहे, ज्यम त्यम करिने हरीने लहे—

जैसे आखाका यह सूत्र था वैसे ही रायचन्द भाई का भी था। धार्मिक झगड़ों से वे हमेशा ऊबे रहते थे—उनमें वे शायद ही कभी पड़ते थे। वे समस्त धर्मों की खूबियाँ पूरी तरह से देखते और उन्हें उन धर्मावलम्बियों के सामने रखते थे। दक्षिण अफ्रीका के पत्रव्यवहार में भी मैंने यही वस्तु उनसे प्राप्त की।

मैं स्वयं तो यह मानने वाला हूं कि समस्त धर्म उस धर्म के भक्तों की दृष्टि से सम्पूर्ण है, और दूसरों की दृष्टि से अपूर्ण है। स्वतंत्र रूप से विचार करने से सब धर्म परिपूर्ण हैं। अमुक हद के बाद सब शास्त्र बन्धन रूप मालूम पड़ते हैं। परन्तु यह तो गुणातीत की अवस्था हुई। रायचन्द भाई की दृष्टि से विचार करते हैं तो किसी को अपना धर्म छोड़ने की आवश्यकता नहीं। सब अपने-अपने धर्म में रह कर अपनी स्वतन्त्रता—मोक्ष प्राप्त कर सकते हैं। क्योंकि मोक्ष प्राप्त करने का अर्थ सर्वांश से राग-द्वेष रहित होना ही है।

*परिशिष्ट

इस प्रकरण में एक विषय का विचार नहीं हुआ। उसे पाठकों के समक्ष रख देना उचित समझता हूं। कुछ लोग कहते हैं कि श्रीमद् पच्चीसवे तीर्थंकर हो गए हैं। कुछ ऐसा मानते हैं कि उन्होंने मोक्ष प्राप्त कर लिया है। मैं समझता हूं कि ये दोनों ही मान्यताएं अयोग्य हैं। इन बातों को मानने वाले या तो श्रीमद् को ही नहीं पहचानत, अथवा तीर्थंकर या मुक्त पुरुष की वे व्याख्या ही दूसरी करते हैं। अपने प्रियतम के लिए भी हम सत्य को हलका अथवा सस्ता नहीं कर देते हैं। मोक्ष अमूल्य वस्तु है। मोक्ष आत्मा की अन्तिम स्थिति है। मोक्ष बहुत महँगी वस्तु है। उसे प्राप्त करने में, जितना

०जैसे सूत निकलता है वैसे ही तू कर। जैसे बने तैसे हरि को प्राप्त कर।

*'श्रीमद् रायचन्द' का गांधीजी द्वारा लिखा हुआ प्रस्तावना का वह अंश जो उक्त संस्मरणों से अलग है और उनके बाद लिखा गया है।

—अनुवादक

प्रयत्न समुद्र के किनारे बैठकर एक सींक लेकर उसके ऊपर एक-एक बूंद चढ़ा-चढ़ाकर समुद्र को खाली करने वाले को करना पड़ता है और धीरज रखना पड़ता है। उससे भी विशेष प्रयत्न करने वाले को करना पड़ता है और धीरज रखना पड़ता है। उससे भी विशेष प्रयत्न करने की आवश्यकता है। इस मोक्ष का सम्पूर्ण वर्णन असम्भव है। तीर्थंकर को मोक्ष के पहले की विभूतियां सहज ही प्राप्त होती हैं। इस देह में मुक्त पुरुष को रोगादि कभी भी नहीं होते। निर्विकारी शरीर में रोग नहीं होता। राग के बिना रोग नहीं होता। जहां विकार है वहां राग रहता ही है, और जहां राग है वहां मोक्ष भी सम्भव नहीं। मुक्त पुरुष के योग्य वीतरागता या तीर्थङ्कर की विभूतियां श्रीमद् को प्राप्त नहीं हुई थीं। परन्तु सामान्य मनुष्य की अपेक्षा श्रीमद् की वीतरागता और विभूतियां बहुत अधिक थीं, इसलिये हम उन्हें लौकिक भाषा में वीतराग और विभूतिमान कहते हैं। परन्तु मुक्त पुरुष के लिए मानी हुई वीतरागता और तीर्थंकर की विभूतियों को श्रीमद् न पहुँच सके थे, यह मेरा दृढ़मत है। यह कुछ में एक महान और पूज्य व्यक्ति के दोष बताने के लिए नहीं लिखता। परन्तु उन्हें और सत्य को न्याय देने के लिए लिखता हूं। यदि हम संसारी जीव हैं तो श्रीमद् असंसारी थे। हमें यदि अनेक योनियों में भटकना पड़ेगा तो श्रीमद् का शायद एक ही जन्म बस होगा। हम शायद मोक्ष से दूर भागते होंगे तो श्रीमद् वायुवेग से मोक्ष की ओर धंसे जा रहे थे। यह कुछ थोड़ा पुरुषार्थ नहीं। यह होने पर भी मुझे कहना होगा कि श्रीमद् ने जिस अपूर्व पद का स्वयं सुन्दर वर्णन किया है, उसे वे प्राप्त न कर सके थे। उन्होंने ही स्वयं कहा है कि उनके प्रवास में उन्हें सहारा का मरुस्थल बीच में आ गया और उसका पार करना बाकी रह गया। परन्तु श्रीमद् रायचन्द असाधारण व्यक्ति थे। उनके लेख उनके अनुभव के बिन्दु के समान हैं। उनके पढ़ने वाले, विचारने वाले और तदनुसार आचरण करने वालों को मोक्ष सुलभ होगा, उनकी कषायें मन्द पड़ेंगी, और वे देह का मोह छोड़कर आत्मार्थी बनेंगे।

इसके ऊपर से पाठक देखेंगे कि श्रीमद् के लेख अधिकारी के लिए ही योग्य हैं। सब पाठक तो उसमें रस नहीं ले सकते। टीकाकार को उसकी टीका का कारण मिलेगा। परन्तु श्रद्धावान तो उसमें से रस ही लूटेगा। उनके लेखों में सत् नितर रहा है, यह मुझे हमेशा भास हुआ है। उन्होंने अपना ज्ञान बताने के लिए एक भी अक्षर नहीं लिखा। लेखक का अभिप्राय पाठकों को अपने आत्मानन्द में सहयोगी बनाने का था। जिसे आत्मक्लेश दूर करना है, जो अपना कर्त्तव्य जानने के लिए उत्सुक है, उसे श्रीमद् के लेखों में से बहुत कुछ मिलेगा, ऐसा मुझे विश्वास है, फिर भले ही कोई हिन्दू धर्म का अनुयायी हो या अन्य किसी दूसरे धर्म का।

⚜ ⚜ ⚜ ⚜

न्याय और दलबन्दी, ये दो विरोधी दिशाएँ हैं; एक व्यक्ति एक साथ दो दिशाओं में चलना चाहे, इससे बड़ी भूल और क्या हो सकती है!

महात्मा गांधी के २७ प्रश्नों का समाधान

श्रीमद् रायचन्द्रजी

प्रश्न (१)—आत्मा क्या है ? क्या वह कुछ करती है ? और उसे कर्म दुख देता है या नहीं ?

उत्तर—(१) जैसे घट-पट आदि जड़ वस्तुयें हैं, उसी तरह आत्मा ज्ञानस्वरूप वस्तु है। घट-पट आदि अनित्य हैं—त्रिकाल में एक ही स्वरूप से स्थिरतापूर्वक रह सकने वाली नहीं हैं। आत्मा एक स्वरूप से त्रिकाल में स्थिर रह सकने वाला नित्य पदार्थ है। जिस पदार्थ की उत्पत्ति किसी भी संयोग से न हो सकती हो वह पदार्थ नित्य होता है। आत्मा किसी भी संयोग से उत्पन्न हो सकती है, ऐसा मालूम नहीं होता। क्योंकि जड़ के चाहे कितने भी संयोग क्यों न करो तो भी उससे चेतन की उत्पत्ति नहीं हो सकती। जो धर्म जिस पदार्थ में नहीं होता, उस प्रकार के बहुत से पदार्थों के इकट्ठे करने से भी उसमें जो धर्म नहीं है वह धर्म उत्पन्न नहीं हो सकता। जो घट-पट आदि पदार्थ हैं, उनमें ज्ञानस्वरूप देखने में नहीं आता। उस प्रकार के पदार्थों का यदि परिणामांतरपूर्वक संयोग किया हो अथवा संयोग हुआ हो, तो भी वह उसी तरह की जाति का होता है, अर्थात् यह जड़स्वरूप ही होता है, ज्ञानस्वरूप नहीं होता। तो फिर उस तरह के पदार्थ के संयोग होने पर आत्मा अथवा जिसे ज्ञानी पुरुष मुख्य 'ज्ञानस्वरूप लक्षण-युक्त' कहते हैं, उस प्रकार के (घट-पट आदि, पृथ्वी, जल, वायु, आकाश) पदार्थ से किसी तरह उत्पन्न हो सकने योग्य नहीं। 'ज्ञानस्वरूप' यह आत्मा का मुख्य लक्षण है, और जड़ का मुख्य लक्षण 'उसके अभावरूप' है। उन दोनों का अनादि सहज स्वभाव है। ये, तथा इसी तरह के दूसरे हजारों प्रमाण आत्मा को 'नित्य' प्रतिपादन कर सकते हैं तथा उसका विशेष विचार करने पर नित्य रूप से सहज रूप आत्मा अनुभव में भी आता है। इस कारण सुख-दुख आदि भोगने वाले उससे निवृत्त होने वाले, विचार करने वाले, प्रेरणा करने वाले इत्यादि भाव जिसकी विद्यमानता से अनुभव में आते हैं, ऐसी वह आत्मा मुख्य चेतन (ज्ञान) लक्षण से युक्त है और उस भाव से (स्थिति से) वह सब काल में रह सकने वाला 'नित्य पदार्थ' है। ऐसा मानने में कोई भी दोष अथवा बाधा मालूम नहीं होती, बल्कि इससे सत्य के स्वीकार करने रूप-गुण की ही प्राप्ति होती है।

यह प्रश्न तथा तुम्हारे दूसरे बहुत से प्रश्न इस तरह के हैं कि जिनमें विशेष लिखने, कहने और समझाने की आवश्यकता है। उन प्रश्नों का उस प्रकार से उत्तर लिखा जाना हाल में कठिन होने से प्रथम तुम्हें षट्दर्शन समुच्चय ग्रन्थ भेजा था, जिसके बाँचने और विचार करने से तुम्हें किसी भी अंश में समाधान हो; और इस पत्र से भी कुछ विशेष अंश में समाधान हो सकना संभव है। क्योंकि इस सम्बन्ध में अनेक प्रश्न उठ सकते हैं जिनके फिर-फिर समाधान होने से, विचार करने से समाधान होगा।

(२) ज्ञान दशा में—अपने स्वरूप में यथार्थ बोध से उत्पन्न हुई दशा में—वह

आत्मा निज भाव का अर्थात् ज्ञान, दर्शन (यथा-स्थित निश्चय) और सहज-समाधि परिणाम का कर्त्ता है; अज्ञान दशा में क्रोध, मान, माया, लोभ इत्यादि प्रकृतियों का कर्म है; और उस भाव के फल भोक्ता होने से प्रसंगवश घट-पट आदि पदार्थों का निमित्त रूप से कर्ता है। अर्थात् घट पट आदि पदार्थों का मूल द्रव्यों का वह कर्त्ता नहीं, परन्तु उसे किसी आकार में लाने रूप क्रिया का ही कर्त्ता है। यह जो पीछे की दशा कही है, जैनदर्शन उसे 'कर्म' कहता है, वेदान्त दर्शन उसे 'भ्रान्ति' कहता है, और दूसरे दर्शन भी इसी से मिलते-जुलते इसी प्रकार के शब्द कहते हैं। वास्तविक विचार करने से आत्मा घट-पट आदि का तथा क्रोध आदि का कर्त्ता नहीं हो सकती, है—वह केवल निजस्वरूप ज्ञान-परिणाम का ही कर्त्ता है—ऐसा स्पष्ट समझ में आता है।

(३) अज्ञानभाव से किए हुए कर्म प्रारम्भकाल से बीजरूप होकर समय का योग पाकर फलरूप वृक्ष के परिणाम से परिणमते हैं, अर्थात् उन कर्मों को आत्मा को भोगना पड़ता है। जैसे अग्नि के स्पर्श से उष्णता का सम्बन्ध होता है और वह उसका स्वाभाविक वेदनारूप परिणाम होता है, वैसे ही आत्मा को क्रोध आदि भाव के कर्त्तापने से जन्म, जरा, मरण आदि वेदनारूप परिणाम होता है। इस बात का तुम विशेषरूप से विचार करना और उस सम्बन्ध में यदि कोई प्रश्न हो तो लिखना। क्योंकि इस बात को समझकर उससे निवृत्त होने रूप कार्य करने पर जीव को मोक्ष दशा प्राप्त होती है।

प्रश्न (२)—ईश्वर क्या है? वह जगत का कर्त्ता है, क्या वह सच है?

उत्तर—(१) हम-तुम कर्म-बन्धन में फंसे रहने वाले जीव हैं। उस जीव का सहज स्वरूप अर्थात कर्मरहितपना—मात्र एक आत्मा स्वरूप जो स्वरूप है, वही ईश्वरपना है। जिसमें ज्ञान आदि ऐश्वर्य हैं वह ईश्वर कहे जाने योग्य है और वह ईश्वरपना आत्मा का सहज स्वरूप है। जो स्वरूप कर्म के कारण मालूम नहीं होता, परन्तु उस कारण को अन्य स्वरूप जानकर जब आत्मा की ओर दृष्टि होती है, तभी अनुकर्म से सर्वज्ञता आदि ऐश्वर्य उसी आत्मा में मालूम होता है। और इससे विशेष ऐश्वर्ययुक्त कोई पदार्थ—कोई भी पदार्थ ईश्वर नहीं है इस प्रकार का निश्चय से मेरा अभिप्राय है।

(२) वह जगत का कर्ता नहीं है अर्थात् परमाणु आकाश आदि पदार्थ नित्य ही होने संभव हैं, वे किसी भी वस्तु में से बनने संभव नहीं। कदाचित ऐसा मानें कि वे ईश्वर में से बने हैं तो यह बात भी योग्य मालूम नहीं होती, क्योंकि यदि ईश्वर को चेतन मानें तो फिर उससे आकाश वगैरह कैसे उत्पन्न हो सकते हैं? क्योंकि चेतन से जड़ की उत्पत्ति कभी संभव ही नहीं होती। यदि ईश्वर को जड़ माना जाय तो वह सहज ही अनैश्वर्यवान ठहरता है तथा उससे जीवरूप चेतन पदार्थ की उत्पत्ति भी नहीं हो सकती। यदि ईश्वर को जड़ और चेतन उभयरूप मानें तो फिर जगत भी जड़ चेतन उभयरूप होना चाहिये। फिर तो यह उसका ही दूसरा नाम ईश्वर रखकर संतोष रखने जैसा होता है। तथा जगत का नाम ईश्वर रखकर संतोष रख लेने की अपेक्षा जगत को जगत कहना ही विशेष योग्य है। कदाचित परमाणु, आदि को नित्य मानें और ईश्वर को कर्म आदि के फल देने वाला मानें, तो भी यह बात सिद्ध होती हुई नहीं मालूम होती। इस विषय पर षट्दर्शन समुच्चय में श्रेष्ठ प्रमाण दिये हैं।

प्रश्न (३)—मोक्ष क्या है ?

उत्तर— जिस क्रोध आदि अज्ञानाभाव में देह आदि में आत्मा को प्रतिबन्ध है, उससे सर्वथा निवृत्ति होना—मुक्ति होना—उसे ज्ञानियों ने मोक्ष पद कहा है। उसका थोड़ा सा विचार करने से वह प्रमाणभूत मालूम होता है।

प्रश्न (४)—मोक्ष मिलेगा या नहीं ? क्या यह इसी देह में निश्चित रूप से जाना जा सकता है ?

उत्तर—जैसे यदि एक रस्सी के बहुत से बन्धनों से हाथ बांध दिया गया हो, और उनमें से क्रम-क्रम से ज्यों-ज्यों बन्धन खुलते जाते हैं त्यों-त्यों उस बन्धन की निवृत्ति का अनुभव होता है, और वह रस्सी बलहीन होकर स्वतन्त्रभाव को प्राप्त होती है, ऐसा मालूम होता है, अनुभव में आता है, उसी तरह आत्मा को अज्ञानभाव के अनेक परिणाम रूप बन्धन का समागम लगा हुआ है, वह बन्धन ज्यों-ज्यों छूटता जाता है, त्यों-त्यों मोक्ष का अनुभव होता है। और जब उसकी अत्यन्त अल्पता हो जाती है तब सहज ही आत्मा में निजभाव प्रकाशित होकर अज्ञान-भावरूप बन्धन से छूट सकने का अवसर आता है, इस प्रकार स्पष्ट अनुभव होता है तथा सम्पूर्ण आत्माभाव समस्त अज्ञान आदि भाव से निवृत होकर इसी देह में रहने पर भी आत्मा को प्रगट होता है, और सर्व सम्बन्ध से केवल अपनी भिन्नता ही अनुभव में आती है, अर्थात् मोक्ष-पद इस देह में भी अनुभव में आने योग्य है।

प्रश्न (५) —ऐसा पढने में आया है कि मनुष्य देह छोड़ने के बाद कर्म के अनुसार जानवरों में जन्म लेता है; वह पत्थर और वृक्ष भी हो सकता है, क्या यह ठीक है ?

उत्तर :—देह छोड़ने के बाद उपार्जित कर्म के अनुसार ही जीव की गति होती है, इससे वह तिर्यंच (जानवर) भी होता है; और पृथ्वीकाय अर्थात् पृथ्वीरूप शरीर भी धारण करता है और बाकी की दूसरी चार इन्द्रियों के बिना भी जीव को कर्म के भोगने का प्रसंग आता है, परन्तु वह सर्वथा पत्थर अथवा पृथ्वी ही हो जाता है, यह बात नहीं है। वह पत्थर रूप काया धारण करता है और उसमें भी अव्यक्त भाव से जीव, जीवरूप से ही रहता है। वहां दूसरी चार इन्द्रियों का अव्यक्त (अप्रगट) पनाह होने से वह पृथ्वीकाय रूप जीव कहे जाने योग्य है। क्रम-क्रम से ही उस कर्म को भोग कर जीव निवृत्त होता है। उस समय केवल पत्थर का दल परमाणु रूप से रहता है, परन्तु उसमें जीव का सम्बन्ध चला आता है, इसलिए उसे आहार आदि संज्ञा नहीं होती। अर्थात् जीव सर्वथा जड़—पत्थर—हो जाता है, यह बात नहीं है। कर्म की विषमता से चार इन्द्रियों का अव्यक्त समागम होकर केवल एक स्पर्श हम इन्द्रिय रूप से जीव को जिस कर्म से देह का समागम होता है, उस कर्म के भोगते हुए वह पृथ्वी आदि में जन्म लेता है, परन्तु वह सर्वथा पृथ्वी रूप अथवा पत्थर रूप नहीं हो जाता; जानवर होते समय सर्वथा जानवर भी नहीं हो जाता। जो देह है वह जीव का वेषधारीपना है, स्वरूपपना नहीं है।

प्रश्नोत्तर (६-७)—इसमें छठे प्रश्न का भी समाधान आ गया है।

इसमें सातवें प्रश्न का भी समाधान आ गया है, कि केवल पत्थर अथवा पृथ्वी किसी कर्म का कर्त्ता नहीं है। उनमें आकर उत्पन्न हुआ जीव ही कर्म का कर्त्ता है, और वह भी दूध और पानी की तरह है जैसे दूध और पानी का संयोग होने पर भी दूध दूध है और पानी पानी ही है, उसी तरह एकेन्द्रिय आदि कर्मबन्ध से जीव का पत्थरपना—जड़पना—मालूम होता है, तो भी वह जीव अन्तर में तो जीवरूप ही है, और वहां भी वह आहार, भय आदि संज्ञापूर्वक ही रहता है, जो अव्यक्त जैसी है।

प्रश्न (८)—आर्यधर्म क्या है? क्या सबकी उत्पत्ति वेद से ही हुई है?

उत्तर:—(१) आर्यधर्म की व्याख्या करते हुए सबके सब अपने पक्ष को ही आर्यधर्म कहना चाहते हैं। जैन जैनधर्म को, बौद्ध बौद्धधर्म को, वेदान्ती वेदान्त धर्म को आर्यधर्म कहें, यह साधारण बात है। फिर भी ज्ञानी पुरुष तो जिससे आत्मा को निज स्वरूप की प्राप्ति हो, ऐसा जो आर्य (उत्तम) मार्ग है उसे ही आर्यधर्म कहते हैं, और ऐसा ही योग्य है।

(२) सबकी उत्पत्ति वेद में से होना सम्भव नहीं हो सकता। वेद में जितना ज्ञान कहा गया है उससे हजारगुना आशययुक्त ज्ञान श्री तीर्थङ्कर आदि महात्माओं ने कहा है, ऐसा मेरे अनुभव में आता है; और इससे मैं ऐसा मानता हूँ कि अल्प वस्तु में से सम्पूर्ण वस्तु उत्पन्न नहीं हो सकती। इस कारण वेद में से सबकी उत्पत्ति मानना योग्य नहीं है। हाँ, वैष्णव आदि सम्प्रदायों की उत्पत्ति उसके आश्रय से मानने में कोई बाधा नहीं है। जैन-बौद्ध के अन्तिम महावीरादि महात्माओं के पूर्व वेद विद्यमान थे, ऐसा मालूम होता है। तथा वेद बहुत प्राचीन ग्रन्थ हैं, ऐसा भी मालूम होता है, परन्तु जो कुछ प्राचीन हो, वह सम्पूर्ण हो अथवा सत्य हो, ऐसा नहीं कहा जा सकता; तथा जो पीछे से उत्पन्न हो, वह सब सम्पूर्ण और असत्य हो ऐसा भी नहीं कहा जा सकता। बाकी तो वेद के समान अभिप्राय और जैन के समान अभिप्राय अनादि से चला आ रहा है। सर्वभाव अनादि ही हैं, मात्र उनका रूपान्तर हो जाता है, सर्वथा उत्पत्ति अथवा सर्वथा नाश नहीं होता। वेद, जैन, और सबके अभिप्राय अनादि हैं ऐसा मानने में कोई बाधा नहीं है, फिर उसमें किस बात का विवाद हो सकता है? फिर भी इनमें विशेष बलवान सत्य अभिप्राय किसका मानना योग्य है, इसका हम तुम सबको विचार करना चाहिए।

प्रश्न (९)—वेद किसने बनाये? क्या वे अनादि हैं। यदि वेद अनादि हों तो अनादि का क्या अर्थ है?

उत्तर:—(१) वेदों की उत्पत्ति बहुत समय पहले हुई है।

(२) पुस्तक रूप से कोई भी शास्त्र अनादि नहीं; और उसमें कहे हुए अर्थ के अनुसार तो सभी शास्त्र अनादि हैं। क्योंकि उस-उस प्रकार का अभिप्राय भिन्न-भिन्न जीव भिन्न-भिन्न रूप से कहते आये हैं, और ऐसा ही होना सम्भव है। क्रोध आदि भाव भी अनादि हैं। हिंसा आदि धर्म भी अनादि हैं और अहिंसा आदि धर्म भी अनादि हैं। केवल जीव को हितकारी किया है, इतना विचार करना ही कार्यकारी है। अनादि तो दोनों हैं, फिर कभी किसी का कम मात्रा में बल होता है और कभी किसी का विशेष मात्रा में बल होता है।

प्रश्न (१०)—गीता किसने बनाई है ? वह ईश्वरकृत तो नहीं है ? यदि ईश्वरकृत हो तो इसका कोई प्रमाण है।

उत्तर :—ऊपर कहे हुए उत्तरों से इसका बहुत कुछ समाधान हो सकता है। अर्थात् 'ईश्वर' का अर्थ ज्ञानी (सम्पूर्ण ज्ञानी) करने से तो वह ईश्वरकृत हो सकती है; परन्तु नित्य, निष्क्रिय आकाश की तरह ईश्वर के व्यापक स्वीकार करने पर उस प्रकार की पुस्तक आदि की उत्पत्ति होना सम्भव नहीं। क्योंकि वह तो साधारण कार्य है, जिसका कर्तृत्व आरम्भपूर्वक ही होता है—अनादि नहीं होता।

गीता वेदव्यासजी की रची हुई पुस्तक मानी जाती है, और महात्मा श्रीकृष्ण ने अर्जुन को इस प्रकार का बोध किया था, इसलिए मुख्यरूप से श्रीकृष्ण ही उसके कर्त्ता कहे जाते हैं, यह बात सम्भव है। ग्रन्थ श्रेष्ठ है। उस तरह का आशय अनादि काल से चला आ रहा है, परन्तु वे ही श्लोक अनादि से चले आते हों, यह सम्भव नहीं है; तथा निष्क्रिय ईश्वर से उसकी उत्पत्ति होना भी सम्भव नहीं। वह क्रिया किसी सक्रिय अर्थात् देहधारी से ही होने योग्य है, इसलिए जो सम्पूर्ण ज्ञानी है वह ईश्वर है, और उसके द्वारा उपदेश किए हुए शास्त्र ईश्वरीय शास्त्र हैं, यह मानने में कोई बाधा नहीं है।

प्रश्न (११)—पशु आदि के यज्ञ करने से थोड़ा सा भी पुण्य होता है, क्या यह सच है ?

उत्तर :—पशु के बध से, होम से अथवा उसे थोड़ा-सा भी दुःख देने से पाप ही होता है। फिर उसे यज्ञ में करो अथवा चाहे तो ईश्वर के धाम में बैठकर करो परन्तु यज्ञ में जो दान आदि क्रियाएँ होती हैं, वे कुछ पुण्य की कारणभूत हैं। फिर भी हिंसा-मिश्रित होने से उनका भी अनुमोदन करना योग्य नहीं है।

प्रश्न (१२)—जिस धर्म को आप उत्तम कहते हो, क्या उसका कोई प्रमाण दिया जा सकता है ?

उत्तर :—प्रमाण तो कोई दिया न जाय, और इस प्रकार प्रमाण के बिना ही यदि उसकी उत्तमता का प्रतिपादन किया जाय तो फिर तो अर्थ-अनर्थ, धर्म-अधर्म सभी को उत्तम कहा जाना चाहिए। परन्तु प्रमाण से ही उत्तम-अनुत्तम की पहचान होती है। जो धर्म संसार के क्षय करने में सबसे उत्तम हो और निज स्वभाव में स्थित कराने में बलवान हो, वही धर्म उत्तम और वही धर्म बलवान है।

प्रश्न (१३)—क्या आप ख्रिस्टीधर्म के बिषय में कुछ जानते हैं ? यदि जानते हैं तो क्या आप अपने बिचार प्रगट करेंगे ?

उत्तर—ख्रिस्टीधर्म के विषयों में साधारण ही जानता हूँ। भरत खण्ड के महात्माओं ने जिस तरह के धर्म की शोध की है, विचार किया है, उस तरह|के धर्म का किसी दूसरे देश के द्वारा विचार नहीं किया गया, यह तो थोड़े से अभ्यास से ही समझ में आ सकता है। उसमें (ख्रिस्टीधर्म) जीव की सदा परवशता कही गई है, और वह दशा मोक्ष में भी इसी तरह की मानी गई है, जिसमें

जीव के अनादि स्वरूप का तथा योग्य विवेचन नहीं है, जिसमें कर्मबन्ध की व्यवस्था और उसकी निवृत्ति भी जैसी चाहिए वैसी नहीं कही, उस धर्म का मेरे अभिप्राय के अनुसार सर्वोत्तम धर्म होना सम्भव नहीं है। ख्रिस्ती धर्म में जैसा मैंने ऊपर कहा, उस प्रकार जैसा चाहिए वैसा समाधान देखने में नहीं आता। इस वाक्य को मैंने मतभेद के वश होकर नहीं लिखा अधिक पूछने योग्य मालूम हो तो पूछना—तब विशेष समाधान हो सकेगा।

प्रश्न (१४)—वे लोग ऐसा कहते हैं कि बाइबल ईश्वर-प्रेरित है। ईसा ईश्वर का अवतार है—वह उसका पुत्र है और था।

उत्तर :—यह बात तो श्रद्धा से ही मान्य हो सकती है, परन्तु यह प्रमाण से सिद्ध नहीं होती। जो बात गीत और वेद के ईश्वर कर्तृत्व के विषय में लिखी है, वही बात बाइबल के सम्बन्ध में भी समझना चाहिए। जो जन्म-मरण से मुक्त हो, वह ईश्वर अवतार ले, यह सम्भव नहीं है। क्योंकि राग-द्वेष आदि परिणाम ही जन्म के हेतु हैं, ये जिसके नहीं है, ऐसा ईश्वर का अवतार धारण करे, यह बात विचारने से यथार्थ नहीं मालूम होती। 'वह ईश्वर का पुत्र है और था' इस वात को भी यदि किसी रूपक के तौर पर विचार करें तो ही यह कदाचित ठीक बैठ सकती है, नहीं तो यह प्रत्यक्ष प्रमाण से बाधित है। मुक्त ईश्वर के पुत्र हों, यह किस तरह माना जा सकता है ? और यदि मानें भी तो उसकी उत्पत्ति किस प्रकार स्वीकर कर सकते हैं ? और यदि दोनों को अनादि मानें तो उनका पिता-पुत्र सम्बन्ध किस तरह ठीक बैठ सकता है ? इत्यादि बातें विचारणीय हैं जिनके विचार करने से मुझे ऐसा लगता है कि वह बात यथायोग्य नहीं मालूम हो सकती।

प्रश्न (१५)—पुराने करार में जो भविष्य कहा गया है, क्या वह ईसा के विषय में ठीक-ठीक उतरा है ?

उत्तर—यदि ऐसा हो तो भी उससे उन दोनों शास्त्रों के विषय में विचार करना योग्य है तथा इस प्रकार का भविष्य भी ईसा को ईश्वरावतार कहने में प्रबल प्रमाण नहीं है, क्योंकि ज्योतिष आदि से भी महात्मा की उत्पत्ति जानी जा सकती है। अथवा भले ही किसी ज्ञान से वह बात कही हो, परन्तु वह भविष्यवेत्ता सम्पूर्ण मोक्ष-मार्ग का जानने वाला था यह बात जब तक ठीक-ठीक प्रमाणभूत न हो, तब तक वह भविष्य वगैरह केवल एक श्रद्धा—ग्राह्य प्रमाण ही है, और वह दूसरे प्रमाणों से बाधित न हो, यह बुद्धि में नहीं आ सकता।

प्रश्न (१६)—इस प्रश्न में 'ईसामसीह' के चमत्कार के विषय में लिखा है।

उत्तर :—जो जीव काया में से सर्वथा निकलकर चला गया है, उसी जीव को यदि उसी काया में दाखिल किया गया हो अथवा यदि दूसरे जीव को उसी काया में दाखिल किया गया हो तो यह होना सम्भव नहीं है, और यदि ऐसा हो तो फिर कर्म आदि की व्यवस्था भी निष्फल ही हो जाय। बाकी योग आदि की सिद्धि से बहुत से चमत्कार उत्पन्न होते हैं; और उस प्रकार के बहुत से चमत्कार ईसा के हुए हों सो यह सर्वथा मिथ्या है, अथवा असम्भव है ऐसा

नहीं कह सकते। उस तरह सिद्धियां आत्मा के ऐश्वर्य के सामने अल्प हैं—आत्मा के ऐश्वर्य का महत्व इससे अनंतगुना है। इसके विषय में समागम होने पर पूछना योग्य है।

प्रश्न (१७)—आगे चलकर कौन सा जन्म होगा, क्या इस बात की इस जन्म में खबर पड़ सकती है? अथवा पूर्व में कौन स. ज.न्म था इसकी कुछ खबर पड़ सकती है?

उत्तर:—हां, यह हो सकता है, जिसे निर्मल ज्ञान हो गया हो उसे वैसा होना सम्भव है। जैसे बादल इत्यादि के चिन्हों के ऊपर से बरसात का अनुमान होता है, वैसे ही इस जीव की इस भव की चेष्टा के ऊपर से उसके पूर्व कारण कैसे होने चाहिएँ, यह भी समझ में आ सकता है—चाहे थोड़े ही अंशों से समझ में आये। इसी तरह वह चेष्टा भविष्य में किस परिमाण को प्राप्त करेगी, यह भी उसके स्वरूप के ऊपर से जाना जा सकता है, और उसके विशेष विचार करने पर भविष्य में किस भव का होना सम्भव है, तथा पूर्व में कौन सा भव था, यह भी अच्छी तरह विचार में आ सकता है।

प्रश्न (१८)—दूसरे भव की खबर किसे पड़ सकती है?

उत्तर:—इस प्रश्न का उत्तर ऊपर आ चुका है।

प्रश्न (१९)—जिन मोक्ष-प्राप्त पुरुषों के नाम का आप उल्लेख करते हो, वह किस आधार से करते हो?

उत्तर:—इस प्रश्न को यदि मुझे खास तौर पर लक्ष्य करके पूछते हो तो उसके उत्तर में यह कहा जा सकता है कि जिसकी संसार दशा अत्यन्त परिक्षीण हो गई है, उसके वचन इस प्रकार के सम्भव हैं, उसकी चेष्टा इस प्रकार की सम्भव है इत्यादि अंश से भी अपनी आत्मा में जो अनुभव हुआ हो, उसके आधार से उन्हें मोक्ष हुआ कहा जा सकता है; प्रायः करके वह यथार्थ ही होता है। ऐसा मानने में जो प्रमाण हैं वे भी शास्त्र आदि से जाने जा सकते हैं।

प्रश्न (२०)—बुद्धदेव ने भी मोक्ष नहीं पाई, यह आप किस आधार से कहते हो?

उत्तर:—उनके शास्त्र-सिद्धान्तों के आधार से। जिस तरह से उनके शास्त्र-सिद्धान्त हैं, यदि उसी तरह उनका अभिप्राय हो तो वह अभिप्राय पूर्वापर विरुद्ध भी दिखाई देता है, और वह सम्पूर्ण ज्ञान का लक्षण नहीं है।

जहाँ सम्पूर्ण ज्ञान नहीं होता वहां सम्पूर्ण राग-द्वेष का नाश होना सम्भव नहीं। जहां वैसा हो वहां संसार को होना सम्भव है। इसलिए उन्हें सम्पूर्ण मोक्ष मिली हो, ऐसा नहीं कहा जा सकता। और उनके कहे हुए शास्त्रों में जो अभिप्राय है उसको छोड़कर उसका कुछ दूसरा ही अभिप्राय था, उसे दूसरे प्रकार से तुम्हें और हमें जानना कठिन पड़ता है; और फिर भी यदि कहें कि बुद्धदेव का अभिप्राय कुछ दूसरा ही था तो उसे कारणपूर्वक कहने से वह प्रमाणभूत न समझा जाय, यह बात नहीं है।

प्रश्न (२१)—दुनिया की अन्तिम स्थिति क्या होगी?

उत्तर:—सब जीवों को सर्वथा मोक्ष हो जाय, अथवा इस दुनिया का सर्वथा नाश ही

हो जाये, ऐसा होना मुझे प्रमाणभूत नहीं मालूम होता। इसी तरह के प्रवाह में उसकी स्थिति रहती है। कोई भाव रूपान्तरित होकर क्षीण हो जाता है, तो कोई वर्धमान होता है; वह एक क्षेत्र में बढ़ता है, तो दूसरे क्षेत्र में घट जाता है, इत्यादि रूप से इस सृष्टि की स्थिति है। इसके ऊपर से और बहुत ही गहरे विचार में उतरने के पश्चात् ऐसा कहना सम्भव है कि यह सृष्टि सर्वथा नाश हो जाय, अथवा इसकी प्रलय हो जाय, यह कहना सम्भव नहीं। सृष्टि का अर्थ एक इसी पृथ्वी को नहीं समझना चाहिए।

प्रश्न (२२)—इस अनीति में से सुनीति उद्भूत होगी, क्या यह ठीक है ?

उत्तर :—इस प्रश्न का उत्तर सुनकर जो जीव अनीति की इच्छा करता है, उसके लिए इस उत्तर को उपयोगी होने देना योग्य नहीं। नीति-अनीति सर्वभाव अनादि हैं। फिर भी हम-तुम अनीति का त्याग करके यदि नीति को स्वीकार करें, तो इसे स्वीकार किया जा सकता है, और यही आत्मा का कर्तव्य है। और सब जीवों की अपेक्षा अनीति दूर करके नीति का स्थापन किया जाय, यह वचन नहीं कहा जा सकता; क्योंकि एकान्त से उस :कार की स्थिति का हो सकना सम्भव नहीं।

प्रश्न (२३)—क्या दुनिया की प्रलय होती है ?

उत्तर :—प्रलय का अर्थ यदि सर्वथा नाश होना किया जाय तो यह बात ठीक नहीं। क्योंकि पदार्थ का सर्वथा नाश हो जाना सम्भव नहीं है। यदि प्रलय का अर्थ सब पदार्थों का ईश्वर आदि में लीन होना किया जाय तो किसी अभिप्राय से यह बात स्वीकृत हो सकती है, परन्तु मुझे यह सम्भव नहीं लगती। क्योंकि सब पदार्थ सब जीव इस प्रकार समपरिणाम को किस तरह प्राप्त कर सकते हैं, जिससे इस प्रकार का संयोग बने ? और यदि उस प्रकार के परिणाम का प्रसंग आये भी तो फिर विषमता नहीं हो सकती।

यदि अव्यक्त रूप से जीवन में विषमता और व्यक्त रूप से समता के होने को प्रलय स्वीकार करें तो भी देह आदि सम्बन्ध के बिना विषमता किस आधार से रह सकती है ? यदि देह आदि का सम्बन्ध मानें तो सबको एकेन्द्रियपना मानने का प्रसंग आये; और वैसा मानने से तो बिना कारण ही दूसरी गतियों का निषेध मानना चाहिए—अर्थात् ऊंची गति के जीव को यदि उस प्रकार के परिणाम का प्रसंग दूर होने आया हो तो उसके प्राप्त होने का प्रसंग उपस्थित हो, इत्यादि बहुत से विचार उठते हैं। अतएव सर्व जीवों की अपेक्षा प्रलय होना सम्भव नहीं है।

प्रश्न (२४)—अनपढ़ को भक्ति करने से मोक्ष मिलती है, क्या यह सच है ?

उत्तर :—भक्ति ज्ञान का हेतु है। ज्ञान मोक्ष का हेतु है। जिसे अक्षरज्ञान न हो यदि उसे अनपढ़ कहा हो तो उसे भक्ति प्राप्त होना असम्भव है, यह कोई बात नहीं है। प्रत्येक जीव ज्ञानस्वभाव से युक्त है। भक्ति के बल से ज्ञान निर्मल होता है। सम्पूर्ण ज्ञान की आवृत्ति

हुए बिना सर्वथा मोक्ष हो जाय, ऐसा मुझे मालूम नहीं होता; और जहाँ सम्पूर्ण ज्ञान है वहाँ सर्व भाषा-ज्ञान समा जाता है, यह कहने की भी आवश्यकता नहीं। भाषाज्ञान मोक्ष का हेतु है ? तथा वह जिसे न हो उसे बाकी दूसरी उपासना सर्वथा मोक्ष का हेतु नहीं है—वह उसके साधन का ही हेतु होती है। वह भी निश्चय से हो ही, ऐसा नहीं कहा जा सकता।

प्रश्न (२५)—ब्रह्मा, विष्णु और महेश्वर कौन थे ?

उत्तर :—सृष्टि के हेतु रूप तीनों गुणों को मानकर उनके आश्रम से उनका यह रूप बताया हो, तो यह बात ठीक बैठ सकती है, तथा उस प्रकार के दूसरे कारणों से उन ब्रह्मा आदि का स्वरूप समझ में आता है परन्तु पुराणों में जिस प्रकार से उनका स्वरूप कहा है, वह स्वरूप उसी प्रकार से है, ऐसा मानने में मेरा विशेष झुकाव नहीं है। क्योंकि उनमें बहुत से रूपक उपदेश के लिए कहे हों, ऐसी भी मालूम होता है। फिर भी उसमें उनका उपदेश के रूप में लाभ लेना, और ब्रह्मा आदि के स्वरूप का सिद्धान्त करने की जंजाल में न पड़ना, यही मुझे ठीक लगता है।

प्रश्न (२६)—यदि मुझे सर्प काटने आवे तो उस समय मुझे उसे काटने देना चाहिए या उसे मार डालना चाहिए ? यहाँ ऐसा मान लेते हैं कि उसे किसी दूसरी तरह हटाने की मुझमें शक्ति नहीं है ?

उत्तर :—सर्प को तुम्हें काटने देना चाहिए, यह काम बताने के पहले तो कुछ सोचना पड़ता है, फिर भी यदि तुमने यह जान लिया हो कि देह अनित्य है, तो फिर इस आसारभूत देह की रक्षा के लिए, जिसकी उसमें प्रीति है, ऐसे सर्प को मारना तुम्हें कैसे योग्य हो सकता है ? जिसे आत्महित की चाहना है, उसे तो फिर अपनी देह को छोड़ देना ही योग्य है। कदाचित यदि किसी को आत्म-हित की इच्छा न हो तो उसे क्या करना चाहिए ? तो इसका उत्तर यही दिया जा सकता है कि उसे नरक आदि में परिभ्रमण करना चाहिए; अर्थात् सर्प को मार देना चाहिए। परन्तु ऐसा उपदेश हम कैसे कर सकते हैं ? यदि अनार्य-वृत्ति हो तो उसे मारने का उपदेश किया जाय, परन्तु वह तो हमें और तुम्हें स्वप्न में भी न हो, यही इच्छा करना योग्य है।

अब संक्षेप में इन उत्तरों को लिखकर पत्र समाप्त करता हूँ। षट्दर्शन समुच्चय के समझने का विशेष प्रयत्न करना। मेरे इन प्रश्नोत्तरों के लिखने के संकोच से तुम्हें इनका समझना विशेष आकुलताजनक हो, ऐसा यदि जरा भी मालूम हो, तो भी विशेषता से विचार करना, और यदि कुछ भी पत्र द्वारा पूछने योग्य मालूम दे तो यदि पूछोगे यो प्रायः करके उसका उत्तर लिखूंगा। विशेष समागम होने पर समाधान होना अधिक योग्य लगता है।

लिखित आत्मस्वरूप में नित्य निष्ठा के हेतु भूत विचार की चिंता में रहने वाले रायचन्द का प्रणाम !

❀ ❀ ❀

वीर-भूमि पंजाब

सरदार इन्द्रजीतसिंह 'तुलसी'

भारत भूमि वीरगर्भा है। देश की रक्षा के अवसर पर सभी प्रांतों के नर-नारी एक-दूसरे से आगे बढ़कर अपना सर्वस्व बलिदान करने के लिए आतुर रहते हैं। परन्तु भारत की तलवार पंजाब में कुछ अपनी विशेषताएं हैं। देश का सीमांत प्रदेश होने के कारण यहां के वीर-पुरुषों ने समय-समय पर जो अपने जौहर दिखाए वह अन्य प्रांतों के लिए ईर्ष्या की वस्तु है।

पंजाब प्रदेश के निवासी वीर, साहसी, पराक्रमी और तेजस्वी हैं। सेना में उनकी ही अधिक संख्या है। पंजाब-केसरी लाला लाजपतराय, वीरों के सरदार भगतसिंह आदि नर-रत्नों को जन्म देने वाली यही वीर-भूमि है। यहां की मिट्टी में कुछ ऐसा आकर्षण है कि मनुष्य को कर्तव्यशील और साहसी बना देती है। देश के बँटवारा होने पर पंजाब को अपरिमित हानि हुई, परन्तु साहसी पंजाबियों ने उसकी रंचमात्र भी परवा न करके नए सिरे से पंजाब का निर्माण कर डाला। स्व० प्रधानमन्त्री पं० जवाहरलालजी इस बात के लिए पंजाब की बड़ी प्रशंसा करते थे जो वास्तव में उचित ही थी। दिल्ली में कई प्रख्यात जैन परिवार पंजाब के हैं जिन्होंने अपने उद्यम, साहस और परिश्रम के बल पर धन के अर्जन तथा सामाजिक और देश-सम्बन्धी सेवा-कार्यों में अच्छी ख्याति प्राप्त की है। लाला तनसुखराय जी भी पंजाब (रोहतक) जिले से आकर दिल्ली में बसे थे। उन्होंने अपने कार्यों से देश और समाज की प्रशंसनीय सेवा की। वीर-भूमि पंजाब के सम्बन्ध में सरदार इन्द्रजीतसिंह तुलसी की एक कविता और एक पत्र प्रस्तुत करते हैं जो पंजाबियों के भावों को दर्शाने के लिए अलम है।

पंजाब

जद जद बुलाया देश ने, पंजाब अग्गे आ गया,
सब तो जियादा खून ते, धन दी आहुत्ती पा गया।
दित्ता सुहागन कंत हैं, मावां ने दित्ता पुत्त है।
हर इक्क हिन्दी वास्ते, आई शहीदी रुत्त है।
इक इक बहादुर फौजदा, इक इक हिमालय बन गया,
मरदा होया होशियारसिंह, गौंदा है जन गन मन गया।
निक्का जया सूबा किसे, मंगया सी मैंनू याद है।
हिन्दी जवां दे शोर ने, डंगिया सी मैंनू याद है।
सूबे ते हिन्दी वालेयो, पूरा होया हुने ख्वाब है।
नेफ़ा तो अज लद्दाख तक, पंजाब ही पंजाब है।

एक स्त्री का पति अगले मोर्चों की बर्फानी ऊँचाइयों में दुश्मन का मुकाबला करते हुए शहीद हो गया। उसको पंजाब के मुख्यमंत्री सरदार प्रतापसिंह कैरों ने पत्र लिखा—"मेरी लाड़ली, तू तो मेरी अपनी ही बच्ची है। तेरी जो कीमती चीज खो गई है, उसके नुकसान ने मेरी कमर

भी तोड़ दी है। लेकिन बिटिया, प्यारी चीज़ें सबको हमेशा प्यारी लगती हैं। तुम्हारा सरदार तुम्हें ही नहीं, सारे देश को प्यारा था, वाहेगुरु को प्यारा था, इसलिए वाहेगुरु को प्यारा हो गया। उसने वीरता के वे जौहर दिखाये हैं कि फरिश्ते भी उसकी जवांमर्दी पर ईर्ष्यालु हो उठे। चीजें टूटने-फूटने के वास्ते ही बनी हैं। लेकिन तुम्हारी चीज इसलिए टूटी है कि देश न टूटे। तुम्हारी एक मांग के सिन्दूर की जगह तुम्हारे दूल्हे ने देश की करोड़ों सुहागिनों की मांग में सिन्दूर भर दिया है। तेरा बच्चा सारे देश का प्यारा बच्चा है। तेरा दुःख सारे देश का दुःख है। हौसला कर मेरी बच्ची—हौसलाकर, और अपने बहादुर पति की आत्मा को प्रणाम करके बेशक कहदे कि वह विश्वास रखे कि उसकी इज्जत और आबरू की तरफ जिस किसी ने भी आंख उठाकर देखा तो मैं, तेरा बापू उस कमीने की आँखें फोड़ दूँगा।"

इस संदेश का जादू का प्रभाव उस नारी पर हुआ। उसने आंसुओं को पोंछकर बिखरे बालों को चेहरे पर से हटाया और तनकर बैठ गई है। उसने अपने बच्चे के सिर पर हाथ फेरकर कहा—मेरा भी एक संदेश मेरे स्नेहमयी पिता तक पहुँचा दीजिये—

"मैं इसलिए नहीं रो रही हूँ कि जाने वाला क्यों गया? वह तो अमर हो गया। लेकिन दुःख तो इस बात का है कि मेरे मासूम बच्चे करनैलसिंह की अंगुरी भी नहीं फूटी। कब यह जवान होगा और कब दुश्मनों से बदला चुका सकेगा। मेरे आँसू तो यही वरदान माँग रहे हैं कि जल्दी बड़ा होकर मेरा करनैलसिंह भी फौज का करनैल बने।"

युद्ध में जाते हुए वीर माता का संदेश—"मेरे बेटे, तुम युद्ध भूमि की ओर चले हो, दुश्मन पर विजय प्राप्त करके ही लौटना। मर जाना लेकिन मेरा दूध हराम न करना। मैं तुम्हें विजयी देखना चाहती हूँ।"

"ऐ मेरे देश के सिपाहियो! भगवान तुम्हारी रक्षा करे। मुझे यह पता नहीं कि तुम किस कोख के जाए हो लेकिन यह अवश्य जानता हूँ कि वीरता, पौरुष, दिलेरी और देश-प्रेम के साथ-साथ इन्सानियत, सहृदयता, उदारता, भक्ति और शक्ति के गुण तुम्हारे रक्त में मौजूद हैं। तुम्हारे रक्त के सिंचन ने बर्फ में आग के फूल खिला दिए हैं। जहाँ नग्न वृक्षों का शरीर ठिठुर-ठिठुर कर जम जाता है वहां तुम अग्नि-स्तम्भ बनकर खड़े हो।"

* * * *

हिन्द का जवाहर

महात्मा गांधी

पंडित जवाहरलाल हर तरह सुयोग्य हैं। उन्होंने वर्षों तक अनन्य योग्यता और निष्ठा के साथ महासभा (कांग्रेस) के मंत्री का काम किया है। अपनी बहादुरी, दृढ़ संकल्प, निष्ठा, सरलता, सच्चाई और धैर्य संपर्क में आये हैं। यूरोपीय राजनीति का जो सूक्ष्म परिचय उन्हें है, उससे उन्हें स्वदेश की राजनीति को समझने और निर्माण करने में बड़ी सहायता मिलेगी।

जिन्हें यह पता है कि जवाहरलाल का और मेरा सम्बन्ध है, वे यह भी जानते हैं कि वह सभापति हुए तो क्या और मैं हुआ तो क्या! विचार या बुद्धि के लिहाज से हममें मतभेद

भले ही हो, हमारे दिल तो एक हैं। दूसरे, यौवन-सुलभ उग्रता के रहते हुए भी, अपने कड़े अनुशासन और एकनिष्ठादि गुणों के कारण वह एक ऐसे अद्वितीय सखा हैं, जिनमें पूरा-पूरा विश्वास किया जा सकता है।

जहाँ उनमें एक योद्धा के समान साहस और चपलता है, वहाँ एक राजनीति की-सी बुद्धिमता तथा दूरन्देशी भी है। अनुशासन के वह पूरे भक्त हैं और ऐसे समय भी, जबकि अनुशासन में रहना अपमान-सा प्रतीत होता था, उन्होंने उसका कठोरता के साथ पालन करके बताया है। इसमें शक नहीं कि अपने आस-पास वालों के मुकाबले वह बहुत ज्यादा अतिवादी और गर्म दल के हैं, लेकिन साथ ही वह नम्र और व्यवहार-कुशल इतने हैं कि किसी बात पर इतना अधिक जोर नहीं देते कि वह अमान्य हो जाय। जवाहरलाल स्फटिक के समान शुद्ध हैं। उनकी सच्चाई के सम्बन्ध में तो शंका की गुंजाइश ही नहीं। वह एक निडर और निष्कलंक निर्दोष सरदार हैं। राष्ट्र उनके हाथों में सुरक्षित है।

भारत में नवयुवकों की कमी नहीं है, लेकिन जवाहरलाल के मुकाबले में खड़े होने वाले किसी नौजवान को मैं नहीं जानता। इतना मेरे दिल में उनके लिए प्रेम है, या कहिये कि मोह है। लेकिन यह प्रेम या मोह उनकी शक्ति के अनुसार स्थापित है और इसलिए मैं कहता हूं कि जब तक उनके हाथ में लगाम है, हम अपनी इच्छित वस्तु प्राप्त कर लें तो कितना अच्छा हो।

जवाहरलाल हिन्द का जवाहर सिद्ध हुआ है। उनके व्याख्यान में उच्चतम विचार, मधुर और नम्र भाषा में, प्रकट हुए हैं। अनेक विषयों का प्रतिपादन होने पर भी व्याख्यान छोटा है। आत्मा का तेज प्रत्येक वाक्य से झलकता है। कई लोगों के दिल में जो भय था, भाषण के बाद वह सब मिट गया। जैसा उनका व्यख्यान था, वैसा ही उनका आचरण भी था। कांग्रेस के दिनों में उन्होंने अपना सारा काम स्वतन्त्रता और संपूर्ण न्याय-बुद्धि से किया और अपना काम सतत उद्यम से करते रहने के कारण सब कुछ ठीक समय पर निर्विघ्नता के साथ पूर्ण हुआ।

ऐसे वीर और पुण्य नवयुवक के सभापतित्व में यदि हम कुछ न कर पायेंगे तो मुझे बड़ा आश्चर्य होगा। परन्तु यदि सेना ही नालायक हो तो वीर नायक भी कर क्या सकता है? इसलिए हमें आत्म-निरीक्षण करना चाहिए। क्या हम जवाहरलाल के नेतृत्व के लिए योग्य हैं? यदि हैं तो परिणाम शुभ ही होंगे।

पण्डित नेहरू ने अपने देश और उसकी वेदी पर अपने जीवन की समस्त अभिलाषाओं तथा ममताओं का बलिदान किया है। सबसे बड़ी विशेषता की बात यह है कि उन्होंने किसी दूसरे देश की सहायता से मिलनेवाली अपने देश की आजादी को कभी सम्मानपूर्ण नहीं समझा।

हमें अलग करने के लिए केवल मतभेद ही काफी नहीं है। हम जिस क्षण से सहकर्मी बने हैं, उसी क्षण से हमारे बीच में मतभेद रहा है, लेकिन फिर भी मैं वर्षों से कहता रहा हूँ और अब भी कहता हूँ कि जवाहरलाल मेरा उत्तराधिकारी होगा।......वह कहता है कि मेरी भाषा उसकी समझ में नहीं आती। वह यह भी कहता है कि उसकी भाषा मेरे लिए अपरिचित है। यह सही हो या न हो, किन्तु हृदयों की एकता में भाषा बाधक नहीं होती।

श्रौर मैं जानता हूँ कि जब मैं चला जाऊंगा, जवाहरलाल मेरी ही भाषा से बातें करेगा।

आपके असली बादशाह जवाहरलाल हैं। वह ऐसे बादशाह हैं, जो हिन्दुस्तान को तो अपनी सेवा देना चाहते ही हैं, पर उसके मार्फत सारी दुनिया को अपनी सेवा देना चाहते हैं। उन्होंने सभी देशों के लोगों से परिचय किया है।

जवाहर तो किसी से भी धोखा करने वाले नहीं हैं। जैसा उनका नाम है वैसा उनका गुण है।

वह आसानी से पिता, भाई, लेखक, यात्री, देशभक्त, या अंतर्राष्ट्रीय नेता के रूप में प्रकाशमान हैं, तो भी पाठकों के सामने इन लेखों में से उनका जो रूप उभरेगा वह अपने देश और उसकी स्वतन्त्रता के, जिसकी वेदी पर उन्होंने अपनी दूसरी सभी कामनाओं का बलिदान कर दिया है, निष्ठावान भक्त का रूप होगा। यह श्रेय उन्हें मिलना ही चाहिए कि वह किसी अन्य देश की सहायता की कीमत पर अपने देश की आजादी प्राप्त करना शान के खिलाफ समझेंगे। उनकी राष्ट्रीयता अन्तर्राष्ट्रीयता-जैसी है।

ऋतुराज के प्रतीक

—रवीन्द्रनाथ ठाकुर

नये भारत के सिंहासन पर बैठने का अधिकार निस्संदेह जवाहरलाल को है। जवाहरलाल की शानदार भूमिका है, उनका संकल्प अडिग है। और उनके साहस को रोकने की क्षमता किसी में नहीं है। उन्हें शिखर पर पहुँचाने का काम सत्य के प्रति अटूट निष्ठा और उनके बौद्धिक चरित्र ने किया है। जवाहरलाल ने पवित्रता का मापदण्ड उस राजनैतिक उथल-पुथल के बीच कायम रखा है, जहां प्रवंचना, आत्मप्रवंचना अक्सर चारित्रिक शुद्धता को नष्ट कर देती है। सत्य को अंगीकार करने में खतरा होने पर भी जवाहरलाल कभी सत्य से विमुख नहीं हुए और न सुविधा-जनक होने के कारण कभी भी असत्य से रिश्ता जोड़ा। छल-प्रपंचपूर्ण कूटनीति से मिलने वाली निकृष्ट और सुगम सफलता से जवाहरलाल का प्रबुद्ध मस्तिष्क हमेशा स्पष्ट रूप से अलग रहा है। नीयत की यह पवित्रता और सत्य के प्रति अटूट लगन ही जवाहरलाल की सबसे बड़ी देन है।

जवाहरलाल हमारा ऋतुराज है, जो प्रतीक है यौवन के पुनरागमन का और विजयपूर्ण उल्लास का। वह प्रतीक है बुराई के विरुद्ध संघर्ष का और स्वतन्त्रता के लिए ऐसी निष्ठा का, जो किसी प्रकार का समझौता करना नहीं जानती।

सबके लाडले

—वल्लभभाई पटेल

जवाहरलाल और मैं साथ-साथ कांग्रेस के सदस्य, आजादी के सिपाही, कांग्रेस की कार्यकारिणी और अन्य समितियों के सहकर्मी, महात्माजी के, जो हमारे दुर्भाग्य से हमें जटिल समस्याओं के साथ जूझने को छोड़ गये हैं, अनुयायी और इस विशाल देश के शासन-प्रबन्ध के गुरुतर भार के वाहक रहे हैं। इतने विभिन्न प्रकार के कर्मक्षेत्रों में साथ रह कर और एक-दूसरे



लालाजी शान्ति के अग्रदूत स्व० पं० जवाहरलालजी नेहरू के साथ
महावीर जयंती के अवसर पर



लालाजी के साथ माननीय राजर्षि श्री पुरुषोत्तमदास टंडन
महावीर जयंती उत्सव में पधारते समय

को जानकर हममें परस्पर स्नेह होना स्वाभाविक था। काल की गति के साथ वह स्नेह बढ़ता गया है और आज लोग कल्पना भी नहीं कर सकते कि जब हम अलग होते हैं और अपनी समस्याओं और कठिनाइयों का हल निकालने के लिए उन पर मिल कर विचार नहीं कर सकते तो यह दूरी हमें कितनी खलती है। परिचय की इस घनिष्ठता, आत्मीयता और भ्रातृतुल्य स्नेह के कारण मेरे लिए यह कठिन हो जाता है कि सर्व-साधारण के लिए उसकी समीक्षा उपस्थित कर सकूं। पर देश के आदर्श, जनता के नेता, राष्ट्र के प्रधान मंत्री और सबके लाडले जवाहरलाल को, जिनके महान् कृतित्व का भव्य इतिहास सबके सामने खुली पोथी-सा है, मेरे अनुमोदन की कोई आवश्यकता नहीं है।

दृढ़ और निष्कपट योद्धा की भांति उन्होंने विदेशी शासन से अनवरत युद्ध किया। युक्त-प्रान्त के किसान-आन्दोलन के संगठनकर्त्ता के रूप में पहली 'दीक्षा' पाकर वह अहिंसात्मक युद्ध की कला और विज्ञान में पूरे निष्णात हो गये। उनकी भावनाओं की तीव्रता और अन्याय या उत्पीड़न के प्रति उनके विरोध ने शीघ्र ही उन्हें गरीबी पर जिहाद बोलने को बाध्य कर दिया। दीन के प्रति सहज सहानुभूति के साथ उन्होंने निर्धन किसान की अवस्था सुधारने के आन्दोलन की आग में अपने को झोंक दिया। क्रमश: उनका कार्यक्षेत्र विस्तीर्ण होता गया और शीघ्र ही वह उसके विशाल संगठनकर्ता हो गए, जिसे अपने स्वाधीनता-युद्ध का साधन बनाने के लिए हम सब समर्पित थे। जवाहरलाल के ज्वलन्त आदर्शवाद, जीवन में कला और सौन्दर्य के प्रति प्रेम, दूसरों को प्रेरणा और स्फूर्ति देने की अद्‌भुत आकर्षण-शक्ति और संसार के प्रमुख व्यक्तियों की सभा में भी विशिष्ट रूप से चमकने वाले व्यक्तित्व ने, एक राजनैतिक नेता के रूप में, उन्हें क्रमश: उच्च से उच्चतर शिखरों पर पहुँचा दिया है। पत्नी की बीमारी के कारण की गई विदेश-यात्रा ने भारतीय राष्ट्रवाद-सम्बन्धी उनकी भावनाओं को एक आकाशीय अन्तर्राष्ट्रीय तल पर पहुँचा दिया। यह उनके जीवन और चरित्र के उस अन्तर्राष्ट्रीय झुकाव का आरम्भ था। जो अन्तर्राष्ट्रीय अथवा विश्व-समस्याओं के प्रति उनके रवैये में स्पष्ट लक्षित होता है। उस समय से जवाहरलाल ने कभी पीछे मुड़कर नहीं देखा। भारत में भी और बाहर भी उनका महत्व बढ़ता ही गया है। उनकी वैचारिक निष्ठा, उदार प्रवृत्ति, पैनी, दृष्टि और भावनाओं की सच्चाई के प्रति देश और विदेशों की लाखों-लाख जनता ने श्रद्धांजलि अर्पित की है।

अतएव यह उचित ही था कि स्वातंत्र्य की उषा से पहले के गहन अन्धकार में वह हमारी मार्ग-दर्शक ज्योति बनें, और स्वाधीनता मिलते ही जब भारत के आगे संकट-पर-संकट आ रहा हो तब हमारे विश्वास की धुरी हों और हमारी जनता का नेतृत्व करें। हमारे नये जीवन के पिछले कठिन वर्षों में उन्होंने देश के लिए जो अथक परिश्रम किया है, उसे मुझसे अधिक अच्छी तरह कोई नहीं जानता। मैंने इस अवधि में उन्हें अपने उच्च पद की चिन्ताओं और अपने गुरुतर उत्तरदायित्व के भार के कारण बड़ी तेजी के साथ बूढ़े होते देखा है। शरणार्थियों की सेवा में उन्होंने कोई कसर नहीं उठा रखी और उनमें से कोई कदाचित ही उनके पास से निराश लौटा हो। राष्ट्र-संघ (कामनवैल्थ) की मन्त्रणाओं में उन्होंने उल्लेखनीय भाग लिया है और संसार के

मंच पर भी उनका कृतित्व अत्यन्त महत्वपूर्ण रहा है किन्तु इस सब के बावजूद उनके चेहरे पर जवानी की पुरानी रौनक कायम है। और वह सन्तुलन, मर्यादा, ज्ञान, धैर्य और मिलनसारी, जो आन्तरिक संयम और बौद्धिक अनुशासन का परिचय देते हैं, अब भी ज्यों-के-त्यों हैं। निस्संदेह उनका रोष कभी-कभी फूट पड़ता है, किन्तु उनका अधैर्य क्योंकि न्याय और कार्य तत्परता के लिए होता है और अन्याय या धींगा-धींगी को सहन नहीं करता, इसलिए ये विस्फोट प्रेरणा देने वाले ही होते हैं और मामलों को तेजी तथा परिश्रम के साथ सुलझाने में मदद देते हैं। ये मानो सुरक्षित शक्ति है, जिनकी कुमुक से आलस्य, दीर्घसूत्रता और लगन या तत्परता की कमी पर विजय प्राप्त हो जाती है।

आयु में बड़े होने के नाते मुझे कई बार उन्हें उन समस्याओं पर परामर्श देने का सौभाग्य प्राप्त हुआ है, जो शासन-प्रबन्ध या संगठन-क्षेत्र में हम दोनों के सामने आती रही हैं। मैंने उन्हें सदैव सलाह लेने को तत्पर और मानने को राजी पाया है। कुछ स्वार्थ-प्रेरित लोगों ने हमारे विषय में भ्रान्तियां फैलाने का यत्न किया है और कुछ भोले व्यक्ति उन पर विश्वास भी कर लेते हैं, किन्तु वास्तव में हम लोग आजीवन सहकारियों और बन्धुओं की भांति साथ काम करते रहे हैं। अवसर की मांग के अनुसार हमने परस्पर एक-दूसरे के दृष्टिकोण के अनुसार अपने को बदला है और एक-दूसरे के मतामत का सर्वदा सम्मान किया है, जैसा कि गहरा विश्वास होने पर ही किया जा सकता है। उनके मनोभाव युवकोचित उत्साह से लेकर प्रौढ़ गम्भीरता तक बराबर बदलते रहते हैं। और उनमें वह मानसिक लचीलापन है, जो दूसरों को झेल भी लेता है और निरुत्तर भी कर देता है। क्रीड़ारत बच्चों में और विचार-संलग्न बूढ़ों में जवाहरलाल समान भाव से भागी हो जाते हैं। यह लचीलापन और बहुमुखता ही उनके अजस्र यौवन का, उनकी अद्भुत स्फूर्ति और ताजगी का रहस्य है।

उनके महान् और उज्ज्वल व्यक्तित्व के साथ इन थोड़े से शब्दों में न्याय नहीं किया जा सकता। उनके चरित्र और कृतित्व का बहुमुखी प्रसार अंकन से परे है। उनके विचारों में कभी-कभी वह गहराई होती है, जिसका तल न मिले, किन्तु उनके नीचे सर्वदा एक निर्मल पारदर्शी खरापन और यौवन की तेजस्विता रहती है और इन गुणों के कारण सर्वमान्य, जाति, धर्म, देश की सीमाएँ पार कर, उनसे स्नेह करती हैं।

× × × ×

नेहरूजी की राष्ट्र को सौंपी गई आखिरी वसीयत, जो उन्होंने २१ जून १९५४ को लिखी थी और जिसको निधन के बाद ३ जून, १९६४ को प्रसारित किया गया।

आखिरी वसीयत

मुझे, मेरे देश की जनता ने, मेरे हिन्दुस्तानी भाइयों और बहनों ने, इतना प्रेम और इतनी मुहब्बत दी है कि मैं चाहे जितना कुछ करूँ, वह उसके एक छोटे-से हिस्से का भी बदला नहीं हो सकता। सच तो यह है कि प्रेम इतनी कीमती चीज है कि इसके बदले कुछ देना मुमकिन नहीं। इस दुनिया में बहुत से लोग हैं जिनको अच्छा समझकर, बड़ा मानकर पूजा गया, लेकिन भारत के लोगों ने छोटे और बड़े, अमीर और गरीब सब तबकों के बहिनों और भाइयों ने मुझे

इतना ज्यादा प्यार किया जिसका बयान करना मेरे लिए मुश्किल है। और जिससे मैं दब गया। मैं आशा करता हूँ कि मैं अपने जीवन के बाकी वर्षों में अपने देशवासियों की सेवा करता रहूँगा और उनके प्रेम के योग्य साबित होऊँगा।

बेशुमार दोस्तों और साथियों के मेरे ऊपर और भी ज्यादा अहसान हैं। हम बड़े-बड़े कामों में एक-दूसरे के साथ रहे, शरीक रहे, मिल-जुलकर काम किये। यह तो होता ही है कि जब बड़े काम किए जाते हैं उनमें कामयाबी भी होती है। नाकामयाबी भी होती है। मगर हम सब शरीक रहे—कामयाबी की खुशी में भी और नाकामयाबी के दुःख में भी। मैं चाहता हूँ और सच्चे दिल से चाहता हूँ, कि मेरे मरने के बाद कोई धार्मिक रस्म अदा न की जाय। मैं ऐसी बातों को मानता नहीं हूँ। और सिर्फ रस्न समझकर उसमें बँध जाना, धोके में पड़ना मानता हूँ। मेरी इच्छा है कि जब मैं मर जाऊँ तो मेरा दाह-संस्कार कर दिया जाए। अगर विदेश में मरूँ तो मेरे शरीर को वहीं जला दिया जाय, और मेरी अस्थियाँ इलाहाबाद भेज दी जाएँ। उनमें से मुट्ठी-भर गंगा में डाल दी जाएँ और उनके बड़े हिस्से के साथ क्या किया जाए, मैं आगे बता रहा हूं। उनका कुछ हिस्सा किसी हालत में बचा न रखा जाय।

गंगा में अस्थियों का कुछ हिस्सा डलवाने के पीछे, जहाँ तक मेरा ताल्लुक है कोई धार्मिक ख्याल नहीं है। मुझे बचपन में गंगा और जमुना से लगाव रहा है। और जैसे-जैसे मैं बड़ा हुआ, यह लगाव बढ़ता ही गया। मैंने मौसमों के बदलने के साथ इनमें बदलते हुए रंग और रूप को देखा है। और कई बार मुझे याद आई उस इतिहास की, उन परम्पराओं की, पौराणिक गाथाओं की, उन गीतों और कहानियों की, जोकि कई युगों से उनके साथ जुड़ गई हैं और उनके बहते हुए पानी में घुल-मिल गई हैं।

गंगा तो विशेषकर भारत की नदी है। जनता की प्रिय है। जिससे लिपटी हुई हैं भारत की जातीय स्मृतियाँ, उसकी आशाएँ और उसके भय, उसके विजय गान, उसकी विजय और पराजय। गंगा तो भारत की प्राचीन सभ्यता का प्रतीक रही है। निशानी रही है। सदा बदलती सदा बहती फिर वही गंगा की गंगा। वह मुझे याद दिलाती है हिमालय की, बर्फ से ढकी चोटियों की और गहरी घाटियों की जिनसे मुझे मुहब्बत रही है। उनके नीचे उपजाऊ और दूर-दूर तक फैले मैदानों की जहाँ काम करते मेरी ज़िन्दगी गुज़री है। मैंने सुबह की रोशनी में गंगा को मुस्कराते, उछलते-कूदते देखा है। और देखा है शाम के साए में उदास काली-सी चादर ओढ़े हुए, भेद भरी जाड़ों में सिमटी-सी आहिस्ते-आहिस्ते बहती सुन्दर धारा और बरसात में दौड़ती हुई समुद्र की तरह चौड़ा सीना लिए हुए, और सागर को बरबाद करने की शक्ति लिए हुए, यही गंगा मेरे लिए निशानी है। भारत की प्राचीनता की यादगार जो बहती हुई वर्तमान तक और बहती चली जा रही है। भविष्य के महासागर की ओर।

भले ही मैंने पुरानी परम्पराओं, रीति और रस्मों को छोड़ दिया है। और मैं चाहता हूँ कि हिन्दुस्तान इन रीति और रस्मों को तोड़ दे जिनमें वह जकड़ा है। और उसको आगे बढ़ने से रोकती है। और देश में रहने वालों में फूट डालती है। जो बेशुमार लोगों को दबाये रखती है। और जो शरीर और आत्मा के विकास को रोकती है।

चाहे यह सब मैं चाहता हूँ। फिर भी मैं यह नहीं चाहता मैं अपने को इन पुरानी बातों से बिलकुल अलग कर लूं। मुझे फख्र है इस शानदार उत्तराधिकार का—इस विरासत का जो हमारी रही है और हमारी है। और मुझे यह भी अच्छी तरह से मालूम है कि मैं भी इन सबों की तरह इस जंजीर की एक कड़ी हूँ। जोकि कभी नहीं और कहीं नहीं टूटी। और जिसका सिलसिला हिन्दुस्तान के अतीत के इतिहास के प्रारम्भ से चला आता है। यह सिलसिला मैं कभी नहीं तोड़ सकता क्योंकि मैं उसकी बेहद कद्र करता हूँ। और इससे मुझे प्रेरणा, हिम्मत, हौसला मिलता है। मेरी इस आकांक्षा की पुष्टि के लिए, भारत की संस्कृति को श्रद्धांजलि भेंट करने के लिए मैं यह दरख्वास्त करता हूँ कि मेरी भस्म की एक मुट्ठी इलाहाबाद के पास गंगा में डाल दी जाय जिससे कि वह महासागर में पहुँचे, जो हिन्दुस्तान को घेरे हुए है।

मेरे भस्म के बाकी हिस्से को क्या किया जाय ? मैं चाहता हूं कि इसे हवाई जहाज में ऊंचाई पर ले जाकर बिखेर दिया जाय, उन खेतों पर जहां भारत के किसान मेहनत करते हैं। ताकि वह भारत की मिट्टी में मिल जाय और उसी का अंग बन जाय।

\+ \+ \+

जयन्ती के जलूस का श्रेय

श्री आदीश्वरप्रसाद जैन M. A.

मन्त्री श्री, जैनाभिमण्डल

धर्मपुरा, दिल्ली।

लाला तनसुखराय जी स्थानीय समाज के ही नहीं भारतीय जैन समाज में एक आदर्श गौरव स्वरूप सफल कार्यकर्त्ता थे। सर्वप्रथम जैन मित्र-मण्डल की कमेटी ने जलूस निकालने का निश्चय किया तो लाला जी ने आगे आकर अपने तत्वावधान में जलूस का नेतृत्व किया। यह कहते हुए बड़ा हर्ष होता है कि आज महावीर जयन्ती का जलूस जैन समाज के जलूसों में एक आदर्श और महत्वपूर्ण है जिसका श्रेय लाला तनसुखराय जी को है। मैं उनके प्रति श्रद्धांजलि अर्पित करता हूँ।

\+ \+ \+

धर्म और संस्कृति

णमो अरिहंताणं, णमो सिद्धाणं, णमो आइरियाणं।
णमो उवज्झायाणं, णमो लोए सव्व साहूणं।

अर्थ—अरहन्तों को नमस्कार हो, सिद्धों को नमस्कार हो, आचार्यों को नमस्कार हो, उपाध्यों को नमस्कार हो और लोक के सब साधुओं को नमस्कार हो।

एसो पंचणमोयारो, सव्व पावाघणासणो,
मंगलाणं च सव्वेसिं, पढमं होइ मंगलम्।

यह नमस्कार मंत्र सब पापों का नाश करने वाला है और सब मंगलों में पहला मंगल है।

जिन सासणस्य सारो, चउदस पुव्वाण जो समुद्धारो,
जस्समणे नवकारो संसारे तस्य किं कुणई।
एसो मंगल निलओ भयविलओ सयल संघ सुहजणओ,
नवकार परममंतो चिंति, अमित्तं सुहं देई।
नव कार ओ अन्नो सारो, मंतो न अत्थि तिय लोए,
तम्हाहु अणदिणं चिय, पठियव्वो परम भत्तीए।
हरइ दुहं कुणइ सुहं जणइ जसं सोसए भवसमुद्ध,
इह लोय परलोइय सुहाण, मूलं नमोक्कारो।

यह णमोकार मंत्र जिन शासन का सार चतुर्दश पूर्वों का समुद्धार है। जिसके मन में यह णमोकार महामन्त्र है, संसार उसका कुछ भी नहीं बिगाड़ सकता। यह मन्त्र मंगल का आगार, भय को दूर करने वाला, सम्पूर्ण चतुर्विध संघ को सुख देने वाला और चिन्तन मात्र से अपरिमित शुभफल को देने वाला है। तीनों लोकों में णमोकार मंत्र से बढ़कर कुछ सार नहीं है। इसलिए भक्तिभाव और श्रद्धापूर्वक णमोकार मंत्र को पढ़ना चाहिए। यह दुःखों का नाश करने वाला, सुखों को देने वाला, यश को उत्पन्न करने वाला और संसार रूपी समुद्र से पार करने वाला है। इस मन्त्र के समान इहलोक और परलोक में अन्य कुछ भी सुखदायक नहीं है।

मन्त्रं संसार सारं, त्रिजगदनुपमं सर्व पापारिमन्त्रं,
संसारोच्छेद मन्त्रं, विषम विषहरं कर्म निर्मूल मन्त्रम्।
मन्त्रं सिद्धि प्रदानं शिव सुखजननं, केवल ज्ञान मन्त्रम्,
मन्त्रं श्री जैन मन्त्रं जप जप जपितं, जन्मनिर्वाणमन्त्रम्।

आकृष्टि सुर सम्पदां विदधते मुक्तिश्रियो वश्यतां,
उच्चाटं विपदां चतुर्गतिभुवां, विद्वेष शमात्मैन साम्।
स्तम्भं दुर्गमनं प्रति प्रयततो मोहस्य सम्मोहनं,
पापात्पंच नमस्क्रिया क्षरमयी, साराधना देवता।

अपवित्रः पवित्रो वा सुस्थितो दुःस्थितो वा,
ध्यायेत्पंच नमस्कारं सर्वपापैः प्रमुच्यते।
अपवित्रः पवित्रो वा सर्वावस्थां गतोऽपि वा,
यः स्मरेत्परमात्मानं, स वाह्याभ्यन्तरे शुचिः।
अपराजित मन्त्रोऽयं, सर्वविघ्न विनाशनः,
मङ्गलेषु च सर्वेषु, प्रथमं मंगलं मतः ॥५॥
विघ्नौघाः प्रलयं यान्ति, शाकिनी भूत पन्नगाः,
विषो निर्विषतां याति स्तूयमाने जिनेश्वरे ॥६॥
अन्यथा शरणं नास्ति, त्वमेव शरणं मम,
तस्मात्कारुण्य भावेन, रक्ष रक्ष जिनेश्वरः ॥७॥

भारतेन्दु बाबू हरिशचन्द

जैन को नास्तिक भाखै कौन ?

परम धरम जो दया अहिंसा सोई आचरत जौन ॥
सत कर्मन को फल नित मानत अति विवेक के भौन ॥
तिन के मतहि विरुद्ध कहत जो महा मूढ़ है तौन ॥
सब पहुँचत एक हि थल चाहो करो जौन पथ गौन।
इन आँखिन सों तो सब ही थल सूझत गोपी रौन ॥
कौन ठाम जहं प्यारो नाहीं भूमि अनल जल पौन।
'हरीचंद' ए मतवारे तुम रहत न क्यों गहि मौन ॥१॥

बात कोउ मूरख की यह मानो।
हाथी मारैं तौहू नाहीं जिन-मंदिर में जानो ॥
जग में तेरे बिना और है दूजो कौन ठिकानो।
जहाँ लखो तहं रूप तुम्हारो नैनन माहि समानो ॥
एक प्रेम है एकहि प्रन है हमरो एकहि बानो।
'हरीचंद' तब जग में दूजो भाव कहां प्रगटानो ॥२॥

अहो तुम बहु बिधि रूप धरो।
जब जब जैसो काम परैं तब तैसो भेख करो ॥
कहुं ईश्वर कहुं बनत अनीश्वर नाम अनेक परो।
सत पंथहि प्रगटावन कारन लै सरूप विचारो ॥
जैन धरम में प्रगट कियो तुम दया धर्म सगरो।
'हरीचंद' तुमको बिनु पाए लरि-लरि जगत मरो ॥३॥

विभिन्न सम्प्रदायों में एक-सूत्रता

प्रबुद्धविचारक श्री सौभाग्यमल जैन, एडवोकेट

शुजालपुर म०प्र०

"माननीय श्री सौभाग्यमलजी प्रसिद्ध देशभक्त, कुशल राजनीतिज्ञ, प्रबुद्ध विचारक, और उच्चकोटि के लेखक हैं। मध्यभारत विधान सभा के ग्राप अध्यक्ष रह चुके हैं। ग्रापके हृदय में इस बात से विशेष ठेस है कि जिस ग्रनेकान्त शासन से विश्व के समस्त कार्य संचालित होते हैं जो जगत के विरोध को शान्त करता है। अपने गुणों के कारण भुवन का एकमात्र गुरु है। उसी शासन के मानने वाले सम्प्रदायवाद से संत्रस्त हैं। ग्राज विश्व को ग्रहिंसा की बड़ी ग्रावश्यकता है। मैं ग्रपने मन में इस विश्वास को संजोए हुए हूँ कि समाज में कोई ऐसा महाभाग उत्पन्न हो, जो जैनधर्म को इनकी परम्पराओं को एक सूत्र में ग्राबद्ध कर सके जिससे समाज संगठित होकर शक्तिशाली रूप में ग्रहिंसा का प्रचार कर सके। देश में अहिंसात्मक विचार-ग्राचार की प्रतिष्ठा हो ग्रौर देश पुनः एक बार 'जिग्रो ग्रौर जीने दो' का मन्त्र उद्घोष करते हुए ग्राचार में उतार सके।"

एक प्रसिद्ध जैनाचार्य ने कहा है कि :—

जेणविणा विलोगस्स, ववहारो सब्बहान निब्बहई।
तस्सभुवनेक-गुरूणो, णमो ग्रणेगतं वादरस्य ॥

उक्त जैनाचार्य ने ग्रनेकान्तवाद का महत्त्व संक्षिप्त में उपरोक्त गाथा में स्पष्ट किया है। वह वस्तुतः सत्य है। ग्रनेकान्तवाद के ग्राधार पर पर सारे विश्व का कार्यभार चल रहा है। इसी ग्रनेकान्तवाद को त्रिभुवन-गुरु होने की संज्ञा दी गई है। हमारे प्राचीन जैन शास्त्रों, ग्रंथों में ग्रनेकान्तवाद के विचार बीज में विद्यमान थे। प्राचीन ग्राचार्यों ने उन बीज रूपी विचारों को लेकर विपुल साहित्य का सृजन किया ग्रनेकान्तवाद वास्तव में तीर्थङ्करों की देन है। भगवान महावीर ने देश में विभिन्न विचारधाराग्रों का प्रतिनिधित्व करने वाले—वाद—विद्यमान देखे तथा यह भी देखा कि उनमें से प्रत्येक के पास आंशिक सत्य है, उनकी विचार-शैली एकांगी है। यदि यह विचारक ग्रनेकान्त-मार्ग का ग्रवलम्बन करें तो उन्हें—सत्य—का साक्षात्कार हो सकता है। भगवान महावीर ने बड़े कष्ट से यह भी अनुभव किया कि इस प्रकार एकांगी विचार-धारा का प्रतिनिधित्व करने वाले व्यक्ति परस्पर वाद-विवाद करते हैं तथा धार्मिक ग्रसहिष्णुता के कारण ग्रशान्ति उत्पन्न करते हैं। विभिन्न वादों के परस्पर संघर्ष ने केवल देश में नहीं अपितु सारे संसार में इस प्रकार का वातावरण-निर्माण किया है। इस कारण कोई व्यक्ति ग्रपने से विभिन्न विचारधारा के प्रति न्याय करना चाहता है तो उसे ग्रनेकान्त विचार-पद्धति से काम लेना होगा। ग्रनेकान्त विचार-पद्धति में वस्तु की ग्रनन्त धर्मात्मकता का ध्यान रखा जाता है। यदि कोई व्यक्ति किसी वस्तु के सम्बन्ध में कोई विश्लेषण करे तो वह वस्तु का समग्र चित्र नहीं हो सकता। यदि हम उसी वस्तु के विभिन्न पहलुओं को एकत्रित कर लें तो वस्तु का समग्र चित्र सन्मुख ग्रा सकता है। ग्रनेकान्त विचार-पद्धति से उत्पन्न : उद्भुत दृष्टिकोण को जैनाचार्यों

ने — स्याद्वाद— संज्ञा से अभिहित किया था। इस विचार-पद्धति को जिस भाषा में व्यक्त किया जाता है—स्याद्वाद—है। कई जैनाचार्यों ने वर्गीकरण के लिए इसे सप्तभंगी न्याय, सप्त नग आदि से विभाजित करने का प्रयत्न किया अपितु वास्तविकता यह है कि वस्तु जब अनन्त धर्मात्म कहे तो सत्य को भी वर्गीकरण के द्वारा सीमा में नहीं बांधा जा सकता। सत्य के लिए भौगोलिक अथवा अन्य कोई भी सीमा नहीं होती। अतएव मोटे रूप से जैनाचार्यों ने 'नय' को केवल दो भागों में विभक्त किया १. निश्चय नय २. व्यवहार नय—किन्तु विशालता की दृष्टि से नय की संख्या भी उतनी ही है कि जितनी विचार-पद्धति की।

वास्तव में उपरोक्त दृष्टिकोण से विचार करने पर सहज ही इस निष्कर्ष पर पहुँचा जा सकेगा कि सत्य का इजारा किसी मत, पन्थ या वाद के पास नहीं हो सकता। विभिन्न मतों, पन्थों, वादों को समत्व की दृष्टि से विचारा जावे तो उनमें एकता परिलक्षित होगी। विश्व में धार्मिक असहिष्णुता का नाम शेष करने के लिए—समन्वय—की आवश्यकता है—सर्व धर्म समभाव—को जन्म देगी। इस युग के महान विचारक सन्त महात्मा गांधी ने सर्वधर्म समभाव को अपने द्वारा निर्दिष्ट ११ वृत्तों में स्थान दिया है। गांधीजी के आध्यात्मिक उत्तराधिकारी ने उसे—अनाग्रही विचार—कहा। एक प्राचीन जैनाचार्य ने भारतीय षट्दर्शन में विभिन्न नयों : दृष्टिकोणों : के माध्यम से सत्य का दर्शन किया। चाहे तत्व की दृष्टि से, चाहे वाद की दृष्टि से संसार का कार्य—अनेकान्त विचार-पद्धति—के बिना—नहीं चल सकता। यही नहीं विश्व में विभिन्नता का राज्य है किन्तु विभिन्नता में ही एकता का दर्शन पाना जीवन के कलाकार का काम है। धार्मिक, सामाजिक, राजनीतिक, कौटुम्बिक आदि क्षेत्र में यदि अनेकान्त विचार-पद्धति से काम न लिया जाये तो संघर्ष अवश्यम्भावी है। और उसका परिणाम—अशान्ति। मानव जाति अपनी अशान्ति, दुख, दुःख के कारणों के नाश के लिए—धर्म की शरण में जाती है वहां पर भी अशान्ति ही प्राप्त होगी इस स्थिति में भी—जल में आग—लग जावेगी इसमें सन्देह नहीं है।

यदि हम सूक्ष्मता से अध्ययन करें तो—अनेकान्त विचार-पद्धति—अहिंसा के विचार से ही हुआ है। अपने से भिन्न विचार रखने वाले के प्रति न्याय करने के लिए ये उसके विचार में भी सत्यता का अंश विद्यमान होने के विचार को मानव जाति के उद्धारक तीर्थङ्करों ने जन्म दिया। कहा जाता है कि तीर्थङ्करों द्वारा उपदेशित मार्ग में : चाहे उसे निर्ग्रन्थ धर्म के नाम से पहिचाना जावे चाहे जैन धर्म के नाम से : अहिंसा मुख्य है। यह सत्य है कि अनेकान्त विचार-पद्धति अथवा स्याद्वाद बौद्धिक अहिंसा है। इस विचार-पद्धति से हम जीवन के किसी भी क्षेत्र में समन्वयात्मक दृष्टिकोण ले सकते हैं। राजनीतिक क्षेत्र में प्रजातान्त्रिक विचार इसी ओर ले जाते हैं। हमारे देश में आज Parliamentary Democracy संसदीय प्रजा तान्त्रिक परम्परा चल रही है। इस परम्परा में बहुमत दल द्वारा गठित सरकार, अल्पमत को अपने विचार प्रदर्शन का अधिकार मान्य करती है। उससे यथासंभव लाभ उठाती है, यह राजनीतिक—स्याद्वाद—है। इसी प्रकार कौटुम्बिक क्षेत्र में भी इस पद्धति का योगदान परस्पर कुटुम्बों में, कुटुम्ब के सदस्यों में संघर्ष को टाल कर शान्तिपूर्ण वातावरण का निर्माण करेगा, इसमें सन्देह

नहीं। तात्पर्य यह है कि जैनाचार्यों ने अनेकान्तवाद को संसार गुरु की जो उपमा दी है वह सत्य है, अनूठी है तथा संसार को सच्चा मार्गदर्शन देने वाली है।

हम प्राचीन जैनाचार्यों के अनुपम विचारों को प्राचीन ग्रन्थों में जब अध्ययन करते हैं तो पता चलता है कि उनमें कितनी उद्दात्त भावनाएँ विद्यमान थीं। अनेकान्त विचार-पद्धति के अनुयायी जैनाचार्यों ने स्पष्ट रूप से घोषणा की कि :—

भवबीजांकुरजनना, रागाद्या क्षयमुपागता यस्य।
ब्रह्मा वा विष्णुर्वा, हरौजिनोवा नमस्तमे ॥

उन्होंन ब्रह्मा, विष्णु, हरि, जिन सब को नमस्कार किया है बशर्ते कि उनके पुनर्भव के बीज राग, द्वेष आदि क्षय हो चुके हों कितनी उदात्त भावना काम कर रही थी, कितना अनाग्रही विचार उनका था। यही नहीं उन्होंने भारतीय दर्शनों में आंशिक सत्य की अनुभूति की। चूंकि विभिन्न दर्शन आंशिक सत्य वा प्रतिनिधित्व करते हैं इस कारण उनमें पाखण्ड है किन्तु उन्होंने यह उद्घोष करने में भी हिचक नहीं की कि "जैन दर्शन" पाखण्डों का समूह है। कारण कि जैन दर्शन में सब दर्शनों के आंशिक सत्य का समन्वय करके पूर्ण सत्य बनाने का प्रयत्न किया गया है। उन्होंने यह भी श्रोषणा की कि :—

पक्षपातो नमे वीरे, न द्वेषः कपिलादिषू।
युक्तिमद्वचनं यस्य, तस्य कार्य परिग्रहः ॥

उन्होंने भगवान महावीर के वचनों के प्रति पक्षपात तथा कपिल आदि मुनियों के वचनों के प्रति द्वेष न होना प्रकट किया था। उन्होंने केवल युक्ति-पुरस्सर वचनों को अंगीकार करने का निश्चय किया :—

प्राचीन ग्रंथ इस बात के साक्षी हैं कि भगवान महावीर के समय में भगवान पार्श्वनाथ के अनुयायी श्रमण विद्यमान थे और दोनों परम्परा के प्रतिनिधित्व करने वाले श्रमण वर्ग के विचार तथा आचार में कुछ भिन्नता थी। श्वेताम्बर परम्परा के एक उपदेशप्रद शास्त्र "उत्तराध्ययन" के······वे अध्ययन में दोनों परम्परा के प्रतिनिधि मुनि, केशी तथा गौतम स्वामी के मिलन का वर्णन है कितना सुन्दर, भव्य दृश्य था दोनों का शुभ मिलन। परम्परा भेद में समन्वयात्मक दृष्टिकोण अपनाने का था। दोनों सफल हो गए और उन्होंने देश में अहिंसा धर्म का प्रचार किया। भगवान महावीर के समय में भी श्रमणवर्ग ने वस्त्रधारी तथा नग्न दोनों प्रकार के श्रमण विद्यमान थे चाहे उनको वर्गीकरण के नाम पर "जिन कल्पी, स्थविर कल्पी" बताया गया हो किन्तु यह तथ्य है कि दोनों प्रकार के श्रमण भगवान महावीर द्वारा उपदेशित "अहिंसा धर्म" को देश भर में फैलाने के भगीरथ-प्रयत्न में जुटे हुए थे। भगवान महावीर के कुछ सौ वर्ष के पश्चात् तक आचार्य परम्परा रही। कहा जाता है कि भगवान महावीर के पश्चात् बारह वर्षीय दुष्काल में कुछ श्रमण दक्षिण दिशा चले में गये तथा कुछ उत्तर में रह गये। दुष्काल समाप्ति के पश्चात् उत्तर-दक्षिण का मिलन हुआ तो सचेल, अचेल का प्रश्न महत्वपूर्ण बन गया। सचेल श्रमणों ने सचेलत्व का तथा अचेल श्रमणों ने नग्नत्व का एकान्त आग्रह किया।

परिणामस्वरूप विश्व की प्रत्येक समस्या का हल— अनेकान्त विचार-पद्धति से कर देने वाले दर्शन के अनुयायी स्वयं श्वेताम्बर, दिगम्बर परम्परा में विभाजित हो गये। यह एक आश्चर्य का विषय रहेगा कि इस प्रकार के उदार-विचारमना जैनाचार्य परस्पर के इस सचेलत्व तथा अचेलत्व के विचार का समन्वय क्यों नहीं कर पाये ? मेरी यह निश्चित मान्यता है कि यदि इस विचार-भेद का समन्वय तत्कालीन जैनाचार्य कर पाते तो उनके द्वारा 'जैन दर्शन' की अधिक सेवा हुई होती।

जैन दर्शन के रहस्यविद, शान्तिप्रिय जैनाचार्यों ने समय-समय पर दोनों परम्परा में शान्ति स्थापनार्थ यह उद्घोष किया कि :—

न श्वेताम्वरत्वे, न दिगम्बरत्वे। न तत्व वादे न च तर्क वादे ॥
न पक्ष सेवाऽऽन्मयेण मुक्तिः। कषाय मुक्तिः किल मुक्ति रेव ॥

उन्होंने मुक्ति श्वेताम्बर अथवा दिगम्बरत्व में नहीं माना, न तत्ववाद में, न तर्कवाद में। उन्होंने यह भी कहा कि पक्षपाती दृष्टिकोण से मुक्ति प्राप्ति नहीं हो सकती। मुक्ति तो केवल कषाय मुक्तता से ही प्राप्त होती है। मैं नहीं जानता कि हमारे प्राचीन जैनाचार्यों ने जैन समाज के दोनों जैन श्वेताम्बर, दिगम्बर समाज में परस्पर ऐक्य, सौहार्द, स्थापना के क्या-क्या प्रयत्न किये ? मेरी यह मान्यता है कि कई ऐसे जैनाचार्य हुए हैं जिन्होंने शान्ति स्थापना में महत्वपूर्ण योगदान दिया। किन्तु यह भी एक तथ्य है कि आज दो सहस्र वर्ष से अधिक के काल में दोनों परम्पराओं के पृथक् हो जाने के कारण अत्यन्त हानि हुई है। यह एक तथ्य है कि इन दोनों परम्पराओं में आपस में कितना कलह, कितना वैमनस्य हुआ। परिणामस्वरूप तीर्थ-मन्दिरों, अन्य कई धार्मिक स्थानों के सम्बन्ध में कितनी मुकद्दमेबाजी हुई कि जिसमें समाज की शक्ति, धन का विपुल परिमाण में अपव्यय हुआ। मेरी यह निश्चित मान्यता है कि यदि हमारे तत्कालीन जैनाचार्यों ने इस पृथक्ता के विचार को प्रारम्भ से ही न पनपने दिया होता, कोई माध्यम, समन्वयात्मक मार्ग निकाला होता तो आज जैन समाज अधिक संगठित, बलशाली होता। उसकी वाणी अधिक प्रभावशाली होती। किन्तु दुर्भाग्य से ऐसा नहीं हो पाया। दो सहस्र वर्ष से अधिक के इस लम्बे काल से दोनों परम्पराओं के मत वैभिन्य के कारण जैन धर्म का अनुयायी जैन समाज को हम छिन्न-भिन्न अवस्था में पाते हैं तो हृदय को बड़ी ही ठेस लगती है। आज इसकी बड़ी आवश्यकता है कि हम संगठित हों तथा जैन धर्म के व्यापक प्रचार, प्रसार के लिए प्रयत्न करें। सब कोई जानते हैं कि आज जैनधर्म, श्रमण संस्कृति के प्राण अहिंसा के विचार को देश में कितना कम महत्व दिया जाता है। भारतीय शासन, अहिंसा तत्व की कितनी उपेक्षा करता है किन्तु हम अपनी पृथक्ता के कारण सामान्य प्रश्नों पर भी एक नहीं हो पाते। न सम्मिलित प्रयत्न कर पाते हैं। मैं इसी आशा, विश्वास को अपने हृदय में संजोए हुए हूँ कि समाज में कोई ऐसा महाभाग उत्पन्न हो जो जैन धर्म की एक-दो परम्पराओं को एक सूत्र में आबद्ध कर सके।

काश, यह स्वप्न साकार हो तथा हम संगठित अविरल जैन समाज का निर्माण करके श्रमण संस्कृति के प्रचार, प्रसार में महत्वपूर्ण योगदान कर सकें ताकि देश में अहिंसात्मक विचार, आचार की प्रतिष्ठा हो और देश पुनः एक बार "जीओ और जीने दो" का मन्त्र उद्घोष करते हुए अपने आचार में उतार सकें।

डा० हर्मन जैकोबी और जैन-साहित्य

डा० देवेन्द्रकुमार जैन
एम. ए. पी. एच-डी.

आदि काल से ही भारतीय श्रमण-संस्कृति अत्यन्त समृद्ध तथा व्यापक रही है। भारतीय तत्त्व-चिन्तन तथा साहित्य-रचना में इस प्रजा का महत्वपूर्ण योग-दान रहा है। समाज, राजनीति तथा जीवन-दर्शनों के विविध पक्षों पर श्रमण-संस्कृति के पुरोहित जैनमनीषियों एवं आचार्यों ने जिस प्रकाश को आलोकित किया है वह आज भी अपनी ज्योति से ज्योतिर्मान है। समय-समय पर प्रबल झंझाओं के आघात से, काल के क्रूर थपेड़ों से तथा जाति, समाज और सम्प्रदायों के संघर्षों में अविचल रह कर जिन-वाणी ने जिस सत्य और अहिंसा का प्रकाश विकीर्ण किया वह आज तक विश्व के इतिहास-पटल पर स्वर्णाक्षरों से जाज्वल्यमान है।

प्राचीनकाल में इस देश में भाषा, साहित्य, आयुर्वेद, ज्योतिष, कला आदि वाङ्मय के विविध अंगों में उत्तरोत्तर उन्नति होती रही। सभी प्रजाओं ने मिलकर विभिन्न रूपों में उनका विकास किया। जैनाचार्यों ने प्रत्येक विषय पर मौलिक चिन्तन कर साहित्य-श्री एवं वाङ्मय को भलीभाँति समृद्ध बनाया। आज भी जैन भाण्डागारों में जो विपुल जैन-अजैन साहित्य तथा वाङ्मय उपलब्ध होता है उसे देखकर दांतों तले उंगली दबानी पड़ती है। साहित्य-रचना तथा संरक्षण का जो कार्य जैन साधुओं तथा मनीषियों ने किया है वस्तुतः वह इतिहास की अविस्मरणीय तथा गौरव-गाथा ही बन गई है।

भारतीय वाङ्मय के सभी प्रकार से सम्पन्न और समृद्ध होने पर भी युग के युग ऐसे अन्धकाराच्छन्न प्रतीत होते हैं जिनमें विभिन्न जातियों के संघर्ष तथा उत्थान-पतन में, राजनैतिक उथल-पुथल में और सामाजिक एवं सांस्कृतिक विघटन में प्रचुर साहित्य विलुप्त हो गया। विभिन्न आक्रान्ताओं से पददलित यह देश धीरे-धीरे अपनी गौरव-गरिमा को धूमिल बनाता रहा और साहित्य के विभिन्न अंगों की प्रायः उपेक्षा-सी होती रही। जातीय-संकीर्णता तथा विभिन्न समाजों के दृष्टिकोण दिनोंदिन सीमित होते गये। परिणाम यह हुआ कि हम अपने साहित्य और दर्शन से दूर होते गये। हमारी हताश और निराश भावना ने हमें दिनोंदिन दुर्बल और चिन्तनीय बना दिया। अतएव उस युग में लिखा जाने वाला साहित्य भी जीवन्त समस्याओं से हट कर वास्तविक लोक-जीवन का आकलन न कर कल्पनाओं तथा पौराणिक जड़ आकृतियों पर निर्भर रहने लगा। स्पष्ट शब्दों में हमारी मान्यताएँ दिनोंदिन रूढ़ियों में बंधती गई और हम वास्तविक बातों से तथा सच्चे जीवन से बहुत कुछ दूर होते गये। इस मध्यकालीन युग के उत्तरकाल में (मुगल काल में) हमें अधिकतर ऐसे ही साहित्य का परिचय मिलता है। इस युग में मुख्य रूप से भारतीय पौराणिक साहित्य अधिक लिखा गया, जिसका प्रारम्भ गुप्त युग से हुआ प्रतीत होता है। गुप्त युग के पूर्व का साहित्य अत्यन्त अल्प तथा विरल प्राप्त होता है। भारतीय साहित्य के इतिहास में वह अन्धकारपूर्ण युग कहा जाता है जिसका आज तक कोई क्रमबद्ध रूप उपलब्ध नहीं हो सका

है। इतिहास में ऐसे कई वर्षों के छोटे-छोटे युग लक्षित होते हैं जिनमें भारतीय संस्कृति और साहित्य का कोई स्पष्ट चिन्ह हमें नहीं मिलता।

अतीत काल में भारतवर्ष में धर्म, कला और साहित्य की जो प्रतिष्ठा एवं उन्नति हुई वह आज इतिहास की वस्तु बन गई है। आधुनिक युग में इसे प्रकाशित करने और विश्व के सामने गौरव के साथ रखने का श्रेय वस्तुतः योरोपीय विद्वानों को है। योरोपीय विद्वानों में भी विशेषकर यह श्रेय जर्मन विद्वानों को प्राप्त है, जिन्होंने सुदीर्घ काल से प्राचीन भारतीय आर्य भाषाओं तथा उनमें लिखित साहित्य का अध्ययन कर संसार का ध्यान उनकी ओर आकृष्ट किया। कहा जाता है कि अब्राहम रोजर नाम के विद्वान के सन् १६५१ में भर्तृहरि के कुछ मधुर श्लोकों का पुर्तगाली भाषा में अनुवाद किया था, जिसे देखकर विदेशी विद्वानों का ध्यान संस्कृत भाषा के प्रति आकृष्ट हुआ था। उसके बाद ही संस्कृत भाषा के प्रति जर्मन विद्वानों का विशेष रूप से ध्यान गया और उन्होंने उसका अध्ययन किया।

आधुनिक युग में भाषा-विज्ञान का प्रमुख केन्द्र प्रमुख रूप से दो-तीन दशकों में जर्मन ही बना रहा। बाद में यह फ्रांस में भी स्थापित हुआ। फ्रांस से इंगलैंड होता हुआ आज यह अमेरिका में प्रगतिशील दिखाई पड़ रहा है। यद्यपि भाषा वैज्ञानिक प्रथम अध्ययन फ्रांसीसी पादरी कोर्दो (Coeurdoux) से माना जाता है, जिन्होंने सन् १७६७ में ग्रीक, लैटिन तथा फ्रेंच आदि भाषाओं का तुलनात्मक अध्ययन प्रस्तुत किया था। परन्तु तुलनात्मक भाषाविज्ञान की नींव डालने वाले सर विलियम जोन्स माने जाते हैं, जिन्होंने १७८६ ई० में इस बात की घोषणा की थी कि संस्कृत भाषा बनावट में ग्रीक से, समृद्धि में लैटिन से—और परिष्कार में सभी भाषाओं से बढ़-चढ़कर है। शब्द, धातु तथा व्याकरण की दृष्टि से ग्रीक, लैटिन, गाथिक, केल्टिक तथा प्राचीन फारसी किसी एक मूल स्रोत से निकल हुई जान पड़ती है। यद्यपि संस्कृत भाषा का कई

कुशल प्रचारक

श्री महावीरसिंह जैन जौहरी
प्रधानमन्त्री
जैन मित्र-मण्डल, धर्मपुरा, दिल्ली

लाला तनसुखराय जैन समाज के ऐसे कर्मवीर समाज-सेवी थे जो धार्मिक जागृति के कार्य में सदा आगे रहते थे। विश्वोद्धार म० महावीर स्वामी का जयन्ती महोत्सव सर्वप्रथम जैन-मित्र मंडल के तत्वावधान में मनाना प्रारम्भ हुआ। उन्होंने मित्र-मण्डल के अध्यक्ष पद पर रह कर जयन्ती उत्सव को सफल बनाने में कोई कसर नहीं रक्खी। मैं उनके प्रति श्रद्धांजलि अर्पित करता हूँ।

विद्वानों ने अध्ययन, चिन्तन और मनन किया, परन्तु जर्मन विद्वान मैक्समूलर ने जिस तमन्यता और मनोयोग के साथ वेदों का तथा संस्कृत का अनुशीलन किया वह वास्तव में विलक्षण ही था। मैक्समूलर ने अपने जीवन के लगभग छप्पन वर्ष संस्कृत साहित्य के अध्ययन में विशेषकर ऋग्वेद के अध्ययन में बिताये थे। इस साहित्य पर जितना अधिक मैक्समूलर ने कार्य किया है संभवतः किसी विद्वान ने आज तक नहीं किया होगा।

वास्तव में प्राच्यविद्याविशारदों में भारतीय साहित्य और संस्कृति पर शोध एवं अनुसंधान-कार्य करने वाले आधुनिक युग में विशेष रूप से जर्मन विद्वान् उल्लेखनीय हैं। जार्ज फोर्स्टर, गेटे, ग्रासमान, लुगविग्, वान हम्बोल्ट, फ्रेडरिक श्लेगल, काण्ट और शिलर, राथ, बूलर आदि। ऐसे ही विशिष्ट जर्मन विद्वान् थे जिन्होंने भारतीय साहित्य का विशेष रूप से आलोड़न किया था। १८८७ ई० में डा० जे० जी० बूलर ने लगभग पांच सौ जैन ग्रंथों के आधार पर जर्मन भाषा में जैनधर्म विषयक एक ग्रंथ लिखा था, जो अत्यन्त प्रसिद्ध हुआ। यद्यपि इसके पूर्व ही जर्मन विद्वानों ने प्राकृत भाषाओं का अध्ययन प्रारम्भ कर दिया था, किन्तु धर्म और सिद्धान्तों पर प्रकाश डालने वाली कदाचित् यह पहली ही पुस्तक थी। प्रो० रिचर्ड.पिशेल ने सन् १८७७ में आ० हेमचन्द्र के प्राकृत व्याकरण का एक सुसम्पादित-संस्करण प्रकाशित किया था। पिशेल महोदय वास्तव में प्राकृत के पाणिनि थे। उन्होंने लगभग २५-३० वर्षों के अथक श्रम से सैकड़ों प्राकृत ग्रान्थों का अनुशीलन कर समग्र प्राकृतों का व्याकरण तैयार किया, जो १९००ई० में जर्मनी के स्ट्रास्बर्ग नगर से प्रकाशित हुई। रिचर्ड पिशेल की पहली पुस्तक 'डी कालिदासी काकुन्तली रिकेन्सियोनिबस" सन् १८७० ई० में ब्रेजला विश्वविद्यालय से डाक्टरेट के लिए स्वीकृत हुई थी, जिसका प्रकाशन १८७७ ई० में "कालिदासाज शकुन्तला, द बेंगाली रिसेन्शन विद क्रिटिकल नोट्स" के रूप में कील से हुआ। उन्हीं दिनों "हेमचन्द्राज ग्रेमेटिक डेर प्राकृतस्प्राखन" लिखी गई, जो हाल नाम के नगर से सन् १८७७-१८८० ई० में दो जिल्दों में प्रकाशित हुई। इसी प्रकार १८८० ई० में कील से 'देशीनाममाला' प्रकाशित हुई। "ग्रेमेटिक डेर प्राकृतश्प्राखन" नामक पुस्तक स्ट्रासबर्ग से सन् १९०० ई० में प्रकाशित हुई। इस पुस्तक का अंग्रेजी अनुवाद डा० सुभद्र झा ने "कम्पेरेटिव ग्रामर आव द प्राकृत लैंग्वेज" नाम से किया है और हिन्दी में डा० हेमचन्द्र जोशी ने "प्राकृत भाषाओं का व्याकरण" नाम से प्रस्तुत किया है, जो बिहार-राष्ट्रभाषा परिषद्, पटना से प्रकाशित हो चुका है। वास्तव में पिशेल महोदय ने उपलब्ध प्राकृतों के व्याकरण और अनेक हस्तलिखित ग्रन्थों के आधार पर प्राकृत-भाषाओं का व्याकरण जिस रूप में प्रस्तुत किया है उससे वह एक अद्भुत ग्रंथ ही बन गया है। वैदिक भाषाओं के मूल उत्स से लेकर नव्य भारतीय आर्यभाषाओं की प्रकृति तथा शब्द-रूपों का उन्होंने विशेष रूप से अनुशीलन किया। उन्होंने वैदिक साहित्य का भी यथेष्ट अध्ययन और अध्यापन किया था। प्राकृत भाषाओं के व्याकरण की पूर्ति के रूप में उन्होंने "माटेरिआलिएन् त्सुर् केन्टनिस् डेस् अपभ्रंश" एक छोटी सी पुस्तक भी लिखी, जिसमें अपभ्रंश का पहली बार स्वतन्त्र रूप से विचार किया गया और जिसका प्रकाशन सन् १९०२ ई० में बर्लिन से हुआ। प्राध्यापक पिशेल महोदय के ये दोनों ही ग्रन्थ मध्ययुगीन भारतीय आर्यभाषाओं के स्वरूप को समझने के लिए अत्यन्त उपयोगी तथा महत्त्वपूर्ण सिद्ध हुए हैं।

डा० हर्मन जेकोबी भी एक जर्मन विद्वान् थे। पिछले की भाँति भारतीय विद्या के विशेष प्रेमी तथा अध्ययन-अध्यापन में रत रहते थे। जर्मन की बॉन युनिवर्सिटी में डा० जेकोबी भारतीय विद्या के प्राध्यापक थे। प्रो० पिशेल ने प्राकृतों के अध्ययन-अध्यापन की जिस नींव को प्रस्थापित किया था डा० जेकोबी ने उसी परम्परा को अग्रसर किया। मुख्य रूप से प्राध्यापक जेकोबी ने जैनागमों का गम्भीर अध्ययन किया। सूत्र ग्रन्थों का अध्ययन और संशोधन तथा सम्पादन ही उनका प्रारम्भिक उद्देश्य था। परन्तु धीरे-धीरे जैन-साहित्य में उनकी रुचि विशेष रूप से आकृष्ट होती गई। उन्होंने सबसे पहले "उत्तराध्ययनसूत्र" का अध्ययन किया। उस पर उन्होंने एक टीका भी लिखी। टीकाओं में अनेक कथाओं का उल्लेख देख कर उन्होंने कथाओं का एक संग्रह तैयार किया, जो पाठ्यपुस्तक के रूप में (महाराष्ट्री से चुनी हुई कहानियाँ) त्सूर आख-पयूरुंग इन डास स्टूडियम डेस प्राकृत ग्रामीटीक टैक्स्ट वोएरट खुस प्रकाशित हुआ। सन् १८८६ ई० में लिपजिक नाम के नगर से "औसगेवैल्ते एर्त्सेलुंगन इन महाराष्ट्री" नाम से वह संग्रह प्रकाशित हुआ। इसके इन्ट्रोडक्शन में महाराष्ट्री प्राकृत के सम्बन्ध में विशद विवेचन किया गया है, जिसका अंग्रेजी अनुवाद डा० ए० एम० घाटगे ने किया है और जो "द जैन एन्टिक्वेरी" के अंक में प्रकाशित हो चुका है। अपने इस प्राथमिक वक्तव्य में प्रो० जेकोबी ने वैदिक भाषाओं से लेकर आधुनिक भारतीय आर्यभाषाओं तक के विकास की जिस धारा का ऐतिहासिक दृष्टि से अध्ययन किया था और जिस बात को पिशेल महोदय पहले ही अपने "प्राकृतों के व्याकरण" में लिख चुके थे उसी आधार पर उन्होंने अपभ्रंश के बहुविध रूपों की तथा बोलियों की कल्पना की। उन्होंने अपने विचारों को स्पष्ट करते हुए कहा कि भारतीय भाषाएँ तीन अवस्थाओं को पार कर चुकी हैं। वे तीन अवस्थाएँ हैं—संस्कृत (वैदिक, इपिक और क्लासिकल), मध्यभारतीय या प्राकृत (पाली, प्राकृत महाराष्ट्री और अपभ्रंश) तथा आधुनिक भारतीय या भाषा। उत्तर बौद्धों की गाथा बोलियों का विचार करते हुए वे कहते हैं कि जिस प्रकार उच्च जर्मन के लोग अपनी प्रवृत्ति के अनुसार निम्न जर्मन की भाषा में बोलते और सोचते हैं उसी प्रकार गाथाओं की प्राकृत भी संस्कृत के अनुरूप लिखी गई, जिससे उस पर संस्कृत का प्रभाव दिखाई पड़ता है। वास्तव में महाराष्ट्री अपने युग की साहित्यिक भाषा रही है। पाली, प्राकृत और अपभ्रंश ध्वनि, वाक्य-रचना एवं बनावट में एक-दूसरे से भिन्न हैं। प्राकृत अलग है और अपभ्रंश अलग। प्राकृत से अपभ्रंश में जटिलता और रूपों की कमी है। महाराष्ट्री प्राकृत का भी अधिकतर प्रयोग जैन-साहित्य में हुआ है। इस प्रकार कई महत्वपूर्ण बातों की चर्चा उन्होंने इस ग्रन्थ की भूमिका में की है।

डा० जेकोबी ने प्राकृत वाङ्मय का विशेष रूप से अनुशीलन किया। अतएव आचारांग-सूत्र, उत्तराध्ययनसूत्र, कल्पसूत्र, कालकाचार्यकथानक, पउमचरियं और समराइच्चकहा आदि प्राकृत-ग्रन्थों के उत्तम रीति से सम्पादित तथा संशोधित संस्करण प्रकाशित किए। "आयारांग सुत्त" का प्रथम संस्करण हर्मन जेकोबी ने लन्दन से १८८२ ई० में प्रकाशित कराया था। "कालकाचार्यकथानकम्" लायमन द्वारा प्रकाशित "त्साईदुंग डेर मौर्गेन लैण्डिशन गेजेल शाफ्ट" में सर्वप्रथम प्रकाशित हुआ था। वस्तुतः सम्पादन और प्रकाशन की दृष्टि से इनका विशेष महत्व है। परन्तु प्राकृतों का महत्व और स्वरूप निर्धारण में जो निष्पक्ष और सूक्ष्म दृष्टि रिचर्ड पिशेल

में लक्षित होती है वह इनमें नहीं है। इनका महत्व अपभ्रंश-साहित्य की खोज करने में ही विशेष रूप से समाहित है।

पिशेल महोदय के पूर्व देशी-विदेशी विद्वान् यही समझते थे कि प्राकृतों का विकास-निकास संस्कृत से हुआ। संस्कृत को प्राकृत का मूल मानने वाले विद्वानों में होएफर, लास्सन, भण्डारकर, और जेकोबी भी सम्मिलित थे[1]। परन्तु पिशेल इसे भ्रमपूर्ण बतलाते हैं। उनका स्पष्ट मत है कि प्राकृत संस्कृत से प्राचीन बोली जाने वाली भाषा है। भाषा की भाँति ही बीम्स आदि कई भाषाविद् वर्षों तक इस बात को दुहराते रहे कि प्राकृत भाषाएँ कृत्रिम तथा साहित्य की भाषाएँ हैं। इसी प्रकार का मत अपभ्रंश के सम्बन्ध में भी प्रचलित रहा। स्वयं पिशेल महोदय के सामने अपभ्रंश का कोई स्वतन्त्र ग्रन्थ न होने से वे इसका विशेष विचार नहीं कर सके। परन्तु प्राकृतों की अनेक बोलियों का उल्लेख और उनके विविध रूपों का उन्होंने विस्तृत विवेचन किया तथा उनका महत्व प्रतिष्ठित किया। उनके विचार में अपभ्रंश का साहित्य अवश्य था, परन्तु वह लुप्त हो चुका था। कई विद्वानों की राय में अपभ्रंश बनावटी भाषा थी, जो संस्कृत को तोड़-मरोड़ कर बनाई गई थी। कीथ महोदय इसी मत को बहुत दिनों तक पुष्ट करते रहे। और जब तक अपभ्रंश का साहित्य प्रकाश में नहीं आया तब तक इसी प्रकार की अनेक अटकलें और अनुमान लगाये जाते रहे। यथार्थ में अपभ्रंश-साहित्य को प्रकाश में लाने का श्रेय डा० हर्मन जेकोबी को है।

यद्यपि पिशेल महोदय के पूर्व ही हर्मन जेकोबी जैन-साहित्य का महत्व प्रतिपादित कर चुके थे, परन्तु "प्राकृत भाषाओं के व्याकरण" से प्रभावित एवं प्रेरित होकर उन्होंने प्राकृत साहित्य की प्रचुरता और अपभ्रंश-साहित्य के अस्तित्व का अनुमान लगा लिया था। और यही धारणा लेकर उन्होंने सन् १९१३-१४ में भारतवर्ष का प्रवास किया। मार्च, १९१४ में अहमदाबाद में एक जैन साधु के पास उन्होंने जीर्ण हस्तलिखित प्रति को देखा। उस कथा की चार-छह पंक्तियों को पढ़कर जेकोबी अत्यन्त चमत्कृत हुआ। वह हर्ष से उछल पड़ा। उसे उस समय उतना ही आनन्द प्राप्त हुआ जितना कि पुत्र-रत्न प्राप्ति के समय होता है। वह कथाग्रन्थ अपभ्रंश भाषा में महाकवि धनपाल का लिखा हुआ "भविसयत्तकहा" था। अपभ्रंश के इस महत्वपूर्ण ग्रंथ की प्रथम परिचिति डा० जेकोबी को मिली। उन्होंने बड़ी कठिनाई से इस कथाकाव्य के कुछ पत्रों की अपने हाथ से प्रतिलिपि की और कुछ की फोटोकापी तैयार करवाई। कुछ दिनों के बाद सौराष्ट्र के प्रवास में एक दूसरा कथाग्रंथ प्राप्त हुआ। यह राजकोट के एक साधु के पास से प्राप्त हुआ। इसका नाम "नेमिनाथचरित" था। इसकी हस्तलिखित प्रति ही जर्मन विद्वान् को मिल गई। इस प्रकार अपभ्रंश ग्रंथों की पहली जानकारी डा० जेकोबी को प्राप्त हुई।

उन दिनों प्रथम महायुद्ध के विप्लव-बादल चारों ओर मंडराने लगे थे। विश्वव्यापी महायुद्ध प्रारम्भ हो गया था। इसलिए लगभग चार वर्षों तक जेकोबी महोदय कुछ भी नहीं प्रकाशित कर सके। सन् १९१८ ई० में म्युनिक रायल एकेडेमी की ओर से "भविसयत्तकहा" का

१ देखिए, "प्राकृत भाषाओं का व्याकरण", पृष्ठ ८

प्रथम संस्करण प्रकाशित हुआ, जो व्याकरण, शब्द-रचना, शब्द-कोष आदि से भलीभाँति अलंकृत था। एक ही प्रति पर आधारित होने के कारण ग्रन्थ में अशुद्धियों का रह जाना स्वाभाविक ही था। परन्तु परिश्रम बहुत अधिक किया गया था। अपभ्रंश का सर्वप्रथम प्रकाशित होने वाला यही साहित्यिक ग्रन्थ था। इसके तीन वर्षों के पीछे सन् १९२१ ई० में डा० जेकोबी ने आ० हरिभद्रसूरि कृत "नेमिनाथचरित" के अन्तर्गत "सनत्कुमारचरित" का सुसम्पादित संस्करण प्रकाशित किया। बाद में "भविष्यदत्तकथा" गायकवाड़ ओरियन्ट सीरिज, बड़ौदा से १९२३ ई० में सी०डी० दलाल और पी० डी० गुणे के सम्पादकत्व में प्रकाशित हुई। उसके बाद अनेक अपभ्रंश ग्रन्थों का पता लग गया। भारतीय विद्वान् जिन्हें प्राकृत भाषा का समझते रहे वे अपभ्रंश के ग्रन्थ निकले। और तब से कई भारतीय विद्वानों ने अपभ्रंश पर बहुत कार्य किया। परिणामस्वरूप लगभग पचास ग्रन्थ प्रकाशित हो चुके हैं। परन्तु अभी तक लगभग तीन सौ ग्रन्थ अप्रकाशित पड़े हुए हैं। और कई महत्वपूर्ण ग्रन्थ अज्ञात तथा अनुपलब्ध हैं। वस्तुतः मध्ययुगीन भारतीय आर्यभाषा और साहित्य के प्रतिष्ठापक और पुरस्कर्त्ता के रूप में पिशेल और डा० हर्मन जेकोबी का नाम सदा स्मरणीय रहेगा। अपभ्रंश के जिस अजान, अज्ञात और उपेक्षित क्षेत्र का उन्होंने उद्‌घाटन किया वह यथार्थ में चिर अविस्मरणीय रहेगा। और मध्ययुगीन भारतीय साहित्य के इतिहास में उनका नाम स्वर्णाक्षरों से अंकित रहेगा।

जैन दर्शन में सत्य की मीमांसा

मुनिश्री नथमलजी महाराज

सत्य क्या है ? इस प्रश्न पर मनुष्य अनादि काल से चिन्तन करता आ रहा है। उसने सत्य का साक्षात् करने का यत्न किया है और वह उसमें सफल भी हुआ है। चिर अतीत में अनेक मनुष्यों ने अनेक प्रयत्न किए हैं, इसलिए सत्य-शोध की अनेक धाराएँ बन गयी हैं। उनमें एक धारा है जैनदर्शन। उसके अनुसार जो सत् है, वही सत्य – जो है वही सत्य है, जो नहीं है वह सत्य नहीं है। यह अस्तित्व-सत्य, वस्तु-सत्य, स्वरूप-सत्य या ज्ञेय-सत्य है। जिस वस्तु का जो सहज शुद्ध रूप है, वह सत्य है। परमाणु, परमाणु रूप में सत्य है। आत्मा, आत्मा रूप में सत्य है। धर्म, अधर्म, आकाश भी अपने रूप में सत्य है। "एक वर्ण, गन्ध, रस और स्पर्श वाला अविभाज्य पुद्‌गल"—यह परमाणु का सहज रूप-सत्य है। बहुत सारे परमाणु मिलते हैं, स्कन्ध बन जाता है, इसलिए परमाणु पूर्ण-सत्य (त्रैकालिक-सत्य) नहीं है। परमाणु-दशा में परमाणु सत्य है। भूत-भविष्यत् कालीन स्कन्ध की दशा में उसका विभक्त रूप सत्य नहीं है।

आत्मा शरीर-दशा में अर्ध सत्य है। शरीर, वाणी, मन और श्वास उसका स्वरूप नहीं है। आत्मा का स्वरूप है—अनन्त ज्ञान, अनन्त आनन्द, अनन्त वीर्य (शक्ति) अरूप। सरूप (सशरीर) आत्मा वर्तमान पर्याय की अपेक्षा सत्य है (अर्ध-सत्य है) अरूप (अशरीर, शरीर मुक्त) आत्मा पूर्ण सत्य (परम सत्य या त्रैकालिक सत्य) है। धर्म, अधर्म और आकाश (इन तीन तत्वों का त्रैकालिक रूपान्तर नहीं होता। ये सदा अपने सहज रूप में ही रहते हैं—इसलिए) पूर्ण सत्य हैं।

साध्य-सत्य

साध्य-सत्य स्वरूप-सत्य का ही एक प्रकार है। वस्तु-सत्य व्यापक है। परमाणु में ज्ञान नहीं होता, अतः उसके लिए कुछ साध्य भी नहीं होता। वह स्वाभाविक काल मर्यादा के अनुसार कभी स्कंध में जुड़ जाता है और कभी उससे विलग हो जाता है।

आत्मा ज्ञानशील पदार्थ है। विभाव-दशा (शरीर-दशा) में स्वभाव (अशरीर-दशा या ज्ञान, आनन्द और वीर्य का पूर्ण प्रकाश) उसका साध्य होता है। साध्य न मिलने तक यह सत्य होता है और उसके मिलने पर (सिद्धि के पश्चात्) वह स्वरूप-सत्य के रूप में बदल जाता है।

साध्य-काल में मोक्ष पूर्ण-सत्य होता है और आत्मा अर्ध-सत्य। सिद्धि-दशा में मोक्ष और आत्मा का अद्वैत (अभेद) हो जाता है, फिर कभी भेद नहीं होता। इसलिए मुक्त आत्मा का स्वरूप पूर्ण-सत्य है (त्रैकालिक है, अपुनरावर्तनीय है)।

जैन-तत्व-व्यवस्था के अनुसार चेतन और अचेतन—ये दो सामान्य सत्य हैं। ये निरपेक्ष स्वरूप-सत्य हैं। गति-हेतुकता, स्थिति-हेतुकता, अवकाश-हेतुकता, परिवर्तन-हेतुकता और ग्रहण (संयोग-वियोग) की अपेक्षा—विभिन्न कार्यों और गुणों की अपेक्षा धर्म, अधर्म, आकाश, काल, और पुद्गल—अचेतन के ये पांच रूप (पांच-द्रव्य) और जीव, ये छह सत्य हैं। ये विभाग-सापेक्ष-स्वरूप सत्य हैं।

आस्रव (बन्ध-हेतु), संवर (बन्धन-निरोध), निर्जरा (बन्धन-दाय हेतु)—ये तीनों साधन सत्य हैं। मोक्ष साध्य-सत्य है। बन्धन-दशा में आत्मा के ये चारों रूप सत्य हैं। मुक्त-दशा में आस्रव भी नहीं होता, संवर भी नहीं होता, निर्जरा भी नहीं होती, साध्य-रूप मोक्ष भी नहीं होता, इसलिए वहां आत्मा का केवल आत्म-रूप ही सत्य है।

आत्मा के साथ अनात्मा (अजीव-पुद्गल) का सम्बन्ध रहते हुए उसके बन्ध, पुण्य और पाप में तीनों रूप सत्य हैं। मुक्त-दशा में बन्धन भी नहीं होता, पुण्य भी नहीं होता, पाप भी नहीं होता। इसलिए जीव विमुक्त-दशा में केवल अजीव (पुद्गल) ही सत्य है। तात्पर्य कि जीव-अजीव की संयोग-दशा में नव सत्य हैं। उनकी वियोग-दशा में केवल दो ही सत्य हैं।

व्यवहार नय से वस्तु का वर्तमान रूप (वैकारिक रूप) भी सत्य है। निश्चय नय से वस्तु का त्रैकालिक (स्वाभाविक रूप) सत्य है।

उपयोगिता की दृष्टि से सत्य का विचार निम्न चार विषयों के आस-पास चलता है—

१. बन्ध, २. बन्ध-हेतु (आस्रव), ३. मोक्ष, ४. मोक्ष हेतु (संवर-निर्जरा)।

संक्षेप में दो हैं—आस्रव और संवर। इसीलिए काल-क्रम के प्रवाह में बार-बार यह वाणी मुखरित हुई है।

> आस्रवो भवहेतुः स्यात् संवरो मोक्ष कारणम्।
> इतीयमार्हती दृष्टि रन्यदस्याः प्रपंचनम् ॥

यही तत्व वेदान्त में अविद्या और विद्या शब्द के द्वारा कहा गया है। बौद्ध-दर्शन के चार आर्य-सत्य और क्या हैं? यही तो हैं—

१. दुःख-हेतु ।

२. समुदय-हेयहेतु ।

३. मार्ग—हनोपाय या मोक्ष उपाय ।

४. निरोध – हान या मोक्ष ।

यही तत्व हमें पातंजल-योग-सूत्र और व्यास-भाष्य में मिलता है। योग-दर्शन भी यही कहता है—विवेकी के लिए यह संयोग दुःख है और दुःख हेय है। त्रिविध दुःख के थपेड़ों से थका हुआ मनुष्य उनके नाश के लिए जिज्ञासु बनता है।

"नृणामेकोगम्य स्त्वमसि खलु नानापथ जुषाम्"—गम्य एक है—उसके मार्ग अनेक। सत्य एक है—शोध-पद्धतियां अनेक। सत्य की शोध और सत्य का आचरण धर्म है। सत्य-शोध की संस्थाएं, सम्प्रदाय या समाज हैं, वे धर्म नहीं हैं। सम्प्रदाय अनेक बन गए पर सत्य अनेक नहीं बना। सत्य शुद्ध-नित्य और शाश्वत होता है। साधन के रूप में वह है अहिंसा और साध्य के रूप में वह मोक्ष है।

सत्य की व्याख्या के दो पहलू

सत्य की व्याख्या एकान्त दृष्टि से नहीं की जा सकती। उसके दो पहलू हैं—वस्तु सत्य और व्यवहार सत्य। वस्तु सत्य के द्वारा पारमार्थिक सत् या ध्रुवता की व्याख्या की जा सकती है और व्यवहार सत्य के द्वारा दृश्य सत्य या परिवर्तनांश की व्याख्या की जा सकती है।

वस्तु सत्य

एक ओर यह अखण्ड विश्व की अविभक्त सत्ता है और दूसरी ओर यह खण्ड का चरम रूप व्यक्ति है। व्यक्ति का आक्षेप करने वाली सत्ता और सत्ता का आक्षेप करने वाला व्यक्ति—दोनों भटके हुए हैं। सत्ता का स्व व्यक्ति है। व्यक्ति की विशाल शृंखला सत्ता है। सापेक्षता में दोनों का रूप निखर उठता है।

यह व्यक्ति और समष्टि की सापेक्ष-नीति जैन-दर्शन का नय है। इसके अनुसार समष्टि सापेक्ष व्यक्ति और व्यक्ति-सापेक्ष समष्टि-दोनों सत्य हैं। समष्टि-निरपेक्ष-व्यक्ति और व्यक्ति निरपेक्ष-समष्टि —दोनों मिथ्या हैं।

व्यवहार-सत्य

नय-वाद ध्रुव सत्य की अपरिहार्य व्याख्या है। यह जितना दार्शनिक सत्य है, उतना ही व्यवहार-सत्य है। हमारा जीवन वैयक्तिक भी है और सामुदायिक भी। इन दोनों कक्षाओं में नय की अर्हता है।

सापेक्ष नीति से व्यवहार में सामंजस्य आता है। उसका परिणाम है मैत्री, शान्ति और व्यवस्था। निरपेक्ष-नीति अवहेलना, तिरस्कार और घृणा पैदा करती है। परिवार, जाति, गाँव, राज्य, राष्ट्र और विश्व–ये क्रमिक विकाशशील संगठन हैं। संगठन का अर्थ है सापेक्षता। सापेक्षता का नियम दो के लिए है, वही अन्तर्राष्ट्रीय जगत् के लिए है।

एक राष्ट्र दूसरे राष्ट्र की अवहेलना कर अपना प्रभुत्व साधता है, वहां असमंजसता खड़ी हो जाती है। उसका परिणाम है—कटुता, संघर्ष और अशांति।

निरपेक्षता के पांच रूप बनते हैं—१. वैयक्तिक, २. जातीय, ३. सामाजिक, ४. राष्ट्रीय, ५. अंतर्राष्ट्रीय।

इसके परिणाम हैं—समता प्रधान जीवन, सामीप्य, व्यवस्था, स्नेह शक्ति-संवर्धन, मैत्री और शान्ति।

बहुता और और अल्पता, व्यक्ति और समूह के एकान्तिक आग्रह पर असन्तुलन बढ़ता है, सामंजस्य की कड़ी टूट जाती है।

अधिकतम मनुष्यों का अधिकतम हित—यह जो सामाजिक उपयोगिता का सिद्धान्त है वह निरपेक्ष नीति पर आधारित है। इसी के आधार पर हिटलर ने यहूदियों पर मनमाना अत्याचार किया। बहुसंख्यकों के लिए अल्पसंख्यकों तथा बड़ों के लिए छोटों के हितों का बलिदान करने के सिद्धांत का औचित्य एकान्तवाद की देन है।

सामन्तवादी युग में बड़ों के लिए छोटों के हितों का न्याय उचित माना जाता था। बहुसंख्यकों के लिए अल्पसंख्यकों तथा बड़े राष्ट्रों के लिए छोटे राष्ट्रों की उपेक्षा आज भी होती है। यह अशान्ति का हेतु बनता है। सापेक्ष नीति के लिए किसी के लिए भी अनिष्ट नहीं किया जा सकता।

बड़े राष्ट्र छोटे राष्ट्रों को नगण्य मान उन्हें आगे आने का अवसर नहीं देते। इस निरपेक्ष-नीति की प्रतिक्रिया होती है। फलस्वरूप छोटे राष्ट्रों में बड़ों के प्रति असनेह-भाव उत्पन्न हो जाता है। वे संगठित हो उन्हें गिराने की सोचते हैं। घृणा के प्रति घृणा और तिरस्कार के प्रति तिरस्कार तीव्र हो उठता है।

मैत्री की पृष्ठ-भूमि सत्य है, वह ध्रुवता और परिवर्तन दोनों के साथ जुड़ा हुआ है। अपरिवर्तन जितना सत्य है, उतना ही सत्य है परिवर्तन। अपरिवर्तन को नहीं जानता वह चक्षुष्मान् नहीं है, वैसे ही वह भी अचक्षुष्मान् है जो परिवर्तन को नहीं समझता।

वस्तुएं बदलती हैं, क्षेत्र बदलता है, काल बदलता है, विचार बदलते हैं, इनके साथ स्थितियाँ बदलती हैं। बदलते सत्य को जो पकड़ लेता है, वह सामंजस्य की तुला में चढ़ दूसरों का साथी बन जाता है।

❀ ❀ ❀

श्रीमद्भगवद्गीता और जैन-धर्म

श्री दिगम्बरदास जैन, मुख्तार

जैनधर्म एक आध्यात्मिक धर्म है और गीता एक आध्यात्मिक ग्रन्थ। जैनधर्म आत्मा को शरीर से भिन्न बता कर आत्मा को नित्य और शरीर को नाशवान मानता है, यही बात श्रीकृष्णजी गीता के अध्याय २ श्लोक २१ में कहते हैं। आगे २२वें श्लोक में तो जैनधर्मानुसार यह भी कह दिया कि जैसे पुराने वस्त्र त्याग कर नये पहने जाते हैं, वैसे ही आत्मा शरीर का पुराना चोला त्याग कर कर्मानुसार नया शरीर धारण कर लेता है। जैनधर्म राग-द्वेष को कर्म-बन्धन का कारण कह कर इनके त्याग की शिक्षा देता है, इसी सिद्धान्त को गीता के अध्याय २

के श्लोक ५२, ५७, ६१ और ६४ में स्वीकार किया है। जैनधर्म आवागमन को मानता है, गीता के अध्याय ४ श्लोक ५ से भी यही बात सिद्ध है। जैनधर्म बताता है कि जो राग-द्वेष से रहित होता है वह वीतरागी कर्म-बन्धन से मुक्त हो शीघ्र मोक्ष प्राप्त कर लेता है, जैनधर्म के इसी मूल-मन्त्र का गीता के अध्याय ५ श्लोक, ३ में वर्णन है। जैनधर्म फल की इच्छा न रखते हुए कार्य करने को कहता है इसी बात को गीता के अध्याय ६ के श्लोक १ में कहा है कि जो फल न चाहते हुए योग्य कार्य करता है वही योगी तथा संन्यासी है जैनधर्म संसार को अनादि और अनन्त मानता है, यही बात गीता में स्वीकार करते हुए संसार-रूपी अश्वत्थ वृक्ष अनादि और अनन्त बताया है। जैनधर्म का कहना है कि यह संसार अकृतमय है इसे किसी ईश्वर या भगवान ने नहीं बनाया, यह जीव स्वयं कर्म करता है और स्वयं कर्मों का फल प्राप्त करता है। ईश्वर कर्मों के करने और उसका फल देने वाला नहीं है, यही बात श्रीकृष्ण जी ने गीता के अध्याय ५ के श्लोक १४-१५ में इस प्रकार कही है:—

न कर्तृत्वं न कर्माणि लोकस्य सृजति प्रभुः। न कर्म-फल संयोगं स्वभावस्तु प्रवर्तते ।।१४।।
नादत्ते कस्यचित्पापं न चैव सुकृतं विभुः। अज्ञानेनावृतं ज्ञानं तेनुमह्यन्ति जन्तवः ।।१५।।

महान नैश्यायिक विद्वान श्री हरिवंश शर्मा न्यायशास्त्री ने कई बार इस बात को स्पष्ट स्वीकार किया कि ईश्वर में कर्म दायतत्व की मानता सर्वथा असंगत है, अस्तु हम लोग पुरातन संस्कारों से इतने जकड़े हुए हुए हैं कि जानबूझकर भी सबके सामने स्वीकार करने में असमर्थ हैं।[1] वाराणसी के सुप्रसिद्ध तार्किक विद्वान स्व० पं० अम्बादास शास्त्री जी का भी यही मत है और ऐसा ही कहा करते थे।[2] वास्तव में बात यह है कि संसार का प्राणी कुकर्म करता हुआ उसके फल की ओर नहीं देखता और जब उन कर्मों का फल मिलता है तो उस समय उसे यह ज्ञात नहीं होता कि मुझे किस कर्म का फल मिल रहा है। तब वह सारा भार ईश्वर पर ही डाल देता है और कहता है कि यह सब कुछ भगवान ने किया। कुछ कह कर तो मानव सन्तोष कर ले। इस प्रकार वह अपने सन्तोष की सीमा ईश्वर को बना लेता है। अनासक्त होकर कर्म करने पर जैन धर्म के समान गीता में जो अधिक जोर दिया है, श्री ताराचन्द पाड्या के शब्दों में यह भी जैनधर्म का ही प्रभाव है।[3] गौतम स्वामी ने मगधपति महाराज श्रेणिक के प्रश्नों का उत्तर देते हुए पद्मपुराणजी में बताया कि जब-जब धर्म की हानि और पाप की बढ़ोतरी होती है तो पाप अन्धकार का नाश करके धर्म का विकास करने को तीर्थंकर प्रगट होते हैं।[4] गीता के अध्याय ४ का सर्वप्रसिद्ध श्लोक ७ भी इसी प्रकार कहता है :—

यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत। अभ्युत्थानम धर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम् ।।
(अ० ४, श्लोक ७)

कहाँ तक दृष्टान्त दिये जावें ? वैदिक विद्वान श्री माधव कृष्णजी भूतपूर्व प्रिंसिपल

१-२ "अहिंसा" जयपुर (१६ मई १६५६) पृ० ३
३. अहिंसा जयपुर (१ फरवरी १६५६) पृ० ७
४. श्री रविसेनाचार्य रचित पद्मपुराण जी की पं० दौलतराम जी की टीका, पृ० ४८

गवर्नमेंट कालिज, जयपुर का स्वयं कहना है कि, **"गीताजी जैन धर्म के सिद्धान्तों से प्रभावित ग्रन्थ है।**[५]**"**

हिन्दुओं का दूसरा प्रसिद्ध और प्रामाणिक ग्रन्थ भागवत पुराण कहता है कि जैनियों के प्रथम तीर्थंकर श्री ऋषभदेव इक्ष्वाकु वंशी थे। जो नाभिराय मनुजी के पुत्र और प्रथम सम्राट थे, जिनका वर्णन ऋग्वेद तक में आता है।[६] अनेक विद्वानों का मत है कि नाभिराय मनुजी ने जो उपदेश अपने पुत्र आदि महापुरुष श्री ऋषभदेव को इस युग के प्रारम्भ में दिया और फिर श्री ऋषभदेवजी ने दिया, फिर दूसरे तीर्थंकर श्री अजतजी ने और फिर इसी प्रकार २२वें तीर्थंकर श्री नेमिनाथजी ने अपने समयकालीन श्री कृष्णजी को दिया वही कृष्णजी ने महाभारत के समय श्री अर्जुन को दिया वही उपदेश गीता के नाम से पुकारा जाता है और यही कारण है कि गीता में अनेक जैन सिद्धान्त भरे हुए हैं।[७] आज के विद्वान श्री नेमिनाथजी को श्री कृष्णजी समान ऐतिहासिक पुरुष स्वीकार करते है।[८] डा० श्री राधाकृष्णजी के अनुसार श्री नेमिनाथजी का वर्णन वेदों में भी मिलता है।[९] श्री कृष्णजी के पिता श्री वसुदेवजी और श्री नेमिनाथजी के पिता श्री समुद्रविजयजी सगे भाई थे।[१०] श्रीकृष्णजी अनेक बार अपने परिवार सहित भगवान नेमिनाथजी के शमोशर्ण में उनका उपदेश सुनने के लिए गए।[११] श्री कृष्णजी के पुत्र श्री प्रद्युम्नकुमारजी तो तीर्थंकर महाराज के उपदेश से इतने प्रभावित हुए कि सब राजसुख त्यागकर भरी जवानी में जैन साधु उनके शमोशर्ण में ही हो गये थे।[१२] गीता पर भगवान नेमिनाथजी का प्रभाव होना कुदरती बात है। स्वयं कृष्णजी ने भी गीता अध्याय ४ के श्लोक १-२ में इस बात को इस प्रकार स्वीकार किया :--

इमं विवस्वते योगं प्रोक्तवानहमव्ययम्। विवास्वान्मनवे प्राह मनुरिक्ष्वाकवेऽब्रवीत् ॥१॥
एवं परम्पराप्राप्तमिमं राजर्षयोविदुः। स कालेनेह महता योगो नष्टः परं तप ॥२॥

(अध्याय ४)

अर्थात् (गीता प्रेस गोरखपुर के अनुसार) इस अविनाशी योग को कल्प के आदि (इस युग के आरम्भ) में सूर्य के प्रति कहा गया था और सूर्य ने अपने पुत्र मनु (नाभीराय मनु) के प्रति कहा और मनुजी ने अपने पुत्र राजा इक्ष्वाकु (ऋषभदेव) के प्रति कहा। इस प्रकार परंपरा से प्राप्त हुए इस योग को राजर्षियों ने जाना। यह पुरातन योग अब मैं तुम्हारे (अर्जुन) के लिए कहता हूँ।

---

५. अहिंसा, जयपुर (१६ मई १९५६) पृ० २
६. विस्तार के लिए हमारा वर्धमान महावीर, पृ० ४०
७. Glimpses of Jainism, page 3.
८. विस्तार के लिए हमारा वर्धमान महावीर, पृ० ४२६
९. Indian Philosophy, Vol. II, p. 287.
१०. Prof. Dr. H. S. Bhattacharya : Lord Arishta Nemi, page 5.
११-१२. हरिवंश पुराण पृ० ३८५

जैन धर्म और कर्म-सिद्धांत

श्री हीरालाल पांडे, प्राचार्य
एम० ए० पी० एच० डी
बिलासपुर

"श्री हीरालालजी पांडे, प्राचार्य जैन समाज के उद्‌भट विद्वान हैं। जैनधर्म और कर्म-सिद्धांत पर अपने रोचक ढंग से यह लेख प्रस्तुत किया है। जैनधर्म में कर्म का जैसा सुन्दर विवेचन किया गया है, वैसा अन्यत्र नहीं है। जैनधर्म आत्मा का धर्म है। आत्मा के साथ कर्मरूपी मैल अनादि काल से इस प्रकार लगा हुआ है जैसे खान से निकले स्वर्ण के साथ कालिमा लगी हुई है। जैसे अग्नि में डालकर स्वर्ण शुद्ध हो जाता हैं वैसे ही तप रूपी अग्नि के प्रताप से आत्मा शुद्ध होकर परमात्मा बन जाता है। इस सम्बन्ध में श्रीमद्‌भगवतगीता का उदाहरण देकर जैनधर्म के कर्म सिद्धान्तों से उसकी साम्यता दिखाई देती है। कर्मसिद्धांत संसार के प्रत्येक प्राणी को कर्मठ बनाता है। उसके जीवन को आशा की सुनहली किरणों से आलोकित करता है।

मनुष्य के जीवन की सम्पूर्ण सफलता पुरुषार्थ और आशावाद पर निर्भर है जो कर्मसिद्धांत से आती है। लेख मौलिक और पठनीय है।"

"जैनधर्म" आत्मा का धर्म है। "जैन" वह आत्मा है जो "जयति कर्मशत्रून् इति जिनः" के अनुसार कर्मशत्रुओं को जीतने वाले देव को या परमात्मा को अपना उपास्य या आराध्य माने। आत्मा का धर्म जैन मात्र का उपास्य है। वह तो आत्मा का धर्म है और आध्यात्मिक देश में वह सभी का उपास्य होना चाहिए। हमारे देश का गौरव आध्यात्मिक धर्म और संस्कृति की उपासना में है।

"जैनधर्म" में आराध्य देव सम्पूर्ण कर्मशत्रुओं को या सांसारिक और आत्मिक बुराइयों को जीतने वाले हैं। अतः "जैनधर्म" की नीव कर्मसिद्धांत है। बिना कर्मों को जीते कोई विशुद्ध आत्मा या परमात्मा नहीं बन सकता। संसार में श्रेष्ठ मानव जीवन को पाकर कर्मों को जीत अच्छे कार्यों द्वारा मुक्ति या मोक्ष प्राप्त करना चार पुरुषार्थों में श्रेष्ठ पुरुषार्थ है। धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष चारों पुरुषार्थ लौकिक जीवन के साथ पारमार्थिक जीवन की ओर संकेत करते हैं। जीवन की नींव धर्म है। आत्मा का धर्म सब संकटों को टालता है। आत्मवीर ही सच्चा वीर विश्व में बन सकता है। आत्मवीर बनने के लिए जीवन भर शांति और सहिष्णुता के साथ विपत्तियों का सामना करना पड़ता है। वह जानता है कि आत्मा अनादिकाल से कर्मों से लिप्त है। उसे हम आत्मिक गुणों के विकास द्वारा कर्मनिर्लिप्त या मुक्त बना सकते हैं।

"जैनधर्म" यह विश्वास रखता है कि प्रत्येक सांसारिक आत्मा चाहे तो अपने कर्मों द्वारा अपनी आत्मा को परमात्मा बना सकता है अतः वह प्रत्येक आत्मा को देव या परमात्मा बनने का पात्र मानता है। उसके विश्वास में प्रत्येक आत्मा में परमात्मा बनने की शक्ति है। अतएव जैनधर्म अपने भविष्य-निर्माण का अधिकार आत्मा या व्यक्ति को सौंपता है। अतः जैनधर्म में परमात्मा-विशेष को संसार के प्राणियों को अच्छा-बुरा फल देने वाला नहीं माना है।

गीता में कहा गया है—

> न कर्तृत्वं न कर्माणि, लोकस्य सृजति प्रभुः ।
> न कर्मफलसंयोगं, स्वभावस्तु प्रवर्तते ॥

"भगवान संसार के न कर्तृत्व को करता है, न कर्मों को रचता है और न ही कर्मों के फल को देता है । किन्तु यह सब स्वभाव है – स्वतः होता है ।"

पूर्वोक्त कथन से स्पष्ट है कि परमात्मा संसार के प्राणी के अच्छे-बुरे कर्मों का कर्ता-धर्ता नहीं है । प्रत्येक आत्मा अपने कर्मों के लिए उत्तरदायी है । भारत देश कर्मभूमि है । कर्मभूमि में प्रत्येक व्यक्ति अपने लिए कर्म करता है । कृषक की तरह अच्छे बीज बोकर, परिश्रम के साथ भाग्य निर्माण कर अच्छा-बुरा फल पाता है । अतः परमात्मा को किसी भी प्रकार दोषी बनाना उचित नहीं है । तुलसीदासजी ने ठीक ही कहा है—"जो जस करहि सो तस फल चाखा ।"

संसार में दो तत्व हैं—आत्मा और जड़ या चेतन और अचेतन । संसार इन तत्वों का संयोग है । सभी दर्शन इन दोनों के अस्तित्व को किसी-न-किसी रूप में स्वीकारते हैं – निबन्ध नहीं । अन्यथा ब्रह्म की प्राप्ति या मुक्ति सभी का अस्तित्व खतरे में पड़ जाता है । हमें प्रत्येक प्राणी में आत्म-तत्व के दर्शन करता है और उसे पाने के लिए प्रत्येक को प्रोत्साहित करता है ।

अथर्ववेद में कहा है –

> 'पुरुषे ब्रह्म ये विदुः ते विदुः परमेष्ठितम् ।'

'अर्थात् आत्मा में जो ब्रह्म का दर्शन करते हैं वे परमात्मा को जानते हैं ।" परमात्मा आत्मा से पृथक् नहीं है । अतः आत्मा की अनादिता, अमरता, अविनश्वरता आदि की घोषणा की गई । संसार का कोई भी पदार्थ या तत्व नष्ट नहीं होता केवल उसकी पर्यायें या अवस्थाएँ बदलनी हैं । प्रत्येक तत्व में तीन गुण पाये जाते हैं—उत्पाद, व्यय और ध्रौव्य ।

संसार में चेतन और अचेतन, आत्मा और जड़ दो तत्व हैं – द्रव्य हैं । दोनों का अस्तित्व अमर है । दोनों में अपनापन हमेशा रहता है । अतः "मोक्षशास्त्र" ग्रन्थ में—आचार्य उमास्वामी ने कहा—"उत्पादव्यय ध्रौव्ययुक्तं सत्", "सद् द्रव्य लक्षणम्" अर्थात् प्रत्येक द्रव्य के-- अस्तित्व में उत्पाद, व्यय और ध्रौव्य रहता है और उसी को द्रव्य कहा जाता है । द्रव्य में गुण और पर्यायें होती हैं ।

दोनों तत्वों में अनुरूप उत्पाद, व्यय और ध्रौव्य रहता है । जड़ में जड़ के अनुरूप और चेतन में चेतन के अनुरूप । जड़ से चेतन और चेतन से जड़ की क्रिया असम्भव है । जिसमें ज्ञान, दर्शन की शक्ति या जानने, सोचने-विचारने की शक्ति हो वह चेतन है । चेतन में दूसरे शब्दों में अनंतदर्शन, अनंतज्ञान, अनंतसुख और अनंतवीर्य – अनंतशक्ति होती है । अनंतशक्ति तो जड़ में भी है परन्तु उतनी नहीं जितनी, आत्म-चेतन में । शेष चेतन की तीन शक्तियां आत्मा में ही होंगी जड़ में नहीं । अतः चारों, अनंत चतुष्टय आत्मा में ही पाये जा सकते हैं ।

सोना, चांदी, लोहा, ताम्रादि की अनेक चीजें बनती हैं। उनमें कंगन, अंगूठी, थाली, लोटा, आदि बनने की क्षमता है। इनमें नई अवस्था आई, उत्पाद हुआ। पूर्वावस्था का रूप बन गया अतः व्यय हुआ और धातु अचेतन की अचेतन, जड़ की जड़ रही। पर ये चेतन नहीं हो सकतीं। इसी प्रकार आत्मा-चेतन अनेक रूप धारण कर सकता है—जन्म-मरण कर सकता है पर जड़-अचेतन नहीं हो सकता। इस प्रकार प्रत्येक द्रव्य अपने रूप परिणमन करता है।

"जैनदर्शन" मानता है कि प्रत्येक द्रव्य स्वतंत्र है। वह अपने रूपों का, परिणमनों का उत्तरदायी है। कोई द्रव्य किसी का कुछ बिगाड़ नहीं सकता। अन्यथा— कर्ता-धर्तापन की भावना यहाँ भी बनी रहेगी जो सच्चे विश्वास को डगमगा देगी। जब सच्चा विश्वास-सम्यग्-दर्शन न होगा तो सच्चा ज्ञान और सच्चा चरित्र कहाँ रहेगा। इन तीनों के बिना मुक्ति भी न होगी। अतः जैन-दर्शन ने प्रत्येक द्रव्य को अपने परिणमन में स्वतंत्र माना है। इसी विश्वास में आत्मा की विजय है —"अहमिन्द्रो न पराजिग्ये"—ऋग्वेद। आत्मा को अनंतशक्ति का आभास भी यहीं होता है।

यह संसार सदा से आत्मा और अनात्मा, चेतन या अचेतन के संयोग से अभिन्न रहा है। इन दोनों के संयोग का नाम ही संसार है। इस संसार में हमें अचेतन जड़-द्रव्यों का सहारा तो लेना ही पड़ता है। इसमें जो भी सुख-दुःख मिलता है उसमें अचेतन का भी योग रहता है। यह योग तब तक है जब तक संसार है—सांसारिक बुद्धि है। इसे हम अनुभव भी करते हैं। इसीलिए "जैनदर्शन" कहता है कि हमारे क्रियाकलापों के अनुरूप "कार्माणवर्गणा" (जड़-द्रव्य कर्म-समूह) हमारी आत्मा से संबद्ध हो जाती है तथा तदनुरूपेण (प्रकृतिबंध, प्रदेशबंध, स्थिति और अनुभागबंध द्वारा) फलदान करती हैं। इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि जड़ पदार्थ "कार्माण वर्गणा" में आत्म-चेतन के क्रियाकलापों या विचारों आदि के कारण फल देने की शक्ति प्रकट हो जाती है। कौन कर्म जड़ कब उदय में आकर फ़ल देंगे यह भी निश्चित हो जाता है। "कार्माण वर्गणा"ओं से आकृष्ट होकर आये, जड़कर्मपरमाणु आत्मा से सम्बद्ध हो जाते हैं। वे ही समयानुसार फल देते हैं।

"एकीभावस्तोत्र" में आचार्य श्री वादिराज ने कहा है—

एकीभावं गत इव मया यः स्वयं कर्मबन्धो,
घोरं दुःखं भवभवगतो दुर्निवारः करोति।
तस्याप्यस्य त्वयि जिनरवे। भक्तिरुन्मुक्तये चेत्,
जेतुं शक्यो भवति न तयां कोऽपरस्ताप हेतुः ॥

"हे भगवान् जिनेन्द्र सूर्य ! अनेक भवों में संचित दुर्निवार तथा मेरे साथ स्वयं एकीभाव को प्राप्त कर्मबन्ध घोर दुःख देता है। उस कर्मबंध से (जो अनादि कालीन है) आपकी भक्ति छुटकारा दिलाती है तो फिर वह भक्ति दुःख देने वाले अन्य किससे छुटकारा न दिलावेगी।"

पूर्वोक्त भक्तिपद्य में आत्मा को अनादिकाल से कर्मबद्ध बताया है। साथ में जिनेन्द्र भगवान् की भक्ति का माहात्म्य भी बताया है। जैनदर्शन—कर्म से आत्मा का संबंध अनादि

मानता है। यह सम्बन्ध संयोग सम्बन्ध है। संयोग सम्बन्ध छूट जाता है किन्तु तादात्म्य सम्बन्ध नहीं छूटता। वह यह मानने को तैयार नहीं कि किसी के कारण आत्मा कर्मबन्ध से मुक्त होने पर भी जन्म धारण कर सकता है। न वह यह मानने को तैयार है कि आत्मा किसी शक्ति का अंश है। कर्मबंध से बंधा हुआ आत्मा जन्म-मरण के दुःख सहता है। संसार में प्रत्येक प्राणी की आत्मा स्वतंत्र है—पृथक्-पृथक् है। प्रत्येक आत्मा की शक्ति अनंत है। शक्ति-दृष्टि से आत्माओं में कोई अंतर नहीं है। इसी को विशुद्ध आत्मदृष्टि कहते हैं।

अतः जैनदर्शन ने प्राणी दो प्रकार के माने हैं—संसारी और मुक्त। संसारी जन्म-मरण के दुःख तब तक उठाते हैं जब तक कि वे कर्मबंध से छूट नहीं जाते और मुक्त वे हैं जो जन्म-मरण के दुःख से सदा को दूर हो जाते हैं। मुक्त पुनः कभी भी इस संसार में जन्म नहीं लेते। मैं खाता हूं, मैं अनुभव करता हूं, मैं पढ़ा-लिखा हूं इत्यादि वाक्यों में, "मैं" शब्द शरीर में रहने वाली एक अदृश्य शक्ति का संकेत करता है, उसे ही जैनदर्शन ने आत्मा माना है। वह अनादि से कर्मबद्ध है—संसारी है अतएव जन्म-मरण करता है और नये-नये शरीर धारण करता है जब तक कि मुक्त नहीं हो जाता।

गीता में कहा है—

वासांसि जीर्णानि यथा विहाय,
नवानि गृह्णाति नरोऽपराणि।
तथा शरीराणि विहाय जीर्णा-
न्यन्यानि संयाति नवानि देही॥

"जिस प्रकार मनुष्य पुराने जीर्ण-शीर्ण वस्त्रों को त्याग कर नये दूसरे वस्त्रों को—पहिनता है—धारण करता है उसी प्रकार आत्मादेही—संसारी जीर्ण शरीरों को छोड़कर अन्य शरीर धारण करता है।"

गीता ने भी आत्मा को अनादि और जन्म-मरण धारण करने वाला माना है। जैनदर्शन प्रत्येक संसारी आत्मा को अपना हित और अहित करने वाला मानता है। प्रत्येक संसारी विवेक से अच्छे-से-अच्छा—उन्नत-से-उन्नत—श्रेष्ठ-से-श्रेष्ठ बन सकता है और अविवेक से बुरे-से-बुरा, हीन-से-हीन और नीच-से-नीच बन सकता है। जो अच्छा कार्य करता है वह उच्च है और जो बुरा कार्य करता है वह नीच है। अतः यह स्पष्ट है कि संसार और धर्म-दर्शन के क्षेत्र में सुकर्मों को ही महत्व दिया जाता है। सुकर्मों से ही मुक्ति मिलती है। कर्मों का फल सबको भोगना पड़ता है, यह सर्वमान्य सिद्धांत है। संसारी प्राणी को कर्मों का फल स्वतः कर्मों के द्वारा मिलता है। कर्मोदय में कोई अन्य कारण नहीं है।

"भावना द्वात्रिंशतिका" में कहा है—

पुराकृतं कर्मयदात्मना स्वयं,
फलं तदीयं लभते शुभाशुभम्।
परेण दत्तं यदि लभ्यते स्फुटं,
स्वयं कृतं कर्म निरर्थकं तदा॥

आत्मा ने स्वयं पहिले जो कर्म किए हैं। उनका ही अच्छा-बुरा फल उसे भोगना पड़ता है। यदि यह मानें कि दूसरे के द्वारा दिए गए कर्मफल को भोगना पड़ता है तो अपने द्वारा किया गया कर्म निरर्थक हो जावेगा—आत्मा दूसरे के कर्मों का गुलाम हो जावेगा—उसकी स्वतंत्रता छिन जावेगी।

अतः यह मानना होगा—

निजार्जितं कर्म विहाय देहिनो,
न कोऽपि कस्यापि ददाति किंचन।
विचारयन्नेवमनन्यमानसो,
परो ददातीति विमुच्य शेमुषीम् ॥

"देही आत्मा को अपने अर्जित कर्म का फल मिलता है। कोई किसी को कुछ नहीं देता। अतः आत्मदृष्टि में लीन हो पूर्वोक्त प्रकार से विचारते हुए दूसरा देता है (कर्मों को या कर्मफल को) यह पर-बुद्धि छोड़ देना चाहिए अन्यथा कल्याण नहीं हो सकता।] पर-बुद्धि के कारण ही संसारी बना रहता है। परबुद्धि मिथ्याबुद्धि है और स्वबुद्धि या आत्मबुद्धि सच्ची बुद्धि है—सच्ची दृष्टि है।

अरिस्टाटिल कहते हैं—

"Riches, and authority and all things else that come under the heading of potentialities are the gift of fortune. Among feelings we have angar, fear, hatred, longing, envy, pity and the like—these are all accompained by pain or peasulre. Faculties are the potentialities of anger, grief pity and the like. To do well and to do ill are alike within owr powers. Every natural growth whether plant or anlmal has the power of producing its like. It is who has the power of originating action, our changes of action are under contiol af our will."

"धन, अधिकार और वे सर्व वस्तुएं जो अदृष्ट हैं—भाग्य का फल है। क्रोध, भय, इच्छा, ईर्ष्या दया आदि भाव दुःख या सुख देते हैं। इन सब के होने का कारण अदृष्ट शक्तियाँ हैं; अच्छा या बुरा करना हमारा पुरुषार्थ है। वृक्ष या पशु अपनी प्रकृति के अनुसार बनने की की शक्ति रखते हैं। मानव अपने पुरुषार्थ से अनेक विचित्र कामों को अदल-बदल के कर सकता है।"

अतः स्पष्ट है कि अरिस्टाटल भी अपने कर्मों के फल को भोगने की बात मानते हैं। यहां यह कहना अनुचित न होगा कि वे ईश्वर को जगत् का कर्ता मानने को तैयार नहीं और पाप-पुण्य का फल देने वाला भी। ये विचार जैन दर्शन से मेल खाते हैं। अरिष्टाटल के दार्शनिक सिद्धान्तों में जैन दर्शन के सिद्धान्तों की विशेष झलक मिलती है।

आचार्यों ने आत्मा और कर्मों के सम्बन्ध का वैज्ञानिक विश्लेषण मनोविज्ञान के धरातल पर किया है। वे जिस नतीजे पर पहुँचे उसी आधार पर कर्मों के आठ भेद माने हैं—(१) ज्ञानावरण, (२) दर्शनावरण, (३) वेदनीय, सातावेदनीय, असातावेदनीय, (४) मोहनीय, (५) आयु कर्म, (६) नामकर्म, (७) गोत्रकर्म, (८) अन्तराय कर्म।

इन आठों कर्मों के पृथक-पृथक कार्य हैं। ज्ञानावरण आत्मा के ज्ञान गुण को प्रकट नहीं होने देता। ज्ञान का आवरण जितना हटेगा उतना ही ज्ञान प्रकट होगा। सम्पूर्ण आवरण हटने पर पूर्ण ज्ञान—केवल ज्ञान की प्राप्ति होती है। आत्मा का ज्ञान अभिन्न गुण है। दर्शनावरण आत्मा के दर्शन गुण को ढांकता है। दर्शनावरण जितने अंशों में हटता है उतना ही दर्शनगुण प्रकट होता है। आत्मा की अनन्त दर्शन शक्ति है। वेदनीय कर्म के दो भेद हैं—सातावेदनीय और असातावेदनीय। सातावेदनीय सुख देता है और असातावेदनीय दुःख देता है। मोहनीय कर्म राग, द्वेष, क्रोध, मोह, लोभ आदि पैदा करता है। आयु कर्म देही आत्मा को निश्चित समय तक जीवित रखता है। नामकर्म शरीर की पूर्णतया रचना करने में स्वाधीन है। गोत्रकर्म प्राणी को उच्च कुल या नीच कुल में जन्म देता है। अतः गोत्रकर्म के दो भेद हैं—उच्च गोत्र तथा नीच गोत्र। गोत्र का कार्य जन्म से सम्बद्ध है।

जन्म उच्च कुल या नीच कुल में लेने के बाद प्राणी अच्छे या बुरे कर्म करने के लिए स्वतन्त्र है। कर्म के क्षेत्र में सच्चा जनतन्त्र है। अच्छा कर्म करने वाला अच्छा और बुरा कर्म करने वाला बुरा। उच्चता और नीचता, कुलीनता और अकुलीनता कर्मों पर आधारित है। चार वर्णों की व्यवस्था जन्म और कर्म के एक से संयोग होने पर श्रेष्ठ मानी जाती रही है। अन्तराय कर्म अच्छे-बुरे कर्मों में विघ्न डालता है।

कर्मवाद के सिद्धान्त में उपादान कारण (मुख्य कारण) और निमित्त कारण (गौण या सहायक कारण) दोनों का ध्यान रखना पड़ता है। जिस कर्म का उदय है वह उपादान कारण तथा अन्य सहयोगी निमित्त कारण कहा जावेगा। उपादान कारण मुख्य शक्ति रूप है। निमित्त कारण तो संसार में भरे पड़े हैं। आत्मा की दो शक्ति हैं—स्वाभाविक और वैभाविक। स्वाभाविक शक्ति आत्मा के गुण या स्वभाव रूप परिणमन कराती है। स्वभाव रूप परिणमन ही धर्म है। विभावरूप परिणमन करना वैभाविक शक्ति का काम है। आत्मा अन्य द्रव्यों के समान अपने परिणमन में स्वतन्त्र है। आत्मा अपने गुणों को जितने अंशों में प्रकट करता जाता है वह उतना ही स्वाभाविक शक्ति के निकट पहुँचता जाता है। स्वाभाविक शक्ति के पूर्ण प्रकट होने पर मुक्ति होती है—आत्मा कर्म संयोग से मुक्त होकर मुक्त जीव बनता है। मोह कर्म कर्मों का राजा है। क्रोध, मान, माया लोभ उसी के हैं। इनसे ही आत्मा और कर्म का बंध सांयोगिक होता है। यह बंध चार प्रकार का होता है—प्रकृति, प्रदेश, स्थिति और अनुभाग।

प्रकृति बंध कर्म के नामरूप होता है। प्रदेशबंध में आत्मा के प्रदेशों—अंशों के साथ कर्म का बंध और कर्मपरमाणुओं की मात्रा का बंध होता है। स्थितिबंध समय निर्धारित करता है और अनुभागबंध फलदान शक्ति प्रदान करता है। क्रोध, मान, माया और लोभ कषाये हैं। इनकी तरतमता के ऊपर बंध निर्भर है। इन पूर्वोक्त कर्मों से मुक्त होने के लिए प्रयत्न करना ही

सच्चा पुरुषार्थ है। मन और कषायों के संपर्क से उत्पन्न चौदह अवस्थाओं—गुणस्थानों को पार कर आत्मा मुक्त बन सकता है। अतः प्रत्येक आत्मा को कर्मबंध से मुक्त होने के लिए सच्चा दर्शन, सच्चा ज्ञान और सच्चा चरित्र पाने की कोशिश करना चाहिए। क्योंकि इन तीनों की प्राप्ति से ही मुक्ति मिलेगी—अनंत आनंद की प्राप्ति होगी। सच्चा दर्शन—विश्वास—"जीवाजीवाश्रवबंध संवर निर्जरा मोक्षास्तत्वम्"—'जीव, अजीव, आश्रव, बंध, संवर, निर्जरा और मोक्ष इन तत्वों के सच्चे ज्ञान पर निर्भर है।

जीव आत्मा है। आत्मा द्रव्य है। वह अजर-अमर भी है। आत्मा के ज्ञान, दर्शन, सुख और शक्ति गुण हैं। प्रत्येक के साथ अनंत जोड़ने पर ये अनंत चतुष्टय बन जाते हैं। अजीव द्रव्य में आत्मा के गुण नहीं अतः जीव से विपरीत अजीव कहा गया है। अजीव द्रव्य पांच हैं—धर्म, अधर्म, आकाश, काल और पुद्गल—जड़। धर्म द्रव्य एक स्थान से दूसरे स्थान तक जाने में सहायक होता है। अधर्म द्रव्य ठहरने में सहायक होता है। आकाश जगह देता है रहने के लिए। आकाश के दो भेद हैं—लोकाकाश तथा अलोकाकाश। लोकाकाश में छह द्रव्यें रहती हैं किन्तु अलोककाश में केवल आकाश ही है शेष द्रव्यें नहीं। काल समय बताता और पुद्गल जड़ है इसमें कठोरता, कोमलता, रूक्षता आदि गुण होते हैं।

गुणस्थानों के सहारे आठों कर्मों में से मोहनीय कर्म के साथ-साथ ज्ञानवरण, दर्शनावरण और अंतराय कर्मों का क्षय कर संसारी आत्मा अरहंत पद पाता है। इस अवस्था में वह सशरीर रहता है और संसार के प्राणियों के कल्याणार्थ सदुपदेश देता है। यह सदुपदेश दिव्यध्वनि कहलाती है। अतः पांच परमेष्ठियों में प्रथम स्थान अरहंत को दिया। शेष वेदनीय, आयु, नाम और गोत्र कर्मों को नष्ट कर अरहंत सिद्ध हो जाते हैं। सिद्ध आकाश के दूसरे भेद अलोकाकाश में जा विराजते हैं। ये सिद्ध कर्मबन्धनों से मुक्त हो पुनः संसार में जन्म नहीं लेते। शेष परमेष्ठी आचार्य, उपाध्याय और सर्वसाधु हैं।

इस प्रकार जैनधर्म-दर्शन में कर्मसिद्धान्त मुख्य सिद्धान्त है। कर्मसिद्धान्त का विवेचन स्याद्वाद के सहारे होता है। स्याद्वाद—अनेकान्तवाद ही वस्तुस्वरूप का सच्चा एवं पूर्ण विवेचन करता है। कर्मभूमि में कर्मसिद्धांत कर्म को गौरव देता है। कर्मसिद्धांत संसार के प्रत्येक प्राणी को कर्मठ बनाता है। उसके जीवन को आशा की जगमगाती सुनहली किरणों से आलोकित करता है। क्योंकि कहा है—

निराशायाः समं पापं मानवस्य न विद्यते।
समुत्सार्य समूलं तामाशावादपरो भव॥

"निराशा के समान पाप नहीं है। अतः मानव को उसे समूल नष्ट कर आशावादी—अपने जीवन को उन्नत बनाने की भावना वाला होना चाहिए।"

मानवस्योन्नतिः सर्वा साफल्यं जीवनस्य च।
चारितार्थ्यं तथा सृष्टेराशावादे प्रतिष्ठितम्॥

"मनुष्य की सम्पूर्ण उन्नति, जीवन की सफलता एवं सृष्टि की सार्थकता आशावाद पर निर्भर है।"

विश्व-शांति के अमोघ उपाय

सुप्रसिद्ध लेखक श्री अगरचन्द
नाहटा, बीकानेर

विश्व का प्रत्येक प्राणी शान्ति का इच्छुक है। जो कतिपय पथ-भ्रान्त प्राणी अशांति की सृष्टि करते हैं वे भी अपने लिए तो शान्ति की इच्छा करते हैं। अशांत जीवन भला किसे प्रिय है ? प्रतिपल शांति की कामना करते रहने पर जो विश्व में अशांति बढ़ रही है। इसका कुछ कारण तो होना चाहिए। उसी की शोध करते हुए शांति को पाने के उपायों पर प्रस्तुत लेख में विचार किया जाता है। आशा है कि विचारशील व विवेकी मनुष्यों को आशा की एक किरण मिलेगी, जितनी यह किरण जीवन में व्याप्त होगी उतनी ही शान्ति (विश्व-शान्ति) की मात्रा बढ़ती जाएगी।

व्यक्तियों का समूह ही 'समाज' है और अनेक समाजों का समूह एक देश है। अनेकों देशों के जन-समुदाय को 'विश्व-शान्ति' कहते हैं और इसी 'विश्व-जनता' के धार्मिक, नैतिक, दैनिक जीवन के उच्च और नीच जीवन-चर्या से विश्व में अशांति व शांति का विकास और ह्रास होता है। अशांति सर्वदा अवांछनीय व अग्राह्य है। इसलिए इसका प्रादुर्भाव कब कैसे किन-किन कारणों से होता है—इस पर विचार करना परमावश्यक है।

प्रथम प्रत्येक व्यक्ति के शान्ति व अशांति के कारणों को जान लेना जरूरी है इसीसे विश्व की शांति व अशांति के कारणों का पता लगाया जा सकेगा। व्यक्ति की अशान्ति की समस्याओं को समझ लिया जाय और उसका समाधान कर लिया जाय तो व्यक्तियों के सामूहिक रूप 'विश्व' की अशान्ति के कारणों को समझना बहुत आसान हो जायगा। संसार का प्रत्येक जीवधारी व्यक्ति यह सोचने लग जाय कि अशान्ति की इच्छा न रखने पर भी यह हमारे बीच कैसे टपक पड़ती है, एवं शान्ति की तीव्र इच्छा करते हुए भी वह कोसों दूर क्यों भागती है ? तो उसका कारण ढूंढ़ते देर न लगेगी। विश्व के समस्त प्राणियों की बुद्धि का विकास एकसा नहीं होता, अतः विचारशील व्यक्तियों की जिम्मेदारी बढ़ जाती है। जो प्राणी समुचित रीति से अशांति के कारणों को जान नहीं पाता, उसके लिए विचारशील पुरुष ही मार्ग-प्रदर्शक होते हैं।

दुनिया के इतिहास के पन्ने उलटने पर सर्वदा विचारशील व्यक्तियों की ही जिम्मेदारी अधिक प्रतीत होती है। विश्व के थोड़े से व्यक्ति ही सदा दुनिया की अशांति के कारणों को ढूंढने में आगे बढ़े, निःस्वार्थ भाव से मनन कर उनका रहस्योद्घाटन किया और समाज के समक्ष उन कारणों को रखा। परन्तु उन्होंने स्वयं अशान्ति के कारणों से दूर रहकर सच्ची शान्ति प्राप्त की।

हाँ ! तो व्यक्तियों की अशान्ति का कारण होता है अज्ञान, अर्थात् व्यक्ति अपने वास्तविक स्वरूप को न समझकर काल्पनिक स्वरूप को सच्चा समझ लेता है और उसी व्यक्ति की प्राप्ति के लिए लालायित होता है, सतत् प्रयत्नशील रहता है इससे गलत व भ्रामक रास्ता पकड़ लिया जाता है और प्राणी को अनेक कष्ट सहने पड़ते हैं। उन कष्टों के निवारणार्थ वह स्वार्थान्ध हो ऐसी धार्मिक तथा नीति विरुद्ध क्रियायें करता है कि जिनसे जन-समुदाय में हलचल मच जाती है और अशान्ति आ खड़ी होती है। यह स्वरूप का अज्ञान जिसे जैन परिभाषा में

'मिथ्यात्व' कहते हैं, क्या है ? यही कि जो वस्तु हमारी नहीं है उसे अपनी मान लेना और जो वस्तु अपनी है उसे अपनी न समझकर छोड़ देना या उसके प्रति उदासीन रहना। उदाहरणार्थ जड़ पदार्थ जैसे वस्त्र, मकान, धन इत्यादि नष्ट न होने वाली चीजों को अपनी न समझकर प्राप्ति व रक्षा का सर्वदा इच्छुक रहना और चेतनामयी आत्मा जो इनकी सच्ची सम्पत्ति है उसे भुला डालना सच्चे दु:खों का जन्म इन्हीं क्षणभंगुर वस्तुओं की प्राप्ति में लगे रहने से ही होता है। दृश्यमान सारे पदार्थ पौद्गलिक हैं, जड़ हैं। आत्मा तो हमें दिखाई देती ही नहीं, अत; शरीर ही हमने सब कुछ मान लिया है। उसी को सुखी रखने के लिए धन-सम्पत्ति इत्यादि को येन-केन-प्रकारेण जुटाने में संलग्न रहते हैं। इस तरह हम वस्तुओं की प्राप्ति की तृष्णा में ही जीवन-यापन करते हुए अपनी वस्तु अर्थात् आत्म-भाव आत्मानुभव से पराङ्मुख हो रहे हैं, यही अशान्ति का सबसे प्रधान, मूल और प्रथम कारण है।

जब पदार्थ सीमित हैं और मानव की इच्छाएँ अनन्त हैं। अतः ज्योंही एक वस्तु की प्राप्ति हुई कि दूसरी वस्तु को ग्रहण करने की इच्छा जागृत हो उठती है। इस तरह तृष्णा बढ़ती चली जाती है और उत्तरोत्तर अधिक संग्रह की कामना मन में उद्वेलित हो उठती है जिससे हम व्यग्र व अशान्त हो जाते हैं। इसी प्रकार अन्यान्य व्यक्ति भी संग्रह की इच्छा करते हैं और प्रतिस्पर्धा बढ़ जाती है। अशान्ति की चिनगारियाँ छूटने लगती हैं। व्यक्तित्व देश की अशान्ति रूप ज्वाला धधक उठती है कि वह सारे विश्व में फैल जाती है और एक विश्वव्यापी युद्ध का अग्निकुण्ड प्रज्वलित हो उठता है जिससे सारे विश्व का साहित्य, जनसमूह, सम्पत्ति जलकर राख हो जाती है। यही दुनिया की अशान्ति की राम-कहानी है। इसके लिए समय-समय पर विभिन्न देशों में उत्पन्न हुए महापुरुष यही उपदेश दिया करते हैं कि 'अपने को पहचानो, पराये को पहचानो' फिर अपने स्वरूप में रहो, और अपनी आवश्यकताओं को सीमित करो; तृष्णा नहीं रहेगी तो संग्रह अति सीमित होगा जिससे वस्तुओं की कमी न रहेगी। अतः वे आवश्यकतानुसार सभी को सुलभ हो सकेगी। फिर यह जन-समुदाय शान्त और संतुष्ट रहेगा। किसी भी वस्तु की कमी न रहेगी। जन-समुदाय भौतिक वस्तुओं की प्राप्ति सुलभ होने पर उन पर कम आसक्त होगा और आत्मज्ञान की ओर झुकेगा। मानव ज्यों-ज्यों अपने आत्म-स्वरूप को समझने का प्रयत्न करेगा, त्यों-त्यों वह समझता जायगा कि भौतिक वस्तुएं जिनके लिए वह मारा-मारा फिर रहा है, जल्द नष्ट होने वाली हैं, पर उसमें मोह रखना मूर्खता है। इन विचारों वाला आवश्यकता से अधिक संग्रह (परिग्रह) न करेगा और अन्त में उसे आत्मा ही ग्रहण करने योग्य है—यह स्पष्ट मालूम हो जाएगा। इस तरह एक दिन वह भली-भांति समझ लेगा कि आत्मा में मग्न रहना ही सच्ची शान्ति है। यदि इस प्रकार विश्व का प्रत्येक प्राणी समझले तो फिर विश्व की अशान्ति का कोई कारण ही नहीं रहेगा। परिग्रह संग्रह और ममत्व बुद्धि ही अशान्ति का दूसरा कारण है।

आजका विश्व भौतिक विज्ञान की तरफ आँख मूंदकर बढ़ता चला जा रहा है। योरोप की बातें छोड़िये। पर वह तो भौतिक विज्ञान के अतिरिक्त आध्यात्मिक विज्ञान को जानता तक नहीं। सब भौतिक विज्ञान के अधिकाधिक विकास में ही मनुष्यों की पराकाष्ठा मानता है।

फलतः अणुबम जैसे सर्वसंहारक शस्त्र का आविष्कार करता है। केवल भारतवर्ष ही एक ऐसा देश है कि जहाँ अनादि काल से आध्यात्मिक धारा अजस्र गति के प्रवाहित होती आ रही है। और समय-समय पर देश के महापुरुषों, ऋषियों ने इसे और भी निर्मल तथा सचेत बनाया और इस धारा का पीयूष सम जल पीकर अनेक मानव सन्तुष्ट हुए। अब योरोप भी भारत की ओर आशा की दृष्टि लगाये देख रहा है क्योंकि उसे इस देश की अहिंसा-मूर्ति महात्मा गांधी की आत्मिक शान्ति का आभास मिल चुका है। वह समझ गया कि अहिंसा की कितनी बड़ी शक्ति है जिसके द्वारा भारतवासी अंग्रेजों के शक्तिशाली साम्राज्य से बिना शस्त्रों को लिए भी समर्थ तथा सफल हुए। उन्होंने बड़ी सफलतापूर्वक अपनी चिरभिलषित स्वतन्त्रता प्राप्त की। वे समझने लगे हैं कि भारत ही अपने आध्यात्मिक ज्ञान के द्वारा विश्व-कल्याण कर सकता है और आत्मानुभव से ही अखण्ड शान्ति प्राप्त हो सकती है। 'यह मेरा है' वह व्यक्ति या देश मेरा नहीं है, इस भेद-भाव के कारण प्राणी अन्य 'प्राणियों' के विनाश में उद्यत होता है। इस भेदभाव से अधिक और कोई बुरी बात हो ही नहीं सकती। दूसरे के दुःख को अपना मानकर दुःख अनुभव कर उसके दुःख निवारण में ही सहयोग देना मानवता है। पराया कोई है ही नहीं, सभी अपने ही हैं ऐसा भाव जहाँ आया कि किसी को कष्ट पहुंचाने की प्रवृत्ति फिर हो ही नहीं सकेगी फिर पराया कष्ट अपना ही कष्ट प्रतीत होने लगेगा।

भारत एक आध्यात्मिक विद्याप्रधान देश है। इस देश में बड़े-बड़े आध्यात्मवादियों ने जन्म ग्रहण किया है। उनमें प्रायः ढाई हजार वर्ष पूर्व भगवान् महावीर और बुद्ध अवतीर्ण हुए थे। अहिंसा उनका प्रधान संदेश था। महात्मा गांधी की 'अहिंसा' व विश्व-प्रेम, भारत के लिए कोई नवीन वस्तुएं नहीं थीं, सिर्फ उसकी अपार शक्ति को हम भूल-से गये थे। इन्हीं अहिंसा, सत्य आदि को भगवान महावीर और महात्मा बुद्ध ने अपने पवित्र उपदेशों द्वारा भारत के कोने-कोने में प्रचलित किया था। भगवान् महावीर ने ही 'अहिंसा' यानी 'विश्व-प्रेम' का इतना सुन्दर और सूक्ष्म विवेचन किया है कि जिसकी मिसाल मिल सकती। उनका कथन था ; " मनुष्य को अपनी आत्मा को पहिचानना चाहिये, मैं स्वयं शुद्ध हूं, बुद्ध हूं, चैतन्य हूं, सर्वशक्ति सम्पन्न एवं वांछा-रहित हूं, मुझे किसी भी भौतिक पदार्थ में आसक्ति नहीं रखनी चाहिए, उनसे मेरा कोई चिर-स्थायी संबंध नहीं। अगर मानव इस उपदेश को ग्रहण करे, तो उसमें अनावश्यक वस्तुओं के संग्रह की वृत्ति (परिग्रह) ही न रहेगी। उसमें मूर्छा व तीव्र आरम्भ वैमनस्य, और कलह न रहेगा। जब यह सब नहीं रहेंगे तो फिर जन-समुदाय से अशान्ति का काम ही क्या है ? सर्वत्र शान्ति छा जायेगी और विश्व में फिर अशांति के बादल और युद्ध की भयंकर आशंका छा रही है वह न रहेगी। सर्वत्र मानव महान सुखी दिखाई पड़ेगा। उपर्युक्त विवेचना से विश्व-शान्ति के निम्नलिखित कारण सिद्ध हुए :—

१. आत्म-बोध—चेष्टा और भौतिक वस्तुओं में विराग अर्थात् आत्म-ज्ञान।

२. अनावश्यक अन्न वस्त्रादि का संग्रह नहीं करना अर्थात् अपरिग्रह।

३. 'आत्मवत् सर्वभूतेषु यः पश्यति स पण्डितः' अपनी आत्मा के समान विश्व के प्राणियों को समझना। अर्थात् 'अहिंसा आत्मीयता का विस्तार'।

४. विचार संघर्ष में समन्वय का उपाय—अनेकान्त।

आज मनुष्य का एक दम ह्रास हो चुका व हो रहा प्रतीत होता है। पारस्परिक प्रेम और मैत्रीभाव की कमी परिलक्षित हो रही है। पुराने व्यक्ति आज भी मिलते हैं तो आत्मीयता का अनुपम दर्शन होता है, वे खिल जाते हैं, हरे भरे हो जाते हैं। चेहरे पर उनके प्रसन्नता, प्रफुल्लता के भाव दृष्टिगोचर होने लगते हैं, पर आज के नवयुवकों के पास बनावटी दिखावे की मैत्री व प्रेम के सिवाय कुछ है ही नहीं। बाहर के सुहावने, चिकनी-चुपड़ी बातें, भीतर से धोखापन अनुभव होता है। इसलिए परदुःख-कातर बिरले व्यक्ति ही मिलते हैं। अपना स्वार्थ ही प्रधान होता है। एक-दूसरे के लगाव से ही स्वार्थ टकराते हैं और अशान्ति बढ़ती है। आत्मीयता के प्रभाव से ही यह महान् दुःख हट सकता है। हमारा प्राचीन भारतीय आदर्श तो यही रहा है :—

अयं निज परोवेत्ति, गणना हि लघुचेत्तसाम्।
उदार चरितानां तु 'वसुधैव कुटुम्बकम्' ॥

इस आदर्श को पुनः प्रतिष्ठापित करना है।

× × × ×

जयपुर का हिन्दी जैन-साहित्य और साहित्यकार

श्री गंगारामजी गर्ग, एम०ए०
रिसर्च स्कालर, जयपुर

श्री गंगारामजी गर्ग एम० ए० रिसर्च स्कालर ऐसे उदीयमान अजैन बन्धु हैं जिन्हें जैनधर्म से अत्यन्त प्रीति है। उन्होंने जैन विषयों पर अनेक स्वतन्त्र गवेषणात्मक लेख लिखे हैं। 'जयपुर के जैन विद्वानों की हिन्दी सेवा इस विषय पर आपका सारगर्भित खोजपूर्ण निबन्ध संक्षिप्त और मौलिक ढंग से लिखा गया है। इस लेख को पढ़कर आप भली प्रकार जान सकेंगे कि जयपुर में जैन विद्वानों ने किस प्रकार हिन्दी साहित्य की सेवा की। आपके लेख पठनीय और ऐतिहासिक दृष्टि से महत्वपूर्ण हैं।"

जयपुर चिरकाल से जैन संस्कृति और साहित्य का केन्द्र रहा है। यहाँ विमलदास, कृपाराम, बालचन्द, बखतराम आदि कई जैन धर्मावलम्बी प्रमुख राज्य-पदों पर आसीन होते रहे, अनेक श्रेष्ठि-जन सुन्दर जिन-चैत्यालयों का निर्माण करवाते रहे जिससे यहां की भूमि में जैन धर्मवल्लरी पर्याप्त पुष्पित और पल्लवित हुई। जैन धर्म के व्यापक प्रचार ने जैन साहित्य को भी बड़ी गति दी। मनुष्यों ने जैन धर्म व साहित्य का अध्ययन किया। शास्त्रों के अध्ययन ने क्लिष्ट व दुरूह ग्रन्थों के अनुवाद तथा तन्निहित गूढ़ दार्शनिक तत्वों के विवेचन की प्रेरणा उनको दी एवं भाव-भरी अपभ्रंश रचनाओं के पारायण ने उनमें कवि-बुद्धि जागृत की, अतः जयपुर में विपुल साहित्यिक रचनाओं का निर्माण हुआ। जयपुर के समग्र जैन साहित्य का अध्ययन कर लेने पर हमको उसमें निम्नलिखित विशेषताएँ मिलती हैं :—

१. जयपुर के जैनेतर साहित्यकारों का केवल पद्य साहित्य ही है किन्तु जैन लेखकों का पर्याप्त गद्य भी।

२. जयपुर में जैनों की दिगम्बर-शाखा का बोलबाला रहा अतः यहां सभी जैन साहित्यकार प्रायः दिगम्बर हैं। श्वेताम्बर जैनों ने गद्य तो बिल्कुल लिखा ही नहीं; कविता अवश्य की है वह भी केवल दो-तीन कवियों ने।

३. ब्रह्मरायमल्ल, सुजानमल आदि को छोड़कर जयपुर के सभी साहित्यकार प्रायः गृहस्थ हैं।

४. महावीर स्वामी ने अपने उपदेश लोक-भाषाओं में दिये थे जिससे जन-जन उन्हें समझ सके। जैन साहित्यकार भी अपने साहित्य को सर्वदा लोक-भाषाओं में व्यक्त करते रहे हैं। जयपुर के जैन साहित्यकारों पर भी यहां की स्थानीय बोली ढूढहाड़ी का पर्याप्त प्रभाव है।

जैन गद्य—गद्य-साहित्य का प्रसार और वैभव आधुनिक काल में ही अधिक देखा और माना जाता है किन्तु जयपुर के जिन-मन्दिरों में उपलब्ध अनेक गद्य-कृतियों के अध्ययन से मालूम होता है कि गद्य-लेखन का प्रचलन सत्रहवीं-अठारहवीं शताब्दी से ही अच्छा होने लग गया था। जयपुर के जैन लेखकों का गद्य चाहे टीका के रूप में ही अधिक क्यों न हो; किन्तु शैली, तत्त्व-विवेचन की क्षमता तथा वर्तमान गद्य के उद्भव और विकास की दृष्टि से उसका अपना बड़ा महत्त्व है। यहाँ की हिन्दी गद्य-कृतियों में अनुवाद के टब्बा, बालावबोध और वचनिका तीनों रूप पाये जाते हैं जिनमें अन्तिम दो शैली की दृष्टि से राजस्थानी बालावबोध और वचनिका से भिन्न हैं टब्बा का स्वरूप राजस्थानी और हिन्दी दोनों में समान है। जैन गद्यकारों की स्वतन्त्र रचनाएँ भी आध्यात्मिक हैं यथा-टोडरमल का मोक्ष—मार्ग प्रकाशक और दीपचन्द के आत्मावलोकन चिद्विलास आदि ग्रन्थ।

जैन काव्य—काव्य के दो भेद माने जाते हैं—प्रबन्ध और मुक्तक। जयपुर के जैन कवियों में मुक्तककार अधिक हैं; प्रबन्धकार के रूप में तो केवल ब्रह्मरायमल्ल का ही नाम उल्लेखनीय है जिन्होंने स्वतन्त्र काव्य-ग्रन्थों की रचना की है। हाँ, जैन पुराण और चरित्रों के पद्यानुवाद यहाँ अवश्य बहुलता से मिलते हैं जिनमें कहीं-कहीं मूल का सा काव्यानन्द उपलब्ध होता है। जैन मुक्तकों के प्रधान विषय भक्ति और नीति हैं। जैन कवियों के आराध्य तीर्थङ्कर हैं जिनकी अगम्यता, अगोचरता, अपारता, दया, निष्कामता, शोभा, शान्तस्वरूप वीतरागता आदि का जी खोलकर गान किया गया है। जैन कवियों ने अपने आराध्य को पतित-तारक भी कहा है। जिस प्रकार वैष्णव भक्तों में आराध्य के द्वारा वाल्मीकि, अहिल्या, अजामिल, गज आदि के उद्धार की चर्चा है उसी प्रकार जैन भक्तों में भील, अंजन चोर, शृगाल व नाग-दम्पती के कल्याण की। भक्त हृदय की निष्कामता, अनन्यता, आत्म-निवेदन की प्रवृत्ति आदि सभी विशेषताएँ जैन-काव्य में प्रचुर मात्रा में मिलती हैं। जैन धर्म आचार-प्रधान धर्म है; अतः जैन काव्य में भी सत्य, वीतरागता को प्रधानता दी है। द्यूत, आमिष-आहार, मदिरा-पान, वैश्या-सेवन, पर नारी-

गमन, अस्तेय, शिकार आदि सप्तव्यसन, कुवचन, क्रोध, अहंकार, परनिन्दा त्याग सम्बन्धिनी अनेक नीति-उक्तियां बहुलता से दृष्टिगोचर होती हैं।

जयपुर के प्रमुख जैन साहित्यकार

१. **ब्रह्मरायमल्ल** :—जैन काव्य में ब्रह्मरायमल्ल नामक दो व्यक्ति हुए हैं। एक जयपुर में, दूसरे गुजरात में। जयपुर के ब्रह्मरायमल्ल का समय सत्रहवीं शताब्दी का पूर्वार्द्धकाल है। ब्रह्मचारी होने के कारण ब्रह्मरायमल्ल इधर-उधर भी पर्याप्त रहे, किन्तु इनका मुख्य काव्य-क्षेत्र साँगानेर (जयपुर) ही रहा। ब्रह्मरायमल्ल जयपुर के अकेले मौलिक प्रबन्ध-रचयिता हैं। इनके ग्रन्थ हैं—नेमिनाथ रासो, प्रद्युम्न रासो, श्रीपाल रासो, भविष्यदत्त कथा, हनुवन्त कथा, निर्दोष सप्तमी की कथा, चन्द्रगुप्त चौपई, परमहंस चौपई इन सभी ग्रन्थों में शान्त, शृंगार, वीभत्स, वीर, रौद्र, वात्सल्य, करुण आदि सभी रसों की व्यंजना हुई है। युद्ध, विवाह, उपवन आदि के वर्णन अच्छे हैं। ब्रह्मरायमल्ल के ग्रन्थों में यत्र-तत्र उद्यम, धैर्य, परनारी-गमन सम्बन्धिनी नीति उक्तियाँ भी दृष्टिगत होती हैं। ब्रह्मरायमल्ल की भाषा यथावसर मधुर व ओजस्वी तथा मुहावरेदार है।

२. **राजमल्ल पाण्डे**—हिन्दी के जैन गद्याकारों में पाण्डे राजमल्ल का नाम अग्रणी है। इनकी पंचाध्यायी, लाटी-संहिता, जम्बू स्वामी चरित्र, अध्यात्म कमल, मार्तण्ड व समयसार कलश टीका ५ रचनाएँ मिलती हैं जिनमें केवल अन्तिम कृति हिन्दी की है। आमेर शास्त्र भंडार में प्राप्त समयसर कलश टीका की संवत् १६५३ की प्रतिलिपि के आधार पर डा० कस्तूरचन्द कासलीवाल ने राजमल को १६वीं-१७वीं शताब्दी का साहित्यकार माना है। डा० कासलीवाल के अनुसार राजमल्ल का जन्म जयपुर नगर के बैराठ कस्बे में हुआ था। डा० जगदीशचन्द्र के मत से ये जैनागमों के भारी वेत्ता, आचार-शास्त्र के पण्डित तथा अध्यात्म और न्याय में बड़े कुशल थे। समयसार कलश पर इनकी बालावबोध टीका बड़ी सरल और व्याख्यात्मक है।

३. **हेमराज**—हेमराज ने कवि और गद्यकार दोनों ही रूपों में जैन साहित्य में ख्याति उपलब्ध की है। इनका आविर्भाव सत्रहवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में सांगानेर में हुआ। हेमराज के गुरू पाण्डे रूपचन्द थे। हेमराज का 'दोहा-शतक', नीतिपरक, काव्य-ग्रन्थ है। हेमराज की बालावबोध टीकाएँ नयचक्र, प्रवचन सार, कर्मकाण्ड, पंचास्तिकाय, परमात्मप्रकाश व गोम्मट सार ग्रन्थों पर मिलती है।

४. **जोधराज**—कवि जोधराज सांगानेर के निवासी तथा हेमराज के समकालीन थे। इनके पिता अमरचन्द गोदीका बड़े रईस महाजन थे। जोधराज ने पंडित हरिनाम मिश्र को अपना मित्र बनाकर उनकी संगति से ज्ञान उपलब्ध किया; तदुपरान्त साहित्य-रचना में प्रवृत्त हुए। सम्यकत्व कौमुदी, प्रवचन सार, कथाकोष प्रीतंकर चरित्र पर इनके पद्यानुवाद हैं। ज्ञान समुद्र और धर्म सरोवर इनकी मौलिक कृतियां हैं। दोनों में क्रमशः १४७ व ३८७ विविध प्रकार के छन्द हैं। दोनों ही रचनाओं का प्रतिपाद्य नीति है। सत्य के विषय में कवि के विचार देखिए—

सत्य वचन परतीति करावै । सत्य वचन अमृत सम पावै ।।
सत्य वचन सम नहिं तप कोई । सत्य वचन उत्तिम जग होई ।।

५. **खुशालचन्द्र**—इनका जन्म सांगानेर वासी सुन्दरदास काला के यहाँ हुआ था। इनकी माता सुजाणदे और विद्यागुरु लिखमीदास (लक्ष्मीदास) थे। खुशालचन्द्र जयसिंह पुरा भी रहे। खुशालचन्द्रजी श्रेष्ठ अनुवादक हैं। इन्होंने निम्नलिखित ग्रन्थों के पद्यानुवाद किये—

(१) उत्तर पुराण, (२) राम पुराण, (३) हरिवंश पुराण, (४) व्रतकथा कोष, (५) यशोधर चरित्र, (६) धन्यकुमार चरित्र, (७) जम्बू स्वामी चरित्र।

६. **दौलतराम**—वसवा निवासी दौलतराम कासलीवाल के पद्मपुराण, हरिवंश पुराण, आदि पुराण, श्रीपाल चरित्र, परमात्मप्रकाश, पुरुषार्थ सिध्युपाय, उपासकाध्ययन, पुण्याश्रव कथाकोष व क्रियाकोष के टीकाकार के रूप में पं० रामचन्द्र शुक्ल, कामताप्रसाद जैन आदि इतिहास-लेखकों ने अच्छे गद्यकार का स्थान दिया है; किन्तु दौलतराम कवि भी थे। चौबीस दण्डक, आदि छोटी रचनाओं के अतिरिक्त अध्यात्म बारहखड़ी उनका महत्त्वपूर्ण और विशाल ग्रन्थ है। अध्यात्म बारहखड़ी के आठ अध्यायों के ५१५५ छन्दों में जैन दर्शन व उपासना के अतिरिक्त नीति और भक्ति भी कवि का प्रतिपाद्य विषय है। दुर्गुणों से आक्रान्त भक्त दौलतराम की स्व-उद्धारार्थ जिनेन्द्र से भाव-भरी प्रार्थना यहाँ दृष्टव्य है—

पागेउ मोह तनौं जिनकों अति काम जु क्रोध महा मद लोभा।
वंचकता अरु मत्सर आदि सबै जु दुरातम कारन क्षोभा।।
मोहि जु देव महादुष दीयउ नाहिं प्रभू कछु मो महि सोभा।
पोट अपावन टारहि नैंकु न कूक सुनौ जगदेव अक्षोभा।।

७. **टोडरमल्ल**—मोक्षमार्ग प्रकाशक के प्रणेता के रूप में टोडरमल्ल भारत के सम्पूर्ण दिगम्बर समाज में प्रख्यात व समादृत हैं। ये जयपुर में जोगीदास गोदीका के यहाँ सं० १७६७ में उत्पन्न हुए। टोडरमल बड़े धर्मात्मा, दार्शनिक व उपदेशक थे। खेद है कि सं० १८२३-२४ में अल्पायु में ही इनकी साम्प्रदायिक झगड़ों के कारण मृत्यु हो गई। सम्यग्ज्ञान चन्द्रिका, पुरुषार्थ सिद्धयुपाय, आत्मानुशासन टोडरमल की अनूदित कृतियां हैं तथा रहस्यपूर्ण चिट्ठी व मोक्षमार्ग प्रकाशक स्वतन्त्र रचनाएँ। अनूदित ग्रंथों में टोडरमल्ल के जैनागमों के विस्तृत ज्ञान, विवेचन की शक्ति का ज्ञान होता है। मोक्षमार्ग प्रकाशक का लेखक विभिन्न मतों का ज्ञाता है तथा हार्दिक और स्वतन्त्र विचारक भी। इस ग्रन्थ में टोडरमल साम्प्रदायिक आडम्बरों के विरोधी और जैन-दर्शन की श्रेष्ठता के हामी प्रतीत होते हैं।

८. **दीपचन्द**—टोडरमल के अलावा जयपुर में दूसरे स्वतन्त्र गद्यकार दीपचन्द कासलीवाल ही हुए हैं। इनका जन्म तो सांगानेर में हुआ किन्तु बाद में ये आमेर आ गए। दीपचन्द वीतरागी आध्यात्मिक ग्रन्थों के मर्मज्ञ थे। चिद्विलास, अनुभव प्रकाश, आत्मावलोकन,

परमात्म पुराण इनकी स्वतन्त्र गद्य-रचनाएँ हैं, जिनमें आत्म-तत्व का निरूपण है। दीपचन्द की शैली उपदेश-प्रधान है। वाक्य छोटे-छोटे हैं। भाषा मुहावरेदार तथा आलंकारिक है।

९. **बुधजन**—दास्य भक्त के रूप में वैष्णव भक्ति काव्य में जो स्थान तुलसी का है वही जैन काव्य में बुधजन का; जिस प्रकार नीतिपरक उक्तियाँ कहने से जो प्रसिद्धि रहीम व वृन्द को मिली है उसी के अधिकारी कवि बुधजन भी हैं। परम भक्त और नीतिकार बुधजन जयपुर में निहालचन्द्र बज के यहाँ उत्पन्न हुए थे। इनके गुरु मांगीलाल थे। बुधजन दीवान अमरचन्द के यहां मुख्य मुनीम थे। कवि के दूसरे नाम 'भदीचन्द्र' के नाम पर दीवानजी ने जयपुर में एक जैन मन्दिर बनवाया जो अब तक विद्यमान है। बुधजन के मुख्य काव्य-ग्रन्थ 'बुधजन सतसई' और 'पद संग्रह' हैं। अन्य रचनाएँ जैन दर्शन सम्बन्धी तथा पंचास्तिकाय, योगसार, तत्वार्थ सूत्र के अनुवाद आदि हैं। बुधजन के २४३ पदों में भक्ति प्रधान है तथा बुधजन सतसई के दोहों में नीति।

१०. **जयचन्द्र**—जयचन्द्र का जन्म फागी ग्राम के मोतीराम छाबड़ा के यहाँ हुआ। ११वर्ष की अवस्था में ही जिन-शासन में चलने की सुबुद्धि पाकर ये जयपुर आ गये जहाँ इन्होंने अनेक विद्वानों का सत्संग एवं जैन शास्त्रों का गम्भीर अध्ययन व मनन किया। जयचन्द ज्ञानी, उपदेशक, चरित्रवान तथा आध्यात्मिक पुरुष थे। संवत् १८८१-८२ में इनकी मृत्यु हुई। जयचन्द्र गद्यकार और कवि दोनों हैं। जयचन्द ने सर्वार्थसिद्धि, प्रमेय रत्नमाला, द्रव्य संग्रह, स्वामि कार्तिकेयानुप्रेक्षा, समयसार, अष्ट पाहुड़, आप्तमीमांसा, परीक्षामुख, ज्ञानार्णव आदि १७ ग्रन्थों की वचनिकाएं लिखीं। जयचन्द्र के २४६ भक्तिपरक पदों में तीर्थङ्करों की महिमा का गान अधिक है तथा अपने अवगुण व सांसारिक कष्टों का वर्णन अपेक्षाकृत थोड़ा।

११. **सदासुखदास**—इनका जन्म जयपुर के प्रसिद्ध 'डेडराज' घराने में संवत् १८५२ में हुआ। इनके पिता दुलीचन्द कासलीवाल थे। सदासुखदास बड़े सत्संगी, ज्ञानी, धर्मात्मा व निस्वार्थ उपकारी थे। इनकी मृत्यु पुत्र-वियोग के कारण संवत् १९२३-२४ में हुई। सदासुखदास ने सात ग्रन्थों की वचनिकाएँ लिखीं—भगवती आराधना, तत्त्वार्थसूत्र, मृत्यु-महोत्सव, रत्नकरण्ड श्रावकाचार, अलंकार स्तोत्र, समयसार नाटक, नित्य नियम बूजा।

१२. **सुजानमल**—ये जयपुर नगर के प्रसिद्ध जौहरी ताराचन्द सेठिया के यहां सं० १८९६ को उत्पन्न हुए थे। इनके तीन छोटे भाई व एक दत्तक पुत्र जवाहरमल थे। सुजानमल ने श्वेताम्बर मुनि विनयचन्द महाराज से सं० १९५१ में दीक्षा ग्रहण की। सुजानमल की मृत्यु सं० १९६८ में हुई। सुजानमल के ४०० पद सुने जाते हैं किन्तु अभी तक उपलब्ध केवल १६५ पद ही 'सुजान पद वाटिका' के नाम से प्रकाशित हैं। इनका पद संग्रह तीन भागों में विभाजित किया गया है। स्तुतियाँ, उपदेश और चरित्र कथाएँ। सुजानमल ने यद्यपि सभी तीर्थङ्करों के प्रति अपनी श्रद्धा व्यक्त की है किन्तु पार्श्वनाथ के प्रति उनका अधिक अनुराग है—

मेरे प्रभु पार्श्वनाथ दूसरो न कोई।
अश्वसेन तात वामा सुत सोई।

१३. **जड़ावकुंवारि**— हिन्दी काव्य के विकास में अन्य कवित्रियों की तरह जैन कवित्रियों ने भी महत्त्वपूर्ण योग-दान किया। यद्यपि कुशलांजी भूरि सुन्दरी आदि कई जैन कवित्रियां हुई किन्तु उनमें जड़ावकुंवरि का स्थान सर्वोच्च है। बाल्यावस्था में विधवा हो जाने के कारण संसार से विरक्ति अनुभव कर २४ वर्ष की अवस्था में सं० १९२२ में इन्होंने श्री रंभाजी से दीक्षा ग्रहण की। जड़ावकुंवरि यद्यपि जोधपुर, बीकानेर आदि स्थानों में भी रहीं किन्तु संवत् १९५० के बाद नेत्र-ज्योति क्षीण हो जाने के कारण इन्होंने अपना स्थान जयपुर ही बना लिया। सं० १९७२ में इनकी मृत्यु हुई। जड़ावकुंवरि के पद 'स्तवनावली' के नाम से प्रकाशित हैं। इनमें कथा, अध्यात्म के अतिरिक्त जिन-स्तवन और उपदेश की अच्छी रचनाएँ हैं।

यहां जयपुर के जैन साहित्य का संक्षिप्त परिचय देते हुए स्थानाभाव के कारण प्रतिनिधि साहित्यकारों की चर्चा हुई है। नवल, माणिक, उदयचन्द, मन्नालाल, पन्नालाल अनेक साहित्यकार ऐसे हैं जिन्होंने जयपुर की धरा पर अवतीर्ण होकर अपने ग्रंथ-रत्नों से मां भारती के विशाल भण्डार को भरा है।

जैन दर्शन में सर्वज्ञता की संभावनाएँ

प्रो० दरबारीलाल जैन कोठिया

एम० ए०, न्यायाचार्य, प्राध्यापक, काशी विश्वविद्यालय, काशी

तज्जयति परं ज्योतिः समं समस्तैरनन्तपर्यायैः।
दर्पणतल इव सकला प्रतिफलति पदार्थमालिका यत्र॥

—अमृतचन्द्र, पुरुषार्थसिद्ध्युपाय[1]

पृष्ठभूमि :

भारतीय दर्शनों में चार्वाक और मीमांसक इन दो दर्शनों को छोड़कर शेष सभी (न्याय-वैशेषिक, सांख्य-योग, वेदान्त, बौद्ध और जैन) दर्शन सर्वज्ञता की सम्भावना करते तथा युक्तियों द्वारा उसकी स्थापना करते हैं। साथ ही उसके सद्भाव में आगम-प्रमाण भी प्रचुर मात्रा में उपस्थित करते हैं।

सर्वज्ञता के निषेध में चार्वाकदर्शन का दृष्टिकोण :

चार्वाकदर्शन का दृष्टिकोण है कि 'यद्दृश्यते तद् अस्ति, यन्न दृश्यते तन्नास्ति' अर्थात् इन्द्रियों से जो दिखे वह है और जो न दिखे वह नहीं है। पृथिवी, जल, अग्नि और वायु ये चार भूत-तत्त्व ही दिखाई देते हैं, अतः वे हैं। पर उनके अतिरिक्त कोई अतीन्द्रिय पदार्थ दृष्टि-गोचर नहीं होता। अतः वे नहीं हैं। सर्वज्ञता किसी भी पुरुष में इन्द्रियों द्वारा ज्ञात नहीं है और अज्ञात

१. तथा वेदेतिहासादिज्ञानातिशयवानपि।
न स्वर्ग-देवताऽपूर्व-प्रत्यक्षीकरणे क्षमः॥
—भट्ट कुमारिल के नाम से बृहत्सर्वज्ञसिद्धि में उद्धृत

पदार्थ का स्वीकार उचित नहीं है। स्मरण रहे कि चार्वाक प्रत्यक्ष प्रमाण के अलावा अनुमानादि कोई प्रमाण नहीं मानते। इसलिए इस दर्शन में अतीन्द्रिय सर्वज्ञ की सम्भावना नहीं है।

मीमांसक दर्शन का मन्तव्य :

मीमांसकों का मन्तव्य है कि धर्म, अधर्म, स्वर्ग, देवता, नरक, नारकी आदि अतीन्द्रिय पदार्थ तो हैं, पर उनका ज्ञान वेद द्वारा ही सम्भव है, किसी पुरुष के द्वारा नहीं। पुरुष रागादि-दोषों से युक्त हैं और रागादि दोष पुरुष मात्र का स्वभाव हैं तथा वे किसी भी पुरुष से सर्वथा दूर नहीं हो सकते। ऐसी हालत में, रागी-द्वेषी-अज्ञानी पुरुषों के द्वारा उन धर्मादि अतीन्द्रिय पदार्थों का ज्ञान सम्भव नहीं है। शाबर स्वामी अपने शाबर-भाष्य (१-१-५) में लिखते हैं :

'चोदना हि भूतं भवन्तं भविष्यन्तं सूक्ष्मं व्यवहितं विप्रकृष्टमित्येवंजातीयकमर्थमवगमयितुमलं, नान्यत् किञ्चनेन्द्रियम्।'

इससे विदित है कि मीमांसकदर्शन सूक्ष्मादि अतीन्द्रिय पदार्थों का ज्ञान चोदना (वेद) द्वारा स्वीकार करता है, किसी इन्द्रिय के द्वारा उनका ज्ञान सम्भव नहीं मानता। शबरस्वामी के परवर्ती प्रकाण्ड विद्वान भट्ट कुमारिल भी किसी पुरुष में सर्वज्ञता की सम्भावना का अपने मीमांसा-श्लोकवार्तिक में विस्तार के साथ पुरजोर खण्डन करते हैं।[1] पर वे इतना स्वीकार कर लेते हैं कि

---

१. यज्जातीयैः प्रमाणैस्तु यज्जातीयार्थदर्शनम्।
दृष्टं सम्प्रति लोकस्य तथा कालान्तरेऽप्यभूत्॥
यत्राऽप्यतिशयो दृष्टः स स्वार्थानतिलंघनात्।
दूरसूक्ष्मादिदृष्टौ स्यान्न रूपे श्रोत्रवृत्तिता॥
येऽपि सातिशया दृष्टाः प्रज्ञा-मेधादिभिर्नराः।
स्तोकस्तोकान्तरत्वेन त्वतीन्द्रियदर्शनात्॥
प्राज्ञोऽपि हि नरः सूक्ष्मानर्थान् द्रष्टुं क्षमोऽपि सन्।
स्वजातीरनतिक्रमान्नतिशेते परान्नरान्॥
एकशास्त्रविचारे तु दृश्यतेऽतिशयो महान्।
न तु शास्त्रान्तर ज्ञानं तन्मात्रेणैव लभ्यते॥
ज्ञात्वा व्याकरणं दूरं बुद्धिः शब्दापशब्दयोः।
प्रकृष्यति न नक्षत्र-तिथि-ग्रहणनिर्णये॥
ज्योतिर्विच्च प्रकृष्टोऽपि चन्द्रार्क-ग्रहणादिषु।
न भवत्यादिशब्दानां साधुत्वं ज्ञातुमर्हति॥
दशहस्तान्तरे व्याम्नि यो नामोत्प्लुत्य गच्छति।
न योजनमसौ गन्तुं शक्तोऽभ्यास शतैरपि॥
तस्मादतिशयज्ञानैरति दूर गतैरपि।
न किञ्चिदेवाधिकं ज्ञातुं न त्वतीन्द्रियम्॥

—अनन्तकीर्ति द्वारा बृहत्सर्वज्ञसिद्धि में उद्धृत

कि हम केवल धर्मज्ञ का अथवा धर्मज्ञता का निषेध करते हैं। यदि कोई पुरुष धर्मातिरिक्त अन्य सबको जानता है तो जाने, हमें उसमें कोई विरोध नहीं है। यथा —

धर्मज्ञत्व-निषेधस्तु केवलोऽत्रोपयुज्यते।
सर्वमन्यद्विजानंस्तु पुरुषः केन वार्यते ॥
सर्वं प्रमातृ-संबन्धि-प्रत्यक्षादिनिवारणात्।
केवलागम-गम्यत्वं लप्स्यते पुण्यपापयोः ॥[1]

किसी पुरुष को धर्मज्ञ न मानने में कुमारिल का तर्क यह है कि पुरुषों का अनुभव परस्पर विरुद्ध एवं बाधित देखा जाता है[2]। अतः वे उसके द्वारा धर्माधर्म का यथार्थ साक्षात्कार में नहीं कर सकते। वेद नित्य, अपौरुषेय और त्रिकालाबाधित होने से उसका ही धर्माधर्म के मामले में प्रवेश है ('धर्मे चोदनैव प्रमाणम्')। ध्यान रहे कि बौद्धदर्शन में बुद्ध के अनुभव-योगिज्ञान को जैनदर्शन में अर्हत् के अनुभव—केवल ज्ञान—को धर्माधर्म का यथार्थ साक्षात्कारी बतलाया गया है। जान पड़ता है कि कुमारिल को इन दोनों की धर्मज्ञता का निषेध करना इष्ट है। उन्हें त्रयीविद् मन्वादि का धर्माधर्मादिविषयक उपदेश तो मान्य है, क्योंकि वे उसे वेदप्रभव बतलाते हैं[3]। कुछ भी हो, वे किसी पुरुष को स्वयं सर्वज्ञ स्वीकार नहीं करते। मन्वादि को भी वेद द्वारा ही धर्माधर्मादि का ज्ञाता और उपदेष्टा मानते हैं।

बौद्ध दर्शन में सर्वज्ञता की सम्भावना :

बौद्धदर्शन में अविद्या और तृष्णा के क्षय से प्राप्त योगी के परम प्रकर्षजन्य अनुभव पर बल दिया गया है और उसे समस्त पदार्थों का, जिनमें धर्माधर्मादि अतीन्द्रिय पदार्थ भी सम्मिलित हैं, साक्षात्कर्ता कहा गया है। दिग्नाग आदि बौद्ध-चिन्तकों ने सूक्ष्मादि पदार्थों के साक्षात्करण रूप

---

१. इन दो कारिकाओं में पहली कारिका को बौद्ध विद्वान् शान्तरक्षित ने तत्त्व संग्रह (का० ३१२८) में और दूसरी तथा पहली दोनों कारिकाओं को अनन्तवीर्य ने वृहत्सर्वज्ञसिद्धि (पृ० १३९) ने उद्धृत किया गया है।

२. सुगतो यदि सर्वज्ञः कपिलोनेति का प्रमा।
तावुभौ यदि सर्वज्ञौ मतभेदः कथं तयोः ॥
— विद्यानन्द, अष्ट स०, पृ० ३ पर उद्धृत

३. उपदेशो हि बुद्धादेर्धर्माधर्मादिगोचरः।
अन्यथा चोपपद्येत सर्वज्ञो यदि नाभवत् ॥
बुद्धादयो ह्यवेदज्ञास्तेषां वेदादसंभवः।
उपदेशः कृतोऽतस्तैर्व्यामोहादेव केवलात् ॥
येऽपि मन्वादयः सिद्धाः प्राधान्येन त्रयीविदाम्।
त्रयीविदाश्रितग्रन्थास्ते वेदप्रभवोक्तयः ॥
नरः कोऽप्यस्ति सर्वज्ञः स च सर्वज्ञ इत्यपि।
साधनं यत्प्रयुज्येत प्रतिज्ञामात्रमेव तत् ॥

[शेष अगले पृष्ठ पर]

अर्थ में सर्वज्ञता को निहित प्रतिपादन किया है। परन्तु बुद्ध ने स्वयं अपनी सर्वज्ञता पर जोर नहीं दिया है। उन्होंने कितने ही अतीन्द्रिय पदार्थों को अव्याकृत (न कहने योग्य) कहकर उनके विषय में मौन ही रखा[1]। पर उनका यह स्पष्ट उपदेश था कि धर्म जैसे अतीन्द्रिय पदार्थ का साक्षात्कार या अनुभव हो सकता है। उसके लिए किसी धर्म-पुस्तक की शरण में जाने की आवश्यकता नहीं है। बौद्धतार्किक धर्मकीर्ति ने भी बुद्ध को धर्मज्ञ ही बतलाया है और सर्वज्ञता को मोक्षमार्ग में अनुपयोगी कहा है :

तस्मादनुष्ठानगतं ज्ञानमस्य विचार्यताम्।
कीट-संख्या-परिज्ञाने तस्य नः क्वोपयुज्यते ।।
हेयोपादेयतत्त्वस्य साभ्युपायस्य वेदकः।
यः प्रमाणमसाविष्टो न तु सर्वस्य वेदकः ।।

—धर्मकीर्ति, प्रमाणवार्त्तिक २-३१, ३२

'मोक्षमार्ग में उपयोगी ज्ञान का ही विचार करना चाहिए। यदि कोई जगत् के कीड़े-मकोड़ों की संख्या को जानता है तो उससे हमें क्या लाभ? अतः जो हेय और उपादेय तथा उनके उपायों को जानता है वही हमारे लिए प्रमाण-आप्त है, सबका जानने वाला नहीं।'

यहाँ उल्लेखनीय है कि कुमारिल ने जहां धर्मज्ञ का निषेध करके सर्वज्ञ के सद्भाव को इष्ट प्रकट किया है वहां धर्मकीर्ति ने ठीक उसके विपरीत धर्मज्ञ को सिद्ध कर सर्वज्ञ का निषेध मान्य किया है। शान्तरक्षित और उनके शिष्य कमलशील बुद्ध में धर्मज्ञता के साथ ही सर्वज्ञता की भी सिद्धि करते हुए देखे जाते हैं[2]। पर वे भी धर्मज्ञता को मुख्य और सर्वज्ञता को प्रासंगिक

सिसाधयिवतो योऽर्थः सोऽनया नाभिधीयते।
यस्तूच्यते न तत्सिद्धौ न किञ्चदस्ति प्रयोजनम् ।।

यदीयागमसत्यत्वसिद्धौ सर्वज्ञतेष्यते।
न सा सर्वज्ञसामान्यसिद्धिमात्रेण लभ्यते ।।

यावद्बुद्धो न सर्वज्ञस्तावत्तद्वचनं मृषा।
यत्र क्वचन सर्वज्ञे सिद्धे तत्सत्यता कुतः ।।

अन्यस्मिन्न हि सर्वज्ञे वचसोऽप्यन्यस्य सत्यता।
समानाधिकरण्ये हि तयोरंगांगिभावता भवेत् ।।

ये कारिकायें अनन्तकीर्ति ने अपनी बृहत्सर्वज्ञसिद्धि में कुमारिल के नाम से उद्धृत की हैं।

१. देखिए, मज्झिमनिकाय २-२-३ के चूलमालुंक्यसूत्र का संवाद।

२. स्वर्गापवर्गसम्प्राप्ति हेतुज्ञोऽस्तीति गम्यते।
साक्षान्न केवलं किन्तु सर्वज्ञोऽपि प्रतीयते ।।

—तत्व सं० का० ३३०९

बतलाते हैं[1]। इस तरह हम बौद्ध दर्शन में सर्वज्ञता की सिद्धि देखकर भी वस्तुतः इसका विशेष बल हेयोपादेय तत्वज्ञता पर ही है, ऐसा निष्कर्ष निकाल सकते हैं।

न्यायवैशेषिक दर्शन में सर्वज्ञता की सम्भावना :

न्याय-वैशेषिक ईश्वर में सर्वज्ञत्व मानने के अतिरिक्त दूसरे योगी-आत्माओं में भी उसे स्वीकार करते हैं[2]। परन्तु उनका वह सर्वज्ञत्व अपवर्ग-प्राप्ति के बाद नष्ट हो जाता है, क्योंकि वह योग तथा आत्ममन; संयोगजन्य गुण अथवा अणिमा आदि ऋद्धियों की तरह एक विभूतिमात्र है। मुक्तावस्था में न आत्ममनः संयोग रहता है और न योग। अतः ज्ञानादि गुणों का उच्छेद हो जाने से वहां सर्वज्ञता भी समाप्त हो जाती है। हां, वे ईश्वर की सर्वज्ञता अनादि अनन्त अवश्य मानते हैं।

सांख्य-योगदर्शन में सर्वज्ञता की संभावना :

निरीश्वरवादी सांख्य प्रकृति में और ईश्वरवादी योग ईश्वर में सर्वज्ञता स्वीकार करते हैं। सांख्यकों का मन्तव्य है कि ज्ञान बुद्धितत्व का परिणाम है और बुद्धितत्व महत्तत्व तथा महत्-तत्व प्रकृतितत्व का परिणाम है। अतः सर्वज्ञता प्रकृति में पर्यवसित है और वह अपवर्ग हो जाने पर समाप्त हो जाती है। योगदर्शन का दृष्टिकोण है कि पुरुष विशेष रूप ईश्वर में[3] नित्य सर्वज्ञता है और योगियों की सर्वज्ञता, जो सर्वविषयक 'तारक' विवेक ज्ञान रूप है, अपवर्ग के बाद नष्ट हो जाती है। अपवर्ग अवस्था में पुरुष चैतन्य मात्रा में, जो ज्ञान से भिन्न है, अवस्थित रहता है[4]। यह भी आवश्यक नहीं कि हर योगी को वह सर्वज्ञता प्राप्त हो। तात्पर्य यह कि इनके यहां सर्वज्ञता की सम्भावना तो की गई है पर वह योगज विभूतिजन्य होने से अनादि अनन्त नहीं है, केवल सादिसान्त है।

वेदान्तदर्शन में सर्वज्ञता :

वेदान्तदर्शन में सर्वज्ञता को अन्तःकरणनिष्ठ माना गया है और उसे जीवन्मुक्त दशा तक स्वीकार किया गया है। उसके बाद वह छूट जाती है। उस समय अविद्या से मुक्त होकर विद्या रूप शुद्ध सच्चिदानन्द ब्रह्म का रूप प्राप्त हो जाता है और सर्वज्ञता आत्मज्ञता में विलीन हो जाती है। अथवा उसका अभाव हो जाता है।

---

१. 'मुख्यं हि तावत् स्वर्गमोक्ष सम्प्रापक हेतुज्ञत्वसाधनं भगवतोऽस्माभिः क्रियते। यत्पुनः अशेषार्थ परिज्ञातृत्व साधनमस्य तत् प्रासंगिकम्।'

—तत्व सं० पं० पृ० ८६३

२. 'अस्मद्विशिष्टानां तु योगिनां युक्तानां योगजधर्मानुगृहीतेन मनसा स्वात्मान्तराकाश-दिक्काले परमाणुवायुमनस्सु तत्समवेत गुणकर्म सामान्य विशेषु समवाये चावितथं स्वरूप दर्शनमुत्पद्यते, वियुक्तानां पुनः············।'

—प्रशस्तपाद भाष्य, पृ० १८७

३. 'क्लेशकर्मविपाकाशयैरपरामृष्टः पुरुषविशेषः ईश्वरः।'

—यो० सू०

४. 'तदा द्रष्टुः स्वरूपेऽवस्थानम्।' —यो० सू-१-१-३

जैनदर्शन में सर्वज्ञता की संभावनाएँ :

जैनदर्शन में ज्ञान को आत्मा का स्वरूप अथवा स्वाभाविक गुण माना गया है[1] और उसे स्वपर प्रकाशक बतलाया गया है[2]। यदि आत्मा का स्वभाव ज्ञत्व (जानना) न हो तो वेद के द्वारा भी सूक्ष्मादि ज्ञेयों का ज्ञान नहीं हो सकता। भट्ट अकलङ्क ने लिखा है[3] कि ऐसा कोई ज्ञेय नहीं, जो ज्ञस्वभाव आत्मा के द्वारा जाना न जाय। किसी विषय में अज्ञता का होना ज्ञानावरण तथा मोहा दिदोषों का कार्य है। जब ज्ञान के प्रतिबन्धक ज्ञानावरण तथा मोहा दिदोषों का क्षय हो जाता है तो बिना रुकावट के एक साथ समस्त ज्ञेयों का ज्ञान हुए बिना नहीं रह सकता। इसी को सर्वज्ञता कहा गया है। जैन मनीषियों ने प्रारम्भ से त्रिकाल और त्रिलोकवर्ती समस्त पदार्थों के प्रत्यक्ष ज्ञान के अर्थ में इस सर्वज्ञता को पर्यवसित माना है। आगम ग्रंथों व तर्क ग्रंथों में हमें सर्वत्र सर्वज्ञता का प्रतिपादन एवं उपपादन मिलता है। षट्खण्डागम सूत्रोंमें कहा गया है[4] कि 'केवली भगवान समस्त लोकों, समस्त जीवों और अन्य समस्त पदार्थों को सर्वथा एक साथ जानते व देखते हैं।'

आचारांग सूत्रों में भी यही कथन किया गया है[5]। महान् चिन्तक और लेखक कुन्दकुन्द ने भी लिखा है[6] कि आवरणों के अभाव से उद्भूत केवल ज्ञान वर्तमान, भूत, भविष्यत् सूक्ष्म, व्यवहित आदि सब तरह के ज्ञेयों को पूर्णरूप में युगपत् जानता है। जो त्रिकाल और त्रिलोकवर्ती सम्पूर्ण पदार्थों को नहीं जानता वह अनन्त पर्यायों वाले एक द्रव्य को भी पूर्णतया नहीं

---

१. 'उपयोगो लक्षणम्।' —तत्वार्थ सू० २-८

२. 'न खलु ज्ञस्वभावस्य कश्चिद्गोचरोऽस्ति यन्न क्रमेत, तत्स्वभावान्तर प्रतिषेधात्।' —अष्ट श० अष्ट स० पृ० ४९

३. 'णाणं सपरपवासयं।'— कुन्दकुन्द, प्रवचन सा० १

४. 'सयं भयवं उप्पण्णणाणदरिसी.........सव्वलोए सव्वलोए वे सव्वभावे सव्वं समं जाणदि पस्सदि विहरदि त्ति।' —षट्खं० पयदि० सू० ७८

५. 'से भगवं अरिहं जिणो केवली सव्वन्नू सव्वभावदरिसी...... ।
सव्वलोए सव्वजीवाणं सव्वभावाइं जाणमाणे पासमाणे एवं च ण विहरइ।'
—आचारांग सू० २-३

६. जं तक्कालियमिदरं जाणदि जुगवं समंत दो सव्वं।
अत्थं विचित्तविसमं तं णाणं खाइयं भणियं ॥
जो ण विजाणदिजुगवं अत्थे ते कालिगे तिहुवणत्थे।
णादु तस्सण सक्कं सपंज दव्वमेकं वा ॥
दव्वमणंतप्पजंयमेकमणं ताणि दव्व जाणादि।
ण विजाणदि जदि जुगवं कय सो दव्वाणि जाणादि ॥
—प्रव० सा० १-४७, ४८, ४९

जान सकता और जो अनन्त पर्यायवाले एक द्रव्य को नहीं जानता, वह समस्त द्रव्यों को कैसे एक साथ जान सकता है?'—प्रसिद्ध विचारक भगवती आराधनाकार शिवार्य[1] और आवश्यक निर्युक्तिकार भद्रबाहु[2], बड़े स्पष्ट और प्राञ्जल शब्दों में सर्वज्ञता का प्रबल समर्थन करते हुए कहते हैं कि '**वीतराग भगवान तीनों कालों, अनन्त पर्यायों से सहित समस्त ज्ञेयों और समस्त लोकों को युगपत् जानते व देखते हैं।**'

आगमयुग के बाद जब हम तार्किक युग में आते हैं तो हम स्वामी समन्तभद्र, सिद्धसेन अकलंक, हरिभद्र, पात्रस्वामी, वीरसेन, विद्यानन्द, प्रभाचन्द्र, हेमचन्द्र प्रभृति जैन तार्किकों को भी सर्वज्ञता का प्रबल समर्थन एवं उपपादन करते हुए पाते हैं। इनमें अनेक लेखकों ने तो सर्वज्ञता की स्थापना में महत्वपूर्ण स्वतंत्र ग्रंथ ही लिखे हैं। उनमें समन्तभद्र (वि० सं० दूसरी, तीसरी शती) की **आप्तमीमांसा, सर्वज्ञ विशेष परीक्षा** कहा गया है[3], अकलंकदेव की सिद्धिविनिश्चयगत **सर्वज्ञसिद्धि** विद्यानन्द की **आप्त परीक्षा**, अनन्तकीर्ति की **लघु व बृहत्सर्वज्ञ सिद्धियां**, वादीभसिंह की स्याद्वाद-सिद्धिगत **सर्वज्ञसिद्धि** आदि कितनी ही रचनाएँ उल्लेखनीय हैं। यदि कहा जाय कि सर्वज्ञता पर जैन दार्शनिकों ने सबसे अधिक चिन्तन और साहित्य-सृजन करके भारतीय दर्शनशास्त्र को समृद्ध बनाया है तो अत्युक्ति न होगी।

सर्वज्ञता की स्थापना में समन्तभद्र ने युक्ति दी है वह बड़े महत्व की है। वे कहते हैं कि सूक्ष्मादि अतीन्द्रिय पदार्थ भी किसी पुरुष विशेष के प्रत्यक्ष हैं, क्योंकि वे अनुमेय हैं। जैसे अग्नि। उनकी वह युक्ति यह है:

सूक्ष्मान्तरितदूरार्था, प्रत्यक्षाः कस्यचिद्यथा।
अनुमेयत्वतोऽग्न्यादिरिति सर्वज्ञ-संस्थितिः॥ — आ० मी० का० ४.

समन्तभद्र एक दूसरी युक्ति के द्वारा सर्वज्ञता के रोकने वाले अज्ञानादि दोषों और ज्ञानावरणादि आवरणों का किसी आत्मविशेष में अभाव सिद्ध करते हुए कहते हैं 'किसी पुरुषविशेष में ज्ञान के प्रतिबन्धकों का पूर्णतया क्षय हो जाता है, क्योंकि उनकी अन्यत्र न्यूनाधिकता देखी जाती है। जैसे स्वर्ण में बाह्य और आभ्यन्तर दोनों प्रकार के मलों का अभाव दृष्टिगोचर होता है।' प्रतिबंधकों के हट जाने पर ज्ञस्वभाव आत्मा के लिए कोई ज्ञेय-अज्ञेय नहीं रहता। ज्ञेयों का अज्ञान या तो आत्मा में उन सब ज्ञेयों को जानने की सामर्थ्य न होने से होता है और या ज्ञान के प्रतिबन्धकों के रहने से होता है। चूँकि आत्मा ज्ञ है और तप, संयमादि की आराधना द्वारा प्रतिबन्धकों का अभाव पूर्णतया संभव है। ऐसी स्थिति में उस वीतराग महायोगी को, कोई कारण नहीं कि अशेष

---

१. पस्सदि जाणदि ण तहा तिण्णि वि काले सयज्ज ए सव्वे।
तह वा लोगमसेसं पस्सदि भयवं विगय-मोहो॥ —भ० आ० गा० ११४१

२. संभिण्णं पासंतो लोगमलोगं च सव्वओ सव्वं।
तं णत्थि जं न पासइ भूयं भव्वं भविस्सं च॥ —आवश्य० नि० गा० १२७

३. अकलंक, अष्टश०-अष्टस०

ज्ञेयों का ज्ञान न हो।[1] उनका वह प्रतिपादन निम्न प्रकार है :

दोषावरणयोर्हानिर्निश्शेषाऽस्यतिशायनात् ।
क्वचिद्यथा स्वहेतुभ्यो बहिरन्तर्मलक्षयः ।।
स त्वमेवासि निर्दोषो युक्तिशास्त्रविरोधिवाक् ।
अविरोधो यदिष्टं ते प्रसिद्धेन न बाध्यते ।।

- आप्तमी० का० ५, ६

समन्तभद्र के उत्तरवर्ती सूक्ष्म चिन्तक अकलंकदेव ने सर्वज्ञता की संभावना में जो महत्व पूर्ण युक्तियां दी हैं उनका भी यहां उल्लेख कर देना आवश्यक है। अकलंक की पहली युक्ति यह है कि आत्मा में समस्त पदार्थों को जानने की सामर्थ्य है। इस सामर्थ्य के होने से ही कोई पुरुषविशेष वेद के द्वारा भी सूक्ष्मादि ज्ञेयों को जानने में समर्थ हो सकता है, अन्यथा नहीं। हां, यह अवश्य है कि संसारी-अवस्था में ज्ञानावरण से आवृत होने के कारण ज्ञान सब ज्ञेयों को नहीं जान पाता। जिस तरह हम लोगों का ज्ञान सब ज्ञेयों को नहीं जानता, कुछ सीमितों को ही जान पाता है। पर जब ज्ञान के प्रतिबन्धक कर्मों (आवरणों) का पूर्ण क्षय हो जाता है तो उस विशिष्ट इन्द्रियानपेक्ष और आत्ममात्र सापेक्ष ज्ञान को, जो स्वयं अप्राप्यकारी भी है, समस्त ज्ञेयों को जानने में क्या बाधा है।[2]

उनकी दूसरी युक्ति यह है कि यदि पुरुषों को धर्माधर्मादि अतीन्द्रिय ज्ञेयों का ज्ञान न

---

१. यहाँ ध्यान देने योग्य है कि समन्तभद्र ने आप्त के आवश्यक ही नहीं, अनिवार्य तीन गुणों (वीतरागता, सर्वज्ञता और हितोपदेशकता) में सर्वज्ञता को आप्त की अनिवार्य विशेषता बतलाया है—उसके बिना वे उसमें आप्त का असम्भव बतलाते हैं :

आप्तेनोच्छिन्न दोषेण सर्वज्ञेनागमेशिना ।
भवितव्यं नियोगेन नान्यथा ह्याप्तता भवेत् ।।

—रत्न क० श्लोक ५

२. कथञ्चेत् स्वप्रदेशेषु स्यात्कर्म-पटलाच्छता।
संसारिणां तु जीवनां यत्र ते चक्षुरादयः ।।
साक्षात्कर्तुं विरोधः कः सर्वथावरणात्यये ।
सत्यमर्थं तथा सर्वं यथाऽभूद्वा भविष्यति ।।
सर्वार्थग्रहण सामर्थ्याच्चैतन्यप्रतिबन्धिनाम् ।
कर्मणां विगमे कस्मात् सर्वानर्थान् न पश्यति ।।
ग्रहादि गतयः सर्वा सुखदुखादि हेतवः ।
येन साक्षात्कृतास्तेन किन्न साक्षात्कृतं जगत् ।।
ज्ञस्यावरण विच्छेदे ज्ञेयं किम वशिष्यते ।
अप्राप्यकारिणस्तस्मात् सर्वार्थावलोकनम् ।।

— न्यायविनिश्चय का० ३६१, ३६२, ४१०, ४१४, ४६५

हो तो सूर्य, चन्द्र आदि ज्योतिर्ग्रहों की ग्रहण आदि भविष्यत् दशाओं और उनसे होने वाले शुभा-शुभ का अविसंवादी उपदेश कैसे हो सकेगा ? इंद्रियों की अपेक्षा लिए बिना ही उनका अतीन्द्रियार्थ विषयक उपदेश सत्य और यथार्थ स्पष्ट देखा जाता है। अथवा जिस तरह सत्य स्वप्न-दर्शन इन्द्रियादि की सहायता के बिना ही भावीराज्यादि लाभ का यथार्थ बोध कराता है उसी तरह सर्वज्ञ का ज्ञान भी अतीन्द्रिय पदार्थों में संवादी और स्पष्ट होता है। और उसमें इंद्रियों को आंशिक भी सहायता नहीं होती। इंद्रियां तो वास्तव में कम ज्ञान को ही कराती हैं। वे अधिक और सर्वविषयक ज्ञान में उसी तरह बाधक हैं जिस तरह सुन्दर प्रासाद में बनी हुई खिड़कियां कम प्रकाश को ही लाती हैं और सब ओर के प्रकाश को रोकती हैं।

अकलंक की तीसरी युक्ति यह है कि जिस प्रकार परिमाण अणु-परिमाण से बढ़ता-बढ़ता आकाश में महापरिमाण या विभुत्व का रूप ले लेता है, क्योंकि उसकी तरतमता देखी जाती है। उसी तरह ज्ञान के प्रकर्ष में भी तारतम्य देखा जाता है। अतः जहां वह ज्ञान सम्पूर्ण अवस्था (निरतिशयपने) को प्राप्त हो जाय वहीं सर्वज्ञता आ जाती है। इस सर्वज्ञता का किसी व्यक्ति या समाज ने ठेका नहीं लिया। वह तो प्रत्येक साधक को प्राप्त हो सकती है।

उनकी चौथी युक्ति यह है कि सर्वज्ञता का कोई बाधक नहीं है। प्रत्यक्ष आदि पांच प्रमाण तो इसलिए बाधक नहीं हो सकते, क्योंकि वे विधि (अस्तित्व) को विषय करते हैं। यदि वे सर्वज्ञता के विषय में दखल दें तो उनसे उनका सद्भाव ही सिद्ध होगा। मीमांसकों का अभाव प्रमाण भी उसका निषेध नहीं कर सकता। क्योंकि अभाव प्रमाण के लिए यह आवश्यक है[1] कि जिसका अभाव करना है उसका स्मरण और जहाँ उसका अभाव करना है उसका प्रत्यक्ष दर्शन आवश्यक ही नहीं, अनिवार्य है। जब हम भूतल में घड़े का अभाव करते हैं तो वहाँ पहले देखे गए घड़े का स्मरण और भूतल का दर्शन होता है तभी हम यह कहते हैं कि यहाँ घड़ा नहीं है। किन्तु तीनों (भूत, भविष्यत् और वर्तमान) कालों तथा तीनों (ऊर्ध्व, मध्य और अधो) लोकों के अतीत, अनागत और वर्तमान कालीन अनन्त पुरुषों में सर्वज्ञता नहीं थी, नहीं है और न होगी. इस प्रकार का ज्ञान उसी को हो सकता है जिसने उन तमाम पुरुषों का साक्षात्कार किया है। यदि किसी ने किया है तो वही सर्वज्ञ हो जावेगा। साथ ही सर्वज्ञता का स्मरण सर्वज्ञता के प्रत्यक्ष अनुभव के बिना सम्भव नहीं और जिन त्रैकालिक और त्रिलोकवर्ती अनन्तपुरुषों (आधार) में सर्वज्ञता का अभाव करना है उनका प्रत्यक्ष-दर्शन भी सम्भव नहीं। ऐसी स्थिति में सर्वज्ञता का अभाव प्रमाण भी बाधक नहीं है। इस तरह जब कोई बाधक नहीं है तो कोई कारण नहीं कि सर्वज्ञता का सद्भाव सिद्ध न हो।

निष्कर्ष यह है कि आत्मा 'ज्ञ' ज्ञाता है और उसके ज्ञान-स्वभाव को ढकने वाले आवरण दूर होते हैं। अतः आवरणों के विच्छिन्न हो जाने पर ज्ञस्वभाव आत्मा के लिए फिर शेष

---

१. गृहीत्वा वस्तु सद्भावं स्मृत्वा च प्रतियोगिनम्।
मानसं नास्तिताज्ञानं जायतेऽक्षानपेक्षया।।
"अस्ति सर्वज्ञः सुनिश्चिता सम्भव द्बाधकप्रमाणत्वात्, सुखादिवत्"
—सिद्धि वि० वृ० ८-६ तथा अष्ट श० का० ५

जानने योग्य क्या रह जाता है ? अर्थात् कुछ भी नहीं। अप्राप्यकारी ज्ञान से सकलार्थ-विषयक ज्ञान होना अवश्यम्भावी है। इंद्रियां और मन सकलार्थ परिज्ञान में साधक न होकर बाधक हैं। वे जहाँ नहीं हैं और आवरणों का पूर्णत: अभाव है वहां त्रैकालिक और त्रिलोकवर्ती यावत् ज्ञेयों का साक्षात् ज्ञान होने में कोई बाधा नहीं है।

आ० वीरसेन और आ० विद्यानन्द ने भी इसी आशय का एक महत्वपूर्ण श्लोक प्रस्तुत करके उसके द्वारा ज्ञस्वभाव आत्मा में सर्वज्ञता की सम्भावना की है। वह श्लोक यह है :

ज्ञो ज्ञेये कथमज्ञः स्यादसति प्रतिबन्धने।
दाह्येऽग्निर्दाहको न स्यादसति प्रतिबन्धने॥

—जयधवला, पृ० ६६, अष्ट स० पृ० ५०

अग्नि में दाहकता हो और दाह्य-ईंधन सामने हो तथा बीच में कोई रुकावट न हो तो अग्नि अपने दाह्य को क्यों नहीं जलावेगी ? ठीक उसी तरह आत्मा ज्ञ (ज्ञाता) हो, और ज्ञेय सामने हो तथा उनके बीच में कोई रुकावट न रहे तो ज्ञाता उन ज्ञेयों को क्यों नहीं जानेगा ? आवरणों के अभाव में ज्ञस्वभाव आत्मा के लिए आसन्नता और दूरता ये दोनों भी निरर्थक हो जाती हैं।

अन्त में यह कहते हुए अपना निबन्ध समाप्त करते हैं कि जैनदर्शन में प्रत्येक आत्मा में आवरणों और दोषों के अभाव में सर्वज्ञता का होना अनिवार्य माना गया है। वेदान्तदर्शन में मान्य आत्मा की सर्वज्ञता से जैनदर्शन की सर्वज्ञता में सिर्फ इतना ही अन्तर है कि जैनदर्शन में सर्वज्ञता को आवृत करने वाले आवरण और दोष मिथ्या नहीं हैं, जबकि वेदान्तदर्शन में उसी को मिथ्या कहा गया है। इसके अलावा जैनदर्शन की सर्वज्ञता जहां सादि अनन्त है और प्रत्येक मुक्त आत्मा में वह पृथक्-पृथक् विद्यमान रहती है, अतएव अनन्त सर्वज्ञ हैं वहाँ वेदान्त में मुक्त आत्माएं अपने पृथक् अस्तित्व को न रखकर एक अद्वितीय सनातन ब्रह्म में विलीन हो जाते हैं और उनकी सर्वज्ञता अन्तःकरण-सम्बन्ध तक रहती है, बाद को वह नष्ट हो जाती है या ब्रह्म में ही उसका समावेश हो जाता है।

श्री सम्पूर्णानन्दजी ने[1] जैनों की सर्वज्ञता का उल्लेख करते हुए उसे आत्मा का स्वभाव न होने की बात कही है। उसके सम्बन्ध में इतना ही निवेदन कर देना पर्याप्त होगा कि जैन मान्यतानुसार सर्वज्ञता आत्मा का स्वभाव है और अर्हत् (जीवन्मुक्त) अवस्था में पूर्णतया प्रकट हो जाती है तथा वह मुक्तावस्था में भी अनन्तकाल तक विद्यमान रहती है। "**सत् का विनाश नहीं और असत् का उत्पाद नहीं**" इस सिद्धांत के अनुसार आत्मा का कभी भी नाश न होने के कारण उसकी स्वभावभूत सर्वज्ञता का भी विनाश नहीं होता। अतएव अर्हत् अवस्था में प्राप्त अनन्त चतुष्टय (अनन्तदर्शन, अनन्तज्ञान, अनन्तसुख और अनन्तवीर्य) के अन्तर्गत अनन्तज्ञान द्वारा इस सर्वज्ञता को जैनदर्शन में शाश्वत (शक्ति की अपेक्षा अनादि अनन्त और व्यक्ति की अपेक्षा सादि अनन्त) स्वीकार किया गया है।

---

१. ६ अक्तूबर १९६४ को राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर में आयोजित अ० भा० दर्शन परिषद् का उद्घाटन करते हुए दिया गया भाषण।

मध्यकालीन जैन हिन्दी काव्य में प्रेममूला भक्ति

डा० प्रेमसागर जैन एम० ए०, पी-एच० डी०, जैन कालेज, बड़ौत

डा० प्रेमसागर जैन, समाज के उदीयमान सिद्धहस्त लेखक हैं। जैनभक्ति काव्य पर उच्चकोटि का निबन्ध प्रस्तुत करने के कारण आप डाक्टरेट की उपाधि से विभूषित हुए हैं। जैन कवियों ने विभिन्न विषयों पर रचनाएं की हैं। जन-साधारण की बोली में काव्य-रचना करना जैन साहित्यकार अपना गौरव समझते थे। यही कारण है कि जैन कवियों ने हिन्दी में अपार जैन-साहित्य की रचना की है। प्रस्तुत निबन्ध में इस भाव को सुन्दर ढंग से दर्शाया है कि नारियां प्रेम की प्रतीक होती हैं; उनका हृदय कोमल और सरस होता है। उसमें प्रेम-भाव को लहलहाने में देर नहीं लगती। इसी प्रकार भक्त कान्ता भाव से और भगवान प्रिय रूप से। यह दाम्पत्य भाव का प्रेम जैन कवियों की रचना में भी पाया जाता है। विद्वान लेखक ने इस भाव का विस्तार से प्रतिपादन किया है।

भक्तिरस का स्थायी-भाव भगवद्विषयक अनुराग है। इसीको शाण्डिल्य ने 'परानुरक्तिः' कहा है।[1] परानुरक्तिः गंभीर अनुराग को कहते हैं। गम्भीर अनुराग ही प्रेम कहलाता है। चैतन्य महाप्रभु ने रति अथवा अनुराग के गाढ़े हो जाने को ही 'प्रेम' कहा है।[2] भक्तिरसामृत सिन्धु में लिखा है, "सम्यङमसृणित स्वान्तो ममत्वातिशयोक्तिः। भावः स एव सान्द्रात्मा बुधैः प्रेम निगद्यते।"[3]

प्रेम दो प्रकार का होता है—लौकिक और अलौकिक। भगवद्विषयक अनुराग अलौकिक प्रेम के अन्तर्गत आता है। यद्यपि भगवान का अवतार मानकर, उसके प्रति लौकिक प्रेम का भी आरोपण किया जाता है, किन्तु उसके पीछे अलौकिकत्त्व सदैव छिपा रहता है। इस प्रेम में समूचा आत्म-समर्पण होता है और प्रेम के प्रत्यागमन की भावना नहीं रहती। अलौकिक प्रेम-जन्य तल्लीनता ऐसी विलक्षण होती है कि द्वैध भाव ही मृत हो जाता है, फिर प्रेम के प्रतीकार का भाव कहां रह सकता है।

नारियां प्रेम की प्रतीक होती हैं। उनका हृदय एक ऐसा कोमल और सरस स्थल है, जिसमें प्रेम भाव को लहलहाने में देर नहीं लगती। इसी कारण भक्त भी कान्ता-भाव से भगवान की आराधना करने में अपना अहोभाग्य समझता है। भक्त 'तिया' बनता है और भगवान 'पिय'। यह दाम्पत्य भाव का प्रेम जैन कवियों की रचनाओं में भी उपलब्ध होता है। बनारसीदास ने अपने 'अध्यात्म गीत' में आत्मा को नायक और 'सुमति' को उसकी पत्नी बनाया है। पत्नी पति के वियोग में इस भांति तड़फ रही है, जैसे जल के विना मछली। उसके हृदय में पति

१. शाण्डिल्य भक्ति सूत्र, १।२, पृ० १

२. चैतन्य चरितामृत, कल्याण, भक्ति अंक, वर्ष ३२, अंक १, पृ० ३३३

३. श्री रूप गोस्वामी, हरिभक्ति रसामृत सिन्धु, गोस्वामी दामोदर शास्त्री संपादित, अच्युत ग्रंथमाला कार्यालय, काशी, वि० सं० १९८८, प्रथम संस्करण, १।४।१

से मिलने का चाव निरन्तर बढ़ रहा है। वह अपनी समता नाम की सखी से कहती है कि पति के दर्शन पाकर मैं उसमें इस तरह मग्न हो जाऊंगी, जैसे बूंद दरिया में समा जाती है। मैं अपनपा खोकर पिय से मिलूंगी, जैसे ओला गल कर पानी हो जाता है।[1] अन्त में पति तो उसे अपने घट में ही मिल गया, और वह उससे मिलकर इस प्रकार एकमेक हो गई कि द्विविधा तो रही ही नहीं। उसके एकत्व को कवि ने अनेक सुन्दर दृष्टान्तों से पुष्ट किया है। वह करतूति है और पिय कर्त्ता, वह सुख-सींव है और पिय सुख-सागर, वह शिव-नींव है और पिय शिव-मंदिर, वह सरस्वती है और पिय ब्रह्मा, वह कमल है और पिय माधव, वह भवानी है और पति शंकर, वह जिनवाणी है और पति जिनेन्द्र।[2]

कवि ने सुमति रानी को 'राधिका' माना है। उसका सौन्दर्य और चातुर्य सब कुछ राधा के ही समान है। वह रूप-सी रसीली है और भ्रम रूपी ताले को खोलने के लिए कीली के समान है। ज्ञान-भानु को जन्म देने के लिए प्राची है और आत्म-स्थल में रमने वाली सच्ची विभूति है। अपने धाम की खबरदार और राम की रमनहार है। ऐसी सन्तों की मान्य, रस के पथ और ग्रन्थों में प्रतिष्ठित और शोभा की प्रतीक राधिका सुमति रानी है।[3]

---

१. मैं विरहिन पिय के आधीन
त्यौं तलफौं ज्यों जल बिन मीन ॥८॥
होंहुँ मगन मैं दरशन पाय
ज्यौं दरिया में बूंद समाय ॥९॥
पिय को मिलों अपनपो खोय
ओला गल पाणी ज्यों होय ॥१०॥

—बनारसी विलास, अध्यातम गीत, पृ० १६१

२. पिय मोरे घट मैं पिय माहिं, जलतरंग ज्यों दुविधा नाहिं।
पिय मो करता मैं करतूति, पिय ज्ञानी मैं ज्ञान विभूति॥
पिय सुखसागर मैं सुख-सींव, पिय शिवमंदिर मैं शिवनींव।
पिय ब्रह्मा मैं सरस्वति नाम, पिय माधव मो कमला नाम॥
पिय शंकर मैं देवि भवानि, पिय जिनवर मैं केवल बानि॥

—देखिए वही, अध्यात्म गीत, पृ० १६१

३. रूप की रसीली भ्रम कुलप की कीली
शील सुधा के समुद्र झीलि सीलि सुखदाई है।
प्राची ज्ञान-भान की अजाची है निदान की
सुराची निरवाची और साँची ठकुराई है।
धाम की खबरदार राम की रमनहार
राधा रस पंथनि में ग्रन्थन में गाई है।
संतन की मानी निरवानी रूप की निसानी
यातैं सुबुद्धि रानी राधिका कहाई है॥

—बनारसीदास, नाटक समयसार, प्राचीन हिन्दी जैन कवि, दमोह, पृ० ७९

सुमति अपने पति 'चेतन' से प्रेम करती है। उसे अपने पति के अनन्त ज्ञान, बल और वीर्य वाले पहलू पर एक निष्ठा है। किन्तु वह कर्मों की कुसंगति में पड़कर भटक गया है। अतः बड़े ही मिठास भरे प्रेम से दुलराते हुए सुमति कहती है, "हे लाल तुम किसके साथ कहां लगे फिरते हो। आज तुम ज्ञान के महल में क्यों नहीं आते। तुम अपने हृदय-तल में ज्ञान-दृष्टि खोल कर देखो, दया, क्षमा, समता और शान्ति जैसी सुन्दर रमणियां तुम्हारी सेवा में खड़ी हुई हैं। एक से एक अनुपम रूप वाली हैं। ऐसे मनोरम वातावरण को भूलकर आप कहीं न जाइए। यह मेरी सहज प्रार्थना है।[1]

बहुत दिन बाहर भटकने के बाद चेतन राजा आज घर आ रहा है। सुमति के आनन्द का कोई ठिकाना नहीं है। वर्षों की प्रतीक्षा के बाद पिय के आगमन की बात सुनकर भला कौन प्रसन्न न होती होगी। सुमति आह्लादित होकर अपनी सखी से कहती है, "हे सखी देखो आज चेतन घर आ रहा है। वह अनादि काल तक दूसरो के वश में होकर घूमता फिरा, अब उसने हमारी सुध ली है। अब तो वह भगवान जिन की आज्ञा को मानकर परमानन्द के गुणों को गाता है। उसके जन्म-जन्म के पाप भी पलायन कर गये हैं। अब तो उसने ऐसी युक्ति रच ली है, जिससे उसे संसार में फिर नहीं आना पड़ेगा। अब वह अपने मनभाये परम अखंडित सुख का विलास करेगा।"[2]

पति को देखते ही पत्नी के अन्दर से परायेपन का भाव दूर हो जाता है। द्वैत हट जाता है और अद्वैत उत्पन्न हो जाता है। ऐसा ही एक भाव बनारसीदास ने उपस्थित किया है। सुमति चेतन से कहती है, "हे प्यारे चेतन! तेरी ओर देखते ही परायेपन की गगरी फूट गई, दुविधा का आंचल हट गया और समूची लज्जा पलायन कर गई। कुछ समय पूर्व तुम्हारी याद आते ही मैं तुम्हें खोजने के लिए अकेली ही राज-पथ को छोड़कर भयावह कान्तार में घुस पड़ी

---

१. कहां-कहां कौन संग लागे ही फिरत लाल, आवौ क्यों न आज तुम ज्ञान के महल में।
नैंकहू विलोकि देखौ अन्तर सुदृष्टि सेती, कैसी-कैसी नीकी नारि ठाड़ी हैं टहल में।
एक तें एक बनी सुन्दर सुरूप घनी, उपमा न जाय गनी वाम की चहल में।
ऐसी विधि पाय कहूं भूलि और काज कीजे, एतौ कह्यो मान लीजै बीनती सहल में।
—'भैया' भगवतीदास, ब्रह्मविलास, जैनग्रन्थ रत्नाकर कार्यालय, बम्बई,
द्वितीयावृत्ति, सन् १९२६ ई०, शतअष्टोत्तरी, २७वां पद्य, पृ० १४

२. देखो मेरी सखी ये आज चेतन घर आवै।
काल अनादि फिर्‌यो परवश ही, अब निज सुधहिं चितावै ॥१॥ दे०
जनम जनम के पाप किये जे, ते छिन माहिं बहावै।
श्री जिन आज्ञा सिर पर धरतो, परमनान्द गुण गावै ॥२॥ दे०
देत जलांजुलि जगत फिरन को ऐसी जुगति बनावै।
विलसै सुख निज परम अखंडित, भैया सब मन भावै ॥३॥ दे०
—देखिये वही, परमार्थ पद पंक्ति १४वां पद, पृ० ११४

थी। वहाँ काया नगरी के भीतर तुम अनन्त बल और ज्योति वाले होते हुए भी कर्मों के आवरण में लिपटे पड़े थे। अब तो तुम्हें मोह की नींद छोड़कर सावधान हो जाना चाहिए।"[३]

एक सखी सुमति को लेकर, नायक चेतन के पास मिलाने के लिए गई। पहले दूतियाँ ऐसा किया करती थीं। वहाँ वह सखी अपनी बाला सुमति की प्रशंसा करते हुए चेतन से कहती है, "हे लालन! मैं अमोलक बाल लाई हूँ। तुम देखो तो वह कैसी अनुपम सुन्दरी है। ऐसी नारी तीनों संसार में दूसरी नहीं है। और हे चेतन! इसकी प्रीति भी तुझसे ही सनी हुई है। तुम्हारी इस राधे की एक-दूसरे पर अनन्त रीझ है। उसका वर्णन करने में मैं पूर्ण असमर्थ हूँ।[४]

आध्यात्मिक विवाह

इसी प्रेम के प्रसंग में आध्यात्मिक विवाहों को लिया जा सकता है। ये 'विवाहला', 'विवाह', 'विवाहलउ' और 'विवाहलो' आदि नामों से अभिहित हुए हैं। इनको दो भागों में विभक्त किया जा सकता है—एक तो वह जब दीक्षा ग्रहण के समय आचार्य का दीक्षाकुमारी अथवा संयमश्री के साथ विवाह सम्पन्न होता है, और दूसरा वह जब आत्मा रूपी नायक के साथ उसी के किसी गुणरूपी कुमारी की गाँठें जुड़ती हैं। इनमें प्रथम प्रकार के विवाहों का वर्णन करने वाले कई रास 'ऐतिहासिक काव्य संग्रह' में संकलित हैं। दूसरे प्रकार के विवाहों में सबसे प्राचीन जिनप्रभसूरि का 'अन्तरंग विवाह' प्रकाशित हो चुका है। उपर्युक्त सुमति और चेतन दूसरे प्रकार के पति-पत्नी हैं। इसी के अन्तर्गत वह दृश्य भी आता है, जबकि आत्मारूपी नायक 'शिवरमणी' के साथ विवाह करने जाता है। अजयराज पाटणी के 'शिवरमणी विवाह' का उल्लेख हो चुका है।

---

३. बालम तुहु तन चितवन गागरि फूटि
अंचरा गौ फहराय सरम गै छूटि ॥१॥ बालम०
पिउ सुधि पावत वन मैं पैसिउ पेलि,
छाडत राज डगरिया भयउ अकेलि ॥३॥ बालम०
काय नगरिया भीतर चेतन भूप,
करम लेप लिपटा बल ज्योति स्वरूप ॥५॥ बालम०
चेतन बूझि विचार धरहु सन्तोष,
राग दोष दुइ बन्धन छूटत मोष ॥१३॥ बालम०

—बनारसी विलास, अध्यात्म पद पंक्ति पृ० २२८-२२९

४. लाई हों लालन बाल अमोलक, देखहु तो तुम कैसी बनी है।
ऐसी कहूँ तिहुँ लोक में सुन्दर, और न नारि अनेक घनी हैं ॥
याहि तें तोह कहूँ नित चेतन, याहू की प्रीति जु तो सौं सनी है।
तेरी और राधे की रीझि अनन्त जु मोपै कहूँ यह जात गनी है॥

—भैय्या भगवतीदास, ब्रह्मविलास, बम्बई, १९२६ ई०,
शत अष्टोत्तरी, २८वां पद्य, पृ० १४

यह १७ पद्यों का एक सुन्दर रूपक काव्य है। उन्होंने 'जिनजी की रसोई' में तो विवाहोपरांत सुस्वादु भोजन और बन-विहार का भी उल्लेख किया है।[५]

बनारसीदास ने तीर्थंकर शांतिनाथ का शिवरमणी से विवाह दिखाया है। शांतिनाथ विवाह मंडप में आने वाले हैं। होने वाली वधू की उत्सुकता दबाये नहीं दबती। वह अभी से उनको अपना पति मान बैठी है। वह अपनी सखी से कहती है, "हे सखी आज का दिन अत्यधिक मनोहर है, किन्तु मेरा मनभाया अभी तक नहीं आया। वह मेरा पति सुखकंद है और चन्द्र के समान देह को धारण करने वाला है, तभी तो मेरा मन उदधि आनन्द से आन्दोलित हो उठा है। और इसी कारण मेरे नेत्र-चकोर सुख का अनुभव कर रहे हैं। उसकी सुहावनी ज्योति की कीर्ति संसार में फैली हुई है। वह दुखरूपी अंधकार के समूह को नष्ट करने वाली है। उनकी वाणी से अमृत झरता है। मेरा सौभाग्य है जो मुझे ऐसे पति प्राप्त हुए।"[६]

तीर्थंकर अथवा आचार्यों के संयमश्री के साथ विवाह होने के वर्णन तो बहुत अधिक हैं। उनमें से 'जिनेश्वर सूरि और जिनोदय सूरि विवाहला' एक सुन्दर काव्य है। इसमें इन सूरियों का संयमश्री के साथ विवाह होने का वर्णन है। इसकी रचना वि० सं १३३१ में हुई थी। हिन्दी के कवि कुमुदचन्द का 'ऋषभ विवाहला' भी ऐसी ही एक कृति है। इसमें भगवान ऋषभनाथ का दीक्षा-कुमारी के साथ विवाह हुआ है। श्रावक ऋषभदास का 'आदीश्वर विवाहला' भी बहुत ही प्रसिद्ध है। विवाह के समय भगवान ने जिस चूनड़ी को ओढ़ा था, वैसी चूनड़ी छपाने के लिए न जाने कितनी पत्नियाँ अपने पतियों से प्रार्थना करती रही हैं। १६वीं शती के विनयचन्द्र की 'चूनड़ी' हिन्दी साहित्य की प्रसिद्ध रचना है। साधुकीर्ति की चूनड़ी में तो संगीतात्मक प्रवाह भी है।

तीर्थंकर नेमीश्वर और राजुल का प्रेम

नेमीश्वर और राजुल के कथानक को लेकर जैन हिन्दी के भक्तकवि दाम्पत्य भाव प्रकट करते रहे हैं। राजशेखर सूरि ने विवाह के लिए राजुल को ऐसा सजाया है कि उसमें मृदुल काव्यत्व ही साक्षात् हो उठा है। किन्तु वह वैसी ही उपास्य बुद्धि से संचालित है, जैसे राधा-सुधानिधि में राधा का सौन्दर्य। राजुल की शील-सती शोभा में कुछ ऐसी बात है कि उससे

---

५. देखिए, 'हिन्दी के भक्तिकाव्य में जैन साहित्यकारों का योगदान'
छठा अध्याय, पृ० ६५६

६ सहि एरी ! दिन आज सुहाया मुझ भाया आया नहिं घरे।
सहि एरी ! मन उदधि अनन्दा सुख, कन्दा चन्दा देह धरे॥
चन्द जिवाँ मेरा वल्लभ सोहे, नैन चकोरहिं सुक्ख करै।
जग ज्योति सुहाई कीरति छाई, बहु दुख तिमर वितान हरै॥
सहु काल विनानी अमृतवानी, अरु मृग का लच्छन कहिये।
श्री शान्ति जिनेश नरोत्तम को प्रभु, आज मिला मेरी सहिये॥
—बनारसीदास, बनारसी विलास, श्री शान्तिनाथ जिन-स्तुति, प्रथम पद्य, पृ० १८९।

पवित्रता को प्रेरणा मिलती है, वासना को नहीं। विवाह मंडप में विराजी वधू जिसके आने की प्रतीक्षा कर रही थी। वह मूक पशुओं के करुण-क्रन्दन से प्रभावित होकर लौट गया। उस समय वधू की तिलमिलाहट और पति को पा लेने की बेचैनी का जो चित्र हेमविजय ने खींचा है, दूसरा नहीं खींच सका। हर्षकीर्त्ति की 'नेमिनाथ राजुल गीत' भी एक सुन्दर रचना है। इसमें भी नेमिनाथ को पा लेने की बेचैनी है, किन्तु वैसी सरस नहीं जैसी कि हेमविजय ने अंकित की है।

कवि भूधरदास ने नेमीश्वर और राजुल को लेकर अनेक पदों का निर्माण किया है। एक स्थान पर तो राजुल ने अपनी माँ से प्रार्थना की, "हे मां देर न करो। मुझे शीघ्र ही वहाँ भेज दो, जहाँ हमारा प्यारा पति रहता है। यहां तो मुझे कुछ भी अच्छा नहीं लगता, चारों ओर अंधेरा ही अंधेरा दिखाई देता है। न जाने नेमि रूपी दिवाकर का मुख कब दिखाई पड़ेगा। उनके बिना हमारा हृदय रूपी अरविन्द मुरझाया पड़ा है।"[७] पिय-मिलन की ऐसी विकट चाह है, जिसके कारण लड़की माँ से प्रार्थना करते हुए भी नहीं लजाती। लौकिक प्रेम-प्रसंग में लज्जा आती है, क्योंकि उसमें काम की प्रधानता होती है, किन्तु यहाँ तो अलौकिक और दिव्य प्रेम की बात है। अलौकिक की तल्लीनता में व्यावहारिक उचित-अनुचित का ध्यान नहीं रहता।

राजुल के वियोग में 'सम्वेदना' की प्रधानता है। भूधरदास ने राजुल के अन्तःस्थ विरह को सहज स्वाभाविक ढंग से अभिव्यक्त किया है। राजुल अपनी सखी से कहती है, "हे सखी! मुझे वहाँ ले चल, जहाँ प्यारे जादौपति रहते हैं। नेमिरूपी चन्द्र के बिना यह आकाश का चन्द्र मेरे सब तन-मन को जला रहा है। उसकी किरणें नाविक के तीर की भाँति अग्नि के स्फुलिंगों को बरसाती हैं। रात्रि के तारे तो अंगारे ही हो रहे हैं।"[८] कहीं-कहीं राजुल के विरह में 'ऊहा' के दर्शन होते हैं, किन्तु उसमें नायिका के 'पेंडुलम' हो जाने की बात नहीं आ पाई है, इसी कारण वह तमाशा बनने से बच गया है। यद्यपि राजुल का 'उर' भी ऐसा जल रहा है कि हाथ उसके समीप नहीं ले जाया जा सकता। किन्तु ऐसा नहीं कि उसकी गर्मी से जड़काले में लुयें चलने लगी हों। राजुल अपनी सखी से कहती है, "नेमिकुमार के बिना मेरा जिय रहता नहीं है। हे सखी! देख मेरा हृदय कैसा बच रहा है, तू अपने हाथ को निकट लाकर देखती क्यों नहीं।

---

७. माँ विलंब न लाव पठाव वहाँ री, जहं जगपति पिय प्यारो।
और न मोहि सुहाय कछू अब, दीसे जगत अंधारो री ॥१॥
मैं श्री नेमि दिवाकर कौ अब, देखौं बदन उजारो।
बिन पिय देखे मुरझाय रह्यो है, उर अरविंद हमारो री ॥२॥
—भूधरदास, भूधरविलास, कलकत्ता, १३वाँ पद, पृ० ८।

८. तहाँ लै चल री, जहाँ जादौपति प्यारो।
नेमि निशाकर बिन यह चन्दा, तन-मन दहत सकल री ॥१॥ तहाँ०
किरन किधौं नाविक शर तति के, ज्यों पावक की झलरी।
तारे हैं अंगारे सजनी, रजनी राकस दल री ॥२॥ तहाँ०
—देखिए वही, ४५वां पद, पृ० २५

मेरी विरहजन्य उष्णता कपूर और कमल के पत्तों से दूर नहीं होगी। उनको दूर हटा दे । मुझे तो 'सियरा कलाधर' भी 'करूर' लगता है। प्रियतम प्रभु नेमिकुमार के बिना मेरा 'हियरा' शीतल नहीं हो सकता।[६] पिय के वियोग में राजुल भी पीली पड़ गई हैं, किन्तु ऐसा नहीं हुआ कि उसके शरीर में एक तोला मांस भी न रहा हो। विरह से भरी नदी में उसका हृदय भी बहा है, किन्तु उसकी आंखों से खून के आंसू कभी नहीं ढुलके। हरी तो वह भी भर्त्ता से भेंट कर ही होगी, किन्तु उसके हाड़ सूख कर सारंगी कभी नहीं बने।[१०]

बारहमासा

नेमीश्वर और राजुल को लेकर जैन हिन्दी साहित्य में बारहमासों की भी रचना हुई है। उन सब में कवि विनोदीलाल का 'बारहमासा' उत्तम है। प्रिया को प्रिय के सुख के अनिश्चय की आशंका सदैव रहती है, भले ही प्रिय सुख से रह रहा हो। तीर्थंकर नेमीश्वर वीतरागी होकर निराकुलतापूर्वक गिरिनार पर तप कर रहे हैं, किन्तु राजुल को शंका है, "जब सावन में घनघोर घटायें जुड़ आयेंगी, चारों ओर से मोर शोर करेंगे, कोकिल कुहुक सुनावेगी, दामिनी दमकेगी और पुरवाई के झोंके चलेंगे, तो वह सुखपूर्वक तप न कर सकेंगे।[११] पौष के लगने पर तो राजुल की चिन्ता और भी बढ़ गई है। उसे विश्वास है कि पति का जाड़ा बिना रजाई के नहीं कटेगा। पत्तों की धुवनी से तो काम चलेगा नहीं। उस पर भी काम की फौजें इसी ऋतु में निकलती हैं, कोमल गात के नेमीश्वर उससे लड़ न सकेंगे।[१२] वैशाख की गर्मी को देखकर राजुल और भी अधिक व्याकुल है, क्योंकि इस गर्मी में नेमीश्वर को प्यास लगेगी, तो शीतल जल कहाँ मिलेगा, और तीव्र धूप से तचते पत्थरों से उनका शरीर दग जाएगा।[१३]

---

९. नेमि बिना न रहे मेरो जियरा।
हेर री अली तपत उर कैसो, लावत क्यों निज हाथ न नियरा ॥१॥ नेमि०
करि करि दूर कपूर कमल दल, लगत करूर कलाधर सियरा ॥२॥ नेमि०
भूधर के प्रभु नेमि पिया बिन, शीतल होय न राजुल हियरा ॥३॥ नेमि०
—देखिए वही, २०वां पद, पृ० १२

१०. देखिए वही, १४वां पद, पृष्ठ ९ और मिलाइये जायसी के नागमती के विरह वर्णन से।

११. पिया सावन में व्रत लीजे नहीं, घनघोर घटा जुर आवैंगी।
चहुँ ओर तैं मोर जु शोर करैं, बन कोकिल कुहक सुनावैंगी ॥
पिय रैन अंधेरी में सूझे नहीं, कछु दामिन दमक डरावैंगी।
पुरवाई की झोंक सहोगे नहीं, छिन में तप तेज छुड़ावैंगी ॥
- कवि विनोदीलाल, बारहमासा नेमि राजुल का, बारहमासा संग्रह, जिनवाणी प्रचारक कार्यालय, कलकत्ता, ४था पद्य, पृ० २४,

१२. देखिए वही, १४वां पद्य, पृ० २७

१३. देखिए वही, २२वां पद्य, पृ० २९

कवि लक्ष्मीबल्लभ का 'नेमि राजुल बारहमासा' भी एक प्रसिद्ध रचना है। इसमें कुल १४ पद्य हैं। प्रकृति के रमणीय सन्निधान में विरहिणी के व्याकुल भावों का सरस सम्मिश्रण हुआ है, "श्रावण का माह है, चारों ओर से विकट घटायें उमड़ रही हैं। मोर शोर मचा रहे हैं। आसमान में दामिनी दमक रही है। यामिनी में कुम्भस्थल जैसे स्तनों को धारण करने वाली भामिनियों को पिय का संग भा रहा है। स्वाति नक्षत्र की बूँदों से चातक की पीड़ा भी दूर हो गई है। शुष्क पृथ्वी की देह भी हरियाली को पाकर दिप उठी है। किन्तु राजुल का न तो पिय आया और न पतियां।[१४] "ठीक इसी भांति एक बार जायसी की नागमती भी विलाप करते हुए कह उठी थी, "चातक के मुख स्वाति नक्षत्र की बूँदें पड़ गईं, और समुद्र की सब सीपें भी मोतियों से भर गईं। हंस स्मरण कर करके अपने तालावों पर आ गये। सारस बोलने लगे और खंजन भी दिखाई पड़ने लगे। कांसों के फूलने से बन में प्रकाश हो गया, किन्तु हमारे कंत न फिरे, कहीं विदेश में ही भूल गये।[१५]" कवि भवानीदास ने भी नेमिनाथ बारहमासा लिखा था, किसमें कुल १२ पद्य हैं। श्री जिनहर्ष का 'नेमि बारहमासा' भी एक प्रसिद्ध काव्य है। उसके १२ सवैयों में सौन्दर्य और आकर्षण व्याप्त है। श्रावण मास में राजुल की दशा को उपस्थित करते हुए कवि ने लिखा है, "श्रावण मास है, घनघोर घटायें उन्नै आई हैं। झलमलाती हुई बिजुरी चमक रही है, उसके मध्य से बज्र-सी ध्वनि फूट रही है. जो राजुल को विषबेलि के समान लगती है। पपीहा पिउ-पिउ रट रहा है। दादुर और मोर बोल रहे हैं। ऐसे समय में यदि नेमीश्वर मिल जायें तो राजुल अत्यधिक सुखी हो।"[१६]

---

१४. उमटी घनघोर घटा चिहुँ ओरनि मोरनि सोर मचायो।
चमकै दिवि दामिनि यामिनि कुंमय भामिनि कुं पिय को संग भायो।
लिव चातक पीड़ ही पीत लई, भई राजहरी मुँह देह दिपायो।
पतियां पै न पाई री प्रीतम की अली, श्रावण आयो पै नेम न आयो।
—कवि लक्ष्मीबल्लभ, नेमि राजुल बारहमासा, पहल पद्य,
इसी प्रबन्ध का छठा अध्याय। पृ० ५६४

१५. स्वाति बूँद चातक मुख परे। समुद सीप मोती सब भरे॥
सरवर संवरि हंस चलि आये। सारस कुरलहिं खंजन देखाये॥
भा परगास कांस बन फूले। कंत न फिरे बिदेसहिं भूले॥
— जायसी ग्रन्थावली, पं० रामचन्द्र शुक्ल संपादित, काशी नागरी प्रचारिणी सभा,
तृतीय संस्करण, वि० सं० २००३, ३०१७, पृ० १५३

१६. घन की घनघोर घटा उनही, बिजुरी चमकंति झलाहलि सी॥
विधि गाज अगाज अवाज करंत सु, लागत भो विषबेलि जिसी॥
पपीया पिउ पिउ रटत रयण जु, दादुर मोर वदै ऊलिसी॥
ऐसे श्रावण में यदु नेमि मिलै, सुख होत कहै जसराज रिसी॥
—जिनहर्ष, नेमि बारहमासा, इसी प्रबन्ध का छठा अध्याय, पृ० ५०२

आध्यात्मिक होलियाँ

जैन साहित्यकार आध्यात्मिक होलियों की रचना करते रहे हैं। इनमें होली के अंग-उपांगों का आत्मा से रूपक मिलाया गया है। उनमें आकर्षण तो होता ही है, पावनता भी आ जाती है। ऐसी रचनाओं को 'फागु' कहते हैं। कवि बनारसीदास के 'फागु' में आत्मा रूपी नायक ने शिवसुन्दरी से होली खेली है। कवि ने लिखा है, "सहज आनन्द रूपी बसन्त आ गया है और शुभ भाव रूपी पत्ते लहलहाने लगे हैं। सुमति रूपी कोकिला गलगही होकर गा उठी है, और मन रूपी भौंरे मदोमत्त होकर गुंजार कर रहे हैं। सुरति रूपी अग्नि-ज्वाला प्रकट हुई है, जिससे अष्टकर्म रूपी बन जल गया है। अगोचर अमूर्त्तिक आत्मा धर्म रूपी फाग खेल रहा है। इस भाँति आत्म ध्यान के बल से परम ज्योति प्रकट हुई, जिससे अष्टकर्म रूपी होली जल गई और आत्मा शान्तरस में मग्न होकर शिवसुन्दरी से फाग खेलने लगा।"[१७]

कवि द्यानतराय ने दो जत्थों के महरा होली की रचना की है। एक ओर तो बुद्धि, दया, क्षमा रूपी नारियां हैं और दूसरी ओर आत्मा के गुण रूपी पुरुष हैं। ज्ञान और ध्यान रूपी डफ तथा ताल बज रहे हैं, उनसे अनहद रूपी घनघोर निकल रहा है। धर्म रूपी लाल रंग का गुलाल उड़ रहा है और समता रूपी रंग दोनों ही पक्षों ने घोल रक्खा है। दोनों ही दल प्रश्न के उत्तर की भांति एक-दूसरे पर पिचकारी भर-भर कर छोड़ते हैं। इधर से पुरुष-वर्ग पूछता है कि तुम किसकी नारी हो, तो उधर से स्त्रियां पूछती हैं कि तुम किसके छोरा हो। आठ कर्मरूपी काठ अनुभव रूपी अग्नि में जल बुझकर शान्त हो गये। फिर तो सज्जनों के नेत्र रूपी चकोर,

---

१७. विषम विरष पूरो भयो हो, आयो सहज वसन्त।
प्रगटी सुरचि सुगंधिता हो, मन मधुकर मयमंत॥
सुमति कोकिला गहगही हो, बही अपूरब बाउ।
भरम कुहर बादर फटे हो, घट जाड़ो जड़ताउ॥
शुभ दल पल्लव लहलहे हो, होंहि अशुभ पतझार।
मलिन विषय रति मालती हो, विरति वेलि विस्तार॥
सुरति अग्नि ज्वाला जगी हो, समकित मानु अमंद।
हृदय कमल विकसित भयो हो, प्रगट सुजश मकरंद॥
परम ज्योति प्रगट भई हो, लागी होलिका आग।
आठ काठ सब जरि बुझे हो, गई तताई भाग॥

—बनारसीदास, बनारसी विलास

शिवरमणी के आनन्दकन्द की छवि की टकटकी लगाकर देखते ही रहे।[१८] भूधरदास की नायिका ने भी अपनी सखियों के साथ, श्रद्धा नगरी में आनन्द रूपी जल से रुचि रूपी केशर घोल कर और रंगे हुए नीर को उमंग रूपी पिचकारी में भर कर अपने प्रियतम के ऊपर छोड़ा। इस भांति उसने अत्यधिक आनन्द का अनुभव किया।[१९]

अनन्य प्रेम

प्रेम में अनन्यता का होना अत्यावश्यक है। प्रेमी को प्रिय के अतिरिक्त कुछ दिखाई ही न दे, तभी वह सच्चा प्रेम है। मां-बाप ने राजुल से दूसरे विवाह का प्रस्ताव किया, क्योंकि राजुल की नेमीश्वर के साथ भाँवरें नहीं पड़ने पाई थीं। किन्तु प्रेम भाँवरों की अपेक्षा नहीं करता। राजुल को तो सिवा नेमीश्वर के अन्य का नाम भी रुचिकारी नहीं था। इसी कारण उसने मां-बाप को फटकारते हुए कहा, "हे तात ! तुम्हारी जीभ खूब चली है जो अपनी लड़की के लिए भी गालियां निकालते हो। तुम्हें हर बात सम्भल कर कहना चाहिए। सब स्त्रियों को एक-सी न समझो। मेरे लिए तो इस संसार में केवल नेमि प्रभु ही एक मात्र पति हैं।"[२०]

महात्मा आनन्दघन अनन्य प्रेम को जिस भांति अध्यात्म पक्ष में घटा सके, वैसा हिन्दी का अन्य कोई कवि नहीं कर सका। कबीर में दाम्पत्य भाव है और आध्यात्मिकता भी,

---

१८. आयो सहज बसन्त खेलैं सब होरी होरा।
उत बुधि दया छिमा बहु ठाढ़ी, इत जिय रतन सजे गुन जोरा ।।१।।
ज्ञान ध्यान डफ ताल बजत हैं, अनहद शब्द होत घनघोरा।
धरम सुराग गुलाल उड़त है, समता रंग दुहू ने घोरा ।।२।।
परसन उत्तर भरि पिचकारी, छोरत दोनों करि-करि जोरा।
इततैं कहै नारि तुम काकी, उततैं कहै कौन को छोरा ।।३।।
आठ काठ अनुभव पावक मैं, जल बुझ शान्त भई सब ओरा।
द्यानत शिव आनन्द चन्द छवि, देखहिं सज्जन नैन चकोरा ।।४।।
—द्यानतराय, द्यानत पद-संग्रह, कलकत्ता, ८६वां पद, पृ० ३६-३७

१९. सरधा गागर में रुचि रूपी, केसर घोरि तुरन्त।
आनन्द नीर उमंग पिचकारी, छोड़ो नीकी मन्त ।।
होरी खेलोंगी, घर आये चिदानन्द कन्त ।।
— भूधरदास, 'होरी खेलोंगी' पद, अध्यात्म पदावली, भारतीय ज्ञानपीठ, काशी, पृष्ठ ७५

२०. काहे न बात सम्भाल कहौ तुम जानत हो यह बात भली है।
गालियां काढ़त हो हमको सुनो तात भली तुम जीभ जली है ।।
पै सब को तुम तुल्य गिनौ तुम जानत ना यह बात रली है।
या भव में पति नेम प्रभू वह लाल विनोदी को नाश बली है ।।
—विनोदीलाल, नेमिब्याह, जैन सिद्धान्त भवन आरा की हस्तलिखित प्रति

किन्तु वैसा आकर्षण नहीं, जैसा कि आनन्दघन में है। जायसी के प्रबन्धकाव्य में अलौकिक की ओर इशारा भले ही हो, किन्तु लौकिक कथानक के कारण उसमें वह एकता नहीं निभ सकी है, वैसी कि आनन्दघन के मुक्तक पदों में पाई जाती है। सुजान वाले घनानन्द के बहुत से पद भगवद्भक्ति में वैसे नहीं खप सके, जैसे कि सुजान के पक्ष में घटे हैं। महात्मा आनन्दघन जैनों के एक पहुंचे हुए साधु थे। उनके पदों में हृदय की तल्लीनता है। उन्होंने एक स्थान पर लिखा है, "सुहागिन के हृदय में निर्गुण ब्रह्म की अनुभूति से ऐसा प्रेम जागा है कि अनादि काल से चली आने वाली अज्ञान की नींद समाप्त हो गई। हृदय के भीतर भक्ति के दीपक ने एक ऐसी सहज ज्योति को प्रकाशित किया है, जिसमें घमण्ड स्वयं दूर हो गया और अनुपम वस्तु प्राप्त हो गई। प्रेम इक ऐसा अचूक तीर है कि जिसके लगता है वह ढेर हो जाता है। वह एक ऐसा वीणा का नाद है, जिसको सुनकर आत्मा रूपी मृग तिनके तक चरना भूल जाता है। प्रभु तो प्रेम से मिलता है, उसकी कहानी कही नहीं जा सकती।[२१]

भक्त के पास भगवान स्वयं आते हैं, भक्त नहीं आता। जब भगवान आते हैं, तो भक्त के आनन्द का वारापार नहीं रहता। आनन्दघन की सुहागिन नारी के नाथ भी स्वयं आये हैं और अपनी 'तिया' को प्रेमपूर्वक स्वीकार किया है। लम्बी प्रतीक्षा के बाद आये नाथ की प्रसन्नता में, पत्नी ने भी विविध भांति के शृंगार किए हैं। उसने प्रेम, प्रतीति, राग और रुचि के रंग में रंगी साड़ी धारण की है, भक्ति की मेहँदी रांची है और भाव का सुखकारी अंजन लगाया है। सहज स्वभाव की चूड़ियां पहनी हैं और शिखा का भारी कंगन धारण किया है। ध्यान रूपी उरबसी गहना वक्षस्थल पर पड़ा है और पिय के गुण की माला को गले में पहना है। सुरत के सिंदूर से मांग को सजाया है और निरति की वेणी को आकर्षण ढंग से गूंथा है। उसके घर में त्रिभुवन की सबसे अधिक प्रकाशमान ज्योति का जन्म हुआ है। वहां से अनहद

---

२१. सुहागण जागी अनुभव प्रीति। सुहा०॥
निन्द अज्ञान अनादि की मिट गई निज रीति॥१॥ सुहा०
घट मन्दिर दीपक कियो, सहज सुज्योति सरूप।
आप पराइ आप ही, ठानत वस्तु अनूप॥ सुहा०॥२॥
कहा दिखावुं और कूं, कहा समझाउं भोर।
तीर अचूक है प्रेम का, लागे सो रहे ठीर॥ सुहा०॥३॥
नाद विलुद्धो प्राण कूं, गिने न तृण मृगलोय।
आनन्दघन प्रभु प्रेम का, अकथ कहानी वोय॥ सुहा०॥४॥
— महात्मा आनन्दघन, आनन्दघन पद संग्रह, अध्यात्म ज्ञान प्रसारक मण्डल, बम्बई, चौथा पद। पृ० ७,

का नाद भी उठने लगा है। अब तो उसे लगातार एकतार में पिय रस का आनन्द उपलब्ध हो रहा है।[22]

ठीक उसी भांति बनारसीदास की नारी के पास भी निरंजनदेव स्वयं प्रकट हुए हैं। वह इधर-उधर भटकती नहीं। उसने अपने हृदय में ध्यान लगाया और निरंजनदेव आ गये। अब वह अपने खंजन जैसे नेत्रों से उसे पुलकायमान होकर देख रही है और प्रसन्नता से भरे गीत गा रही है। उसके पाप और भय दूर भाग गए हैं। परमात्मा जैसे साजन के रहते हुए पाप और भय कैसे रह सकते हैं। उसका साजन साधारण नहीं है, वह कामदेव जैसा सुन्दर और सुधारस सा मधुर है। वह कर्मों का क्षय कर देने से तुरन्त मिल जाता है।[23]

---

२२. आज सुहागन नारी ।। अवधू आज० ।।
मेरे नाथ आप सुध लीनी, कीनी निज अंगचारी ।।अवधू०।।१।।
प्रेम प्रतीत राग रुचि रंगत, पहिरे पहिरे जिनी सारी।
महिंदी भक्ति रंग की रांची, भाव अंजन सुखकारी ।। अवधू० ।।२।।
सहज सुभाव चूरियाँ पेनी, थिरता कंगन भारी।
ध्यान उरवसी उर में राखी, पिय गुन माल अधारी ।। अवधू० ।।३।।
सुख सिंदूर मांग रंग राती, निरते बेनी समारी।
उपजी ज्योति उद्योत घट त्रिभुवन, आरसी केवल कारी ।। अवधू० ।।४।।
उपजी धुनि अजपा की अनहद, जीत नगारे वारी।
झडी सदा आनन्दघन बरात, बिन भोरे इक नारी ।। अवधू० ।।५।।

—देखिए वही, २०वां पद,

२३. म्हारे प्रगटे देव निरंजन ।
अटको कहा कहा सर भटकत कहा कहूं जनरंजन ।। म्हारे० ।।१।।
खंजन दृग दृग नयनन गाऊँ चाऊँ चितवत रंजन।
सजन घट अन्तर परमात्मा सकल दुरित भय रंजन ।। म्हारे०।।२।।
वो ही कामदेव होय काम घट वो ही सुधारस मंजन।
और उपाय न मिले बनारसी सकल करमषय खंजन ।। म्हारे० ।।३।।

—बनारसीदास, बनारसी विलास, जयपुर, १९५४ ई०,
'दो नये पर', पृ० २४० (क)

जैन पद साहित्य का तुलनात्मक अध्ययन

डा० कस्तूरचन्द कासलीवाल
एम०ए०पी०एच-डी०, जयपुर

हिन्दी में काव्य, चरित कथा एवं पुराण साहित्य के साथ-साथ जैन कवियों ने पद साहित्य के विकास में भी पूर्ण योग दिया। पद साहित्य वैराग्य एवं भक्तिमार्ग का उपदेश देने में बहुत सहायक सिद्ध हुआ है। जैन शास्त्र सभाओं में शास्त्र प्रवचन के पश्चात् भजन एवं गीत बोलने की प्रथा सैकड़ों वर्षों से चली आ रही है इस दृष्टि से भी इन कवियों ने पद रचना में अधिक रुचि दिखलाई। यद्यपि यह कहना कठिन है कि सर्वप्रथम किस कवि ने हिन्दी में पद-साहित्य की रचना की थी लेकिन इतना अवश्य है कि १४-१५वीं शताब्दी में पद रचना सामान्य बात हो गई। १५वीं शताब्दी के एक प्रसिद्ध विद्वान् सकलकीर्ति का पद देखिये—

तुम बलिमो नेमजी दोय घटिया।

जादव वंस जब ब्याहन आए, उग्रसेन घी लाडलीया ।। तुम० ।।
राजमती विनती कर जोरे, नेम नाल मानत न हीया ।। तुम० ।।
राजमती सखीयन सु बोले, गिरनार भूधर ध्यान धरीया ।। तुम० ।।
सकलकीर्ति मनु दास चारी, चरणे चित्त लगाय रहीया ।। तुम० ।।

सकलकीर्ति के पश्चात् ब्रह्म जिनदास के पद भी मिलते हैं। आदिनाथ स्तवन के रूप में लिखा हुआ उसका यह पद बहुत सुन्दर एवं परिष्कृत भाषा में निबद्ध है। १६वीं शताब्दी में होने वाले कवियों में घीहल, पूनो, बूचराज आदि कवियों के पद उल्लेखनीय हैं। राजस्थान के जैन शास्त्र भण्डारों की ग्रन्थ-सूची चतुर्थ भाग में लेखक ने १४० से अधिक जैन कवियों के पदों की सूचना दी है।

इधर हिन्दी पदों के प्रमुख पुरुषकर्त्ता महाकवि कबीरदास, मीरां एवं सूरदास सगुणोपासक कवि थे। इन कवियों की भक्ति-धारा से जैन कवि भी अप्रभावित नहीं रह सके और कालान्तर में उनकी रचनाओं पर भी इन भक्त कवियों का अवश्य प्रभाव पड़ा। तुलसीदास के समकालीन जैन कवि बनारसीदास एवं रूपचन्द्र थे। तुलसीदास कट्टर रामोपासक थे और अपनी रामायण के माध्यम से रामकथा का घर-घर प्रचार किया था। इसलिए तुलसी की रामभक्ति से भी जैन कवि अछूते नहीं रह सके। यद्यपि वे आत्मा, परमात्मा एवं वैराग्य के गुण गाते रहे किन्तु भगवद्भक्ति की ओर भी उनका ध्यान गया और तीर्थंकरों की भक्ति में इन्होंने पद लिखने प्रारंभ किये।

१५-१६वीं शताब्दी के पश्चात् जैन कवियों ने सैंकड़ों-हजारों की संख्या में पद लिखे। कितने ही कवियों ने तो २०० से भी अधिक पद लिख कर उस साहित्य की ओर अपनी रुचि का प्रदर्शन किया। इन हिन्दी पद निर्माताओं में भट्टारक रत्नकीर्ति, भट्टारक कुमुदचन्द्र, रूपचन्द्र, बनारसीराम, जगजीवन, जगतराम, द्यानतराम, भूधरराम, बख्तराम, नवलराम, बुधजन, छत्रपति, भागचन्द्र आदि के नाम उल्लेखनीय हैं। यदि इन जैन कवियों के पदों की गणना की जावे तो यह संभवतः दस हजार से कम नहीं होगी लेकिन अभी तक ५-७ कवियों के अतिरिक्त शेष कवियों के बारे में साहित्य जगत् को कोई विशेष जानकारी नहीं है। इन कवियों ने बड़े ही सुन्दर शब्दों में

भक्तिपरक, आध्यात्मिक, दार्शनिक तथा रहस्यवादी पद लिखे हैं जिनको पढ़ने से आत्मिक शान्ति मिलती है एवं जीवन नैतिकता की ओर विकसित होता है। प्रस्तुत लेख में ऐसे ही कुछ कवियों का तुलनात्मक अध्ययन प्रस्तुत किया जा रहा है—

भूधरदास १८वीं शताब्दी के प्रसिद्ध कवि थे। ये आगरे के रहने वाले थे तथा पार्श्व-पुराण नामक काव्य की संवत् १७८४ में रचना की थी। भूधरदास ने माया को कबीरदास के समान ही ठगिनी शब्द से सम्बोधित किया है। कबीर ने माया के विभिन्न रूप दिखलाये हैं जब कि भूधरदास ने उसके स्वरूप का भी परिचय दिया है। माया बिजली की आभा के समान है जो मूर्ख प्राणियों को ललचाती रहती है। उस पर विश्वास करने वाले को सदैव पश्चाताप करना पड़ता है और अन्त में नरक में भी जाना पड़ता है। कबीर ने उसके कमला, भवानी, मूरति एवं जोगिन आदि नाम दिये हैं तो भूधरदास ने "कैते कंप किये तैं कुलटा तो भी मन न अघाया" कह कर सारे रहस्य को समझाने का प्रयास किया है। कबीर ने माया को अकथ कहानी लिख कर छोड़ दिया है लेकिन भूधरदास ने "जो इस ठगिनी को ठग बैठे मैं तिनको शिर नाया" शब्दों में अच्छा अन्त किया है। दोनों ही कवियों के पदों को पाठकों के सामने अवलोकनार्थ किया जा रहा है—

माया महा ठगिनी हम जानी।
निरगुन फांस लिये कर डोले बोले मधुरी बानी।
केसव के कमला ह्वै बैठी, शिव के भवन शिवानी।
पंडा के मूरति ह्वै बैठी, तीरथ में भई पानी।
जोगी के जोगिन ह्वै बैठी, राजा के घर रानी।
काहू के हीरा ह्वै बैठी, काहू के कौड़ी कानी।
भगतन के भगतिन ह्वै बैठी, ब्रह्मा के ब्रह्माणी।
कहत कबीर सुनो हो संतो यह सब अकथ कहानी॥

+ + +

सुनि ठगनी माया, तैं सब जग ठग खाया।
टुक विश्वास किया जिन तेरा, सो मूरख पछताया॥ सुनि०॥
आभा तनक दिखाय बिज्जु ज्यों, मूढ़मती ललचाया।
करि मद अन्ध धर्म हर लीनों, अन्त नरक पहुँचाया॥ सुनि०॥
केते कंथ लिये तैं कुलटा तो भी मन न अघाया।
किसही सौं नहिं प्रीति निभाई, वह तजि और लुभाया॥सुनि०॥
'भूधर' छलत फिरत यह सबकों, भौंदू करि जग पाया।
जो इस ठगनी को ठग बैठे, मैं तिनको शिर नाया॥ सुनि०॥

कबीरदास ने अपने एक अन्य पद में यह प्राणी सारी आयु बातों में ही व्यतीत कर देता है, इस रूपक का सुन्दर चित्रण किया है। जैन कवि छत्र ने भी इसी के समान एक पद लिखा है जिसमें उसने "आयु सब यों ही बीती जाय" के पश्चात्ताप किया है। दोनों कवियों के पदों की प्रथम दो पंक्तियां पढ़िये—

जन्म तेरा बातों ही बीत गया, तूने कबहुँ न कृष्ण कह्यो।
पांच बरस का भोला भाला अब तो बीस भयो।
सुन्दर पचीसी माया कारन देश विदेश गयो।।

—कबीरदास

आयु सब यों ही बीती जाय।

बरस अयन ऋतु मास महूरत, पल छिन समय सुभाय।
बन न सकत जप तप व्रत संजम, पूजन भजन उपाय।।
मिथ्या विषय कषाय काज में, फंसो न निकसो जाय।।

—छत्रदास

यदि कबीरदास प्रभु के भजन करने में आनन्द का अनुभव करते हैं तो जगतराम कवि 'भजन सम नहीं काज दूजों की माला जपते हैं। दोनों ही कवियों ने परमात्मा के भजन की अपूर्व महिमा गाई है। भजन से पापों का नाश होता है। संत समाज का समागम होता है। द्रव्य का भण्डार प्राप्त होता है। दोनों कवियों के पदों का अध्ययन कीजिये—

भजन में होत आनन्द आनन्द।

बरसैं शब्द अमी के बादल, भीजैं मरहम सन्त।
कर अस्नान मगन होय बैठे, चढ़ा शब्द का रंग।
अगर वास जहाँ तत की नदियां, बहत धारा गंग।
तेरा साहिब है तेरे माही पारस परसे अंग।
कहत कबीर सुनो भाई साधो, जपले ओ३म् सोऽहं।।

—कबीरदास

भजन सम नहीं काज दूजो।

धर्म अंग अनेक या मैं, एक ही सिरताज।
करत जाके दुरत पातक, जुरत संत समाज।
भरत पुण्य भण्डार यातैं, मिलत सब सुख साज।।१।।

भक्त को यह इष्ट ऐसो, ज्यों क्षुधित को नाज।
कर्म ईंधन को अगनि सम, भव जलधि को पाज।। २।।

इन्द्र जाकी करत महिमा, कहो तो कैसी लाज।
जगतराम प्रसाद यातैं, होत अविचल राज।। ३।।

दौलतराम ने भगवान महावीर से भवपीर हरने तथा कर्म बेड़ी को काटने की प्रार्थना की है तो कबीरदास ने भगवान से निवेदन किया है कि उनके बिना भक्त की कौन पीर हर सकता है।

हमारी पीर हरो भवपीर (दौलतराम)
आप बिन कौन सुने प्रभु मोरी (कबीरदास)

इसी तरह यदि कबीरदास ने "साधो ! मूलन बेटा जायो, गुरू परताप साधु की संगत खोज कुटुम्ब सब खायो" पद में बालक का नाम ज्ञान रखा है तो बनारसीदास ने बालक का नाम भौंदू रखकर नाम रखने वाले पंडित को ही बालक द्वारा खा लेने की अच्छी कल्पना की है। इस दृष्टि से बनारसीदास की कल्पना निस्संदेह उच्च स्तर की है। दोनों पदों का अन्तिम भाग देखिए—

कबीरदास—ज्ञान नाम धरयो बालक का शोभा वरणि न जाइ।
कहै कबीर सुनो भाई साधो, घर घर रहा समाइ।।

बनारसीदास—नाम धरयो बालक को भौंदू रूप बरन कछु नाहीं।
नाम धरंते पांडे खाये कहत बनारसी भाई।।

राजस्थान की लाड़ली मीरा ने कृष्णभक्ति की देश में अनुपम धारा बहाई। 'मेरे तो गिरधर गुपाल दूसरो न कोई' का आलाप घर घर होने लगा। साधारण जनता कृष्णभक्ति में दीवानी हो उठी और मीरा द्वारा रचित पदों को गाकर सारे वायुमंडल को भक्तिविभोर कर दिया। इधर जैन कवि भी उस प्रवाह से अछूते नहीं रह सके। कविवर बनारसीदास ने "जगत में सौ देवन को देव, जासु वरन इन्द्रादिक परसे होय मुकति स्वयमेव" का आलाप लगाया। इसी तरह एक ओर मीरा ने प्रभु से होली खेलने के लिए निम्न शब्द लिखे :—

(१) होली पिया बिन लागे खारी सुनो री सखी मेरी प्यारी।
(२) होरी खेलत हैं गिरधारी।

तो दूसरी ओर जैन कवि आत्मा से ही खेलने को आगे बढ़े और उन्होंने निम्न शब्दों में अपने भावों को व्यक्त किया—

होरी खेलूँगी घर आए चिदानन्द।
शिशर मिथ्यात गई अब, आइ काल की लब्धि बसंत।

१७वीं शताब्दी में होने वाले महाकवि तुलसीदास ने 'राम जपु राम जपु राम जपु बाबरे', 'घोर नीर निधि नाम निज लख रे' का संदेश फैलाया तो कविवर रूपचन्द ने जिनेन्द्र का नाम जपने के लिए प्रोत्साहित किया किन्तु अपने परिणामों को पवित्र करने के लिए मन से कांटे को निकाल कर उनका स्मरण करने के लिए भी कहा। कविवर द्यानतराय ने "रे मन भज भज दीनदयाल, जाके नाम लेत इक खिन में कटै कोटि अघ जाल" के रूप में भगवद्भक्ति करने के लिए जगत् को सलाह दी।

इस प्रकार जैन कवियों ने अध्यात्म एवं भक्तिपरक पद लिख कर हिन्दी पद साहित्य के विकास में महत्वपूर्ण योग दिया जिसका विस्तृत अध्ययन होना आवश्यक है।

× × × ×

संयम व सदाचार

श्री दयाचन्द जैन शास्त्री
उज्जैन

सभी प्राणियों की अपेक्षा मनुष्य में बुद्धि बल अधिक होता है इसलिए उसमें अपना हिताहित विचार करने की शक्ति भी अधिक होती है। विचारशक्ति का यह दैवी लाभ पाकर

भी मनुष्य यदि उसका उपयोग स्वपर हित-साधन में न करे तो उसे अपना दुर्भाग्य ही समझना चाहिए। आहार, निद्रा, भय और मैथुन ये चार संज्ञाएं मनुष्य व पशु में समान रूप से पाई जाती हैं। लेकिन मनुष्य पशु की तरह इन्हीं की पूर्ति में अपना बहुमूल्य जीवन नष्ट कर दे तो उसे मनुष्य जीवन पाने से क्या लाभ ?

मनुष्य सद्भाग्य से प्राप्त इस दैवी सम्पदा का उपभोग जीवन की शुभ और अशुभ दोनों ही दिशाओं में कर सकता है। शुभ दिशा में किया गया उपयोग धर्म एवं सदाचार तथा अशुभ दिशा में किया गया उपयोग अधर्म या पाप कहा जाता है। बुद्धि के शुभ दिशा में किये गये उपयोग से वह न केवल अपना अपितु प्राणिमात्र का भी हित कर सकता है और अशुभ दिशा में किए गए उपयोग से स्वपर विनाश भी। शस्त्र व शास्त्र रचना उस एक ही बुद्धि के परिणाम हैं, पर एक से मानवता का संहार व दूसरे से उसका कल्याण होता है। राम-रावण, कृष्ण-कंस, कमठ-मरुभूमि आदि के पौराणिक उदाहरण उसी सद्-असद् बुद्धि के ही तो प्रतिफल हैं। आज भी इस प्रकार के उदाहरणों की कमी नहीं है। परन्तु इनमें से हमें अपना जीवन कैसा बनाना है यह हमारे सोचने की बात है।

आज के मानव समाज पर जब हम दृष्टिपात करते हैं तो हमें बड़ी निराशा होती है। आज के मानव ने अपने जीवन का प्रमुख ध्येय केवल धन संचय और विषय सुख-साधनों की पूर्ति ही मान रक्खा है। अगर वह धर्माचरण करता भी है तो इन्हीं की उपलब्धि के लिए। अहर्निश उसका एक ही लक्ष्य रहता है कि उचित-अनुचित तरीकों से धन कमाना और उससे अपनी आसुरी वासनाओं की प्यास बुझाना। परिग्रहानन्द और विषयानन्द उसके जीवन के ये ही दो महाव्रत हैं।

आज का मानव अपनी आत्मिक शक्तियों के विकास का मार्ग अवरुद्ध करके केवल भौतिक उपलब्धियों के तृष्णा-ज्वार में फँसता जा रहा है। वह कोल्हू के बैल की तरह अपने ज्ञान-चक्षुओं पर वासनाओं की पट्टी बाँधे निरन्तर विषयचक्र के आस-पास अर्थ की धुरी लिए घूमा करता है तथा ज्यों-त्यों जिन्दगी के दिन पूरे कर काल-कवलित हो जाता है। विषय-सामग्रियों की मोहकता में वह जीवन के महान कर्त्तव्यों से इतना बेसुध रहता है कि मेरे जीवन का अन्त में क्या होगा इतनी विवेक-बुद्धि उसमें नहीं रह जाती।

हमारे देश में स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात् जन-जीवन को सुख-सुविधा सम्पन्न बनाने के लिए विभिन्न योजनाओं द्वारा भौतिक उपलब्धियों के तो नाना प्रयत्न किये गए और किये जा रहे हैं पर जन-जीवन के चरित्र-बल को समुन्नत करने के लिए कोई भी प्रभावशाली प्रयत्न नहीं किया गया। फलतः समूचे देश का चारित्रिक-स्तर दिनोंदिन गिरता गया और आज स्थिति काबू के बाहर अनुभव की जाने लगी है। देश में बल-पौरुष, सचाई और सदाचार का दिनोंदिन ह्रास होता जा रहा है और उसके स्थान पर अनाचार, असंयम और विलासिता उत्तरोत्तर बढ़ती जा रही है। आज देश के समग्र जीवन में सेवा के नाम पर स्वार्थसिद्धि, कर्त्तव्य के नाम पर पथ-भ्रष्टता, शिक्षा के नाम पर उन्मार्गगामिता, अनुशासन के नाम पर स्वेच्छाचारिता, श्रम के नाम पर कामचोरी तथा धर्म जैसी पवित्र वस्तु के नाम पर आत्मश्लाघा और वंचकता जैसी पाप-

वृत्तियाँ बढ़ती जा रही हैं मानो मानवता और सदाचार के नाम पर देश का दिवाला ही निकल गया हो।

आश्चर्य की बात तो यह है कि जिस देश में अपनी आध्यात्मिक ज्ञानगरिमा के प्रकाश में जीवन के उच्चतम आदर्शों पर चलने की हमेशा से विश्व को प्रेरणा दी हो, जिसने तपःपूत आत्माओं की तपोभूमि होने के कारण विभिन्न धर्मों की तीर्थस्थली होने के गौरव प्राप्त किया हो, जो अपने आचार-विचार की श्रेष्ठता के कारण "आर्यभूमि" के नाम से विश्व में विश्रुत हो वही देश आज अपनी चारित्रहीनता एवं अनैतिकता के कारण दिनोंदिन पतनावस्था की ओर अग्रसर होता जा रहा है। यद्यपि देश के सभी शुभचिंतक व्यक्ति देश की इस दुरावस्था से चिंतित हैं पर मर्ज का इलाज किसी की समझ में नहीं आ रहा है।

यह ठीक है कि लगभग अठारह वर्षों से विदेशी सत्ता से हमने मुक्ति पा ली है तथापि पाश्चात्य संस्कृति और सभ्यता के गुलाम हम अब भी हैं। हमें पाश्चात्य संस्कृति से इतना व्यामोह हो गया है कि हर बात में हम उसकी ही नकल करने के आदी बन गये हैं। हमारा रहन-सहन, खानपान और सभी तौर-तरीके प्रायः पाश्चात्य संस्कृति में ढलते जा रहे हैं। परन्तु आश्चर्य यह है कि वहाँ की अच्छाइयों की तरफ हमारा ध्यान नहीं जाता है।

पाश्चात्य भारतीय संस्कृति में मौलिक अन्तर यही है कि प्रथम भोगप्रधान होने से मनुष्य को विलासी व इन्द्रियों का दास बनाती है और दूसरी त्यागप्रधान होने के कारण उसको संयमशील और सदाचारी बनाती है। अतः आज आवश्यकता इस बात की है कि मनुष्य के विचारों में पवित्रता का संचार करने के लिए उनके जीवन को आध्यात्मिकता की ओर मोड़ने के सफल प्रयत्न किये जायें। शिक्षाकेन्द्रों में अन्य विषयों की शिक्षा के साथ आध्यात्मिक विषयों की शिक्षा का सुप्रबन्ध हो जिससे देश के होनहार बालकों और तरुणों का मानसिक धरातल ऊँचा उठे और वे जीवन की शुभ दिशा की ओर झाँकने के आदी बनें। जैसे जड़ की बीमारी पत्तों के इलाज से दूर नहीं हो सकती वैसे ही मनुष्य की आत्मिक अथवा वैचारिक कमजोरियों को कानून या ऊपरी व्यवस्थाओं के बल पर दूर नहीं किया जा सकता।

अतः देश का चारित्रिक-स्तर ऊँचा उठाना है अथवा उसके जीवन में सदाचार और संयम की प्रतिष्ठा करना है तो देश के जीवन में आध्यात्मिक विचारधारा को प्रवाहित करने वाली साधन सामग्रियों को सुसंगठित एवं प्रभावशील बनाना चाहिए। आचरण की शुद्धता और विचारों की पवित्रता के बिना मात्र भौतिक उपलब्धियाँ मनुष्य के जीवन को शांति और आनन्द प्रदान नहीं कर सकतीं और न मनुष्य उनका उचित रूप में उपभोग ही कर सकता है। उसके स्वयं के श्रेष्ठ विचार ही उसके जीवन को ऊर्ध्वगामी और सुसंस्कृत बना सकते हैं।

× × × ×

जैन वीर बंकरस

विद्याभूषण, सिद्धांताचार्य श्री पं० के० भुजबली शास्त्री,

सं० 'गुरुदेव' मूडबिद्री

पाँच-छह साल तक मान्यखेट के कारागृह में कराहने वाले गंग शिवमार पर द्रवीभूत हो, गोविन्द प्रभूतवर्ष ने ही उसे फिर तलवनपुर के सिंहासन पर बैठाया और अपने ही हाथों से उस

गंग शिवमार के मस्तक पर मुकुट रखा। पर बाद चक्रवर्ती के सहोदर बंकरस के साथ मिलकर कृतघ्न बन, वही गंग शिवमार ने फिर राष्ट्रकूटों पर दूसरी बार तलवार उठाई। पर उस लड़ाई में भी वह बुरी तरह पराजित हुआ। तब भी दयालु गोविन्द चक्रवर्ती के द्वारा उसका राज्य पुनः उसीको दिया गया था। मानो उस उपकार का प्रत्युपकार स्वरूप चक्रवर्ती जब उत्तर भारत के दिग्विजय में व्यस्त रहे, तब नीतिमार्ग (शिवमार के अनुज का पोता) ने इधर दक्षिण में एकाएक राष्ट्रकूटों पर हमला कर दिया।

इस खबर को पाते ही बनवासी के महामण्डलेश्वर जैन वीर बंकरस छोड़े गये। कृष्ण सर्प की तरह प्रक्षुब्ध हो, तुरन्त ही समर के लिये तैयार हुए। गंग की कृतघ्नता को स्मरण कर उनका हृदय क्रोध से एकदम पाषाण बन गया। या यों कहिए कि बंकरसउस समय क्रोध की ज्वालामुखी ही बन गये। परिणामस्वरूप कोलतूर से प्रेषित बंकरस की खबर राष्ट्रकूट पहुँचने के पूर्व ही, उनकी सबल सेना रास्ते में छेड़ने वाले वीरों को कतल करती हुई कैंदाल किले पर साहसपूर्वक हमला किया। यह किला गंग नरेशों के प्रधान सेना-केन्द्रों में से एक था। कैंदाल का यह किला उस समय कर्णाटक में बड़ा दुर्भेद्य समझा जाता था।

लौह कवच तुल्य वह दुर्ग, उसके भीतर के वीर सैनिक और अपार शस्त्रास्त्र आदि सभी कराल काल की तरह हमला करने वाले बंकरस के सामने टिक नहीं सके। शत्रु-सेना के आने की खबर किले के अन्दर पहुंचने के पूर्व ही राजसमूह ने प्रधान द्वार को चूर-चूर किया और पैदल सिपाहियों ने अन्यान्य साधनों द्वारा किले की दीवाल पर चढ़कर, रक्षक सिपाहियों को कतल कर डाला। रात को किले के अन्दर लोगों के सोने के उपरान्त हमला शुरू हुआ। वह हमला सूर्योदय के पहले ही समाप्त होकर किले के ऊपर राष्ट्रकूटों का गरुड़ध्वज फड़फड़ाने लगा।

दुर्भेद्य उस कैंदाल किले की विजय से बंकरस की सेना का उत्साह दुगुना हुआ और वैरियों के हृदय में भय ने स्थान पा लिया। बाद बंकरस की अदम्य सेना भयंकर दावाग्नि की तरह सामने की सभी चीजों को जलाती हुई सीधा गंग राजधानी तलवनपुर की ओर बढ़ी। भरी हुई वर्षाकालीन कावेरी नदी भी गंग राजधानी कीरक्षा नहीं कर सकी। अचानक हमला करने वाली, विजय में मत्त बंकरस की सेना के सम्मुख तलवनपुर सविवश शरणागत हुआ। राष्ट्रकूट के ऊपर अन्यायपूर्वक तलवार उठाने वाले नीतिमार्ग का दर्प चूर-चूर हुआ। पर हां, अल्प सेना के कारण अरक्षित राजधानी को ले लेने मात्र से वीर बंकरस को समर में अखण्ड विजय नहीं मिल सकती थी।

कोलापुर के पास ठहरी हुई गंगसेना को जीते बिना बंकरस अपनी पूर्व विजय से त्रप्त हो कर चुपचाप बैठ नहीं सकते थे। पहले श्रान्त सेना को विश्रान्ति प्रदान कर बाद कोवला-पुर की ओर प्रायण करने का विचार कर बंकरस ने तलवनपुर की विजय का समाचार चक्रवर्ती को भेजा। परन्तु वह समाचार जब मान्यखेट में पहुंचा तब चक्रवर्ती विजय के आनन्द को अनुभव करने की परिस्थिति में नहीं रहे। उधर नीतिमार्ग की सेना राजा रमडुवु में जब राष्ट्रकूट सेना पर हमला कर रही थी, तब इधर मंगि की कूटनीति से त्रिपुरि को देखने के व्याज से शंकरगण के साथ गया हुआ राजकुमार, चेटि सेना के बल पर अपने को चक्रवर्ती घोषित कर, राष्ट्रकूट

राज्य पर ईशान्य दिशा से हमला करने वाला था। इस प्रकार त्रिपुरि में गये हुए राजकुमार कृष्ण एवं शंकरगण को अपनी कूटनीति से सफल होने में बिलकुल सन्देह नहीं रहा।

इसलिए भविष्य में चक्रवर्ती होने वाले कृष्ण को विशेष काबू में लाने के लक्ष्य से, शंकरगण ने अपने पिता कक्कल को समझाकर, कृष्ण का विवाह, अपनी बहन के साथ किया और सेना के साथ किरणपुर पहुँचकर, हमला शुरू करने के लिए मंगि के समाचार की प्रतीक्षा करने लगा। राजा रमडुवु में राष्ट्रकूट सेना की पराजय के समाचार को सुनते ही शंकरगण ने कृष्ण को ही राष्ट्रकूट-चक्रवर्ती घोषित कर चेदि राज्य की सीमा को लांघकर राष्ट्रकूट राज्य पर हमला किया।

यह समाचार भयंकर आँधी की तरह बहकर आया और उसने चक्रवर्ती को किंकर्तव्य-विमूढ़ बना दिया। उस असीमित आघात से उनको बड़ा ही कष्ट पहुंचा। भूकम्प के कारण हिन्डोले की तरह घूमने वाली धरती पर वे खड़े-खड़े ही डोलने लगे। चक्रवर्ती अपने ही नेत्र एवं कानों पर विश्वास नहीं करते हुए महल में इधर से उधर उधर से इधर पागल की तरह चक्कर काटने लगे। उस समय खाना, पीना आदि सभी चीजों को छोड़कर वे विद्रोह को निर्मूल करने के लिए सर्वथा कटिबद्ध हुए। पुत्र के विरुद्ध लड़ाई में जाने के लिए उन्होंने स्वयं सेनाधिपत्य को स्वीकार किया एवं विद्रोही राजकुमार को पकड़कर लानेवाले को एक लाख सिक्के बहुमान में देने की घोषणा की। इस भयंकर घोषणा को सुनकर सारा नगर बिजली के आघात की तरह एकाएक स्तब्ध हुआ।

"इस अवसर पर शीघ्रातिशीघ्र आइए, चक्रवर्ती विद्रोही पुत्र को बिना देखे अन्न-जल स्वीकार न करने की प्रतिज्ञा कर चुके हैं। वे सेना को एकत्रित कर रहे हैं और उस सेना का नायक बनने के लिए स्वयं कटिबद्ध हैं। राजधानी में भी भेदनीति की आग सर्वत्र जोरों से सुलग रही है, इस समय चक्रवर्ती के पास आप जैसे आप्त और तपनिष्ठ व्यक्तियों का रहना परमावश्यक ही नहीं, अनिवार्य है। शीघ्र चले आइए।"

एक पत्रवाहक ने गुण भद्राचार्य के इस आशय वाले एक पत्र को बंकरस के हाथ में दिया। इस पत्र को पढ़कर थोड़ी देर बंकरस किंकर्तव्यमूढ हो बैठ गये। पर उत्तर क्षण में ही गंगबाडि के समर को आगे बढ़ाने का भार अपने एक विश्वस्त सेनानायक को सौंपकर शीघ्राति-शीघ्र चलने वाले एक घोड़े पर सवार हो, अंगरक्षकों के साथ बिजली की तरह बंकरस मान्यखेट की ओर चल पड़े। अकस्मात् आये हुए बंकरस को देखकर चक्रवर्ती एकदम चकित हुए। सिर्फ चार दिन की दारुण व्यथा से बिलकुल सूखे हुए निस्तेज चक्रवर्ती को देखकर भयंकर रक्तवृष्टि से भी भय न खाने वाले बंकरस का वीर हृदय भी अग्निस्पर्शित नवनीत की तरह एकदम पिघल गया और आँखों में आँसू भर आए। तब चक्रवर्ती ने कहा कि "कूटनीति की आंधी से व्याप्त इस राज-धानी को किसके हाथ में सौंपकर जाएँ; इस बात की बड़ी चिंता में थे। आपके आने से हम निर्भय हो गये। अब निश्चित हो, समरांगण की ओर जा सकते हैं।"

इसका जवाब बंकरस ने यों दिया: "प्रभु के हृदय को मैं पहचानता हूँ। प्रभु! राज-कुमार के व्यवहार से आपके हृदय में जो चोट पहुँची है उसे मैं जान रहा हूँ। आप मेरी नम्र

प्रार्थना को स्वीकार करें। आपसे मेरा निवेदन है कि इस विद्रोह को निर्मूल करने का भार आप मुझे सौंप दें। एक सप्ताह के अन्दर इस विद्रोह को निर्मूल कर मैं राजकुमार को आपके समक्ष लाकर खड़ा कर दूंगा। अगर यह काम मुझसे नहीं हो सका तो मैं अवश्य अग्निप्रवेश करूंगा। प्रभु ! यह मेरी अचल प्रतिज्ञा है इतना करके ही मैं अपना ऋण चुकाना चाहता हूं। मेरी दूसरी मांग है कि इस विद्रोह के शान्त होने पर्यन्त आपने अन्न-जल का जो परित्याग किया है उस भीषण प्रतिज्ञा को आप तोड़ दें। यदि मेरे सामने आप आहार लेंगे तो मेरे शरीर में वज्र का बल आ जायगा। मेरी बात पर आपको विश्वास नहीं हो तो आप अपनी प्रतिज्ञा को जारी रखें। किंतु जब तक आप आहार नहीं लेंगे तब तक मुझे भी आहार त्याग के लिए आज्ञा दे दें।" बंकरस के प्रेम से आहार कर चक्रवर्ती उनके वचनानुसार चलने को तैयार हुए।

बंकरस अपनी प्रतिज्ञानुसार विद्रोह को निर्मूल कर, मंगि और शंकरगण दोनों की पश्चात्तापपूर्वक मृत्यु के बाद राजकुमार कृष्ण के साथ मान्यखेट को लौट आये। प्रतिज्ञानुसार राजकुमार को लाकर चक्रवर्ती के सामने उपस्थित करने पर, चक्रवर्ती विद्रोही पुत्र को मरणदंड तुल्य भयंकर सजा देंगे ऐसी आशा बंकरस को नहीं रही। कृष्ण की पत्नी चेदि राजकुमारी की प्रार्थना पर भी चक्रवर्ती जब ध्यान न देकर बार-बार राजकुमार को मृत्युदण्ड की सजा ही दुहराते गये, तब बंकरस ने अपने आसन से उठकर द्रवित हो यों कहा, "प्रभु ! राजकुमार को क्षमा प्रदान कीजिये। उनके बदले मैं अपने प्राणों को देने को तैयार हूँ।"

इस पर चक्रवर्ती ने कहा कि "बंकरस भयंकर अपराधी के लिए अपने प्राणों को देने के लिए कह रहे हैं। उनकी उदारता और दया अभिनंदनीय है। पर एक के अपराध के लिए दूसरे को सजा देकर तृप्ति पाने का अधिकार हमें नहीं है।" तब आचार्य गुणभद्रजी ने यों कहा—"चक्रवर्ती के द्वारा न्यायपीठ से दिया हुआ निर्णय धर्मसम्मत है। उस निर्णय को हम भी समर्थन करते हैं। परन्तु प्रजायें राजकुमार को क्षमा प्रदान करने के लिए निवेदन करें तो, प्रजाओं की आज्ञा को मानना चक्रवर्ती का धर्म है। क्योंकि रक्षा-शिक्षा दोनों में प्रजाओं का अधिकार ही सर्वोपरि है। चक्रवर्ती प्रजाओं की आकांक्षाओं को कार्य रूप में लाने का साधन मात्र है।" प्रजाओं ने भी गुणभद्रजी के बहुमूल्य अभिप्राय का समर्थन किया। बस, फिर क्या, चक्रवर्ती ने भी राजकुमार को क्षमा कर दिया !

जैन वाङ्मय के अमर रत्न आचार्य कुन्दकुन्द और उनका जीवन-दर्शन

डा० प्रद्युम्नकुमार एम.ए. पी.एच-डी.

ज्ञानपुर, बाराणसी

ईसा के एक शताब्दी पूर्व भारत के दक्षिणी अंचल से एक ऐसी महान् विभूति का उदय हुआ जिसको यद्यपि जैन वाङ्मय के भीमाकाश का एक अत्यन्त जाज्वल्यमान नक्षत्र कहा

जाता है, परन्तु वस्तुतः जो जैनों के लिए नहीं, जैनेतर विचारकों के लिए भी प्रेरणा का स्रोत रहा है। उस विभूति को हम कुन्दकुन्द के नाम से ही अधिक जानते हैं। कुन्दकुन्द की विचार-शैली, तत्वज्ञान की शोध-प्रणाली और अहिंसा धर्म की आचारपद्धति सब कुछ ही बड़ी विलक्षण, मौलिक और अनूठी सिद्ध हुई। जिस तत्वज्ञान और तर्क-प्रणाली की उद्‌घोषणा तीसरी शताब्दि में नागार्जुन ने और नवीं शताब्दि में आद्य शंकराचार्य ने की, कुन्दकुन्द ने वही तत्वज्ञान और तर्क-प्रणाली ईसा की एक शताब्दि पूर्व भारत के विचार-प्रागंण में उद्‌घोषित की। परन्तु खेद है कि साम्प्रदायिक द्वेष की भीषण आंधी ने भ्रान्ति का कूड़ा इतनी अधिक मात्रा में लाकर इकट्ठा किया कि हम कुन्दकुन्द की दमदमाती वरदायिनी प्रतिभा का सही मूल्यांकन न कर सके। प्रस्तुत निबन्ध में कुन्दकुन्द की मौलिकता का एक विहंगम दर्शन शायद हमारी आज की वैज्ञानिक एवं निष्पक्ष दृष्टि को उक्त हीरा अपने वास्तविक महत्वालोक में पहचाने जाने में मदद दे सके।

तत्वज्ञान : सत्तावाद

सत्य की खोज मे कुन्दकुन्द परावलम्बी न होकर स्वावलम्बी बने। उन्होंने सत्यासत्य के निर्णय में अपने आत्मज्ञान को ही मुख्य कसौटी के रूप में स्वीकार किया। अतः जो कुछ उन्होंने प्रत्यक्ष देखा उसे हमारी विचार-प्रक्रिया की सर्व-स्वीकृत प्रणाली के द्वारा प्रस्तुत किया। स्पष्ट ही कहा :—

उवओग विसुद्धो जो दिगदावरणंतराय मोहरओ।
भूदो सयमेवादा जादि पारं णेय भूदाणं॥
(प्रव० सार—१५)

अर्थात् : जिसका उपयोग विशुद्ध है ऐसी आत्मा ज्ञानावरण, दर्शनावरण, अन्तराय और मोह रूप रज से रहित स्वमेव होती हुई ज्ञेयभूत पदार्थों के पार को प्राप्त होती है।

अतः शुद्ध आत्माज्ञान के माध्यम से ज्ञेयभूत पदार्थ यथारूप जाने जाते हैं। 'जानना' क्रिया सम्पूर्ण तत्वज्ञान का प्रस्थान-बिन्दु है। शुद्धज्ञान चूंकि परत्व की कामनाबुद्धि से रहित होता है, अतः उसका जानना केवल 'विचारना' होता है। विचारना निर्णय की प्रक्रिया कहलाती है जिसमें बुद्धि-व्यापार का शुद्ध रूप निहित है। निर्णय की व्यक्त इकाई वाक्य (Proposition) है, जिसमें दो पदों की पारस्परिकता एक क्रिया से संयुक्त होती है। अतः वाक्य की कोई भी क्रिया उभयमुखी होती है, जिसके दोनों छोरों पर दो वस्तु-सत्य मौजूद होते हैं। 'जानना' भी एक क्रिया है, जिससे प्रस्थान करने पर हम तुरन्त ज्ञाता और ज्ञेय दो सत्ताओं के मध्य आ जाते हैं। इस प्रकार ज्ञान-व्यापार के परिणमन स्वरूप हमें जो कुछ उपलब्ध होता है वह सब कुछ सत्ता की ही विभिन्न इकाइयाँ हैं। कुन्दकुन्द कहते हैं :—

सत्ता सव्व पयत्था सविस्स रूवा अणंत पज्जाया।
(पंचा० सार—८)

अर्थात् : सत्ता अनंत पर्याययुक्त, सविश्वरूप, सर्वपदार्थ स्थित है। अतः जो कुछ भी हम जानते अथवा देखते हैं वह सत्तायुक्त अवश्य है। सत्ता के बिना 'जानना' अथवा 'देखना' हो

ही नहीं सकता। तार्किक रूप से चाहें सत्ता 'जानने' का परिणाम भले ही हो, परन्तु तत्व-रूप से 'जानना' सत्ता पर आश्रित है। तत्वदृष्टि से सत्ता ही मूल है।

इस प्रकार जब सत्ता की तात्विकता स्थापित हुई, तो प्रश्न उठा, कि सत्ता को हम कितना जान सकते हैं? इस प्रश्न का उत्तर यही है कि जो हम जानते अथवा देखते हैं वह सब सत्ता ही है। अपने 'जानने', 'देखने' से परे हम सत्ता को प्रमाणित नहीं कर सकते, क्योंकि एकांत-रूप से यह कहना, कि हम सत्ता का कुछ अंश नहीं जानते, यह सिद्ध करता है कि हम उस अनजानी सत्ता के प्रति पूर्णतः अज्ञान नहीं हैं। कुन्दकुन्द इस अर्द्ध-नास्तिकता को स्थान नहीं देते। वह यह मानते हैं कि सत्ता प्रमेय है। अतः जानने और देखने की जितनी भी पर्यायें सम्भव हो सकती हैं वे सब सत्ता की ही पर्यायें हैं। सत्ता की उत्पत्ति 'जानने' से नहीं होती। उसी तरह ज्ञान भी ज्ञेयसत्ता की उत्पत्ति नहीं है। तत्वतः ज्ञाता और ज्ञेय स्व-आधीन हैं। उनकी सत्ताएँ निरपेक्ष हैं। 'जानना' और 'देखना' सत्ताओं का पारस्परिक क्रिया-व्यापार है। यह क्रिया-कारित्व ज्ञाता से ज्ञेय की ओर ही प्रवाहित होता है। अतः 'जानना' और 'देखना' ज्ञाता की ही गुण-पर्यायें हैं, जो कि तत्वतः ज्ञाता ही हैं, इतर और कुछ नहीं। ज्ञान और दर्शन ज्ञाता-रूप ही हैं। ज्ञेय भी स्वरूप है। दोनों का व्यवहारतः तादात्म्य है। तत्वतः दोनों स्वाधीन हैं।

दो दृष्टियां

तत्वतः ज्ञाता और ज्ञेय की दोनों इकाइयाँ स्वद्रव्याधीन हैं। उनका परिणमन अपनी निज की चीज है। परिणमन की प्रत्येक पर्याय में द्रव्य वही है। बल्कि यूं कहिए, वह द्रव्य ही विभिन्न पर्याय-रूप है। अतः प्रत्येक पर्याय वह द्रव्य ही है। ज्ञान और दर्शन पर्यायें हैं। अस्तु वे भी द्रव्य के अतिरिक्त और कुछ नहीं ठहरतीं। द्रव्य और पर्याय तत्वतः एक ही हैं। उनमें सत्ता उभयनिष्ठ है। द्रव्य और पर्याय सत्ता के ही दो पहलू हैं। यही दोनों पहलू हमारे लिए दो दृष्टियाँ प्रस्तुत करते हैं—एक द्रव्य-दृष्टि और दूसरी पर्याय-दृष्टि। पर्याय, जैसा कि अभी कहा, सत्ता का एक व्यावहारिक पहलू है, क्योंकि उसका निर्धारण सह-सत्ताओं की पारस्परिकता से होता है। इस पारस्परिकता के चार तत्वों—द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव की सापेक्षता में पर्याय का स्वरूप निश्चित होता है। अतः पर्यायदृष्टि व्यावहारिक और सापेक्ष है; जबकि द्रव्य दृष्टि पारमार्थिक और निरपेक्ष है, क्योंकि वह पर्यायगत व्यावहारिकता के तात्विक आधार का सृजन करती है। इन दो दृष्टियों के द्वारा प्रत्येक सत्ता के लौकिक और पारलौकिक दोनों पहलुओं का प्रकाशन हो जाता है। कुन्दकुन्द इन्हीं दोनों दृष्टियों के माध्यम से पग-पग पर वस्तु-सत्ता के व्यावहारिक और पारमार्थिक पहलुओं का विवेचन बड़ी सफलतापूर्वक करते जाते हैं।

कुन्दकुन्द की विवेचन प्रणाली का महात्म्य इस बात में है कि वह इन विरोधी स्वरूप वाली दृष्टियों को ग्रहण करते हुए भी सत्ता की प्रकाशन-शैली में किसी प्रकार का विरोध नहीं आने देते। विरोधव्यवहार दृष्टि या नय के विभिन्न विकल्पों में दृष्टिगत होता है। परन्तु कुन्दकुन्द उन व्यावहारिक विकल्पों का समापन सत्ता के पारमार्थिक पहलू में कर देते हैं। अतः भेद अभेद भी पर्याय-मात्र रह जाता है। सत्ता के इस स्वगत-विरोध के निराकरण के बाद कुन्दकुन्द उसके बाह्य विरोध को लेते हैं। एक सत्ता का दूसरी सत्ताओं के वैपरीत्य का निराकरण उनकी

उत्तरवर्ती आसन्न सत्ता में होता है। इस प्रकार आसन्न सत्ताओं की शृंखला का सृजन करते-करते हम अंततः महासत्ता की परिकल्पना पर पहुँचते हैं, जिसमें सम्पूर्ण अवांतर सत्ताओं का परिहार हो जाता है। महासत्ता की यह कल्पना प्लेटो के Idea of Good और हीगेल के Absolute के काफी सदृश है। इस महासत्ता के भी दो पहलू बनते हैं। पारमार्थिक पहलू वेदान्त के अद्वैत ब्रह्म का पोषक है और उसका व्यावहारिक पहलू बौद्धदर्शन के क्षणवाद तथा बहुत्ववाद का पोषक। तत्वतः महासत्ता एक स्वाधीन ठोस इकाई है।

उपादान और निमित्त

अब प्रश्न उठता है सत्ता के क्रियाकारित्व का। किसी भी पर्याय का उत्पाद अथवा विनाश क्यों और कैसे होता है? उदाहरणतः एक घट पर्याय का उदय हुआ। इस उदय का हेतु क्या है? कुन्दकुन्द इस हेतु के निर्णय में भी पूर्व वर्णित दो दृष्टियों का ही प्रसंग उठाते हैं। तत्वतः अथवा परमार्थतः उक्त पर्याय का हेतु तत्संबंधी द्रव्य अथवा मृत्तिका ही है जो कि उक्त वस्तुसत्य के सम्पूर्णत्व का पोषक है। प्रत्येक सत्ता स्वतः परिणमनशील है। अतः परिणमन का मूलाधार वह सत्ता स्वयं ही है। यह उसका अंतरंग हेतु है, जिसे उपादान कारण भी कह सकते हैं। इतना होते हुए भी यह न भूल जाना चाहिए कि उपादान एकान्तिक सत्य नहीं है। सत्ता की एक सारिणी है जो महासत्ता से अवर सत्ताओं के क्रम में उतरती चली आती है। इस प्रकार प्रत्येक अवर सत्ता अपनी विषयभूत सत्ताओं का वर्ग बनती है। महासत्ता जिसका सर्वोच्च वर्ग है। निम्नतम सत्ता व्यक्तिगत इकाइयाँ हैं जो किसी का वर्ग नहीं होतीं और जो कि एक यथार्थवादी विचारक की मूल परिकल्पना का आधार हैं। प्रत्येक इकाई परिणमनशील है। प्रत्येक सत्तात्मक वर्ग के अंतर्गत आने वाली इकाइयाँ उस वर्ग की उपादान हैं। उसके सहसत्तात्मक वर्ग उसके निमित्त हैं। दोनों ही निमित्तात्मक सह-सत्ताएँ यद्यपि किसी उच्चतर सत्ता की इकाइयां हैं और उसका उपादान कारण भी, परन्तु अपनी पारस्परिक उपेक्षाओं से वे एक-दूसरे की निमित्त कारण हैं। जिस समय इन सत्ताओं को इनकी आसन्नतम उच्च सत्ता की अपेक्षा देखा जाता है तो इनमें केवल अन्यत्व भाव ही प्रकट होता है। परन्तु जब इन्हें अपनी सह-सत्ताओं की अपेक्षा देखा जाता है तो इनमें पृथकत्व भाव आ जाता है। अतः उपादान कारण में केवल अन्यत्व भाव है, जबकि निमित्त में पृथकत्व भाव। दोनों ही कारण अपनी-अपनी अपेक्षाओं से यथार्थ और भूतार्थ हैं। सम्पूर्णत्व अथवा द्रव्यत्व की अपेक्षा उपादान भूतार्थ है और निमित्त अभूतार्थ; अंशत्व अथवा पर्यायत्व की अपेक्षा निमित्त भूतार्थ है और उपादान अभूतार्थ। इसीलिए कुन्दकुन्द जब समयसार ग्रंथ में व्यवहार नय को अभूतार्थ और निश्चय को भूतार्थ कहते हैं (समयसार-११), तो उसमें द्रव्यदृष्टि पहले से निहित है। समयसार के प्रारम्भ में ही अपनी दृष्टि को स्पष्ट करते हुए कुन्दकुन्द लिखते हैं :—

तं एयत्तविहत्तं दाएहं अप्पणो सविहवेण।
जदि दाएज्ज पमाणं चुक्किज्ज छलं ण घेतव्वं।। समय०—५।।

अर्थात् : उस एकत्व विभक्त आत्मा को मैं आत्मा के निज वैभव से दिखाता हूँ; यदि मैं दिखाऊँ तो प्रमाण स्वीकार करना और यदि कहीं चूक जाऊँ तो छल ग्रहण नहीं करना।

इस गाथा से स्पष्ट है कि समयसार का सम्पूर्ण कथन आत्मा के निज वैभव अथवा द्रव्य-दृष्टि से

किया गया है। अतः इस कथन को भी कथंचित सत्य की कोटि में रखना ही श्रेष्ठ है। उपादान और निमित्त दोनों ही क्रमशः कथंचित भूतार्थ और कथंचित अभूतार्थ हैं। उनके ऐकान्तिक स्वरूप को ग्रहण करना कुन्दकुन्द के दर्शन के साथ अन्याय करना है।

आचार

कुन्दकुन्द ने मानवीय आचार-दर्शन का आधार भी बड़ा व्यापक और सुस्पष्ट ढूंढा। व्यक्ति का जो धर्म है वही करणीय है। और जो वस्तु का स्वभाव है वही धर्म है (प्रव० सार-७) अतः वस्तु के लिए करणीय वही है जो उसका स्वभाव हो। जैसे जल का स्वभाव शीतलता और आत्मा का स्वभाव चेतना है। उनका अपने स्वभाव में दक्षित हो जाना ही धर्म है।

स्वभाव किसी भी वस्तु के द्रव्यत्व की अभिव्यक्ति है। अभिव्यक्ति द्रव्य का गुण है और तत्वतः द्रव्य और गुण एक ही इकाई के पहलू हैं (प्रव० सार—११४)। अतः अपने स्वभाव में दीक्षित आत्मा स्वयं धर्मरूप है (प्रव० सार—८)। धर्म कोई वाह्य वस्तु नहीं, जिसे ग्रहण किया जाए। निजत्व की धारणा ही धर्म है। आचार धर्म का वाहन है। आचार आत्मा का निजत्वमय अथवा स्वसमय होने का एक प्रयत्न है। इस स्वसमय होने के लिए परसमयत्व का त्याग अनिवार्य है। इसीलिए मन, वचन और काय तीनों ही स्तरों पर अहिंसा, अपरिग्रह, अस्तेय, शील, और ब्रह्मचर्य व्रतों के द्वारा आत्मा स्वसमय में प्रवृत्त होती है। सम्पूर्ण विजातीय प्रभावों से मुक्ति आचार का लक्ष्य है। ज्ञान, दर्शन, वीर्य और सुख की वृद्धि उपरोक्त मुक्ति की कसौटी है। इस गुण चतुष्टय की अनंतरूपा अभिव्यक्ति शुद्ध चारित्र्य का चरमबिन्दु है। आचार इसी शुद्ध चारित्रिक प्रक्रिया की लक्षण संहिता है।

आचार के मामले में कुन्दकुन्द का वैशिष्ट्य इस बात में अधिक है कि वह स्वसमय होने के लिए सत्ता के उपादान कारण पर अधिक बल देते हैं, क्योंकि उपादान स्व की चीज है और स्व पर ही स्व का अधिक काबू है। अतः समताभाव धारण कर उपादान भूमि को उर्वरा बनाए रखना ही वह है जिसे हम कर सकते हैं। बीज उसमें पहले से ही पड़ा है। अब हमें धैर्य से निमित्त रूपी वाह्य जल-वायु की अपेक्षा करनी चाहिए और उत्तम फसल के लिए आशावान और विश्वासी भी रहना चाहिए। जो केवल निमित्त के पीछे दौड़ते हैं, उन्हें दोनों ही ओर से घाटा रहता है। उपादान की उपेक्षा तो उन्होंने स्पष्ट ही की, और निमित्त परद्रव्यात्मक होने के कारण उनका निज हो न सका। अतः ऐसे व्यक्ति अज्ञानी हैं और मूढ़। आचार के दृष्टिकोण से उपादान ही श्रेष्ठ और भूतार्थ है और निमित्त हेय और अभूतार्थ। निश्चय नय की धारणा ही शुद्ध चरित्र की ओर ले जाती है और अंततः मोक्ष-लाभ कराती है।

कुन्दकुन्द अपनी इसी विलक्षण और मौलिक देशना से भारतीय वाङ्मय में अपनी अमिट छाप छोड़ गए। श्रद्धालुओं ने उनकी इतनी इज्जत की, कि उनका नाम भगवान वीर और गणधर गौतम के साथ स्मरण किया जाने लगा, जो कि निम्नलिखित मंगल गाथा से स्पष्ट है :—

मंगलं भगवान वीरो मंगलं गौतमो गणी।
मंगलं कुन्दकुन्दाद्यो जैन धर्मोस्तु मंगलं॥

अस्तु, कुन्दकुन्द का शब्द प्रमाण हमारे लिए सदैव ज्ञानालोक बिकीर्ण करता रहेगा।

अपरिग्रह का महत्व

सुल्तानसिंह जैन, एम.ए.
शामली (उ० प्र०)

आज विश्व किन परिस्थितियों से होकर गुजर रहा है, यह बात किसी से छिपी नहीं है। कुछेक इने-गिने व्यक्तियों को छोड़कर जन-साधारण कितना ग्रस्त हो रहा है, यह लिखने की बात नहीं है।

भारत का विभाजन होने के पश्चात् मनुष्यता का किस भाँति संहार हुआ, ललनाओं की लज्जा के साथ कैसा खिलवाड़ हुआ, भ्रष्टाचार, घूसघोरी, चापलूसी का कैसा अखंड साम्राज्य छाया। आज की खाद्य-पदार्थों की मिलावट तथा उनकी असीम मंहगाई ने किस प्रकार जनता की रीढ़ की हड्डी को चकनाचूर किया, किस प्रकार लूट-खसोटकर तांडव-नृत्य हुआ और किस भांति मानव-मानव को गाजर-मूली की तरह काट-काट कर हत्या के घाट उतार रहा है, कदाचित विश्व के इतिहास में ऐसा कहीं दीख पड़े ? इससे भी बढ़कर आज विश्व में एक राष्ट्र दूसरे राष्ट्र को अणु-उद्जन, वीर आयुद्धों, स्पुतनिकों की तीव्रता, हवाई छत्रियों की भीषणता, तारपीडो की मार से हड़प जाने की चिन्ता में है। सह-अस्तित्व के नारे की आड़ में शस्त्रास्त्रों के निर्माण की होड़ में एक-दूसरे को पछाड़ने के प्रयास में संलग्न हैं। कहना अत्युक्ति न होगा कि विश्व में तृतीय विश्वयुद्ध के घनघोर बादल घटाटोप छाये हुए हैं।

अब प्रश्न उत्पन्न होता है कि उपरोक्त गुत्थियों के उलझने का क्या कारण है ? प्रश्न तो जटिल है; परन्तु इस संबंध में अनेकानेक उत्तर-प्रत्युत्तर हो सकते हैं। यहाँ पर इस संबंध में केवल इतना ही कहना पर्याप्त होगा कि इस युग में कुछेक लोगों की स्वार्थमयी मनोवृत्ति सबका नाश कर रही है। इतना ही नहीं आज वस्तुओं के संग्रह करने की प्रबल होड़ लगी हुई है। फलतः जनता दाने-दाने के लिए मुहताज हो रही है। प्रातः से सायंकाल तक की कमाई लिए इधर-से-उधर डोलती फिरती है, पर कहीं भी कोई पैसे को नहीं सूँघता है। एक ओर यह दशा है तो दूसरी ओर कोठे और गोदाम खाद्यान्नों से खचाखच भरे पड़े हैं, जिनमें सुरीली (कियरफ़) साम्राज्य स्थापित हो चुका है। भूखे मरे तो मरे कौन किसको पूछता है ? इस परिस्थिति का यह सारांश हुआ कि आज की दुनिया आर्थिक विषमता के कारण कराह रही है।

कहीं-कहीं तो यह आर्थिक विषमता सीमा को लांघ गई है, जो सहन-शक्ति से बाहर हो गई है। फलतः अधिकांश लोगों की नित्यप्रति की आवश्यकतायें पूर्ण नहीं हो रही हैं। इसमें भी आश्चर्य यह है कि जो चोटी-एड़ी का पसीना एक करके कमाते हैं, अन्न-वस्त्र उत्पन्न करते हैं, वही लोग भूखे-नंगे रहते हैं, परन्तु वे लोग, जो ग्रीष्म ऋतु में खश की टट्टी लगाकर कोचोज पर लेट लगाते हैं, बिजली के पंखों की हवा खाते हैं और आकाशवाणी से विश्व के गायन सुनते हैं तथा तरह-तरह के गुलछर्रे उड़ाते एवं मौज करते हैं। अतएव यह कहना अत्युक्तिपूर्ण न होगा कि आज "स्वार्थ के मद में चूर अपने भाइयों की लाशों पर बैठकर खून की होली खेली जा रही है।"



त्यागमूर्ति क्षुल्लक १०५ श्री गणेशप्रसादजी वर्णी
जिन्होंने ज्ञान प्रचार के लिए जीवनभर अथक प्रयत्न किया।



चारित्रचक्रवर्ती आचार्य शांतिसागरजी महाराज के पादमूल में



परमतपस्वी पूज्य नेमिसागरजी महाराज

वर्तमानकाल में धन को विशेष महत्त्व प्राप्त हो गया है। कुछ इने-गिने लोगों के अधिकार में अधिकांश सम्पत्ति पहुँचने से उसके उपभोग का अधिकार अन्य लोगों को नहीं रहा है। 'यही वह घुन है जिसने आत्मा, धर्म एवं सहकारिता के संगठन को ढीला ही नहीं कर दिया, अपितु इन सिद्धान्तों को पैरों तले रौंद कर मिट्टी में मिला दिया है। इसीसे मानवता अधूरी सौजन्यता वैधव्य को प्राप्त हो गई हैं।'

प्रस्तुत गुत्थी को सुलझाने का एकमात्र सरल उपाय यही है कि हमें कम से कम परिग्रह रखने के सिद्धान्त को अपनाना होगा। विश्ववन्द्य महात्मा गांधी ने एक स्थान पर परिग्रह को घटाते रहने के सम्बन्ध में बतलाया है कि "सच्चे सुधार का, सच्ची सभ्यता का लक्षण परिग्रह बढ़ाना नहीं है, वल्कि उसका विचार और इच्छापूर्वक घटाना है। ज्यों-ज्यों परिग्रह घटाइए, त्यों-त्यों सच्चा सुख और सच्चा सन्तोष बढ़ता है, सेवा-शक्ति बढ़ती है। × × × अनावश्यक परिग्रह से पड़ौसी को चोरी करने के लालच में फंसाते हैं।" उन्होंने वस्तुओं के परिग्रह के लिए ही नहीं विचार के परिग्रह करने के लिए भी एक अन्य स्थान पर त्याज्य ठहराया है। देखिये—"वस्तुओं की भाँति विचार का भी अपरिग्रह होना चाहिए। जो मनुष्य अपने दिमाग में निरर्थक ज्ञान भर लेता है, वह परिग्रही है। जो विचार हमें ईश्वर से विमुख रखते हों अथवा ईश्वर के प्रति न ले जाते हों, वे सभी परिग्रह में आ जाते हैं और इसीलिए त्याज्य हैं।"

वास्तव में गाँधीजी ने परिग्रह के सम्बन्ध में जो कुछ भी कहा, वह सत्य एवं अहिंसा के विचार से एक सौ एक नये पैसे सत्य है।

एक स्थान पर एक विद्वान लेखक ने अशांति का मूल कारण बताते हुए लिखा है कि, "बहुत क्या संसार में जितने विद्रोह, शोषण, अन्याय, अत्याचार, संघर्ष और दुख होते हैं, उनका मूल कारण परिग्रह है।"

अतः आज के विश्व को वह मार्ग अपनाने की आवश्यकता है, जिसके द्वारा परिग्रह की लोलुपता का स्वतः ही अंत हो जाए। इसका एकमात्र मार्ग "अपरिग्रह" ही हो सकता है। अपरिग्रह का उद्देश्य हमें अपनी आवश्यकताओं को कम करने के लिए प्रेरित करना है।

प्राचीनकाल में अपरिग्रह के कारण ही लोगों का जीवन सुखी, स्मृद्धिशाली एवं शान्तिमय था; किन्तु आधुनिक काल में अपरिग्रह के अभाव से वह अनेक विषमताओं का शिकार बना हुआ हैं। अतः हमें अपरिग्रह का मार्ग अपनाना ही श्रेयस्कर हो सकता है।

महात्मा टालस्टाय के शब्दों में, "जब लोगों को पहिनने को कपड़ा न मिलता हो, तब मैं कपड़ों से सन्दूक भरूं या जब लोगों को खाने को भी न मिलता हो तब मैं अजीर्ण की दवा करूं; यह मानवता का सबसे पहला कलंक है।" टालस्टाय का प्रस्तुत कथन कितना युक्तियुक्त एवं समाज की दृष्टि से कितना सुसंगत है, यह सहज ही ज्ञात हो जाता है।

एक समय का कथन है कि किसी धनाढ्य ने हजरत ईसा से प्रश्न किया कि संसार में मनुष्य निर्दोष कैसे ठहर सकता है? इसके उत्तर में उन्होंने कहा कि, "यदि प्राणी निर्दोष रहना चाहता है, तो वह अपनी समस्त सम्पत्ति गरीबों को बांट दे। इससे उसे सुख और शांति अवश्य

ही प्राप्त होगी।" स्वर्गीय गांधीजी का भी ऐसा ही मत था। उन्होंने कहा था—"यदि स्वराज्य के अन्दर परिग्रही मनुष्यों का प्रवेश होगा, तो अहिंसा और सत्य एक क्षण भी नहीं ठहर सकेंगे।" कारण कि मनुष्यों को परिग्रह की रक्षा के हेतु निरन्तर हिंसा के लिए तत्पर रहना पड़ेगा और परिग्रह की रक्षा के लिए मिथ्या नियमों की रचना करनी पड़ेगी। इसका अर्थ यह होगा कि हिंसा और असत्य के भयंकर गर्त में लुढ़कना पड़ेगा। एक और स्थान पर उन्होंने अंकित किया है—"आदर्श आत्यन्तिक अपरिग्रह तो उसी का होगा, जो मन और कर्म से दिगम्बर हो।" इससे भी बढ़कर गांधीजी एक स्थान पर कह बैठते हैं—"केवल सत्य को आत्मा की दृष्टि से विचारें तो शरीर भी परिग्रह है। भोगेच्छा के कारण हमने शरीर का आवरण खड़ा किया है, और उसे टिकाये रखते हैं।"

इन सब महापुरुषों के कहने का अर्थ यही है कि परिग्रह से मनुष्य को सुख की कभी उपलब्धि नहीं हो सकती। इसी संबंध में भगवान महावीर स्वामी ने आज से लगभग ढाई हजार वर्ष पूर्व उपदेश दिया था कि, "अपरिग्रहवाद से जनता में संभाव का सृजन हो सकता है।" श्रीमद्भागवत में भी अपरिग्रह को अत्यन्त महत्व देते हुए कहा है—"जो-जो मनुष्य को प्रिय लगने वाला परिग्रह है, वह सब दुख का ही कारण है। और जो अकिंचन है, वही सर्वदा सुख का भागी है।"

अतएव इन सब महापुरुषों ने अपरिग्रह का ही उपदेश दिया है। उनका यह आदेश राष्ट्रीय, सामाजिक एवं वैयक्तिक हितों के दृष्टिकोण से सुन्दर और वांछनीय है।

आधुनिक काल में अपरिग्रह की अत्यधिक आवश्यकता है। मनुष्य अपने जीवन के चरम उद्देश्य—सुख-शांति' को तब ही प्राप्त कर सकता है; जब कि उसकी आवश्यकतायें न्यून हों।

× × × ×

षट् द्रव्यों के परस्पर सम्बन्ध से लोक-व्यवस्था

रूपचन्द गार्गीय जैन
पानीपत

जिसका अस्तित्व हो वह द्रव्य है। लोक में अस्तित्व गुणवाले केवल छह ही द्रव्य हैं। ये अपने गुणों व पर्यायों को लिए हुए परिणमन करते हैं। ये हैं—जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश व काल (Soul, matter, medium of motion or medium of keeping order, medium of rest or medium of creating disorder, space, medium of time)। यह लोक जिसमें हम रहते हैं तथा जिसका हम एक अंग हैं इन्हीं छह द्रव्यों से बना है। छह द्रव्यों का ताना-बाना रूप एक महासत्ता का धारी विश्व है। यह एक सचाई है कोई स्वप्न नहीं है। ये छहों द्रव्य एक-दूसरे के परिणमन में सहायक हैं, निमित्त हैं। ये स्वयं भी परिणमनशील हैं—कूटस्थ नहीं हैं, ये अनन्त शक्ति के धारी हैं तथा अनन्त अपेक्षाओं से परिणमन करते हैं। ये स्वयं गुणों द्वारा परिणमन करते हैं, ये स्वयं अपने कर्ता हैं तथा कर्म भी हैं। ये अपने-अपने स्वभाव के कारण नियमित हैं

तथा नियमों के रचयिता हैं। इन्हीं बहुत से दृष्टिकोणों द्वारा परिणमन करते हुए देखा गया, जाना गया व अनुसन्धान किया गया तो भी इनका कार्य समाप्त नहीं हुआ है और न ही कभी समाप्त होगा। ये बिना किसी रुकावट के सदैव क्रियाशील रहेंगे। गरज यह लोक एक चलती-फिरती संस्था है और सदैव इसी भाँति चलता रहेगा। इसके सम्बन्ध में जितनी भी जानकारी गणित और अनुसन्धान के द्वारा अब तक वैज्ञानिकों व ऋषि-महर्षियों ने की है—यह उनसे बहुत बड़ी है। यह अतीत और वर्तमान से बहुत अधिक है। यह अनादि से चली आयी है और अनन्त काल तक चलती रहेगी।

जीवद्रव्य—जिसमें चेतना गुण हो अर्थात् जिसमें मैं हूँ ऐसा अनुभव हो तथा स्व पर पदार्थों को जानने की शक्ति हो, जो अत्यन्त सूक्ष्म व अरूपी है तथा इन्द्रियगम्य नहीं है जो वैभाविक दशा अर्थात् संसारी अवस्था में पाँचों इन्द्रियों, मन, वचन व काय तीन बल, आयु और श्वासोच्छ्वास प्राणों से जीता है। जो सुख-दुख का अनुभय करता हो।

पुद्गल द्रव्य—जिसमें रूप रस गन्ध व स्पश पाया जाता है तथा जो परमाणु व स्कन्ध अवस्था में पाया जाता है, जो संसारी जीवों के सुख-दुख, जीवन-मरण में निमित्त कारण है तथा उनके शरीर, वचन, मन व श्वासोश्वास का रचयिता है।

धर्म द्रव्य—जो जीव तथा पुद्गल को गमन करने में अर्थात् व्यवस्थित रूप से परिणमन करने में सहायक हो। इसे ऋत भी कहते हैं।

अधर्म द्रव्य—जो जीव तथा पुद्गल की स्थिति में अर्थात इनके व्यवस्थित परिणमन को रोकने में सहायक हो। इसे अनृत भी कहते हैं।

आकाश द्रव्य—जो अन्य द्रव्यों को ठहरने के लिए स्थान देता है।

काल द्रव्य—जो द्रव्यों के परिणमन व क्रिया में निमित्त कारण है, जो स्वयं बिना किसी निमित्त के वर्तता है। जिसकी पर्याय स्वरूप समय, घड़ी, घण्टा, दिन, मास, वर्ष बनते हैं—इनके कारण स्वरूप जीव पुद्गल की पर्यायों की स्थिति में कमी-बेशी का ज्ञान होता है।

यद्यपि धर्म, अधर्म, आकाश व काल ये चारों द्रव्य प्रत्यक्ष में दिखाई नहीं देते परन्तु लोक में अपने-अपने कार्यों द्वारा सिद्ध होते हैं।

ये सभी द्रव्य नियमित स्वभाव रूप से नियत हैं तथा विभाव रूप क्षणवर्ती परिणमन के कारण अनियत हैं।

ये ध्रुव सत रूप रहने के कारण नित्य हैं तथा समय-समय पर्यायों के उत्पाद व व्यय के कारण अनित्य हैं।

अभेद दृष्टि से सम्पूर्ण लोकालोक रूप महासत्ता के धारी होने से एक हैं तथा अनन्तानंत भेद कल्पना से अनेक हैं।

कभी नाश न होने के कारण अस्तित्व गुण वाले हैं।

अर्थ—क्रिया धारी होने से वस्तुत्व गुण वाले हैं।

समय-समय उत्पाद व्यय ध्रौव्य के कारण पर्यायें बदलते रहने से द्रव्यत्व गुणधारी हैं।
किसी न किसी के ज्ञान का विषय होने से प्रमेयत्व गुणधारी हैं।
सभी द्रव्य व गुण अपनी-अपनी सत्ता रूप बने रहने से अगुरुलघुगुणधारी हैं।
कुछ न कुछ आकर होने के प्रदेशत्व गुण धारी हैं।

इस प्रकार अनेक गुणों से युक्त लोक में इन छहों द्रव्यों का पसारा है जिनकी सत्ता बराबर बनी रहती है। इनकी पर्यायों का अलटना-पलटना सदा से है और सदा बना रहेगा। लोक में जितने द्रव्य हैं वे कभी नाश को प्राप्त होने वाले नहीं और न ही कोई द्रव्य नवीन पैदा होता है अर्थात न तो सत का नाश होता ह और न असत का उत्पाद होता है, केवल पर्यायें ही नवीन पैदा होती हैं और नाश को प्राप्त होती हैं।

द्रव्यों की पर्यायें सूक्ष्म व स्थूल, क्षणिक व चिर स्थायी, सदृश व विसदृश होती हैं। शुद्ध द्रव्यों की पर्यायें तो सदृश ही होती हैं और अशुद्ध वैभाविक पर्यायें सदृश भी और विसदृश भी होती हैं। पदार्थों की वैभाविक गुण पर्यायों (जिन्हें अर्थ पर्याय भी कहते हैं) के गुणांशों में तो कमी बेशी प्रतिक्षण होती ही है जो प्रत्यक्ष दिखाई देती है किन्तु स्वाभाविक शुद्ध पर्यायों के गुणांशों में भी कमी-बेशी होती है जिसे गुणों में षट्गुणी हानि-वृद्धि कहते हैं। स्थूल रूप में यह दृष्टिगत नहीं होती, सूक्ष्म रूप में ही होती है। द्रव्यों के आकार जिन्हें व्यंजन पर्याय कहते हैं वैभाविक दशा में बदलते रहते हैं किन्तु स्वाभाविक पर्याय में सदैव एकसे बने रहते हैं।

प्रत्येक छोटा व बड़ा, सूक्ष्म व स्थूल, शुद्ध व अशुद्ध द्रव्य अपनी पर्याय के लिए तो उपादान रूप है तथा दूसरे कतिपय द्रव्यों की पर्यायों के लिए निमित्त होता है तथा उसके परिणमन में अन्य द्रव्य निमित्त होते हैं। लौकिक इस व्यवस्था में ही एक द्रव्य दूसरे द्रव्य का कर्ता कहा जाता है। यद्यपि प्रत्येक द्रव्य अपने-अपने में पूर्ण स्वतंत्र है, अविनाशी है, परिणमनशील है किन्तु जीव व पुद्गल की स्वाभाविक व वैभाविक दोनों अवस्थाओं में एक द्रव्य दूसरे से प्रभावित रहता है। स्वाभाविक दशा के अर्थ पर्याय के परिणमन में तो काल द्रव्य निमित्त है, व्यंजन पर्याय में आकाश व काल दोनों द्रव्य निमित्त हैं तथा वैभाविक परिणमन में काल व आकाश सहित द्रव्य व भाव रूप से अन्य पदार्थ भी निमित्त होते हैं। व्यंजन पर्याय में धर्म व अधर्म द्रव्य में से कोई एक निमित्त कारण बना रहता है। इसे द्रव्यों का निमित्त नैमित्तिक सम्बन्ध भी कहते ह; कर्ता-कर्म व्यवस्था भी कहते हैं। द्रव्यों की पर्यायों का परस्पर में षटकारक रूप से लोक-व्यवहार होता है। शुद्ध द्रव्य की तो एक ही पर्याय में छहों कारक लागू हो जाते हैं किन्तु द्रव्यों की वैभाविक अशुद्ध अनेक पर्यायों में षटकारक व्यवहृत होते हैं। लौकिक वातावरण में यह इन दृष्टियों से ठीक ही कहा जाता है कि जीव तथा पुद्गल द्रव्य परस्पर में एक-दूसरे को बहुत कुछ देते लेते रहते हैं — जीव द्रव्य अपने ज्ञान गुण तथा शुद्ध व अशुद्ध स्वाभाविक व वैभाविक भावों द्वारा और पुद्गल अपने रूप-रस, गन्ध व स्पर्श गुणों द्वारा तथा कार्माण वर्गणाओं में कर्म रूप शक्ति द्वारा, तथा अन्य अनेक गुणों द्वारा लोक व्यवहार में जब जीव अपने बुद्धि व पुरुषार्थ द्वारा अन्य द्रव्यों के परिणमन में निमित्त होता है तो वह उनकी पर्यायों का कर्ता कहा जाता है।

स्वभाव से ये छहों द्रव्य अत्यन्त सूक्ष्म, दृष्टि में न आने योग्य हैं। (पुद्गल जो दिखाई देता है वह भी स्वाभाविक दशा में अणु रूप होकर दिखाई नहीं देता केवल स्थूल स्कन्ध के रूप

में ही दिखता है) धर्म, अधर्म, आकाश व काल चार द्रव्य तो सदैव अपने स्वभाव में परिणमन करते हैं तथा अन्य द्रव्यों के परिणमन में निमित्त कारण हैं। शेष जीव और पुद्गल दोनों द्रव्य स्वभाव रूप भी परिणमन करते हैं तथा एक-दूसरे से प्रभावित होकर विभाव रूप भी परिणमन करते हैं। इन दोनों द्रव्यों में एक विभाविकी नाम का गुण पाया जाता है जिसके कारण इनका वैभाविक रूप परिणमन करना भी एक वैभाविकी स्वभाव अर्थात गुण है। इस गुण का कार्य है द्रव्य के अन्य विशेष गुणों को विकार रूप परिणमन कराना अर्थात् विकार में निमित्त कारण रहना।

यह गुण स्वाभाविक दशा में रहता हुआ तो शुद्ध परिणमन करता है। तथा अन्य गुणों में भी किसी प्रकार का निमित्त नहीं होता किन्तु इसी गुण के वैभाविक अर्थात् अन्य द्रव्य के निमित्त कारण से अशुद्ध परिणमन होने पर जीव व पुद्गल के अन्य गुण भी वैभाविक रूप परिणमन हो जाते हैं जिसके कारण लोक का यह रूप नजर आता है। संसारी सभी जीव अनादि काल से वैभाविक रूप परिणमन कर रहे हैं, पुद्गल की भी यही दशा है। जीव एक बार स्वाभाविक शुद्ध अवस्था को प्राप्त होकर फिर कभी भी वैभाविक परिणमन को प्राप्त नहीं होते तथा पुद्गल स्वाभाविक दशा को प्राप्त होकर भी निमित्त कारण मिलने पर पुनः वैभाविक दशा को प्राप्त हो सकता है। जीव को वैभाविक दशा अर्थात् संसार में रोकने वाले राग-द्वेष-मोह हैं जो पूर्व के संस्कारों से बीज वृक्ष की भाँति बने रहते हैं, एक बार उनका बीज नष्ट होने पर पुनः पैदा नहीं हो सकते।

इस प्रकार लोक में द्रव्यों के परिणमन की यह प्रगति है जिसके कारण यह विश्व पूर्ण रूप में शुद्ध नहीं किन्तु शुद्धता के लिए सदैव परिणमनशील है। इसके नियमों में बहुत से विकार पाए जाते हैं जिन्हें दूर करने के लिए सदा प्रयत्नशील रहता है। इसमें उन्नति के प्रयत्न भी आकस्मिक घटनाओं के कारण अवनति को प्राप्त होते रहते हैं। इन्हीं कारणों से यह विश्व न तो पूर्णतया कभी शुद्ध जीव रूप ही हो पाता और न ही शुद्ध पुद्गल रूप हो पाता है किन्तु दोनों के एक मिश्रित तथा विकृत रूप में पाया जाता है जिसमें दोनों द्रव्य एकदूसरे के विभाव रूप परिणमन में कारण बने रहते हैं। यह सब करिश्मा वैभाविकी शक्ति का ही है अन्यथा इस लोक में जीव तथा पुद्गल दोनों द्रव्य सूक्ष्म-सूक्ष्म अवस्था में रहते हुए सब शून्य सरीखा दिखाई देता। उस अवस्था को एक ब्रह्म मात्र भी कह सकते हैं। अर्थात् जीव और जड़ पुद्गल का पूर्णतया स्वाभाविक परिणमन तथा वैभाविकी शक्ति को माया कह सकते हैं जिसके कारण इस लोक में जीव और पुद्गल की ये सब पर्यायें दृष्टिगत हो रही हैं।

इस प्रकार यह लोक की व्यवस्था चल रही है और सदैव चलती रहेगी। जीवों का संसार परिभ्रमण—जम्मन मरण चलता रहेगा। कुछ जीव काल लब्धि प्राप्त होने पर विशेष निज पुरुषार्थ द्वारा इस परिभ्रमण से मुक्त होते रहेंगे। संसार में जीव कर्मचेतना—कर्तृत्व बुद्धि तथा कर्मफल चेतना—कर्मफल भोक्तृत्व बुद्धि के कारण जन्म-मरण व सांसारिक सुख-दुःख को भोगते हुए भ्रमण कर रहे हैं। निज स्वभाव स्वरूप ज्ञान चेतना प्राप्त होने पर ही इस भ्रमण से छुटकारा होता है।

संसारी जीवों की इस परिणमन व्यवस्था में जीवों के वैभाविक भाव तो उपादान कारण हैं तथा जीव के साथ बँधे कर्म तथा जीव के संयोग में आयी अन्य जीव पुद्गल सामग्री निमित्त कारण है। जीव का ये वैभाविक भाव जीव का पुरुषार्थ है।

यदि जीव के पुरुषार्थ की दिशा बदल जाये अर्थात् पुरुषार्थ स्वभाव भाव रूप हो जाए तो अन्य निमित्त कारण इसका कुछ भी बिगाड़ नहीं कर सकते। यह पुरुषार्थ की शक्ति जीव में ही है जो निमित्तों के प्रभाव से अछूता रह सकता है। पुद्गल में यह शक्ति नहीं है, इसमें योग्य निमित्त कारण मिलने पर वैभाविक परिणमन अवश्यमेव होता है। इसलिए अनन्तानन्त जीवों में से काल लब्धि को प्राप्त होने पर कोई-कोई जीव परिमित संख्या में अपने पुरुषार्थ द्वारा शक्ति अनुसार राग-द्वेष-मोह परिणामों पर काबू पाते हुए उन्हें पूर्णतया नष्ट करके संसार-बन्धन से मुक्त हो जाते हैं। ऐसी अवस्था इस लोक में बहुत सी प्राकृतिक व्यवस्थाओं में से एक हैं जो किसी के आधीन नहीं है, जीवों के अपने परिणामों तथा काललब्धि के आधीन है तथा परिणामों की शुद्धि में सत्संगति व देशनालब्धि भी सहायक हैं। अतः इस ओर पुरुषार्थ करना आवश्यक है। लोक में जीवों की अक्षय अनन्त राशि है जो समय समय पर जीवों के मुक्त होते हुए भी कभी समाप्त होने वाली नहीं है।

जीव को शुद्ध स्वाभाविक अवस्था प्राप्त करने की आवश्यकता क्यों है? इसका कारण संसारी अवस्था में जीव का सुख-दुःख अनुभव करना है। दुःख इसे इष्ट नहीं जिसे यह दूर करने में सदा प्रयत्नशील रहता है, सुख यद्यपि इसे इष्ट है किन्तु वह स्थायी न होने तथा दुःख में परिणत हो जाने से कल्याणकारी नहीं, अत. यह भी लाभप्रद न होने के कारण वर्जनीय है। वास्तव में तो यह संसारी सुख इच्छाओं की पूर्ति मात्र ही है, इच्छाएं आकुलता पैदा करती हैं, और आकुलता दुख रूप है। अतएव जीव की वैभाविक संसारी दशा स्थायी स्वाभाविक सुख रूप न होने के कारण त्यागने योग्य है। स्वभाव की प्राप्ति के लिये जीव को धर्मसाधन की आवश्यकता है। यदि वैभाविक अवस्था में दुख न होता तो इसे धर्मसाधन की आवश्यकता न होती। जड़ पुद्गल वैभाविक अवस्था में रहो या स्वाभाविक में उसे कोई हानि नहीं क्योंकि उस जीव सरीखा दुख-सुख का अनुभव नहीं है। इनमें तो केवल बन्धन व पृथकत्व के नियम हैं, उन्ही नियमों के अनुसार परिस्थिति उपस्थित होने पर परमाणु बन्ध कर छोटे-बड़े स्कन्ध बनते हैं और स्कन्ध का विश्लेषण होकर परमाणु रूप में परिवर्तित होते रहते हैं। लोक में इस प्रकार से द्रव्यों में कार्य-कारण व्यवस्था पायी जाती है जिसका पसारा हम सब प्रत्यक्ष देख रहे हैं।

❀ ❀ ❀

तत्वार्थसूत्र और उसकी प्रमुख टीकाएं

श्री अमृतलाल शास्त्री, दर्शनाचार्य

स्याद्वाद महाविद्यालय भदैनीघाट, वाराणसी

भगवान महावीर की दिव्यदेशना का जिस द्वादशांगवाणी में संकलन हुआ, उसकी मुख्य भाषा प्राकृत थी। उस समय उस भाषा का खूब प्रचार और प्रसार था। पर समय के परिवर्तन के

साथ प्राकृत का स्थान संस्कृत ने लेना प्रारम्भ कर दिया। यह देखकर द्वैपायक के मन में यह विचार उत्पन्न हुआ कि समग्र जैन वाङ्मय का परिचय कराने में समर्थ एक ऐसे ग्रन्थ की संस्कृत में रचना क्यों न कर दी जाय, इस विचार के बाद वह स्वयं ऐसी सामग्री के संकलन में लग गया जिससे उसका मनोरथ पूर्ण हो सके। इसके लिए उसने कुछ उपक्रम भी किया पर उसे कुछ कठिनाई प्रतीत होने लगी। अतः वह एक तपोवन में गया, जहां श्रुतकेवली की समता करने में सक्षम (श्रुतकेवलिदेशीय) आचार्य गृद्ध्रपिच्छ विद्वान मुनियों के बीच में बैठे हुए थे। उस समय यद्यपि वे मौन थे, किन्तु उनकी सौम्य वीतराग मुद्रा से ही दर्शकों को मुक्तिमार्ग के उपदेश की एक झलक मिल रही थी। वहाँ का वातावरण बिलकुल शान्त और पवित्र था। इससे द्वैपायक बहुत प्रभावित हुआ। अवसर पाते ही उसने आचार्य गृद्ध्रपिच्छ एवं अन्य सभी मुनियों को श्रद्धापूर्वक नमन किया और वहीं एक ओर बैठ गया। कुछ ही क्षणों के पश्चात उसने विनयपूर्वक यह प्रश्न किया—भगवन ! आत्मा का हित क्या है– 'भगवन ! किन्तु खल्वात्मने हितम् ?' कृपया बतलाइये। द्वैपायक के प्रश्न की भाषा और उसके मनोभाव को ध्यान में रखकर उन्होंने जो उत्तर दिया, उसीका साकार रूप तत्वार्थसूत्र है। उस समय जो भी वाङ्मम उपलब्ध था उसका सार लेकर उन्होंने उसे अलंकृत किया।

जैन परम्परा में तत्वार्थसूत्र का बहुत बड़ा महत्व है। इसके श्रवण करने मात्र से श्रोता को एक उपवास का फल मिलता है, ऐसी इसकी ख्याति है। प्रायः दिगम्बर जैन समाज में दशलक्षण पर्व की पुण्यबेला में प्रवचन का मुख्य विषय यही रहता है। इसमें प्रथमानुयोग को छोड़कर शेष तीनों अनुयोगों की चर्चा यत्र-तत्र दृष्टिगोचर होती है। यह जैन दर्शन का प्रवेश-द्वार है। प्रवेशिका से लेकर आचार्य तक और बालपाठशालाओं से लेकर विश्वविद्यालयों तक इसका अध्ययन-अध्यापन होता है। अतः यह कहने की आवश्यकता नहीं कि यह एक अनुपम ग्रन्थ ही नहीं महाग्रन्थ है।

इसके आधार पर अनेक उद्भट आचार्यों ने दार्शनिक ग्रन्थों की रचना की है। इसके 'मोक्षमार्गस्य नेतारम्', इत्यादि मंगलसूत्र को लेकर आचार्य विद्यानन्द ने आप्त परीक्षा की रचना की। 'प्रमाणनयैरधिगमः' इस सूत्र का आश्रय लेकर महाकलंकदेव ने अपने लघीयस्त्रय ग्रन्थ के प्रमाणप्रवेश और नयप्रवेश—इन दो प्रकरणों की तथा अभिनव धर्मभूषण यति ने न्यायदीपिका की रचना की है। इसे देखकर अन्य आचार्यों ने संस्कृत भाषा में ग्रन्थ लिखने की प्रेरणा ली।

इसके दसों अध्यायों में कुल मिलाकर ३५७ सूत्र हैं। प्रारम्भ के चार अध्यायों में जीवतत्त्व का, पंचम में अजीवतत्त्व का, षष्ठ और सप्तम में आस्रवतत्त्व का, अष्टम में बन्धतत्त्व का, नवम में संवर और निर्जरा का तथा अन्तिम में मोक्ष तत्त्व का निरूपण किया गया है। इसलिए इसका तत्त्वार्थ नाम पड़ा, और सूत्रशैली में लिखे जाने से इसे तत्त्वार्थसूत्र कहते हैं। मोक्षमार्ग सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र का प्रतिपादन करने से इसकी मोक्षशास्त्र संज्ञा भी प्रचलित है।

(१) सर्वार्थसिद्धि

तत्त्वार्थसूत्र की उपलब्ध टीकाओं में सर्वार्थसिद्धि सबसे पुरानी है। यद्यपि आचार्य समन्तभद्र ने इस पर गन्धहस्ति महाभाष्य नाम की एक टीका लिखी थी, ऐसी प्रसिद्धि है। पर वह अभी तक उपलब्ध नहीं हुई है। इसलिये सर्वार्थसिद्धि ही इसकी प्रथम टीका मानी जाती है। लक्षणों की दृष्टि से इसका बड़ा महत्त्व है। इसमें जो लक्षण दिये गये हैं, उन्होंने विद्वानों को बहुत प्रभावित किया है। अतः इस टीका ग्रन्थ को लक्षण ग्रन्थ भी माना जाता है। इसमें तत्त्वार्थसूत्र के सूत्रों के प्रत्येक पद का विशेष अर्थ प्राञ्जल भाषा में किया गया है। इसे बाद की सभी टीकाओं ने आदर्श माना है। आवश्यक स्थलों पर व्याकरण के आधार से अनेकानेक पदों की सिद्धि करते हुए प्रकृति और प्रत्ययों का निर्देश किया गया है। इसके 'तत्त्वार्थ श्रद्धानं सम्यग्दर्शनम्' सूत्र की टीका में सम्यग्दर्शन के दो भेद किये हैं— सरागसम्यग्दर्शन और वीतराग सम्यग्दर्शन। प्रशम, संवेग, अनुकम्पा और आस्तिक्य आदि चिन्हों से जिसकी अभिव्यक्ति हो, उसे सरागसम्यग्दर्शन तथा आत्मा की विशुद्धिमात्र को वीतराग सम्यग्दर्शन कहते हैं। 'जीवा जीवास्रवबन्ध संवरनिर्जरामोक्षास्तत्त्वम्' इस सूत्र की टीका में लिखा है कि पुण्य और पाप का अन्तर्भाव आस्रव और बन्ध में हो जाता है, इसीलिये सूत्रकार ने नौ पदार्थों की अलग से चर्चा नहीं की। 'तद्भावाव्ययं नित्यम्' सूत्र की व्याख्या में बतलाया है कि प्रत्येक वस्तु स्वभाव से नित्य होकर भी परिणामी है। यदि वस्तु की सर्वथा नित्यता स्वीकार की जाय तो उसमें परिणमन नहीं बनेगा। फलतः संसार और उसकी निवृत्ति की प्रक्रिया ही गड़बड़ा जायगी। इसी प्रकार वस्तु को सर्वथा अनित्य मानने पर कार्य-कारणभाव नहीं बन सकेगा।

इस टीका को महाकलंकदेव ने अपने ग्रन्थ—तत्त्वार्थ वार्तिक में वार्त्तिक रूप में अपनाया है। इससे इस टीका का महत्व समझ में आ जाता है। सर्वार्थसिद्धि से तत्त्वार्थवार्तिक में और तत्त्वार्थवार्तिक से तत्त्वार्थश्लोकवार्त्तिक में उत्तरोत्तर विशेषता बढ़ती गई। इसका एक मात्र श्रेय सर्वार्थसिद्धि को ही है। सुन्दरतापूर्वक थोड़े शब्दों में अधिक अर्थ लिख देना इसकी सबसे बड़ी विशेषता है। बाद में तत्त्वार्थसूत्र की जितनी भी टीकाएँ लिखी गई वे सबकी सब सर्वार्थ-सिद्धि से प्रभावित हैं। इसकी रचना प्रशममूर्ति आचार्यवर्य पूज्यपाद ने पांचवीं शताब्दी में की थी। इष्टोपदेश, समाधिशतक और जैनेन्द्र व्याकरण में भी इनकी प्रतिभा के दर्शन होते हैं।

(२) तत्त्वार्थवार्तिक

तत्त्वार्थसूत्र पर तत्त्वार्थवार्तिक भाष्य लिखा गया है। इसमें केवल अतिसरल २७ सूत्रों को छोड़कर शेष सभी पर गद्य रूप में वार्तिकों की रचना की गई है। उनकी कुल संख्या २६७० है। सातवीं शताब्दी में सूत्रों पर वार्त्तिक बनाने की परिपाटी श्रेष्ठ समझी जाती थी। बिना वार्त्तिकों के सूत्रों की महत्ता नहीं मानी जाती थी। अतः महाकलंकदेव ने उद्योतकर की शैली में वार्तिकों की रचना की। आचार्य गृद्ध्रपिच्छ के सूत्रों में भी जो अनुपपत्तियाँ कल्पनाओं के बल पर सम्भव मानी जा सकती थीं, उन सभी का परिहार वार्त्तिकों में कर दिया गया—'सूत्रेष्वनुपपत्तिचोदना-परिहारो वार्त्तिकम्'। वार्त्तिकों की रचना में कहीं कुछ क्लिष्टता भी आ गई है। अतः उसकी वृत्ति,

जिसे भाष्य कहना चाहिए, आवश्यकतानुसार कहीं संक्षिप्त और कहीं विस्तृत रूप में लिखी गई है। इसमें अगणित आक्षेपों का समुचित समाधान किया गया है—'आक्षिप्यभाषणाद् भाष्यम्'। उस समय शास्त्रार्थों की धूम मची रहती थी। अकलंकदेव ने भी अनेकानेक शास्त्रार्थ किये थे। तत्त्वार्थ-वार्तिक में, जिसका दूसरा नाम राजवार्तिक है, उनके शास्त्रार्थ के अभ्यास की एक झलक मिलती है।

इस भाष्य में सूत्रों के पदों के कोषों के अनुसार अनेक अर्थ दिखलाकर विवक्षित अर्थ को युक्तिपूर्वक निश्चित किया गया है कि इस पद का यहां यही अर्थ होना चाहिए, इस अर्थ को छोड़कर अन्य अर्थ करने पर अमुक-अमुक दोष उत्पन्न हो जायेंगे। 'तत्त्वार्थश्रद्धानं सम्यग्दर्शनम्' सूत्र के भाष्य में 'अर्थ' शब्द के विवक्षित अर्थ पर जो विचार किया गया है, केवल उसीको नमूने के रूप में देखकर महाकलंक की शैली का एक आभास प्राप्त किया जा सकता है।

प्रस्तुत भाष्य में अन्य दार्शनिकों की शंकाओं का समाधान आगम और युक्तियों के आधार पर देकर अन्त में अनेकान्त के आधार से भी समुचित उत्तर दिया गया है। यह शैली अन्य टीकाओं में बहुत कम उपलब्ध होती है। देखिये पृष्ठ ७, २५, ५०, ७१ ४७१, ४९२ और ५०५ आदि। सप्तभगी का परिष्कृत लक्षण, स्वात्मा-परमात्मा का विश्लेषण, काल आदि आठ के द्वारा अभिन्नवृत्ति तथा अभेदोपचार की चर्चा, अनेकान्त में सप्तभंगी योजना, अनेकान्त के सम्यगेकान्त और मिथ्यैकान्त, अनेकान्त में दिये गये दूषणों का निरसन और लक्षण के आत्मभूत और अनात्मभूत ये दो भेद आदि इस भाष्य की मौलिक उपलब्धियां हैं। इस भाष्य में सैद्धान्तिक, दार्शनिक, और भौगोलिक आदि अनेकानेक विषयों की प्रासंगिक चर्चा दृष्टिगोचर होती है, अतः इसे विश्वकोष कहा जा सकता है।

(३) तत्त्वार्थश्लोक वार्त्तिक

तत्त्वार्थश्लोक वार्तिक में, जिसका दूसरा नाम श्लोकवार्तिक भी है, तत्त्वार्थसूत्र के केवल ३५ सूत्रों को छोड़कर शेष सभी पर वार्तिक लिखे गये हैं। उनकी संख्या लगभग २७०१ है। वार्तिक अनुष्टुप् छन्द में कुमारिलभट्ट के मीमांसाश्लोक वार्तिक, तथा धर्मकीर्ति के प्रमाणवार्तिक की शैली में लिखे गये हैं। आह्निकों की समाप्ति के स्थलों पर उपेन्द्रवज्रा, स्वागता, शालिनी, वंशस्थ, मालिनी, शिखरिणी और शार्दूलविक्रीडित आदि छन्दों का भी प्रयोग किया गया है। वार्तिकों के ऊपर वृत्ति भी लिखी गई है, जिसे महाभाष्य की संज्ञा प्राप्त है। तत्त्वार्थसूत्र की उपलब्ध टीकाओं में इसका प्रमाण सबसे अधिक है। इसके निर्णयसागर वाले संस्करण में ५१२ पृष्ठ हैं, जिनमें ३११ पृष्ठ प्रथम अध्याय के हैं। इस अध्याय में दार्शनिक चर्चा की बहुलता है। वैशेषिक, नैयायिक, और विशेषतः मीमांसक आदि सभी दार्शनिकों के सिद्धान्तों की इसमें विस्तार-पूर्वक समालोचना की गई है। भावना, विधि, नियोग, निग्रहस्थान आदि की आलोचना और जय-पराजय की व्यवस्था दी गई है। नयों का विस्तृत विवेचन द्रष्टव्य है। इसकी भाषा सरल है फिर भी विषय की गंभीरता के कारण क्लिष्टता आ गई है, पर कहीं-कहीं बिलकुल सरलता भी देखने को मिलती है, विशेषतः प्रथम अध्याय के आगे।

इसकी रचना नवमी शताब्दी में आचार्य विद्यानन्द ने की थी। इनके आप्तपरीक्षा, पत्रपरीक्षा, प्रमाणपरीक्षा, सत्यशासनपरीक्षा और अष्टसहस्री आदि और भी अनेक ग्रन्थ उपलब्ध हैं।

(४) सुखबोधा

यह टीका सर्वार्थसिद्धि से कुछ छोटी है। इसमें 'मोक्षमार्गस्य नेतारं भेत्तारं कर्मभूभृताम्' इत्यादि मंगलपद्य की टीका की गई है। 'सत्संख्या' इत्यादि सूत्र की टीका बिलकुल संक्षिप्त की गई है। विषय को पुष्ट करने के लिये इसमें अनेक ग्रन्थों के पद्य उद्धृत किये गये हैं। सर्वार्थसिद्धि के अनुकरण पर इसके पांचवें अध्याय में दार्शनिक चर्चा पर्याप्त मात्रा में की गई है। पर पहले अध्याय में सर्वार्थसिद्धि सरीखी दार्शनिक चर्चा नहीं है और न उतना विस्तार भी। इसमें यत्र-तत्र सर्वार्थसिद्धि के शब्द और कहीं-कहीं उनका भाव भी देखने को मिलता है। मूल को समझने के लिए यह टीका भी उपादेय है। इस टीका के प्रणेता भास्कर नन्दी हैं। इनका समय तेरहवीं शताब्दी है।

(५) तत्त्वार्थवृत्ति

तत्त्वार्थसूत्र पर १६वीं शताब्दी में श्रुतसागर ने तत्त्वार्थवृत्ति नाम की टीका लिखी। इसका दूसरा नाम श्रुतसागरी वृत्ति भी प्रसिद्ध है। इसमें 'मोक्षमार्गस्य नेतारम्' इत्यादि मंगल पद्य पर टीका लिखी गई है। यह टीका पदे-पदे सर्वार्थसिद्धि का अनुगमन करती है और कहीं-कहीं राजवार्तिक का भी। इसलिये इसका प्रमाण सर्वार्थसिद्धि से कुछ बड़ा हो गया है। 'सत्संख्या' इत्यादि सूत्र की व्याख्या सर्वार्थसिद्धि के अनुकरण पर विस्तार से लिखी गई है।

अहिंसक-परम्परा

श्री विश्वम्भरनाथ पांडे

सम्पादक : 'विश्ववाणी' इलाहाबाद

छान्दोग्य उपनिषद् में इस बात का उल्लेख मिलता है कि देवकीनन्दन कृष्ण को घोर आंगिरस ऋषि ने आत्म-यज्ञ की शिक्षा दी। इस यज्ञ की दक्षिणा तपश्चर्या, दान, ऋतुभाव, अहिंसा तथा सत्यवचन थी।

जैन ग्रंथकारों का कहना है कि कृष्ण के गुरु तीर्थंकर नेमिनाथ थे। प्रश्न उठता है कि क्या यह नेमिनाथ तथा घोर आंगिरस दोनों एक ही व्यक्ति के नाम थे? कुछ भी हो, इससे एक बात निर्विवाद है कि भारत के मध्य भाग पर वेदों का प्रभाव पड़ने से पूर्व एक प्रकार का अहिंसा-धर्म प्रचलित था।

स्थानांग सूत्र में यह बात आती है कि भरत तथा ऐरावत प्रदेशों में प्रथम और अन्तिम को छोड़कर शेष २२ तीर्थंकर चातुर्मास धर्म का उपदेश इस प्रकार करते थे—'समस्त प्राणघातों का त्याग,' सब असत्य का त्याग, सब अदत्ता दान का त्याग, सब बहिर्धा आदानों का त्याग।' इस धर्म रीति में हमें उस काल में अहिंसा की स्पष्ट छाप दिखाई देती है।

'मज्झिम निकाय' में चार प्रकार के तपों का आचरण करने का वर्णन मिलता है— तपस्विता, रूक्षता, जुगुप्सा और प्रविविक्तता। नंगे रहना, अंजलि में ही भिक्षान्न मांगकर खाना, बाल तोड़ कर निकालना, कांटों की शैया पर लेटना इत्यादि। देहदंड के प्रकारों को तपस्वित कहते थे। कई वर्ष की धूल वैसी ही शरीर पर पड़ी रहे, इसे रूक्षता कहते थे। पानी की बूंद तक पर भी दया करना इसको जुगुप्सा कहते थे। जुगुप्सा अर्थात् हिंसा का तिरस्कार। जंगल में अकेले रहने को प्रविविक्तता कहते थे।

तपश्चरण की उपरोक्त विधि से स्पष्ट है कि लोग अहिंसा तथा दया को तपस्या केन्द्र बिन्दु मानते थे।

अधिकतर पाश्चात्य पंडितों का यह मत है कि जैनों के तेईसवें तीर्थंकर पार्श्व ऐतिहासिक व्यक्ति थे। यह एक ऐतिहासिक तथ्य है कि चौबीसवें तीर्थंकर वर्धमान के १७८ वर्ष पूर्व पार्श्व तीर्थंकर का परिनिर्वाण हुआ।

यह बात भी इतिहास सिद्ध है कि वर्धमान तीर्थंकर और गौतम बुद्ध समकालीन थे। बुद्ध का जन्म वर्धमान के जन्म से कम से कम १५ वर्ष बाद हुआ होगा। इसका अर्थ यह हुआ कि बुद्ध के जन्म तथा पार्श्व के परिनिर्वाण में १९३ वर्ष का अन्तर था। निर्वाण के पूर्व लगभग ५० वर्ष तो पार्श्व तीर्थंकर उपदेश देते रहे होंगे। इस प्रकार बुद्ध के जन्म के लगभग २४३ वर्ष पार्श्व मुनि ने उपदेश देने का कार्य प्रारम्भ किया होगा। निर्ग्रन्थ श्रवणों का संघ भी उन्होंने स्थापित किया होगा।

परीक्षित राजा के राज्यकाल से कुरुक्षेत्र में वैदिक संस्कृति का आगमन हुआ। उसके बाद जन्मेजय गद्दी पर आया। उसने कुरु देश में महायज्ञ करके वैदिक धर्म का झंडा फहराया। इसी समय काशी देश में पार्श्व तीर्थंकर एक नयी संस्कृति की नींव डाल रहे थे। पार्श्व का जन्म वाराणसी नगर में अश्वसेन नामक राजा की वामा नामक रानी से हुआ। पार्श्व का धर्म अहिंसा, सत्य, अस्तेय तथा अपरिग्रह इन चार यम का था। इतने प्राचीन काल में अहिंसा को इतना सुसम्बद्धरूप देने का यह पहला ही उदाहरण है।

पार्श्व मुनि ने एक बात और भी की। उन्होंने अहिंसा को सत्य, अस्तेय और अपरिग्रह इन तीन नियमों के साथ जकड़ दिया। इस कारण पहले जो अहिंसा ऋषि-मुनियों के व्यक्तिगत आचरण तक ही सीमित थी और जनता के व्यवहार में जिसका कोई स्थान न था वह अब इन नियमों के कारण सामाजिक एवं व्यवहारिक हो गई।

पार्श्व तीर्थंकर ने तीसरी बात यह की कि अपने नवीन धर्म के प्रचार के लिए संघ बनाया। बौद्ध साहित्य से हमें इस बात का पता लगता है कि बुद्ध के समय जो संघ विद्यमान थे, उन सबों में जैन साधु-साध्वियों का संघ सबसे बड़ा था। उपयुक्त वर्णन से मालूम होगा कि ऋषि-मुनियों की तपश्चर्यारूपी अहिंसा से पार्श्व मुनि की लोकोपकारी अहिंसा का उद्गम हुआ।

लोकोपकारी अहिंसा का सबसे प्रमुख प्रभाव हमें सर्वभूत दया के रूप में दिखाई देता है। यों तो सिद्धान्ततः सर्वभूत दया को सभी मानते हैं किन्तु प्राणी रक्षा के ऊपर जितना बल जैन

परम्परा ने दिया, जितनी लगन से इसने उस विषय में काम किया, इसका परिणाम समस्त ऐतिहासिक युग में यह रहा है कि जहाँ-जहाँ और जब-जब जैनों का प्रभाव रहा वहाँ सर्वत्र आम जनता पर प्राणि-रक्षा का प्रबल संस्कार पड़ा है। यहां तक कि भारत के अनेक भागों में अपने को अजैन कहने वाले तथा जैन-विरोधी समझने वाले साधारण लोग भी जीवमात्र की हिंसा से नफरत करते लगे हैं। अहिंसा के इस सामान्य संस्कार के ही कारण अनेक वैष्णव आदि जैनेतर परम्पराओं के आचार-विचार पुरातन वैदिक परम्परा से सर्वथा भिन्न हो गये हैं। तपस्या के बारे में भी ऐसा ही हुआ है। त्यागी हो या गृहस्थी सभी जैन तपस्या के ऊपर अधिकाधिक झुकते रहे हैं। सामान्य रूप से साधारण जनता जैनों की तपस्या की ओर आदरशील रही है। लोकमान्य तिलक ने ठीक ही कहा था कि गुजरात आदि प्रान्तों में जो प्राणि-रक्षा और निरामिष भोजन का आग्रह है वह जैन परम्परा का ही प्रभाव है।

जैनधर्म का आदि और पवित्र स्थान मगध और पश्चिम बंगाल है। संभव है कि बंगाल में एक समय बौद्ध धर्म की अपेक्षा जैनधर्म का विशेष प्रचार था। परन्तु क्रमशः जैनधर्म के लुप्त हो जाने पर बौद्ध ने उसका स्थान ग्रहण किया। बंगाल के पश्चिमी हिस्से में स्थित 'सराक' जाति श्रावकों की पूर्व स्मृति कराती है। अब भी बहुत से जैन मन्दिरों के ध्वंसावशेष, जैन-मूर्तियां, शिलालेख आदि जैन स्मृतिचिन्ह बंगाल के भिन्न-भिन्न भागों में पाये जाते हैं।

प्रोफेसर सिलवन लेवी लिखते हैं कि—"बौद्धधर्म जिस तरह आकुंठित भाव से भारत के बाहर और अन्दर प्रसारित हो सका, उस तरह जैनधर्म नहीं। दोनों धर्मों का उत्पत्ति स्थान एक होते हुए भी यह परिणाम निकला कि बौद्धधर्म प्रतिष्ठित हुआ। पूर्व भारत में, और जैनधर्म पश्चिम तथा दक्षिण भारत में। बौद्धधर्म भारत के अतिरिक्त पूर्व दिशा में बर्मा, श्याम, चीन आदि देशों में फैला और उसने इन सब दिशाओं से भारत को सम्भावित राजनैतिक विपत्तियों से उन्मुक्त किया। यदि जैनधर्म भी इसी तरह भारत से बाहर पश्चिमी देशों की ओर फैला होता तो शायद भारत अनेक राजनैतिक दुर्गतियों से बच गया होता।"

इस समय जो ऐतिहासिक उल्लेख उपलब्ध हैं उनसे यह स्पष्ट है कि ईसवी सन् की पहली शताब्दी में और उसके बाद के १००० वर्षों तक जैनधर्म मध्यपूर्व के देशों में किसी-न-किसी रूप में यहूदी-धर्म, ईसाई-धर्म और इस्लाम को प्रभावित करता रहा है।

प्रसिद्ध जर्मन इतिहासलेखक वान क्रेमर के अनुसार मध्यपूर्व में प्रचलित 'समानिया' सम्प्रदाय 'श्रमण' शब्द का अपभ्रन्श है। इतिहासलेखक जी. एफ. मूर लिखता है कि—"हजरत ईसा के जन्म की शताब्दी से पूर्व ईराक, श्याम और फिलस्तीन में जैन मुनि और बौद्ध भिक्षु सैंकड़ों की संख्या में चारों ओर फैले हुए थे। पश्चिमी एशिया, मिस्र, यूनान और इथोपिया के पहाड़ों और जंगलों में उन दिनों अगणित भारतीय साधु रहते थे जो अपने त्याग और अपनी विद्या के लिए मशहूर थे। ये साधु वस्त्रों तक का परित्याग किए हुए थे।

इन साधुओं के त्याग का प्रभाव यहूदी धर्मावलम्बियों पर विशेषरूप से पड़ा। इन आदर्शों का पालन करने वालों की, यहूदियों में, एक खास जमात बन गई को 'एस्सिनी' कहलाती

थी। इन लोगों ने यहूदी धर्म के कर्मकाण्डों का पालन त्याग दिया। ये बस्ती से दूर जंगलों में या पहाड़ों पर कुटी बनाकर रहते थे। जैन मुनियों की तरह अहिंसा को अपना खास धर्म मानते थे। मांस खाने से उन्हें बेहद परहेज था। वे कठोर और संयमी जीवन व्यतीत करते थे। पैसा या धन को छूने तक से इन्कार करते थे। रोगियों और दुर्बलों की सहायता को दिनचर्या का आवश्यक अंग मानते थे। प्रेम और सेवा को पूजा-पाठ से बढ़कर मानते थे। पशुबलि का तीव्र विरोध करते थे। शारीरिक परिश्रम से ही जीवन-यापन करते थे। अपरिग्रह के सिद्धान्त पर विश्वास करते थे। समस्त सम्पत्ति को समाज की सम्पत्ति समझते थे। मिस्र में इन्हीं तपस्वियों को 'थेरापूते' कहा जाता था। थेरापूते का अर्थ है 'मौनी अपरिग्रही'।

'सियाहत नाम ए नासिर' का लेखक लिखता है कि इस्लाम धर्म के कलन्दरी तबके पर जैन धर्म का काफी प्रभाव पड़ा था। कलन्दरों की जमात परिव्राजकों की जमात थी। कोई कलन्दर दो रात से अधिक एक घर में न रहता था। कलन्दर चार नियमों का पालन करते थे—साधुता, शुद्धता, सत्यता और दरिद्रता। वे अहिंसा पर अखण्ड विश्वास रखते थे।

एक बार का किस्सा है कि दो कलन्दर मुनि बगदाद में आकर ठहरे। उनके सामने एक शुतुरमुर्ग गृह-स्वामिनी का हीरों का एक बहुमूल्य हार निगल गया। सिवाय कलन्दरों के किसी ने यह घटना देखी नहीं। हार की खोज शुरू हुई। शहर कोतवाल को सूचना दी गई। उन्हें कलन्दर मुनियों पर सन्देह हुआ। कलन्दर मुनियों से प्रश्न किये गये। मुनियों ने उस मूक पक्षी के साथ विश्वासघात करना उचित नहीं समझा। क्योंकि हार के लिए उस मूक पक्षी को मारकर उसका पेट फाड़ा जाता। सन्देह में मुनियों को बेरहमी के साथ पीटा गया। वे लोहू-लोहान हो गये किन्तु उन्होंने शुतुरमुर्ग के प्राणों की रक्षा की।

सालेहबिन अब्दुल कुद्दूस भी एक अहिंसावादी अपरिग्रही परिव्राजक मुनि था, जिसे उसके क्रान्तिकारी विचारों के कारण सन् ७८३ ईस्वी में सूली पर चढ़ा दिया गया। अकुल अतारिया, जरीर इब्न हज्म, हम्माद अजरद, यूनान बिना हारून, अली बिन खलील और बरशार अपने समय के प्रसिद्ध अहिंसावादी निर्ग्रन्थी फकीर थे।

नवमी और दसवीं शताब्दियों में अब्बासी खलीफाओं के दरबार में भारतीय पंडितों और साधुओं को आदर के साथ निमंत्रित किया जाता था। इनमें बौद्ध और जैन साधु भी रहते थे। इब्न अन नजीम लिखता है कि—"अरबों के शासनकाल में यहिया इब्न खालिद बरमकी ने खलीफा के दरबार और भारत के साथ अत्यन्त गहरा सम्बन्ध स्थापित किया। उसने बड़े अध्यवसाय और आदर के साथ भारत से हिन्दू, बौद्ध और जैन विद्वानों को निमन्त्रित किया।"

सन् ९९८ ईस्वी के लगभग भारत के बीस साधु-संन्यासियों ने मिलकर पश्चिमी एशिया के देशों की यात्रा की। इस दल के साथ चिकित्सा के रूप में एक जैन संन्यासी भी गये थे। एक बार स्वदेश लौटकर यह दल फिर पर्यटन के लिए निकल गया। २६ वर्ष के बाद जब सन् १०२४ ईसवी में यह लोग अन्तिम बार स्वदेश लौटे तब उस समुदाय के साथ सीरिया के सुविख्यात ग्रन्थ कवि अबुलअला अलमआरी का परिचय हुआ। अबुलअला का जन्म सन् ९७३ ईसवी में हुआ और

मृत्यु सन् १०५८ ईसवी में। जर्मन विद्वान वान क्रेमर ने लिखा है कि अबुलअला सभी देशों और सभी युगों के सर्वश्रेष्ठ सदाचार शास्त्रियों में से एक था।

अबुलअला जब केवल चार वर्ष के थे तभी चेचक के भयंकर प्रकोप से अन्धे हो गये थे। किन्तु उनकी ज्ञान-तृष्णा इतनी अदम्य थी कि वे स्पेन से मिस्र और मिस्र से ईरान तक अनेकों स्थान में गुरू की तलाश में ज्ञानार्थी बनकर घूमते रहे। अन्त में बगदाद में जैन-दार्शनिकों के साथ उनका ज्ञान-समागम हुआ। साधना द्वारा उन्होंने परमयोगी पद को प्राप्त किया। उनकी ईश्वर की कल्पना इस्लाम की कल्पना से नितान्त भिन्न थी। बहिश्त के लिए उनकी जरा भी ख्वाहिश नहीं थी। वे दुःखमय सत्ता को ही समस्त दुःखों का मूल मानते थे। बगदाद से सीरिया लौटकर एक पर्वत की कन्दरा में रहकर उन्होंने अति कृच्छ्तपश्चरण किया। उसके बाद उनका जीवन ही बदल गया। मद, मत्स्य, मांस, अण्डे एवं दूध तक का उन्होंने परित्याग कर दिया। उनका जीवन अहिंसामय एवं मैत्रीपूर्ण बन गया।

अबुलअला का इस बात में विश्वास नहीं था कि मुर्दे किसी दिन कब्रों में से निकलकर खड़े हो जायेंगे। बच्चा पैदा करने के कार्य को वह पाप मानता था। अपने पृथक अस्तित्व को मिटा देने को वह मनुष्य जीवन का वास्तविक लक्ष्य मानता था। वह आजीवन मनसा, वाचा, कर्मणा ब्रह्मचारी रहा। उसने अपने एक भजन में लिखा है :—

'हनीफ ठोकरें खा रहे हैं, ईसाई सब भटके हुए हैं, यहूदी चक्कर में हैं, भोगी कुराह पर बढ़े जा रहे हैं। हम नाशवान मनुष्यों में दो ही खास तरह के व्यक्ति हैं—एक बुद्धिमान शठ और दूसरे धार्मिक मूढ़।"

अबुलअला का एक दूसरा भजन है :—

"कोई वस्तु नित्य नहीं है। प्रत्येक वस्तु नाशवान है। इस्लाम भी नष्ट होने वाला है। हजरत मूसा आये, और उन्होंने अपनी पांच वक्त की नमाज चलाई। कुछ दिनों बाद कोई दूसरा मजहब आकर इसकी जगह ले लेगा। इस तरह मानव-जाति वर्तमान और भविष्य के बीच में मौत की तरह हंकाई जा रही है। यह धरती नाशवान है। जिस तरह इसका आरम्भ हुआ था उसी तरह इसका अन्त होगा। जन्म और मृत्यु हर चीज के साथ लगी हुई है। काल का प्रवाह नदी की धार के सदृश बहता चला जा रहा है। यह प्रवाह हर समय किसी-न-किसी नई वस्तु को सामने लाता रहता है।"

सभी जीव-जंतुओं यहा तक कि कीड़े-मकोड़ों के प्रति भी वे अपरिसीम करुणामय थे। इस सम्बन्ध का उनका एक भजन है—

"वृथा पशु-हिंसा में क्यों जीवन कलंकित करते हो? बेचारे वनवासी पशुओं का क्यों निष्ठुर भाव से संहार करते हो? हिंसा सबसे बड़ा कुकर्म है। बलि के पशुओं को आहार न बनाओ। अण्डे और मछलियाँ भी न खाओ। इन सब कुकर्मों से मैंने अपने अपने हाथ धो डाले हैं। वास्तव में आगे जाकर न बधिक रहेगा और न बध्य। काश कि बाल पकने से पहले मैंने इन बातों को समझ लिया होता।"

इसी प्रकार जैन-दर्शन ने जलालुद्दीन रूमी एवं अन्य अनेक ईरानी सूफियों के विचारों को प्रभावित किया। अहिंसा सिद्धान्त मानव-जीवन का सर्वोच्च सिद्धान्त है। प्रत्येक प्रगतिशील आत्मा उससे आकृष्ट हुए बिना नहीं रह सकती। अनेक कारणों से, जिनके विस्तार में जाने की यहाँ आवश्यकता नहीं है, जैन जीवन-धारा व्यापक रूप से मानव-समाज को अधिक समय तक परिप्लावित नहीं कर सकी। उसके अनुगामी स्वयं अनाचार और मिथ्याचार में फँस गये। आज हमें फिर अहिंसा की उस परम्परा में नई प्राण-शक्ति का संचार करना होगा। गांधीजी ने अपने जीवन का अर्घ्य देकर एक बार उसे देदीप्यमान कर दिया। किन्तु हमें निरन्तर साधनामय जीवन से उस अग्नि को प्रज्वलित कर अपनी प्राण शक्ति का प्रमाण देना होगा। सत्य और अहिंसा के आदर्श को व्यवहार में प्रतिष्ठित करने के सहजमार्ग को न स्वीकार कर यदि केवल वाक्य, तर्क और प्रमाण चातुर्य का मार्ग ग्रहण किया जायगा, तो विश्वधर्म के महाकाल के विधान में जैनधर्म के लिए कोई आशा नहीं।

"यदि जिन-मानितधर्म अनेक मिथ्या आडम्बरों, आर्यहीन आचारों आदि को त्यागकर दया, मैत्री, उदारता, शुद्ध जीवन, आन्तरिक और बाह्य प्रकाश और प्रेम की उदार तपस्या द्वारा अपने में अन्तर्निहित जागृत जीवन का परिचय दे सके तो सब अभियोग और आरोप स्वयं शांत हो जायेंगे और इससे जैन स्वयं धन्य होंगे तथा समस्त मानव-सभ्यता को भी वे धन्य करेंगे।"

संस्कृत साहित्य के विकास में जैन विद्वानों का सहयोग

डा० मंगलदेव शास्त्री, एम. ए., पीएच. डी.

भारतीय विचारधारा की समुन्नति और विकास में अन्य आचार्यों के समान जैन आचार्यों तथा ग्रन्थकारों का जो बड़ा हाथ रहा है उससे आजकल की विद्वन्मण्डली साधारणतया परिचित नहीं है। इस लेख का उद्देश्य यही है कि उक्त विचारधारा की समृद्धि में जो जैन विद्वानों ने सहयोग दिया है उसका कुछ दिग्दर्शन कराया जाय। जैन विद्वानों ने प्राकृत, अपभ्रंश, गुजराती, हिन्दी, राजस्थानी, तेलगु, तमिल आदि भाषाओं के साहित्य की तरह संस्कृत भाषा के साहित्य की समृद्धि में बड़ा भाग लिया है। सिद्धान्त, आगम, न्याय, व्याकरण, काव्य, नाटक, चमचम्पू, ज्योतिष, आयुर्वेद, कोष, अलंकार, छन्द, गणित, राजनीति, सुभाषित आदि के क्षेत्र में जैन लेखकों की मूल्यवान संस्कृत रचनाएँ उपलब्ध हैं। इस प्रकार खोज करने पर जैन संस्कृत साहित्य विशाल रूप में हमारे सामने उपस्थित होता है। उस विशाल साहित्य का पूर्ण परिचय कराना इस अल्पकाय लेख में संभव नहीं है। यहां हम केवल उन जैन रचनाओं की सूचना देना चाहते हैं जो महत्वपूर्ण हैं। जैन सैद्धान्तिक तथा आरंभिक ग्रन्थों की चर्चा हम जान-बूझकर छोड़ रहे हैं।

जैन न्याय—

जैन न्याय के मौलिक तत्वों को सरल और सुबोधरीति से प्रतिपादन करने वाले

मुख्यतया दो ग्रन्थ हैं। प्रथम अभिनव धर्मभूषणयति विरचित न्यायदीपिका, दूसरा माणिकनन्दि का परीक्षामुख, न्यायदीपिका में प्रमाण और नय का बहुत ही स्पष्ट और व्यवस्थित विवेचन किया गया है। यह एक प्रकरणात्मक संक्षिप्त रचना है जो तीन प्रकाशों में समाप्त हुई है।

गौतम के न्यायसूत्र और दिग्नाग के न्यायप्रवेश की तरह माणिक्यनन्दि का 'परीक्षामुख' जैन न्याय का सर्वप्रथम सूत्र ग्रन्थ है। यह छः परिच्छेदों में विभक्त है और समस्त सूत्रसंख्या २०७ है। यह नवमी शती की रचना है और इतनी महत्वपूर्ण है कि उत्तरवर्ती ग्रन्थकारों ने इस पर अनेक विशाल टीकाएं लिखी हैं। आचार्य प्रभाचन्द (७८०-१०६५ ई०) ने इस पर बारह हजार श्लोक परिमाण 'प्रमेयकमलमार्तण्ड' नामक विस्तृत टीका लिखी है। १२वीं शती के लघुअनन्तवीर्य ने इसी ग्रन्थ पर एक 'प्रमेयरत्नमाला' नामक विस्तृत टीका लिखी है। इसकी रचनाशैली इतनी विशद और प्रांजल है और इसमें चर्चित किया गया प्रमेय इतने महत्व का है कि आचार्य हेमचंद्र ने अनेक स्थलों पर अपनी 'प्रमाणमीमांसा' में इसका शब्दशः और अर्थशः अनुकरण किया है। लघु अनन्तवीर्य ने माणिकनन्दि के परीक्षामुख को अकलंक के वचनरूपी समुद्र के मन्थन से उद्भूत न्यायविद्यामृत[1] बतलाया है।

उपर्युक्त दो मौलिक ग्रन्थों के अतिरिक्त अन्य प्रमुख न्यायग्रन्थों का परिचय देना भी यहां अप्रासंगिक न होगा। अनेकांतवाद को व्यवस्थित करने का सर्वप्रथम श्रेय स्वामी समन्तभद्र, (द्वि० या तृ० शदी ई०) और सिद्धसेन दिवाकर (छठी शती ई०) को प्राप्त है। स्वामी समन्तभद्र की आसमीमांसा और युक्त्यनुशासन महत्वपूर्ण कृतियां है। आप्तमीमांसा में एकान्तवादियों के मन्तव्यों की गम्भीर आलोचना करते हुए आप्तकी मीमांसा की गई है और युक्तियों के साथ स्याद्वाद सिद्धान्त की व्याख्या की गई है। इसके ऊपर भट्टाकलंक (६२०-६८०) का अष्टशती विवरण उपलब्ध है तथा आचार्य विद्यानंदि (९वीं श० ई०) का 'अष्टसहस्री' नामक विस्तृत भाष्य और वसुनन्दिकी (देवागम वृत्ति) नामक टीका प्राप्य है। युक्त्यनुशासन में जैन शासन की निर्दोषिता संयुक्तिक सिद्ध की गई है। इसी प्रकार सिद्धसेनदिवाकर द्वारा अपनी स्तुति-प्रधान बतीसियों में और महत्वपूर्ण सम्मति तर्कभाष्य में बहुत ही स्पष्ट रीति से तत्कालीन प्रचलित एकान्तवादी का स्याद्वाद सिद्धान्त के साथ किया गया समन्वय दिखलाई देता है।

भट्टाकलंकदेव जैन न्याय के प्रस्थापक माने जाते हैं और इनके पश्चाद्भावी समस्त जैनतार्किक इनके द्वारा व्यवस्थित न्यायमार्ग का अनुसरण करते हुए ही दृष्टिगोचर होते हैं। इनकी अष्टशती, न्यायविनिश्चय, सिद्धिविनिश्चय, लघीस्त्रय और प्रमाणसंग्रह बहुत ही महत्वपूर्ण दार्शनिक रचनायें हैं। इनकी समस्त रचनाएं जटिल और दुर्बोध हैं। परन्तु वे इतनी गम्भीर हैं कि उनमें 'गागर में सागर' की तरह पदे-पदे जैन दार्शनिक तत्वज्ञान भरा पड़ा है।

आठवीं शती के विद्वान आचार्य हरिभद्र की 'अनेकांत जयपताका' तथा षट्दर्शन समुच्च

१ — 'अकलंकवचोम्भोधेरुद्ध्रे येन धीमता।
न्यायविद्यामृतं तस्मै नमो माणिक्यनन्दिने ।।' —प्रमेयरत्नमाला

सूक्ष्मचिन्तन और सारपूर्ण कृतियां हैं। ईसा की नवीं शती के प्रकाण्ड आचार्य विद्यानन्दन के अष्टसहस्री, आप्तपरीक्षा और तत्वार्थश्लोकवार्तिक, आदि रचनाओं में भी एक विशाल किन्तु आलोचनापूर्ण विचारराशि बिखरी हुई दिखलाई देती है। इनकी प्रमाणपरीक्षा नामक रचना में विभिन्न प्रामाणिक मान्यताओं की आलोचना की गई है और अकलंक सम्मत प्रमाणों का संयुक्तिक समर्थन किया गया है। सुप्रसिद्ध तार्किक प्रभाचन्द्र आचार्य ने अपने दीर्घकाय प्रमेयकमल मार्तण्ड और न्यायकुमुदचन्द्र में जैन प्रमाणशास्त्र से सम्बन्धित समस्त विषयों की विस्तृत और व्यवस्थित विवेचना की है तथा ग्यारहवीं शती के विद्वान अभयदेव ने सिद्धसेन दिवाकर कृत सन्मतितर्क की टीका के व्याज से समस्त दार्शनिक वादों का संग्रह किया है। बारहवीं शती के विद्वानवादी देवराज सूरिका स्याद्वादरत्नाकर भी एक महत्वपूर्ण ग्रन्थ है तथा कलिकाल सर्वज्ञ आचार्य हेमचन्द्र की प्रमाणमीमांसा भी जैन न्याय की एक अनूठी रचना है।

उक्त रचनाएं नव्य न्याय की शैली से एक में अस्पष्ट है। हां, विमलदास की सप्तभंगतरंगिणी और वाचक यशोविजयजी द्वारा लिखित अनेकान्तव्यवस्था, शास्त्रवार्ता समुच्चय तथा अष्टसहस्री की टीका अवश्य ही नव्य न्याय की शैली से लिखित प्रतीत होती हैं।

व्याकरण—आचार्य पूज्यपाद (वि० छठी श०) का जैनेन्द्रव्याकरण सर्वप्रथम जैनव्याकरण माना जाता है। महाकवि धनंजय (८वीं शती) ने इसे अपश्चिमरत्न[1] बतलाया है? इस ग्रन्थ पर निम्नलिखित टीकाएं उपलब्ध हैं—

(१) अभयनिन्दकृत महावृत्ति (२) प्रभाचन्द्रकृत शब्दाम्भोजभास्कर (३) आचार्य श्रुतकीर्तिकृत पंचवस्तुप्रक्रिया (४) पं० महाचन्द्रकृत लघुजैनेन्द्र।

प्रस्तुत जैन व्याकरण के दो प्रकार के सूत्रपाठ पाये जाते हैं। प्रथम सूत्रपाठ के दर्शन उपरिलिखित चार टीकाग्रन्थों में होते हैं और दूसरे सूत्रपाठ के शब्दार्णवचन्द्रिका तथा शब्दार्णवप्रक्रिया में। पहले पाठ में ३००० सूत्र हैं। यह सूत्रपाठ पाणिनीय की सूत्रपद्धति के समान है। इसे सर्वांग सम्पन्न बनाने की दृष्टि से महावृत्ति में अनेक वार्तिक और उपसंख्याओं का निवेश किया गया है। दूसरे सूत्रपाठ में ३७०० सूत्र हैं। पहले सूत्रपाठ की अपेक्षा इसमें ७०० सूत्र अधिक हैं और इसी कारण इसमें एक भी वार्तिक आदि का उपयोग नहीं हुआ है। इस संशोधित और परिवर्द्धित संस्करण का नाम शब्दार्णव है। इसके कर्त्ता गुणनन्दि (वि० १० श०) आचार्य हैं। शब्दार्णव पर भी दो टीकाएँ उपलब्ध हैं :—(१) शब्दार्णवचन्द्रिका और (२) शब्दार्णव प्रक्रिया। शब्दार्णवचन्द्रिका सोमदेव मुनि ने वि० सं० १२६२ में लिखकर समाप्त की है और शब्दार्णवप्रक्रियाकार भी बारहवीं[2] शती चारुकीर्ति पण्डिताचार्य अनुमानित किये गये हैं।

महाराज अमोघवर्ष प्रथम के समाकालीन शाकटायन या पाल्यकीर्ति का शाकाटायन

१—प्रमाणकमलंकस्य पूज्यपादस्य लक्षणं।
धनंजयकवेः काव्यरत्नत्रयमपश्चिमम्॥ —धनंजयनाममाला

२—जैन साहित्य और इतिहास (पं० नाथराम प्रेमी) का 'देवनन्दि और उनका जैनेन्द्रव्याकरण' शीर्षक निबन्ध।

(शब्दानुशासन) व्याकरण भी महत्त्वपूर्ण रचना है। प्रस्तुत व्याकरण पर निम्नांकित सात टीकाएं उपलब्ध हैं :—

(१) **अमोघवृत्ति**—शाकाटायन के शब्दानुशासन पर स्वयं सूत्रकार द्वारा लिखी गई यह सर्वाधिक विस्तृत और महत्त्वपूर्ण टीका है। राष्ट्रकूट नरेश अमोघवर्ष को लक्ष्य में रखते हुए ही इसका उक्त नामकरण किया गया प्रतीत होता है। (२) शाकटायनन्यास अमोघवृत्ति पर प्रभाचन्द्राचार्य द्वारा विरचित यह न्यास है। इसके केवल दो अध्याय ही उपलब्ध हैं। (३) चिंतामणि टीका (लघीयसीवृत्ति) इसके रचयिता यक्षवर्मा हैं और अमोघवृत्ति को संक्षिप्त करके ही इसकी रचना की गयी है। (४) मणिप्रकाशिका—इसके कर्ता अजितसेनाचार्य हैं। (५) प्रक्रियासंग्रह—भट्टोजीदीक्षित की सिद्धान्तकौमुदी की पद्धति पर लिखी गयी यह प्रक्रिया टीका है, इसके कर्ता अभयचन्द आचार्य हैं। (६) शाकटायन टीका —भावसेन त्रैविद्यदेव ने इसकी रचना की है। यह कातन्त्ररूपमाला टीका के रचयिता हैं। (७) रूपसिद्धि—लघुकौमुदी के समान यह एक अल्पकाय टीका है। इसके कर्ता दयापाल (वि० ११वीं श०) मुनि है।

आचार्य हेमचन्द्र का सिद्धि हेम शब्दानुशासन भी महत्त्वपूर्ण रचना है। यह इतनी आकर्षक रचना रही है कि इसके आधार पर तैयार किये ये अनेक व्याकरण ग्रन्थ उपलब्ध होते हैं। इनके अतिरिक्त अन्य अनेक जैन व्याकरण ग्रन्थ जैनाचार्यों ने लिखे हैं और अनेक जैनेतर व्याकरण ग्रन्थों पर महत्त्वपूर्ण टीकाएं भी लिखी हैं। पूज्यपाद ने पाणिनीय व्याकरण पर 'शब्दावतार' नामक एक न्यास लिखा था जो सम्प्रति अप्राप्य है। और जैनाचार्यों द्वारा सारस्वत व्याकरण पर लिखित विभिन्न बीस टीकाएं आज भी उपलब्ध हैं।[1]

शर्ववर्म का कातंत्रव्याकरण भी एक सुबोध और संक्षिप्त व्याकरण है तथा इसपर भी विभिन्न चौदह टीकाएँ प्राप्त हैं।

अलंकार

अलंकार विषय में भी जैनाचार्यों की महत्त्वपूर्ण रचनाएं उपलब्ध हैं। हेमचन्द्र और वाग्भट्ट के काव्यानुशासन तथा वाग्भट्ट का वाग्भट्टालंकार महत्त्व की रचनाएं हैं। अजितसेन आचार्य की अलंकार चिन्तामणि और अमरचन्द्र की काव्य कल्पलता बहुत ही सफल रचनायें हैं।

जैनेतर अलंकार शास्त्रों पर भी जैनाचार्यों की कतिपय टीकाएं पायी जाती हैं। काव्यप्रकाश के ऊपर भानुचन्द्रगणि जयनन्दिसूरि और यशोविजयगणि तपागच्छ की टीकाएँ उपलब्ध हैं। इसके सिवा दण्डी के काव्य-दश पर त्रिभुवनचन्द्रकृत टीका पायी जाती है। और रुद्र के काव्यालंकार पर नेमिसाधु (११२५ वि० सं०) के टिप्पण भी सारपूर्ण हैं।

नाटक—

नाटकीय साहित्य सृजन में भी जैन साहित्यकारों ने अपनी प्रतिभा का उपयोग किया है। उभय-भाषा-कवि-चक्रवर्ति हस्तिमल्ल (१३वीं श०) के विक्रांतकोरव, जयकुमार सुलोचना,

---

१—जिनरत्नकोश (भ० ओ० रि० इ० पूना)

जिनरत्नकोश (भ० ओ० रि० इ०, पूना)।

सुभद्राहरण और अंजनापवनंजय उल्लेखनीय नाटक है। आदि के दो नाटक महाभारतीय कथा के आधार पर रचे गये हैं और उत्तर के दो रामकथा के आधार पर। हेमचन्द्र आचार्य के शिष्य रामचन्द्रसूरि के अनेक नाटक उपलब्ध हैं जिसमें नवविवाह, सत्यहरिश्चन्द्र, कौमुदी मित्रानंद, राघवाम्युदय, निर्भयभीमव्ययायोग आदि नाटक बहुत ही प्रसिद्ध हैं।

श्रीकृष्ण मिश्र के 'प्रबोध चन्द्रोदय' की पद्धति पर रूपकात्मक शैली में लिखा गया यशपाल (१३वीं शती०) का 'मोहराज पराजय' एक सुप्रसिद्ध नाटक है। इसी शैली में लिखे गये वादिचन्द्र सूर कृत ज्ञानसूर्योदय तथा यशश्चन्द्रकृत मुदितकुमुदचंद्र असाम्प्रदायिक नाटक हैं। इनके अतिरिक्त जयसिंह का हम्मीरमद-मर्दन नामक एक ऐतिहासिक नाटक भी उपलब्ध है।

काव्य–

जैन काव्य-साहित्य भी अपने ढंग का निराला है। काव्य-साहित्य से हमारा आशय गद्य-काव्य, महाकाव्य, चरित्रकाव्य, चम्पूकाव्य, चित्रकाव्य और दूतकाव्यों से है। गद्यकाव्य में तिलक-मंजरी (९७० ई०) और ओडयदेव। वादीभसिंह (११वीं सदी) की गद्यचिन्तामणि महाकवि बाण-कृत कादम्बरी के जोड़ की रचनाएं हैं।

महाकाव्य में हरिश्चन्द्र का धर्मशर्माभ्युदय, वीरनन्दि का चन्द्रप्रभचरित, अभयदेव का जयन्तविजय, अर्हद्दास का मुनिसुव्रत काव्य, वादिराज का पार्श्वनाथ चरित्र, वाग्भट्ट का नेमिनिर्वाण काव्य, मुनिचन्द का शान्तिनाथचरित और महासन का प्रद्युम्नचरित्र, आदि उत्कृष्ट कोटि के महाकाव्य तथा काव्य हैं। चरित्र काव्य में जटासिंहनन्दि का वरंगचरित्र, रायमल्ल का जम्बूस्वामी-चरित्र, असग कवि का महावीर चरित्र, आदि उत्तम चरित काव्य माने जाते हैं।

चम्पू काव्य में आचार्य सोमदेव का यशस्तिलकचम्पू (वि० १०१६) बहुत ही ख्याति-प्राप्त रचना है। अनेक विद्वानों के विचार में उपलब्ध संस्कृत साहित्य में इसके जोड़ का एक भी चम्पू काव्य नहीं। हरिश्चन्द्र महाकवि का जीवन्धरचम्पू तथा अर्हद्दास का पुरुदेवचम्पू (१३वीं शती) की उच्चकोटि की रचनाएं हैं। चित्रकाव्य में महाकवि धनंजय (८वीं श०) का द्विसन्धान, शान्तिराज का पंचसंधान, हेमचन्द तथा मेघविजयगणी के सप्तसन्धान, जगन्नाथ (१६९९ वि० सं०) का चतुर्विंशति सन्धान तथा जिनसेनाचार्य का पार्श्वभ्युदय उत्तम कोटि के चित्रकाव्य हैं।

दूत-काव्य में मेघदूत की पद्धति पर लिखे गये वादिचन्द्र का पवनदूत, चारित्रसुन्दर का शीलदूत, विनयप्रभ की चन्द्रदूत, विक्रम का नेमिदूत और जयतिलकसूरि का धर्मदूत उल्लेखनीय दूत-काव्य है।

इनके अतिरिक्त चन्द्रप्रभसूरि प्रभाव के चरितमेरुतुंग कृत प्रबन्ध चिन्तामणि (१३०६ ई०), राजशेखर का प्रबन्धकोष (१३४२ ई०) आदि प्रबन्धकाव्य ऐतिहासिक दृष्टि से ही बड़े ही महत्त्वपूर्ण हैं।

छन्द शास्त्र—

छन्द शास्त्र पर भी जैन विद्वानों की मूल्यवान रचनाएँ उपलब्ध हैं। जयकीर्ति (११९२) का स्वोपज्ञ छन्दोऽनुशासन तथा आचार्य हेमचन्द्र का स्वोपाज्ञ छन्दोऽनुशासन महत्व की रचनाएँ

हैं। जयकीर्ति ने अपने छन्दोऽनुशासन के अन्त में लिखा है कि उन्होंने माण्डव्य, पिंगल, जनाश्रय, शैतव, श्रीपूज्यपाद और जयदेव आदि के छन्दशास्त्रों के आधार पर अपने छन्दोऽनुशासन की रचना की है।[1] वाग्भट का छन्दोऽनुशासन भी इसी कोटि की रचना है और इस पर इनकी स्वोपज्ञ टीका भी है। राजशेखर सूरि (११४९ ई०) का छन्दःशेखर और रत्नमंजूषा भी उल्लेखनीय रचनाएँ हैं।

इसके अतिरिक्त जैनेतर छन्दः शास्त्र पर भी जैनाचार्यों की टीकाएँ पायी जाती हैं। केदारभट्ट के वृत्तरत्नाकर पर सोमचन्द्रगणी, क्षेमहंसगणी, सभयसुन्दर उपाध्याय आसड और मेरुसुन्दर आदि की टीकाएँ उपलब्ध हैं। इसी प्रकार कालिदास के श्रुतबोध पर भी हर्षकीर्ति और कांतिविजयगणी की टीकाएँ प्राप्त हैं। संस्कृत भाषा के छन्द-शास्त्रों के सिवा प्राकृत और अपभ्रंश भाषा के छन्दशास्त्रों पर भी जैनाचार्यों की महत्वपूर्ण टीकाएँ उपलब्ध हैं।

कोष—

कोष के क्षेत्र में भी जैन साहित्यकारों ने अपनी लेखनी का यथेष्ट कौशल प्रदर्शित किया है। अमरसिंहगणीकृत अमरकोष संस्कृतज्ञ समाज में सर्वोपयोगी और सर्वोत्तम कोष माना जाता है। उसका पठन-पाठन भी अन्य कोषों की अपेक्षा सर्वाधिक रूप में प्रचलित है। धनंजयकृत धनंजयनाममाला दो सौ श्लोकों की अल्पकाय रचना होने पर भी बहुत ही उपयोगी है। प्राथमिक कक्षा के विद्यार्थियों के लिए जैन समाज में इसका खूब प्रचलन है।

अमरकोष की टीका (व्याख्यासुधाख्या) की तरह इस पर भी अमरकीर्ति का एक भाष्य उपलब्ध है। इस प्रसंग में आचार्य हेमचन्द्रविरचित अभिधानचिन्तामणि नाममाला एक उल्लेखनीय कोशकृति है। श्रीधरसेन का विश्वलोचनकोष, जिसका अपर नाम मुक्तावली है एक विशिष्ट और अपने ढंग की अनूठी रचना है। इसमें ककारांतादि व्यंजनों के क्रम से शब्दों की संकलना की गयी है जो एकदम नवीन है।

मन्त्रशास्त्र—

मन्त्रशास्त्र पर भी जैन रचनाएँ उपलब्ध हैं। विक्रम की ११वीं शती के अन्त और बारहवीं के आदि के विद्वान् मल्लेषण का 'भैरवपद्मावतिकल्प, सरस्वतीमन्त्रकल्प और ज्वालामालिनीकल्प महत्वपूर्ण रचनाएँ हैं। भैरव पद्मावतिकल्प में[2] मन्त्रोलक्षण, सकलीकरण, देव्यर्चन, द्वादशरंजिकामंत्रोद्वार, क्रोधादिस्तम्भन, अंगनाकर्षण, वशीकरणयन्त्र, निमित्तवशीकरणतन्त्र और गारुडमन्त्र नामक दस अधिकार हैं तथा इस पर बन्धुषेण का एक संस्कृत विवरण भी उपलब्ध

१—मॉडव्य-पिंगलज्जनाश्रय-सैतवाख्य।
श्री पूज्यपादजयदेव-बुधादिकानां।
छन्दांसि वीक्ष्य विविधानपि सत्प्रयोगान,
छन्दोनुशासनमिदं जयकीर्तिनोक्तम् ॥

२—इस ग्रन्थ को श्री साराभाई मणिलाल नवाब अहमदाबाद ने सरस्वतीकल्प तथा अनेक परिशिष्टों में गुजराती अनुवाद सहित प्रकाशित किया है।

हैं। ज्वालामालिनी कल्प नामक एक अन्य रचना इन्द्रनन्दि की भी उपलब्ध है जो शक सं० ८६१ में मान्यखेट में रची गयी थी। विद्यानुवाद या विद्यानुशासन नामक एक और भी महत्वपूर्ण रचना है जो २४ अध्यायों में विभक्त है। वह मल्लिषेणाचार्य की कृति बतलायी जाती है परन्तु अंत:-परीक्षण से प्रतीत होता है कि इसे मल्लिषेण के किसी उत्तरवर्ति विद्वान् ने ग्रंथित किया है। इनके अतिरिक्त हस्तिमल्ल का विद्यानुवादांग तथा भक्तामरस्तोत्र मन्त्र भी उल्लेखनीय रचनाएँ हैं।

सुभाषित और राजनीति–

सुभाषित और राजनीति से सम्बन्धित साहित्य के सृजन में जैन लेखकों[1] ने पर्याप्त योगदान किया है। इस प्रसंग में आचार्य अमितगतिका सुभाषित रत्नसन्दोह (१०५० वि०) एक सुन्दर रचना है। इसमें सांसारिकविषयनिराकरण, मायाहंकारनिराकरण, इन्द्रियनिग्रहोपदेश, स्त्रीगुणदोष विचार, देवनिरूपण आदि बत्तीस प्रकरण हैं। प्रत्येक प्रकरण बीस-बीस, पच्चीस-पच्चीस पद्यों में समाप्त हुआ है। सोमप्रभ की सूक्तिमुक्तावली, सकलकीर्ति की सुभाषितावली, आचार्य शुभचन्द्र का ज्ञानार्णव, हेमचन्द्राचार्य का योगशास्त्र आदि उच्चकोटि के सुभाषित ग्रन्थ हैं। इनमें से अन्तिम दोनों ग्रन्थों में योगशास्त्र का महत्वपूर्ण निरूपण है।

राजनीति में सोमदेवसूरि का, नीतिवाक्यामृत बहुत ही महत्त्वपूर्ण रचना है। सोमदेवसूरि ने अपने समय में उपलब्ध होने वाले समस्त राजनैतिक और अर्थशास्त्रीय साहित्य का मन्थन करके इस सारवत नीतिवाक्यामृत का सृजन किया है। अत: यह रचना अपने ढंग की मौलिक और मूल्यवान है।

आयुर्वेद–

आयुर्वेद के सम्बन्ध में भी कुछ जैन रचनाएं उपलब्ध हैं। उग्रादित्य का कल्याणकारक, पूज्यपादवैद्यसार अच्छी रचनाएं हैं। पण्डितप्रवर आशाधर (१३वीं सदी) ने वाग्भट्ट या चरक संहिता पर एक अष्टांग हृदयोद्योतिनी नामक टीका लिखी थी परन्तु सम्प्रति वह अप्राप्य है। चामुण्डरायकृत नरचिकित्सा, सल्लिषेणकृत बालग्रह चिकित्सा, तथा सोमप्रभाचार्य का रसप्रयोग भी उपयोगी रचनाएं हैं।

कला और विज्ञान—

जैनाचार्यों ने वैज्ञानिक साहित्य के ऊपर भी अपनी लेखनी चलाई। हंसदेव (१३वीं सदी) का मृगपक्षीशास्त्र एक उत्कृष्टकोटि की रचना मालूम होती है। इसमें १७१२ पद्य हैं और इसकी एक पाण्डुलिपि त्रिवेन्द्रम के राजकीय पुस्तकागार में सुरक्षित है। इसके अतिरिक्त चामुण्डरायकृत कूपजलज्ञान वनस्पतिस्वरूप, विधानादि परीक्षाशास्त्र, धातुसार, धनुर्वेद रत्नपरीक्षा, विज्ञानार्णव आदि भी उल्लेखनीय वैज्ञानिक रचनाएं हैं।

ज्योतिष, सामुद्रिक तथा स्वप्नशास्त्र——

ज्योतिषशास्त्र के सम्बन्ध में जैनाचार्यों की महत्वपूर्ण रचनाएं उपलब्ध हैं। गणित

१—जैन साहित्य और इतिहास (श्री पं० नाथूराम जी प्रेमी, पृ० ४१५)

और फलित दोनों भागों के ऊपर ज्योतिषग्रन्थ पाये जाते हैं। जैनाचार्यों ने गणित ज्योतिष सम्बन्धी विषय का प्रतिपादन करने के लिए पाटीगणित, बीजगणित, रेखागणित, त्रिकोणमिति, प्रतिभागणित, शृंगोन्नतिगणित, पंचांगनिर्माण गणित, जन्मपत्रनिर्माणगणित, ग्रहयुति उदयास्तसम्बन्धी गणित एवं यन्त्रादि सम्बन्धित गणित का प्रतिपादन किया है।

जैन गणित के विकास का स्वर्णयुग छठवीं से बारहवीं तक है। इस बीच अनेक महत्वपूर्ण गणित ग्रन्थों का ग्रंथन हुआ है। इसके पहले कोई स्वतन्त्र रचना उपलब्ध नहीं है। कतिपय आगमिक ग्रन्थों में अवश्य गणितसम्बन्धी कुछ बीजसूत्र जाते हैं।

सूर्यप्रज्ञप्ति तथा चन्द्रप्रज्ञप्ति प्राकृत की रचनाएं होने पर भी जैन गणित की अत्यन्त महत्वपूर्ण तथा प्राचीन रचनाएं हैं। इनमें सूर्य और चन्द्र से तथा इनके ग्रह तारामण्डल आदि से सम्बन्धित गणित तथा विद्वानों का उल्लेख दृष्टिगोचर होता है। इनके अतिरिक्त महावीराचार्य (९वीं सदी) का गणितसार संग्रह, श्रीधरदेव का गणितशास्त्र, हेमप्रभसूरि का त्रैलोक्यप्रकाश और सिंहतिलकसूरि का गणिततिलक आदि ग्रन्थ सारगर्भित और उपयोगी है।

फलित ज्योतिष से सम्बन्धित होराशास्त्र, संहिताशास्त्र, मुहूर्तशास्त्र, सामुद्रिकशास्त्र, प्रश्नशास्त्र और स्वप्नशास्त्र आदि पर भी जैनाचार्यों ने अपनी रचनाओं में पर्याप्त प्रकाश डाला है और मौलिक ग्रन्थ भी दिये हैं। इस प्रसंग में चन्द्रसेन मुनि का केवलज्ञान होरा, दामनंदिके शिष्य भट्टवासरि का आयज्ञानतिलक, चन्द्रोन्मीलनप्रश्न, भद्रबाहुनिमित्तशास्त्र, अर्धकाण्ड, मुहूर्तदर्पण, जिनपालगणी का स्वप्नचितामणि आदि उपयोगी ग्रन्थ हैं।

जैसा ऊपर कहा गया है, इस लेख में संस्कृत साहित्य के विषय में जैनविद्वानों के मूल्यवान सहयोग का केवल दिग्दर्शन ही कराया गया है। संस्कृत साहित्य के प्रेमियों को उन आदरणीय जैन विद्वानों का कृतज्ञ ही होना चाहिए। हमारा यह कर्त्तव्य है कि हम हृदय से इस महान् साहित्य से परिचय प्राप्त करें और यथासम्भव उसका संस्कृत समाज में प्रचार करें।

Ahimsa Ideology and Family Planning

Dr. Bool Chand
Director, Ahimsa Shodh Peeth.

[Doctor Boolchand the Ex-Director of Ahimsa Shodh Peeth and professor Panjab University, Chandigarh, retired I. C. S. He has done the work of highest level by spreading the message of Indian Culture in the world. The most important and extraordinary work which has been done in the Ahimsa Shodh Peeth is due to him and his efforts.

The essay on Ahimsa Ideology and Family Planning written by him is really the work of the great intelligence. The country is facing the problems of rising prices now-a-days. He has correlated Ahimsa Ideology with family planning. He has laid great emphasis not on the birth control but on the self-control. The increasing number of population can only be checked by the self-control. This check on the increasing number of the population is necessary to observe the goal of the Five-Year Plans He also lays great emphasis on the chastity of the soul, body and heart which has been discussed at great length by Mahatma Gandhi.]

Being based upon reason and scientific method, Ahimsa ideology naturally relies on Planning as a proper procedure in all human activities. Planning implies a conscious attempt to work out adequate means to reach desired ends.

In regard to the size of the population, for instance, the Government of a country may at any time follow a deliberate policy of population control; but in the case of individual men and women also, it is the view of Ahimsa thinkers that a Policy of family planning is inescapably required. Family planning involves the estimating of income and expenditure for husband, wife and children for a year or more in advance, and it also involves the well-being of the family for many years into the future. Among other things, this involves the planning of the size of the family.

More than other law-givers, Ahimsa philosophers have laid insistent emphasis upon two things in particular. First, that married persons must understand that the begetting of progeny imposes a fundamental and inescapable responsibility upon the parents not merely for its proper feeding, its bringing up, its education, but also for helping it to develop into useful citizens of the community who may be capable of contributing to the common well-being. Secondly, that married persons must always try to consciously regulate the number of their progeny by voluntary moral restraint. In respect of the first thing, Ahimsa thinkers feel that it would be justified for State authority to take

action to bring home to the citizens their fundamental responsibility towards their progeny by recourse to even punitive measures.

Ahimsa thinkers have included the 'sheel' or vow of chastity for married persons in their scheme of ethical conduct. The Jains, the Buddhists and the Hindus in India as well as Christians in the West have laid down the principle of monogamy, and have further laid down with precision and specific detail the rules of chastity which must be followed by married persons. Mahavira, Moses, the Buddha, Confucius, Socrates, Aristotle and Christ, all Ahimsa thinkers in the world have further prescribed a code of personal sexual ethic. By some this code of personal sexual ethic has been invested with a divine or semi-divine authority. Each Ahimsa thinker has formulated for this own day and for his own community a criterion by which human conduct may be regulated and controlled. Ahimsa sociologists also have formulated a social sexual ethic on the basis of metaphysics, psychology and physiology. Realising that man is naturally polygamous and woman naturally polyandrous, and realising further that human society will not prosper or make progress unless a check is placed upon the promiscous psychological impulses of men and women, at first the institution of marriage and eventually monogamous marriage was invented as a form of this check.

This personal and social ethic his naturally differed from age to age. But certain elements of stability have been present in it throughout, and these are more or less permanent. These elements may be summarised in a series of descending prohibitions. All forms of sexual indulgence have been disallowed to those who have a conviction in favour of entire continence. To those who have entered into the bond of marriage, sexuality outside marriage has been forbidden. Over-indulgence has been regarded as an evil and a sin for any class of persons indulging at all. For the immature and the youthful indulgence has been recommended to be postponed.

Ahimsa thinkers have never been in favour of the expedient

called 'Birth Control', which has been with us secretly for a long time and which has become a public policy in recent years. It consists in the use of chemical and mechanical means for the prevention of contraception. Ahimsa thinkers have been opposed to this expedient mainly because they have felt that by the use of contraceptives inordinate sexual indulgence inside as well as out of marriage gets facilitated. From the physiological point of view inordinate sexual indulgence is most likely to lead to the speedy decline to the human race. The subject has been discussed at great length by Mahatma Gandhi in his weekly writings, which have been collected 'Self-Restraint Vs self Indulgence'.

It is an earnestly held view of Ahimsa thinkers that the best form of family planning would be by self-control or Brahmacharya. Yet Ahimsa thinkers deplore with the others failure of the family planning programme initiated by our Government in the Five-Year Plans of this country. It was in the First Five-Years Plan that the idea of population control and 'the reduction of the birth-rate to the extent necessary to stabilise the population at a level consistent with the requirements of national economy' was first mooted. The appeal for family planning was then mainly put forward on considerations of health and welfare of the family. In the second and the third Five-Year Plans the programme of family planning was developed further and it was stated that the objective of stabilsing the growth of population over a reasonable period must be regarded as at the very centre of planned development.

The large-scale family planning programmes have unfortunately not been too successful. The population has continued to increase at the nomal or even higher than normal rate. That is a matter for real regret. Of all those who believe in Ahimsa ideology it becomes an obvious duty to be positively assiduous in the implementation of the policy of population stabilisation and control deliberately adopted by our Government by all the means within their capacity.

श्री तनसुखराय जैन स्मृति ग्रन्थ संयोजक समिति

सम्माननीय सदस्य

श्री दानवीर साहू शान्तिप्रसाद जी अध्यक्ष — कलकत्ता
,, जगजीवनराम जी भूतपूर्व रेलवे मंत्री भारत सरकार
,, पद्मभूषण श्री कुंवरसैन जी चीफ इञ्जीनियर — बैंकाक, थाईलैंड
,, अचलसिंह जी M. P. आगरा
,, बा० तख्तमल जी जैन मिनिस्टर — मध्य प्रदेश सरकार भोपाल
,, ला० राजेन्द्रकुमार जी प्रधान भा० दि० जैन परिषद
,, आचार्य जुगलकिशोर जी मिनिस्टर — उत्तर प्रदेश सरकार लखनऊ
चौधरी श्री देशराज जी भूतपूर्व डिप्टी मेयर — दिल्ली कारपोरेशन दिल्ली
श्री जयन्तीलाल जी मानकर संचालक जीवदया प्रचारक मण्डल बम्बई
,, ऋषभदास जी रांका अध्यक्ष भारत जैन महामण्डल बम्बई
,, देशभक्त बाबू रतनलाल जी जैन Ex. M. L. A. बिजनौर
,, रायबहादुर बा० दयाचन्द जी जैन — रिटायर्ड चीफ इञ्जीनियर दिल्ली
,, चिरंजीलाल जी बडजात्या वर्धा
,, लाला राजकृष्ण जी जैन दिल्ली
,, पं० परमेष्ठीदास जी जैन न्यायतीर्थ, ललितपुर
,, पं० शीलचन्द जी जैन न्यायतीर्थ मवाना
,, श्री कान्ता जी जैशीराम आनरेरी फर्स्ट क्लास मजिस्ट्रेट दिल्ली